CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड का इतिहास

शिवप्रसाद डबराल 'चारण' एम. ए., ... एच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड का इतिहास

कत्यूरी-युग तक

(४)

साक्ष्य-संकलन

शिवप्रसाद डबराल 'चारण' एम०ए०, पी-एच०डी०

वीर-गाथा-प्रकाशन
दोगडा, गढ़वाल

२०२२ * १०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्रक—
वीर-गाथा प्रेस,
दोगड़ा, गढ़वाल

Acchi. 3649
3-5-68
Library, Lko.

❀

उत्तराखंड, देहरादून, गढ़वाल, कुमाऊं-संबंधी
खोजपूर्ण साहित्य

शिवप्रसाद डबराल 'चारण' एम०ए०, पी-एच०डी०
की रचनाएं

* उत्तराखंड का इतिहास
कत्यूरी-युग तक—२ भाग
* उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन
* उत्तराखंड के भोटाँतिक
* उत्तराखंड के पशुचारक
* अलकनन्दा-उपत्यका

❀

954.2
5 3
1

प्रकाशक—
वीर-गाथा-प्रकाशन
दोगड़ा, गढ़वाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

SOURCES OF
The History of Uttarakhand

UP TO

KATYURI AGE

❀

1- Prehistoric Implements
2- Prehistoric Remains
3- Race Movements
4- Literary Sources
5- Historical Sites
6- Travellers' Notes
7- Ancient Capitals
8- Temples & Idols
9- Ancient Coins
10- Published Inscriptions

❀

S. P. DABRAL M. A., Ph. D.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड के कल्हण,

प्रख्यात चित्रकार,

प्रच्छन्न तांत्रिकसाधक

श्री मौलाराम तोमर

की

पावन स्मृति में

954.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

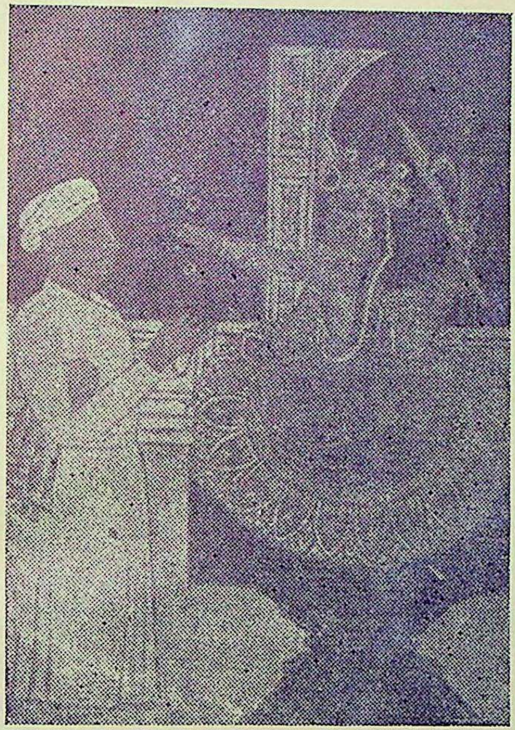

श्री मौलाराम तोमर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

भूमिका ६

साक्ष्य-संकलन २३

विलुप्त संस्कृतियों के अवशेष २३, जातियों का आगमन २४, साहित्यिक-साक्ष्य २६, ऐतिहासिक स्थानों की विस्मृत समृद्धि २७, प्राचीन राजधानियों के विनष्ट रंगमंच २८, यात्रियों के यात्रा-वर्णन २६, प्राचीन मन्दिर और मूर्तियां २६, प्राचीन मुद्राएं ३०, प्रकाशित अभिलेख ३१,

उत्तराखण्ड-परिचय ३३

नामकरण ३२, उत्तराखण्ड के अन्तर्गत वर्तमान जिले, क्षेत्रफल, जनसंख्या ३६, भूगोलिक वर्णन ३६, कृषि ४२, भूगोल का इतिहास पर प्रभाव ४६,

विलुप्त संस्कृतियां ५३

गंगाद्वार-संस्कृति (१) ५३, गंगाद्वार-संस्कृति (२) ५८, चंडेश्वर-संस्कृति ६४, मलारी-संस्कृति ६६,

जातियों का आगमन ८१

कोल (मुंड) ८१, किरात ६५, खश १०४, द्रविड़ १२८, आर्य १३२, शक, शिथियन, गूजर १३३,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्यिक-साक्ष्य १३८

वेदिक साहित्य १३८, पालि सा० १३९, जैन सा० १४३, पौराणिक सा० १४४, केदारखण्ड १४८, मानसखण्ड १५१, धर्मशास्त्र १५३, इतिहास, रामायण १५३, महाभारत १५३, कण्वाश्रम १५७, अर्जुन की उत्तराखंड-विजय १६१, उत्तराखंड से उपायन १६२, उत्तराखंड की तीर्थयात्रा १६४, कुलिन्दराजकुमारों का संहार १७६, कुलिन्दराज्य के पाषाणयोधि म्लेच्छों का संहार १७९, पुराणों में कलियुग के राजवंश १८१,

विस्मृत समृद्धि

भाबर का वैभव १८४, यामुन १९९, कालसी २००, हरिपुर २००, जगतराम २०१, स्रुघ्न २०४, स्रुघ्ननगर २०६, लाखामंडल २०८, सैंहपुर (सिंहपुर) २०८, भरद्वाज २१३, गंगाद्वार २१४, मायापुर-हरिद्वार २१९, ब्रह्मपुर जनपद २२१, ब्रह्मपुर २२२, कण्वाश्रम २२८, मोरध्वज २२९, कोटद्वार २३२, ढिकुली २३३, गोविषाण (उज्जैन) २३४, अजपथों पर स्वर्णवर्षा २३८,

विनष्ट रंगमंच

कुलिन्दनगर २६५, कर्त्रिपुर जनपद २७०, कार्तिकेयपुर (नगर) २७१, बाराहाट २७६, आदिबदरी-चांदपुरगढ़ी २८२, लखनपुर-पाटन २८३, वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर २८४

तल्लीन कलाकार

आदिबदरी २९३, अलमोड़ा २९६, ऊखीमठ २९७, कटारमल २९७, कालीमठ २९८, केदारनाथ ३००, कोटद्वार ३००, गोपेश्वर ३०१, जागेश्वर ३०१, जोशीमठ ३०२, तड़ासर ३०२, तपोवन ३०२, देवप्रयाग ३०३, देवल ३०३, बदरीनाथ ३०४, बागेश्वर (व्याघ्रेश्वर) ३०५, बालेश्वर ३०५, बिनसर ३०६, सल्डमहादेव ३०६, सिमली ३०६, स्यालदे पोखर ३०७,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध-मुद्राएं ३११

अभाव के कारण ३११, कुणिन्दमुद्राएं ३१४, यौधेयमुद्राएं ३१५, गुप्तमुद्राएं ३१६, कत्यूरीमुद्राओं का अभाव ३२२, पंवारमुद्राएं ३२२, गोरखामुद्राएं ३२३, मुगलमुद्राएं ३२३, अन्य मुद्राएं ३२४,

प्रकाशित अभिलेख ३२५

कालसी, अशोक के अभिलेख ३१४, भरहुत-धनभूति का तोरणअ० ३४४, उज्जैन (काशीपुर), 'मित्र' नरेशों के इष्टिकालेख ३४५, जगतराम, शीलवर्म्मन् का इष्टिकालेख ३४५, प्रयाग, समुद्रगुप्त का स्तम्भलेख ३४६, देवप्रयाग, यात्री-नामावली ३४६, मन्दसौर, वन्धुवर्म्मन् का शिला लेख ३४७, लाखामण्डल, ईश्वरा का शिलालेख ३४७, तालेश्वर, द्विजवर्म्मन् का वृषताप-शासन ३५१, तालेश्वर, विष्णुवर्म्मन् का ताम्रशासन ३५७, बाराहाट, श्रीगुह का त्रिशूल-अ० ३६३, मन्दसौर, यशोधर्मदेव का स्तम्भले० ३६४, जोधपुर, बाउक का शि० ३६५, खालिमपुर, धर्मपालदेव का ता० शा० ३६५, मुंगेर, देवपाल का ता० शा० ३६६, मंगलवारि, गरुड़-स्तम्भलेख ३६७, पांडुकेश्वर, ललितशूर का ता० शा० (१) ३६८, पांडुकेश्वर, ललितशूर का ता०शा० (२) ३७४, बागेश्वर, भूदेव का शि० ३७७, पांडुकेश्वर, सुभिक्षराज का ता०शा० ३८४, खजुराहो, यशोवर्म्मन् चन्देल का शि० ३९१, भागलपुर, नारायणपाल का ता०शा० ३९३, गोहडवा, कर्णदेव का ता०शा० ३९४, बाणगढ़, महिपाल प्र० का ता०शा० ३९४, मनहलि, मदनपाल का ता०शा० ३९४, चांदपुरगढ़ी, कनकपाल का शि० ३९५, उदयपुर, मालवानरेशों की प्रशस्ति ३९५, बाराहाट, नागराज की मूर्ति का अ० ३९६, इन्द्रप्रस्थ, विग्रहराज का स्तंभलेख ३९६, गोपेश्वर, अशोकचल्ल का त्रिशूल-अ० ३९७, बालेश्वर, क्राचल्लदेव का ता०शा० ३९८, बोधगया, अशोकचल्लकालीन शि० ४०१, बोधगया, सहणपाल का शि० ४०२, संजन, अमोघवर्ष का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ता०शा० ४०४, करहाद, राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का ता० शा० ४०४, खजुराहो, धंगदेव का शि० ४०५, वाराणसी, कर्णदेव का ता०शा० ४०५, कोशलउत्कल के सोमवंशियों का अ० ४०६, कालीमठ, रुद्रसून का शि० ४०६, नाला, मणदेव का शि० ४०७, शिरीषपद्क, प्रशांतराग का ता० शा० ४०८

चित्रावली ४०६

सहायक-साहित्य-सूची ४४०

अनुक्रमणिका

—०—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

गंगाजी ने केवल उत्तरभारत के धरातल का ही निर्माण नहीं कियाहै, वरन् भारतीय सभ्यता और संस्कृति को भी पूर्णत: प्रभावित कियाहै। उत्तराखंड की शिवालिकश्रेणियों में मानव प्रस्तरकाल में ही आबसाथा। तबसे लेकर ऐतिहासिककाल तक इस प्रदेश में मानव-अस्तित्व के प्रमाण निरन्तर मिलतेहैं।

गंगाजी की पावनता से भारत की आदिमतम मूल-आस्त्रोलोइदजाति भी प्रभावित हुईथी। विद्वानों की धारणा है कि गंगाजी को यह नाम उसी जाति ने दियाथा[1], और अपने प्रसार के साथ वह इस नाम को दक्षिणपूर्वी एशिया में भी लेगई। किरातजाति तो गंगाजी की उपरली

१- 'A name like Ganga is in all likelihood of Austric origin. Original Austric speakers form a substratum in (India), Burma, Indo-China and South-China also; and the Indian Ganga, the Indo-Chinese Khong, as in Me-Khong and the South Chinese Kiang, as in Yang-tsze-kiang and a dozen other river-names can very well be from the same old Austric word.'--मजूमदार तथा पुशलकर--दि वेदिक एज, पृ० १५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धाराओं से इतनी अधिक प्रभावित हुईथी कि उसने इसे अपना जातिनाम देकर, अपना तादात्म्य स्थापित करने में अपने को धन्य समझाथा।

उस धुंधले प्रकाश के युग से लेकर आजतक जो अगणित जातियां उत्तरभारत में आकर बसतीगईं, सभी गंगाजी की और उसके स्रोतप्रदेश की पावनता से प्रभावित होतीरहीं। शताब्दियों पर शताब्दियां बीतगईं। एक के पश्चात् दूसरे मत-मतान्तरों ने जनता के हृदय पर अधिकार करलिया। पर गंगाजी और उसके स्रोतप्रदेश के प्रति श्रद्धापूर्ण भावना सदा ही अविचल बनीरही[१]।

युग-युग में अगणित कष्टों को उठाकर श्रद्धालु जनता उत्तराखंड की पावन धूलि को अपने मस्तक पर मलतीरही। दार्शनिकों, नरेशों और साधारण गृहस्थियों, सभी की युग-युग में यही कामना रही कि उनके जीवन की अन्तिम घड़ियां उत्तराखंड में बीतें।

वानप्रस्थी चिन्तक, सन्यासी-प्रव्राजी, उपनिषदों और पुराणों के प्रवक्ता तथा लेखक, एवं बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, भागवत, नाथ, सिद्ध आदि साधक, सभी ने इस प्रदेश को अपनी साधना और इहलीला-समाप्ति के लिए सर्वपुनीत भूमि माना।

उत्तराखण्ड में पहुंचकर उपवास से प्राणत्याग करने की, तटशिला से गंगाजी में अथवा महापंथ से हिमानी में कूदकर प्राणोत्सर्ग करने की परम्परा चिरकाल से आजतक चलीआतीहै।

उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा का उल्लेख पिछले २५०० वर्ष के साहित्य में निरन्तर मिलताहै। किन्तु उसकी परम्परा और भी अधिक प्राचीन मानीजासकतीहै। गंगाजी ने, एवं उसके स्रोतप्रदेश के शिखरों ने भारत की सभ्यता और संस्कृति को कितना प्रभावित कियाहै, इसका अनुमान लगाना कठिन है।[२]

१- डबराल--उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन, पृ० ३६-५६

२- डबराल--उपरोक्त--पृ० १४८-२१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिवर्ष ग्रीष्मकाल में भारत के कोने-कोने से एक लाख से अधिक बालक-वृद्ध, नर-नारी, शक्त-अशक्त, धनी निर्धन व्यक्तियों की श्रृंखला ऋषिकेश से उत्तराखण्ड की ओर चलपड़तीहै। ऐसे व्यक्तियों की संख्या कई गुनी अधिक है जो उत्तराखण्ड के दर्शन के लिए जीवनभर तड़पते रहतेहैं, किन्तु धनाभाव या अन्य कारणों से अपनी अभिलाषा की पूर्ति नहीं करपाते।

निश्चय ही भारत के किसी भी भूखण्ड के प्रति युग-युग में जनता की इतनी अपार श्रद्धा नहीं रहीहै, जितनी उत्तराखण्ड के प्रति रहीहै।

उत्तराखण्ड ने भारत की धार्मिक भावनाओं को जिस प्रकार प्रभावित कियाहै, उसी प्रकार राजनैतिक भावनाओं पर भी अपनी छाप डालीहै। प्राचीनकाल में ही चक्रवर्ती नरेशों के विजयक्षेत्र की सीमा हिमालय से समुद्र तक निर्धारित होचुकीथी। महाभारत[१], अर्थशास्त्र[२], मारकंडेय-पुराण[३], वायुपुराण[४], रघुवंश[५] आदि ग्रन्थों से भी इस मान्यता की पुष्टि होतीहै।

अभिलेखों से विदित होताहै कि उत्तराखण्ड में स्थित कैलास, गन्धमादन, बदरिकाश्रम, केदार, विन्दुसर तक के प्रदेश को तथा गंगातट के हिमशिखरों, गंगाजी के झरनों, गंगातट के देवदारु आदि को अपने विजयक्षेत्र के अन्तर्गत लाने के लिए उत्तरभारत के दिग्विजयी नरेश सदा प्रयत्नशील रहे।

१- पांडवों की दिग्विजय, सभापर्व, अ० २५

२- 'देशः पृथिवी। तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजन-सहस्र परिमाणमतिर्यक् चक्रवर्तिक्षेत्रम्'--अर्थशास्त्र, ९।१।१७-१८

३- मारकंडेयपुराण, ५७।५९ ४- वायुपुराण, ९५।७५-७६

५- रघु की दिग्विजय, रघुवंश, सर्ग ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक अभिलेखों में उत्तराखण्ड पर अधिकार की चर्चा को सर्वथा कपोलकल्पित मानना असंगत है। उत्तराखण्ड की पावनता के कारण प्रत्येक दिग्विजयी नरेश गंगाजी के स्रोतप्रदेश को अपने शासन के अन्तर्गत लाकर अपने को गौरवान्वित करनाचाहताथा।

अस्तु उत्तराखण्ड के इतिहास की पूर्णता उन राजवंशों की सूचीमात्र से नहीं मानीजासकती, जो समय-समय पर इस क्षेत्र के निवासियों के भाग्यविधाता बनेरहेहैं। भारतीय संस्कृति को उत्तराखंड की देन उसके इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है। इस अंश के समुचित अध्ययन के बिना उत्तराखण्ड का इतिहास अधूरा है।

यद्यपि उत्तराखण्ड के इतिहास से सम्बन्धित एक-दो घटनाओं का उल्लेख ज्योतिराय भरत के मानोदयकाव्य में भी मिलताहै, पर उत्तराखण्ड या उसके एक भाग का इतिहास लिखने के प्रथम प्रयास का श्रेय मौलाराम तोमर को है। इस प्रख्यात चित्रकार द्वारा लिखित गढ़राजवंश के पद्यबद्ध इतिहास का गढ़वाल के इतिहास के लिए उतना ही महत्व है, जितना कश्मीर के इतिहास के लिए राजतरंगिणी का है।

कल्हण की रचना के समान ही मौलाराम की रचना भी उसके जीवनकाल और उससे एक-दो पीढ़ी पूर्व तक के लिए ही प्रामाणिक मानीजासकतीहै।

कल्हण ने पूर्ववर्ती नरेशों के शासनों, प्रशस्तियों और लिखित वर्णनों आदि का अध्ययन करके अपनी रचना को इतिहास का वास्तविक स्वरूप देने का प्रयत्न कियाथा[१]। मौलाराम की दृष्टि इतनी व्यापक न थी। किन्तु राजपरिवार के निकटतम सम्पर्क से तथा अन्य स्रोतों से उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं की प्रामाणिक सूचनाएं प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न कियाथा।

१- कल्हण--राजतरंगिणी, १।१४-१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि मौलाराम की रचना का आरम्भिक अंश 'ऐतिहासिक कसौटी पर प्रामाणिक नहीं उतरता पर ज्यों-ज्यों वे अपने जीवनकाल के निकट पहुँचतेहैं, त्यों-त्यों उनका इतिहास अधिकाधिक प्रामाणिक बननेलगताहै। व्यक्तियों और घटनाओं की संख्या बढ़नेलगतीहै, और उनके अधिक विस्तृत और संबद्ध वर्णन मिलनेलगतेहैं। वे निसंकोच एवं निरपेक्ष भाव से रंगमंच के पात्रों के चरित्र की विशेषताओं और त्रुटियों का वर्णन करते मिलतेहैं।

वे घटनाएं, जो उनके जीवनकाल में गढ़वाल और उसके पड़ोस में घटीं और भी अधिक विस्तृत वर्णन के साथ अंकित मिलतीहैं। उनकी रचना व्यक्तियों और घटनाओं की सूचीमात्र न रहकर सजीव इतिहास का रूप धारण करतीहै, जिसमें विभिन्न व्यक्ति अपनी विशेषताओं, दुर्बलताओं और आकांक्षाओं को लेकर जीवनपथ पर आगे बढ़ते तथा इस पर्वतीयप्रदेश की भाग्यनौका का अपने ही ढंग से संचालन करने का प्रयत्न करते मिलतेहैं।

मौलाराम के जीवनकाल में चन्द्रवंश का पतन, पंवारवंश की पराजय, गोरखाआक्रमण और अंगरेजीराज्य की स्थापना, उत्तराखण्ड के इतिहास की ये चार महत्वपूर्ण घटनाएं घटीथीं। उन्होंने तिब्बत, बुशहर और कुमाऊं में निरन्तर विजय प्राप्त करनेवाली गढ़वाल की सेना को गोरखाआक्रमण के समय नष्टहोते देखाथा। दरबारियों के आपसी द्वेष और संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण गढ़वाल का विनाश देखकर उन्होंने आंसू बहाएथे[1]।

१- ऐसे खशिया दुज हैं गढ़ के। जानत हैं घर ही में लड़ि कैं।
एक की एक करें चुगली मुगली बहु पेनन में बढ़ि कै।
पर काज बिगारत हैं, अपनो सिर पाप चढ़ावत हैं अड़ि कै॥
याहि ते यह गढ़वाल गयो, कटि आपस मांहि मरैं लड़ि कै।
कवि 'मौलाराम' विचार कही, ऐसे खशिया दुज हैं गढ़ के'॥
--मौलाराम- गढ़-राजवंश का इतिहास, उ० राहुल--पृ० १५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंगरेजीराज्य की स्थापना पर मौलाराम ने अपने विचारों को एक पृथक् ग्रन्थ में प्रकट कियाहै।

ब्रिटिशराज्यकाल में एटकिनसन ने अपने गजेटियर आव हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स (१८८२, ८४) के तीन विशालकाय खण्डों में उत्तराखण्ड के भूगोल, भूतत्व, इतिहास और निवासियों के जीवन तथा धार्मिक विश्वासों का वर्णन किया। उसने उस समय तक उपलब्ध समस्त सूचनाओं का बड़ी सावधानी से सम्पादन किया जिससे उसका गजेटियर उत्तराखण्ड के सम्बन्ध में किसी भी विषय के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण विश्वकोष के समान उपयोगी बनगयाहै।

तबतक उपलब्ध सामग्री के आधार पर उत्तराखण्ड का पहला विस्तृत इतिहास लिखने का श्रेय एटकिनसन को है। उन्होंने उत्तराखंड की खश आदि जातियों के सम्बन्ध में तबतक प्राप्त समस्त सूचनाओं को एकत्रित किया। कत्यूरीनरेशों के अभिलेखों तथा पंवार एवं चन्दवंश की वंशावलियों और गाथाओं के आधार पर उन्होंने उत्तराखण्ड के इतिहास की कड़ियां जोड़ीं। जनता की सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं का भी उन्होंने विस्तृत एवं रोचक वर्णन किया।

केवल उत्तराखण्ड पर ही नहीं, उत्तरप्रदेश के विभिन्न जिलों के सम्बन्ध में उपलब्ध समस्त सामग्री को विधिपूर्वक संग्रहीत करके उन्होंने उस सामग्री के आधार पर जो विशालकाय गजेटियर प्रकाशित किएहैं, वे उनके अपार अध्यवसाय के सुन्दर स्मारक हैं।

एटकिनसन के पश्चात् जिस-किसी ने उत्तराखण्ड या उसके किसी भाग के इतिहास पर लेखिनी उठाई उसके लिए एटकिनसन के ग्रन्थ से सहायता लेना आवश्यक होगया।

उत्तराखण्ड के इतिहास के सम्बन्ध में एटकिनसन की कुछ धारणाओं को अब मान्य नहीं समझाजाता। विस्तृत शोधकार्य होने पर उनकी कुछ अन्य धारणाएं भी अमान्य सिद्ध होंगी। फिर भी उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महान् कार्य का महत्व शताब्दियों तक बनारहेगा।

एटकिनसन का महान ग्रन्थ गजेटियर-मात्र है, जिसमें सभी प्रकार की महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सूचनाओं के साथ उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री भी देदीगईहै। गजेटियर का ध्येय केवल इतिहास-मात्र लिखना नहीं होता। अस्तु उसमें ऐतिहासिक तथ्यों का सूक्ष्म अनुशीलन न मिलना स्वाभाविक है। एटकिनसन से प्रभावित होकर जिस-किसी ने उत्तराखण्ड या उसके किसी भाग (गढ़वाल, कुमाऊं) के इतिहास पर लेखिनी उठाई उसने अपने ग्रन्थ को गजेटियर का ही स्वरूप देदिया।

उत्तराखण्ड के कर्मठ राष्ट्रीय नेता कूर्मांचल-केसरी पंडित बद्रीदत्त पांडे ने अपने 'कुमाऊं का इतिहास' (१९२७) में कुमाऊं के इतिहास के अतिरिक्त कुमाऊं का भूगोल, महत्वपूर्ण स्थानों का वर्णन, तथा अन्त में कुमाऊं की विभिन्न जातियों के इतिहास, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक परम्पराओं का वर्णन देकर उसे सर्वोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया।

उनके ग्रन्थ से विदित होताहै कि उनसे पूर्व द्वाराहाट के श्री रामदत्त ज्योतिर्विद तथा श्री रुद्रदत्त पंत ने भी कुमाऊं के इतिहास पर पुस्तकें लिखीथीं जिनमें कुमाऊं के नरेशों की वंशावली और राज्यावधि सम्भवतः शिलालेखों के आधार पर निश्चित कीगईथी।

पंडित हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने 'गढ़वाल का इतिहास' (१९२८) में गढ़वाल के भूगोल तथा प्राचीन गाथाओं के साथ उस ऐतिहासिक सामग्री को भी संग्रहीत कियाहै, जिसे वे टिहरी-दरबार से सम्बन्धित होने के कारण प्राप्त करसकेथे। उन्होंने पहली बार गढ़वाल में उपलब्ध प्राचीन मुद्राओं के चित्रों को प्रकाशित किया। कुछ पंवार-नरेशों की राज्यावधि के सम्बन्ध में रतूड़ी के निष्कर्ष एटकिनसन की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक प्रतीत होतेहैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डा० पातेराम की पुस्तक Garhwal, Ancient and Modern (१९१७) में एटकिनसन के महान् ग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थों से महत्वपूर्ण भूगोलिक एवं ऐतिहासिक सामग्री संग्रहीत है।

मौलाराम के ग्रन्थ 'गढ़-राजवंश का इतिहास' तथा उनकी चित्रकला को प्रकाश में लाने का श्रेय श्री मुकुन्दीलाल को है। उन्होंने मौलाराम के ग्रन्थ के महत्वपूर्ण अंशों को हिन्दुस्तानी पत्रिका में प्रकाशित किया। गढ़वाल के इतिहास के सम्बन्ध में उन्होंने जो महत्वपूर्ण सामग्री एकत्रित कीथी, उसका राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ 'गढ़वाल' में प्रयोग किया।

राहुल ने एटकिनसन, पांडे, पातेराम और रतूड़ी की पुस्तकों के एवं उपरोक्त सामग्री तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर 'गढ़वाल' (१९५३) और 'कुमाऊं' नामक दो ग्रन्थ लिखे, जिनमें भुगोलिक एवं अन्य उपयोगी सूचनाओं के साथ इन क्षेत्रों का विस्तृत इतिहास भी दियागयाहै।

अगणित ग्रन्थों के लेखक राहुल की दृष्टि बहुत व्यापक थी। उन्होंने उत्तराखण्ड के इतिहास की प्रमुख घटनाओं के कालनिर्णय में तिब्बत और उत्तरभारत के इतिहास से भी सहायता ली। अबतक उपलब्ध सामग्री का राहुल ने अति सुन्दर उपयोग कियाहै। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तराखण्ड के इतिहास के लिए ये दोनों ग्रन्थ एटकिनसन के गजेटियर के समान ही उपयोगी हैं। राहुल ने भी इन दोनों ग्रन्थों को गजेटियर-जैसा ही बनादियाहै।

मेरे ग्रन्थ उत्तराखण्ड-यात्रा-दर्शन (१९६०) में उत्तराखण्ड के इतिहास पर बहुत-सी प्रामाणिक सामग्री बिखरीपड़ीहै। इस ग्रन्थ में पहिली बार उत्तराखण्ड के तीर्थों और उनकी तीर्थयात्रा के इतिहास पर एवं पंडों तथा रावलों के इतिहास पर प्रकाश डालागयाहै। उत्तराखंड के प्रमुख मन्दिरों और उनकी मूर्तियों की कला के आधार पर पहिली बार उनके कालनिर्णय का प्रयत्न कियागयाहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा-उपत्यका, उत्तराखण्ड के भोटांतिक तथा उत्तराखण्ड के पशुचारक नामक मेरी पुस्तकों में भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री है। पिछले तीस वर्षों में कुछ उत्साही व्यक्तियों ने गढ़वाल और कुमाऊं के इतिहास को अपने शोधकार्य के लिए चुना। मैंने स्वयं भी कुछ व्यक्तियों को इसके लिए प्रोत्साहित किया। किन्तु प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में तथा अन्य कारणों से उन्हें सफलता न मिलसकी।

शिलालेखों, मुद्राओं और पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर तथ्यों की कड़ियां जोड़कर उत्तराखण्ड के इतिहास को मौर्यकाल तक पहुंचाया जासकताहै। प्राचीन साहित्यिक साक्ष्यों के अनुशीलन से उससे पूर्ववर्ती घटनाओं का पता लगसकताहै। उत्तराखण्ड में प्राप्त ताम्रयुगीन और प्रस्तरकालीन अवशेष उसके इतिहास को प्रागैतिहासिककाल तक लेजातेहैं।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में जिस प्रकार उत्तरभारत में महमूदगोरी के आक्रमणों ने हिन्दूराज्यों का उत्पाटन करदिया, उसी प्रकार नेपाली आक्रमणों ने उत्तराखण्ड के कत्यूरीवंश को नष्ट करदिया।

कत्यूरी-साम्राज्य में और उससे पूर्व कई बार सारे उत्तराखण्ड पर एक ही राजवंश का अधिकार रहाथा। किन्तु कत्यूरी-पतन के पश्चात् उत्तराखण्ड अनेक ठकुराइयों में बंटगया। जिनको संगठित करके पंवार और चन्दनरेशों ने गढ़वाल और कुमाऊं राज्यों की स्थापना कीथी।

इसलिए उत्तराखण्ड के इतिहास को तीन भागों में बांटाजासकताहै। (१) उत्तराखण्ड का इतिहास—आरम्भ से कत्यूरीयुग तक (२) गढ़वाल का इतिहास और (३) कुमाऊं का इतिहास।

उत्तराखण्ड के इतिहास पर ऐतिहासिक शोध पर आधारित ग्रन्थों का सर्वथा अभाव है। अस्तु उत्तराखण्ड के इतिहास के तीनों भागों के साथ प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्य प्रकाशित करदेने से भावी शोधकर्त्ताओं को बहुत लाभ पहुंचेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरभारत में मुसलिमराज्य की स्थापना होजाने पर उत्तराखण्ड और भारत के अन्य भागों के सम्पर्क में बाधाएं उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इससे बहुत पहले ही उत्तराखण्ड भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर अपनी छाप लगाचुकाथा। एवं जनगाथाओं के अनुसार शंकराचार्य और दक्षिण तथा उत्तरभारत के कई आचार्य, उत्तराखण्ड पहुँचचुकेथे।

भारतीय संस्कृति के प्रसार की दृष्टि से उत्तराखंड के इतिहास का प्रथम भाग—आरम्भ से कत्यूरीकाल तक--बहुत महत्वपूर्ण है। महाभारत तथा कुछ पुराणों का संम्पादन इसी युग में संभवतः उत्तराखंड में हुआथा। उत्तराखण्ड के प्रमुख तीर्थों के मन्दिरों और मूर्तियों की स्थापना इसी युग में हुई। महमूद ने जब उत्तरभारत के मन्दिरों और मूर्तियों का विध्वंस किया तो उत्तरभारत के अनेक मूर्ति-निर्माताओं ने उत्तराखण्ड में पहुंचकर अपनी अमर रचनाओं की सृष्टि की।

यद्यपि अबतक प्रकाशित उत्तराखंड, (गढ़वाल या कुमाऊं) के इतिहासों में उन नरेशों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता जो अपने अभिलेखों में उत्तराखण्ड-विजय की घोषणा करतेहैं, फिर भी निश्चय ही यह युग उत्तराखण्ड के इतिहास के लिए चरम उत्कर्ष का युग था। वास्तव में इस युग के लिए इतनी ऐतिहासिक सामग्री मिलतीहै कि उसके अध्ययन से उत्तराखण्ड के तत्कालीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ताहै।

अपने प्रदेश का इतिहास स्वयं लिखना बड़े गौरव की बात है। किन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। अपने प्रदेश के प्रति विशिष्ट भावना पहले से ही बनालेने पर सन्तुलन खोजाने की सम्भावना निरन्तर बनीरहतीहै। इधर-उधर से असंबद्ध एवं अप्रामाणिक उद्धरणों को जुटाकर लेखक अपने प्रदेश के इतिहास को इस प्रकार गढ़ने का प्रयत्न करने लगताहै जिससे पाठकों की दृष्टि में उसका महत्व बढ़जाए। ऐसे प्रयत्न का चाहे अन्य महत्व भले ही हो, ऐतिहासिक महत्व बहुत कम होताहै[१]।

१- 'This almost necessarily leads to the artificial

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड की वर्तमान दरिद्रता और अन्य कारणों से उसकी प्राचीन समृद्धि और गौरव पर सहसा विश्वास नहीं होता। अनेक पढ़ेलिखे व्यक्तियों की आज भी यह धारणा है कि उत्तराखण्ड का इतिहास पिछड़ेप्रदेश का इतिहास-मात्र है, उसका उत्तरभारत के इतिहास में कोई स्थान नहीं है।

उनके लिए यह विश्वास करना कठिन है कि प्राचीनकाल में उत्तराखण्ड में भी तक्षशिला और नालंदा के समान विशाल गुरुकुल थे। अथवा उत्तराखण्ड के वीर सोने की झूल से ढके विशालकाय हाथियों पर चढ़कर कौरव-सेना से भिड़ेथे। निश्चय ही वर्तमान का चश्मा लगाकर भूतकाल को, या भूतकाल का चश्मा लगाकर वर्तमानकाल को देखने से ऐतिहासिक तथ्यों का पता नहीं लगसकता[१]।

इतिहास के जिज्ञासु के लिए आवश्यक है कि ऐसी त्रुटियों की ओर सावधान रहकर वर्तमान वैज्ञानिक विधि से इतिहास का अध्ययन करे। हमारा लक्ष्य, सत्य का, केवल सत्य-मात्र का, अन्वेषण होना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें निशंक होकर तथा पक्षपात और पूर्वधारणाओं से प्रभावित हुए बिना समस्त उपलब्ध तथ्यों का विश्लेषण करनाचाहिए[२]।

---

creation of a golden age which rests mainly on imagination and intution, independent of historical evidence. This intellectual support of false doctrines and bad institutions in the name of India's past often proceeds from a perverted form of patriotic sentiments or an inborn sense of national pride.' - आर० सी० मजूमदार--दि वेदिक एज, पृ० ४०

१-२- आर०सी० मजूमदार--उपरोक्त, पृ० ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमें किसी सिद्धांत-विशेष का पोषक न बनकर केवल निर्णायक के रूप में उसका विश्लेषण करनाचाहिए। और उस विश्लेषण के आधार पर जो तथ्य निकलें उन्हीं को मान्य समझनाचाहिए[1]।

सम्भव है ऐसा करने से हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर न पहुँच सकें। किन्तु भ्रांतिजनक वर्णन की अपेक्षा तथ्यप्राप्ति में अपनी असमर्थता या अन्य सम्भावनाओं का उल्लेख करना इतिहासलेखक के लिए अधिक उचित है[2]।

अपने प्रदेश का इतिहास निरपेक्षभाव से लिखना अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी यदि हम अपने भूतकाल का वास्तविक चित्र देखना चाहतेहैं, और अपने वर्तमान और भावी जीवन पर उसके प्रभावों का सही अध्ययन करनाचाहतेहैं, तो हमें इस कठिनाई को दूर करना ही होगा[3]।

उत्तराखण्ड के इतिहास के लिए सामग्री जुटाना सरल नहीं है। रतूड़ी के गढ़वाल के इतिहास में प्रकाशित मुद्राओं का ब्लाक मुझे परमपूज्य पं० विश्वम्भरदत्त चन्दोला सम्पादक 'गढ़वाली' से प्राप्त हुआहै। उत्तराखण्ड की दो प्राचीन मुद्राएं, जो गढ़वाल, कुमाऊं के सीमान्त पर स्थित सल्डमहादेव में प्राप्त हुईथीं, पं० पद्मादत्त सुन्दरियाल जी ने मुझे देने की कृपा कीहै। अनेक शिलालेखों की प्रतियां मेरे मानसपुत्र श्री लक्ष्मीविलास डबराल ने जुटाईहैं।

सर्वश्री एटकिनसन, कनिंघम, ग्रियर्सन, पातेराम, बदरीदत्त पांडे, हरिकृष्ण रतूड़ी, राजबली पांडे आदि अनेक विद्वानों के ग्रन्थों से मुझे बड़ी सहायता मिलीहै। पुरातत्वविभाग ने बहादुराबाद में प्राप्त पाषाण एवं ताम्र-उपकरणों के तथा शीलवर्म्मन् के इष्टिकालेख के चित्र एनशिएंट इंडिया संख्या ९ से उद्धृत करने की अनुमति प्रदान कीहै। इन सबका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

१-३- आर०सी० मजूमदार--दि वेदिक एज, पृ० ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पुस्तक के मुद्रण का सारा कार्य अकेले महेशचन्द्र डबराल द्वारा सम्पन्न हुआ है।

पिछले वर्ष मेरे परम मित्र श्री हेमचन्द्र बड़थ्वाल ने स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल की पावन स्मृति में श्रद्धांजलि-ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन किया था। इस पुनीत कार्य में मैंने भी उन्हें सहायता देना सहर्ष स्वीकार कर लिया था। पूर्व आयोजन के अनुसार इस कार्य में विलम्ब होते देखकर मैंने अपनी इसी पुस्तक को उक्त ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने को सोची थी। किन्तु श्री बड़थ्वालजी ने मुझे यथासमय विश्वास दिला दिया कि अब इस कार्य में विशेष विलम्ब न होगा।

वर्तमान ऐतिहासिक शोधप्रणाली के अनुसार किसी प्रदेश का इतिहास समस्त उपलब्ध प्रमाणों की गहरी छानबीन के आधार पर लिखा जाना चाहिए। इस दृष्टि से मेरे इस प्रथम प्रयास में त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। फिर भी मुझे विश्वास है कि मेरे इस प्रयास से उत्तराखंड के इतिहासप्रेमियों को और भविष्य में शोधकार्य करनेवालों को लाभ पहुँचेगा।

कत्यूरीकाल तक के उत्तराखण्ड के इतिहास की ऐतिहासिक सामग्री के ४०० पृष्ट लगभग तीन मास पूर्व छपचुके थे और आगे की पांडुलिपि भी लगभग तय्यार थी। किन्तु केदारनाथ, कालीमठ और पलेठा के तथा माधवसेन एवं स्रुघ्न के बौद्ध राजपरिवार के तीन अभिलेखों की प्रतियां प्राप्त न होसकने के कारण छपाई का कार्य रोकना पड़ा।

पुरातत्वविभाग के डा० छाबड़ा और डा० घाई ने उत्तराखण्ड के अभिलेखों की प्रतिलिपियां तय्यार करने की जो योजना बनाई थी उसे वे केदारनाथ के पट बन्द होने से पूर्व कार्यान्वित न करसके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्विन से मेरा स्वास्थ्य बहुत गिरनेलगा। प्रतीत होनेलगा कि मेरे मारकेश भगवान् रविनन्दन ने अपना कार्य अपने अनुचर सिंहकानन्दन को सौंप दियाहै। इसलिए सारे ग्रन्थ को एक साथ प्रकाशित करने की लालसा त्यागकर अबतक मुद्रित भाग को—जिसमें कत्यूरीकाल तक के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य Sources आगएहैं, पृथक खंड के रूप में प्रकाशित करनापड़ा। दूसरे खंड को भी, जिसमें इन साक्ष्यों तथा अन्य साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर आरम्भ से कत्यूरीकाल तक का विस्तृत इतिहास है, छापना आरम्भ करदियाहै।

—०—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड का इतिहास

कत्यूरी–युग तक

साक्ष्य-संकलन

यमुना से कालीगंगा तक फैले उत्तरप्रदेश के उत्तरीपर्वतीय भाग उत्तराखण्ड के इतिहास का पहला युग परम प्रतापी कत्यूरीनरेशों के पतन के साथ समाप्त होताहै। उसके पश्चात् उत्तराखण्ड गढ़वाल और कुमाऊं, इन दो राज्यों में बंटजाताहै और ब्रिटिश-आधिपत्य के पूर्व तक उसी रूप में रहताहै।

कत्यूरीयुग तक के इतिहास का अध्ययन करने के लिए अबतक जो सामग्री प्राप्त होसकीहै, वह इस इतिहास के प्रथम भाग में संग्रहीत है। उस सामग्री के विश्लेषण के आधार पर दूसरे भाग में उत्तराखण्ड का कत्यूरीयुग तक का इतिहास लिखागयाहै।

यह ऐतिहासिक सामग्री अनेक प्रकार की है।

विलुप्त संस्कृतियों के अवशेष

हरिद्वार के पास बहादुराबाद में नहर खोदते समय निम्न उपकरण प्राप्त हुएथे —

अ- पाषाण के फ्लेक, स्क्रैपर्स, चौपर्स आदि स्थूल उपकरण,

ब- पाषाण के माइक्रोलिथ अर्थात् छोटी-छोटी पाषाण-छुरियां,

स- ताम्र के भाले, बरछे, हारपून, छल्ले आदि उपकरण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त अ. तथा ब उपकरणों का सम्बन्ध प्रस्तरयुगीन मानव से तथा स उपकरणों का सम्बन्ध ताम्रयुगीन मानव से जोड़ाजासकताहै ।

बहादुराबाद में प्राप्त उपकरणों वाली संस्कृति सारे निकटप्रदेश में, जो प्राचीनकाल में गंगाद्वार कहलाताथा, फैलीरहीहोगी । उस युग में, मीलों तक विस्तृत वन में अकेली, एक-मात्र बस्ती की कल्पना नहीं होसकती । इसलिए मैंने उस संस्कृति का उल्लेख गंगाद्वार-संस्कृति के नाम से कियाहै ।

उत्तराखण्ड में अन्यत्र कुछ अन्य प्राचीन अवशेष प्राप्त हुएहैं, जिनकी अबतक विस्तृत छानबीन न होने के कारण उनकी तिथि अनिश्चित है ।

द- उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग में प्राप्त मेगालिथ और वृताकार या प्याला-जैसे अंकन,

य- मलारी की समाधियों में प्राप्त कंकाल और मृतिका-पात्र ।

भारत में अन्यत्र मेगालिथ का सम्बन्ध लौहयुगीन संस्कृति से जोड़ाजाताहै ।

मलारी के पात्रों और उत्तरभारत के कुशाणकालीन पात्रों में समानता मिलतीहै । शवों के लिटाने के ढंग, तथा पात्रों की आकृति आदि से मलारी-संस्कृति में तथा ईरान के पठार पर सियाल्क आदि स्थानों की संस्कृति में भी पर्याप्त समानताएं मिलतीहैं ।

जातियों का आगमन

अभीतक उत्तराखण्ड के निवासियों का नृवंशविज्ञान की वर्तमान पद्धतियों द्वारा विस्तृत अध्ययन नहीं हुआहै । रिजले, चन्दा और गुहा के निष्कर्ष इस विषय पर जो सीमित प्रकाश डालतेहैं, उसीको अन्तिम निर्णय नहीं मानाजासकता ।

इस विषय पर डा० डी०एन० मजूमदार का अध्ययन सीमित क्षेत्र में होने पर भी अधिक महत्वपूर्ण है । साहित्यिक उल्लेखों, ऐतिहासिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाणों एवं भाषा-विज्ञान के साद्यों से भी डा० मजूमदार के निष्कर्षों की पुष्टि होतीहै ।

जातियों के प्रसार के सम्बन्ध में भाषाविज्ञान के साक्ष्य कभी-कभी भ्रम में भी डालदेतेहैं । किन्तु जहां भाषाविज्ञान के निष्कर्षों की पुष्टि अन्य साद्यों से भी होजातीहो, वहां उन्हें प्रामाणिक मानने में आपत्ति नहीं होसकती ।

उत्तराखण्ड की बोलियों पर कोल (मुंड) तथा द्रविड़वर्ग की भाषाओं के व्यापक प्रभाव दिखाईदेतेहैं । उत्तराखण्ड के अनेक स्थानों तथा नदियों के नामों पर कोल (मुंड) एवं द्रविड़वर्ग की भाषाओं की छाप स्पष्ट देखीजातीहै । उत्तराखण्ड के अनेक स्थानों के नामों के साथ कश, खश तथा सू का गठबन्धन सर्वथा आकस्मिक नहीं माना जासकता ।

उत्तराखण्ड की बोलियों में तलछट के रूप में जिन बोलियों के अवशेष मिलतेहैं, उनके वक्ताओं के आगन्तुक जातियों द्वारा आत्मसात् कियाजाना मानाजासकताहै।

उत्तरभारत के निवासियों के समान उत्तराखण्ड के वर्तमान निवासियों के आकार-प्रकार भी इस कथन की भलीप्रकार पुष्टि करतेहैं कि जातिप्रथा की स्थापना से बहुत पहले ही पर्याप्त रक्तमिश्रण होचुकाथा ।

वर्तमान हिन्दुसमाज की मान्यताएं और शरीरगठन दोनों सिद्ध करतेहैं कि उनके लिए हम मुख्यतः अपने उन पूर्वजों के ऋणी हैं, जो आर्यजाति के आगमन से पूर्व इस देश में बसेथे[१] ।

---

१. 'There has been a widespread racial mixture as the anthropology has indicated. In culture, speaking in the Indian way, one may say that over twelve annas in the rupee is of non- Aryan origin.'--मजूमदार तथा पुशलकर--दि वेदिक एज, पृ० १६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्यिक–साक्ष्य

मुद्राओं, अभिलेखों और अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर उत्तराखण्ड के इतिहास की कड़ियां विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी तक जोड़ी जासकती हैं। इससे पूर्ववर्ती इतिहास के लिए मुख्य आधार साहित्यिक साक्ष्य हैं।

इनमें शतपथब्राह्मण, जातक, महाभारत, रामायण और पुराण विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन ग्रन्थों के उन अंशों को, जिनका सम्बन्ध उत्तराखण्ड से है, विक्रमपूर्व सातवीं शताब्दी से विक्रम की तीसरी शताब्दी तक का मानाजाताहै।

ये ग्रन्थ प्राचीन भारत में उत्पन्न साहित्यकार, चिंतक, दार्शनिक, धर्मोपदेशक, प्रशस्तिलेखक, सूत, मागध आदि पुरावृत्तों के ज्ञाता विद्वानों के संस्मरण हैं। यद्यपि ये संस्मरण सर्वथा क्रमबद्ध इतिहास नहीं प्रस्तुत करते, फिर भी वे प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री पर किसी न किसी रूप में आधारित मानेजातेहैं और प्राचीन भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुवों को बड़ी कुशलता और पूर्ण विस्तार के साथ अंकित करतेहैं।

महाभारत को, जिसमें उत्तराखण्ड के इतिहास आदि के सम्बन्ध में प्रचुर महत्वपूर्ण सामग्री बिखरीपड़ीहै, अब विद्वान सर्वथा कपोलकल्पित नहीं मानते। विद्वानों की धारणा है कि भारतीय युद्ध एक ऐतिहासिक घटना है जो विक्रमपूर्व दस और चौदह शताब्दियों के बीच घटीथी[1]।

१- 'It is now generally accepted that the great battle between the Kauravas and Pandavas was a historical event which occurred some time between 1400 and 1000 B.C. It is equally true that the Suta tradition and the narrative literature are of a very early date.'--मजूमदार तथा पुशलकर- दि एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० २५१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक वीरों की गाथाएं, जो महाभारत के प्राचीनतम अंशों में संग्रहीत हैं, अब भारतीय युद्ध के समकालीन ऐतिहासिक व्यक्तियों की गाथाओं पर आधारित मानीजातीहैं[१]।

महाभारत और दूसरे साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर उत्तराखण्ड के निवासी, महर्षि कण्व, शकुन्तला, दौष्यन्ति भरत, कुलिन्दनरेश सुबाहु आदि को ऐतिहासिक व्यक्ति मानाजासकताहै। तथा कण्वाश्रम और बदरिकाश्रम के वर्णनों को सत्य पर आधारित मानसकतेहैं।

पुराणों में गंगा, भगीरथ, शिव, दक्ष, सती, उमा, काली, कार्तिकेय, गणेश, परशुराम, कण्व, शकुन्तला, भरत, ऊषा, नर-नारायण, वामन सम्बन्धी घटनाओं का, जिनका सम्बन्ध उत्तराखण्ड से जोड़ाजाताहै, बार-बार वर्णन मिलताहै। उत्तराखण्ड भारत का एक छोटा-सा भाग है। उससे सम्बन्धित घटनाओं का प्राचीन साहित्य के सैकड़ों पृष्टों में वर्णन मिलना इस क्षेत्र के प्रति प्राचीनकाल में ही पूज्यभावना के विकास का द्योतक है।

उत्तराखण्ड के इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले सभी साहित्यिक साक्ष्यों का इस पुस्तक में उल्लेख करना असम्भव है। पाणिनि, पतंजलि कालिदास, बाण, राजशेखर आदि की रचनाओं में उपलब्ध सामग्री का उल्लेख यथास्थान कियाजाएगा।

ऐतिहासिक स्थानों की विस्मृत समृद्धि

दुर्भाग्य से उत्तराखण्ड में अभीतक पुरातात्विक अन्वेषण का कार्य बहुत कम हुआहै। कनिंघम इस कार्य को न करसके। फूरर की पुस्तक

२- 'It is therefore not unreasonable to assume that the great battle and at least some of the ballads of the kings who took part in the fight were nearly contemporary'--मजूमदार तथा पुशलकर--उपरोक्त, पृ० २५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मौन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज में उत्तराखण्ड-सम्बन्धी सामग्री अत्यल्प है।

प्रति वर्ष भारतभर के सहस्रों विद्वान तथा अनेक मंत्रीगण और राज्यपाल सरकारी खर्चे पर अपने पापों का भार बदरी-केदार पर लादने उत्तराखण्ड में पहुंचतेहैं। फिर भी कोई इस प्रदेश के विस्तृत पुरातात्विक सर्वेक्षण के लिए प्रयत्न नहीं करता।

उत्तराखण्ड की दक्षिणी सीमा पर प्राचीनकाल में अनेक समृद्धि-शाली नगर बसे थे, जो अब उजाड़ होगएहैं। कालसी, हरिपुर, जगतराम, स्रुघ्न, सैंहपुर, लाखामंडल, वीरभद्र, मायापुर, ब्रह्मपुर, मोरध्वज, कोटद्वार, ढिकुली, गोविषाण (उज्जैन) के प्राचीन अवशेष सूचित करतेहैं कि किसी समय उनसे होकर व्यापारिक पथ जातेथे, और वहां महत्वपूर्ण बस्तियां थीं।

साहित्यिक साक्ष्यों, अन्य प्रमाणों तथा चीनीयात्री के वर्णन से भी इन स्थानों की समृद्धि की पुष्टि होतीहै।

इन स्थानों के पुरातात्विक अवशेष वेग से नष्ट किएजारहेहैं। वीरभद्र, मायापुर, ब्रह्मपुर (पांडुवाला), मोरध्वज, कोटद्वार, ढिकुली, बैजनाथ, जोशीमठ आदि स्थानों के प्राचीन अवशेषों का लोप करदेना ऐसा भीषण अपराध है, जिसे कोई सभ्य देश क्षमा नहीं करसकता।

उत्तराखण्ड के इतिहास का अनुशीलन करने के लिए इन स्थानों का अध्ययन बहुत आवश्यक है।

प्राचीन राजधानियों के विनष्ट रंगमंच

उत्तराखण्ड की कुछ महत्वपूर्ण राजधानियां उसके मध्यवर्ती भाग में हिमालय की रम्य घाटियों में स्थित थीं। कुलिन्दनगर, श्रीनगर, कार्तिकेयपुर, बाराहाट, आदिबदरी-चांदपुरगढ़ी, लखनपुर-पाटन, वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर, ये सभी आज उजाड़ पड़ेहैं। अधिकांश के प्राचीन खंडहर भी लुप्त होगएहैं। पर उत्तराखण्ड के इतिहास का अध्ययन उनके अध्ययन के बिना असम्भव है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यात्रियों के यात्रावर्णन

उत्तराखण्ड के इतिहास के लिए चीनीयात्री युवान् चाङ का यात्रा वर्णन बहुत महत्वपूर्ण है। यात्री ने उत्तराखण्ड में स्रुघ्न, मायापुर, और ब्रह्मपुर की यात्रा कीथी। इससे हर्ष के राज्यकाल में उत्तराखण्ड के इन नगरों का महत्व स्वतः सिद्ध होजाताहै।

चीनीयात्री ने इन नगरों का संक्षिप्त एवं रोचक वर्णन भी दियाहै। इसमें सन्देह नहीं कि यात्री इन नगरों में और उनके पड़ोस के प्रदेश में थोड़े ही व्यक्तियों को मिलसकाहोगा। अस्तु उसके वर्णन को सर्वथा पूर्ण नहीं कहसकते। फिर भी उस काल की जिन सूचनाओं को वह महत्वपूर्ण समझताथा, उन्हें उसने अंकित करदियाहै।

उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा तथा उत्तराखण्ड और उत्तरभारत का व्यापार दोनों विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों से विक्रम की दसवीं शताब्दी तक बहुप्रचलित रहे। उत्तराखंड के तंगण व्यापारियों और उनके द्वारा लाएगए स्वर्णचूर्ण की रोचक गाथाएं तीर्थयात्रियों द्वारा भारत में सर्वत्र प्रचलित होगईं।

उन गाथाओं के आधार पर संस्कृत और प्राकृत के कथासाहित्य में कई रोचक कथाएं गढ़ीगईं जिनमें बसुदेवहिंडी विशेष प्रसिद्ध है। इन कथाओं में उत्तराखंड के विकट मार्गों का और उन पर व्यापार करनेवाले तंगणों का रोचक वर्णन मिलताहै।

यात्रियों के वर्णनों को विस्मृत समृद्धि वाले परिच्छेद में यथास्थान रखागयाहै।

प्राचीन मन्दिर और मूर्तियां

सम्भवतः भारत के किसी भी भाग के इतिहास के अध्ययन के लिए उसके मन्दिरों और मूर्तियों का अध्ययन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना उत्तराखंड के इतिहास के लिए है।

उत्तराखंड के अधिकांश वर्तमान मन्दिर दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से लेकर सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों के बीच बने मानेजासकतेहैं। आदिबदरी, तपोवन, सिमली और वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर के कुछ मन्दिर परवर्ती गुप्तकाल के होसकतेहैं।

उत्तराखण्ड के अनेक वैष्णव मन्दिरों के द्वार पर ध्वज लिए गरुड़ की मूर्तियां उस ऐतिहासिक परम्परा की स्मारक हैं जो उत्तराखंड पर गुप्त-अधिकार से आरम्भ हुईथी।

उत्तराखंड के मन्दिरों में से अधिकांश की मूर्तियां मन्दिरों की अपेक्षा अधिक प्राचीन हैं। भूचाल आदि के द्वारा मन्दिरों की टूट-फूट होजाने पर या उनका माहात्म्य बढ़जाने पर प्राचीन मन्दिर के स्थान पर नए मन्दिर बनाने की परम्परा निरन्तर चलतीरही। इन नए मन्दिरों में भी, जहांतक सम्भव हुआ पुरानी मूर्तियों की स्थापना करने का प्रयत्न कियागया।

उत्तराखण्ड के भव्य मन्दिर और मूर्तियां यहां के निवासियों के पिछले एक सहस्र वर्ष के सांस्कृतिक स्तर और आर्थिक स्थिति के सुन्दर स्मारक हैं।

उत्तराखण्ड के मन्दिरों से निरन्तर मूर्तियों की चोरी होरहीहै किन्तु कोई इस ओर ध्यान नहीं देता।

भारत के विभिन्न भागों के मन्दिरों और मूर्तियों के चित्रों से भरे अनेक ग्रन्थ मिलतेहैं। पर उत्तराखण्ड के मन्दिरों, मूर्तियों और विशेष प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण स्थानों के चित्रों वाले ग्रन्थ नहीं मिलते। यह बड़े खेद की बात है।

इन मन्दिरों और मूर्तियों के ऐतिहासिक महत्व का वर्णन तल्लीन कलाकार नामक परिच्छेद में कियागयाहै।

प्राचीन मुद्राएं

अभीतक उत्तराखंड की मुद्राओं का विशेष अध्ययन नहीं हुआहै। उत्तराखंड में आहत, कुणिन्द, यौधेय, गुप्त, पंवार आदि नरेशों की अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्राएं प्राप्त हुईहैं। जिनमें से कुछ के लेख अभीतक नहीं पढ़ेगएहैं।

अबतक प्राप्त मुद्राओं के आधार पर उत्तराखंड के अमोघभूति, छत्रेश्वर, शिवदत्त, शिवपालित, हरिदत्त आदि नरेशों के अस्तित्व की पुष्टि होतीहै। उनके सम्बन्ध में अन्य कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। मुद्राओं के लेख पढ़ेजाने पर कुछ अन्य नरेशों का भी पता लगेगा।

पूर्ववर्ती कुणिन्दमुद्राएं खरोष्ठी और ब्राह्मी दोनों लिपियों में और परवर्ती केवल ब्राह्मी में मिलने से तत्कालीन इतिहास पर अति रोचक प्रकाश पड़ताहै।

मेरे द्वारा संग्रहीत यौधेयमुद्राओं से समानता रखनेवाली कुणिन्द मुद्रा तथा सल्डमहादेव में प्राप्त मुद्रा पर सर्प के मस्तक पर आसीन गरुड़ की छवि उत्तराखण्ड के इतिहास में युगान्तर की सूचक हैं।

प्रकाशित अभिलेख

उत्तराखंड के इतिहास के लिए सबसे अधिक विस्तृत और प्रामाणिक सामग्री अभिलेखों से प्राप्त होतीहै। ये अभिलेख उत्तराखंड में विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी से आरम्भ होतेहैं और सारे युग पर प्रकाश डालतेहैं। इस पुस्तक में पहलीबार उत्तराखंड के इतिहास से सम्बन्धित ५० से अधिक अभिलेख भावानुवाद सहित प्रकाशित किएगएहैं। पांच अभिलेख, जिनकी प्रतिलिपियां नहीं प्राप्त होसकीहैं, प्रतिलिपियां प्राप्त होते ही प्रकाशित किएजाएंगे और उनकी एक-एक प्रति इस पुस्तक के ग्राहकों के पास भेजदीजाएगी।

उत्तराखंड पर शासन करनेवाले स्रुघ्न के बौद्धनरेशों, उज्जैन (काशीपुर) के 'मित्र' नरेशों, सैंहपुर के यादवों ब्रह्मपुर के पौरवों, बाराहाट के शैवनरेशों और कार्तिकेयपुर के कत्यूरीनरेशों की प्रामाणिक वंशावलियां केवल अभिलेखों से ही प्राप्त होतीहैं।

प्राप्त अभिलेखों से उत्तराखण्ड पर अशोक मौर्य, शीलवर्म्मन्,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त, यशोधर्मदेव, धर्मपालदेव, देवपाल, विग्रहराज आदि के किसी न किसी रूप में अधिकार की पुष्टि होतीहै।

शीलवर्म्मन् के इष्टिकालेख में सांख्य दार्शनिक वार्षगण्य[1] का उल्लेख उत्तराखण्ड से उस महात्मा का सम्बन्ध जोड़ताहै।

परमप्रतापी कत्यूरीराज्य का विध्वंस करनेवाले अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव द्वारा उत्तराखण्ड को अपने राज्य में मिलाने की सूचना अभिलेखों के द्वारा ही प्राप्त होतीहै।

बोधगया में प्राप्त अशोकचल्ल और उसके भ्राता के अभिलेखों ने सिद्ध करदियाहै कि एटकिनसन और राहुल द्वारा अशोकचल्ल को तिब्बतीनरेश मानने और उत्तराखण्ड पर तिब्बत के अधिकार की कल्पना निराधार हैं।

१- देखिए, रायचौधरी--पौलिटिकल हि० आव ए० इंडिया, पृ० ५

—०—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड-परिचय

छै वर्ष हुए उत्तरप्रदेश-सरकार ने कुमांऊमण्डल के उत्तरी बीहड़ क्षेत्र का, जिसमें वर्तमान उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ जिले आतेहैं, एक पृथक् उत्तराखण्डमण्डल बनादियाहै। कहाजाताहै कि इस नए मण्डल का निर्माण वर्तमान युद्धजन्य परिस्थिति में सुरक्षा की दृष्टि से कियागयाहै।

जनसाधारण आज भी, कनखल-हरिद्वार से लेकर श्रीनगर-रुद्रप्रयाग तक के तीर्थों को भी, जो नए उत्तराखंडमण्डल के अन्तर्गत नहीं आते, उत्तराखण्ड के तीर्थ मानताहै, और कनखल-हरिद्वार से लेकर हिमालय तक, वरन् हिमालय के पार कैलास-मानसरोवर तक के प्रदेश को उत्तराखंड के अन्तर्गत गिनताहै।

भूगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी, भाबर से लेकर हिमालय तक तथा टोंस-यमुना से लेकर काली-शारदा तक विस्तृत उत्तरप्रदेश का सारा उत्तरी पर्वतीय भाग एक है[1] और उत्तराखंड नाम पाने का अधिकारी है। इस तथ्य को स्वीकार करतेहुए उत्तरप्रदेश की जनगणना-रिपोर्ट में इस क्षेत्र का 'पश्चिम हिमालय' के नाम से एक पृथक् प्राकृतिक भाग के रूप में वर्णन कियाजाताहै[2]।

निश्चय ही जब सामान्य परिस्थिति उत्पन्न होजाएगी तब राजनीति भूगोल के सन्मुख झुककर उत्तराखंड का उचित सीमांकन करेगी[3]।

१- एटकिनसन--जि० १, पृ० १, २ २- सेंसस रिपोर्ट, N. W. F. १८८२, पृ० ३१ ३- मिलाइए, सेम्पल--पृ० १८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रमनिवारणार्थ हम इस पुस्तक में नए मण्डल के लिए 'उत्तराखंड-मंडल' का तथा भाबर से हिमालय तक एवं टौंस-यमुना से काली-शारदा तक फैले उत्तरप्रदेश के उत्तरी पर्वतीयक्षेत्र के लिए 'उत्तराखण्ड' का प्रयोग करेंगे।

प्राचीन साहित्य में उत्तराखंड नाम नहीं मिलता। पाणिनि[1] और कौटिल्य[2] ने ताम्रलिप्ति-पाटलिपुत्र से बाह्लीक-कपिशा जानेवाले मार्ग का 'उत्तरपथ' के नाम से उल्लेख कियाहै। कालान्तर में उत्तरभारत के लिए 'उत्तरपथ' या 'उत्तरापथ' नाम का प्रयोग चलपड़ा[3]। पौराणिक साहित्य में गंगाद्वार (हरिद्वार) से श्वेतपर्वत (महाहिमालय) तक तथा तमसा (टौंस) से बौद्धाचल (बधाण) तक के क्षेत्र को 'केदारखंड'[4] और उससे पूर्व की ओर काली-शारदा तक के क्षेत्र को 'मानसखंड' बतलाया गयाहै। ऐसा प्रतीत होताहै कि उत्तरापथ के पूर्वपद और केदार-मानसखंड के उत्तरपद के संयोग से उत्तराखंड नाम चलपड़ा। उत्तराखण्ड की अपेक्षा उत्तरखण्ड नाम अधिक समीचीन प्रतीत होताहै।

कंकड़-पत्थरों का सर्वथा अभाव, एक मील में औसत से सात-आठ इंच की ढाल, धरातल के नीचे थोड़ी ही गहराई पर अपार जलभण्डार, अति उपजाऊ मिट्टी, उत्तम जलवायु, सींचाई की सुविधा, अन्नों का प्रचुर उत्पादन, घनी जनसंख्या, ग्राम और नगरों की लम्बी श्रृंखला, अनेक कल-कारखानों तथा रेल-मोटरमार्गों के जाल से ढकाहुआ एवं

---

१ ' उत्तरपथेनाहृतम् च '--पाणिनि--५।१।७७

२ ' स्थलपथ ', कौटिल्य--१२।११६।३०

३- ' सकलोत्तरपथनाथ '--इंडियन एंटीक्वायरी, जि० ७, पृ० १०७-

४- आगंगाद्वारमर्यादं श्वेतांतं वरवर्णिनि !
तमसातटत: पूर्वमर्वाग्बौद्धाचलं शुभम् ।
केदारमंडलं ख्यातं भूम्यास्तद्भिन्नकं स्थलम् ॥ केदारखण्ड, ४०।२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जंगल-झाड़ियों से सर्वथा रहित गंगाजी का मैदान विश्व के उन्नत क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान रखताहै।

गंगाजी के मैदान से उत्तराखंड के द्वार भाबर में पहुँचते ही छोटे बच्चों तक को इस तथ्य का आभास मिलजाताहै कि यह प्रदेश गंगाजी के मैदान से सर्वथा भिन्न है। लकसर से हरिद्वार जानेवाली गाड़ी में बैठे बच्चे जहां पर्वतश्रेणियों और वनों पर दृष्टि पड़ते ही, कौतूहल-पूर्वक उनके नाम पूछनेलगतेहैं, वहां से उत्तराखंड का आरम्भ समझना चाहिए।

यहां मैदान की समतल भूमि का स्थान भाबर की ढलुवां भूमि लेलेतीहै, जिसमें मिट्टी की हलकी परत के नीचे, अगणित गोल-मटोल पत्थर मिलतेहैं। रेता, कंकड़ और बजरी में साधारण नदी-नालों का जल छिपजाताहै[1]। नदीतटों को छोड़कर अन्यत्र कहीं सौ-डेढ़ सौ फीट की गहराई तक खोदने पर भी कुएं में जल नहीं निकलता[2]।

पत्थर-रेते से भरी अनउपजाऊ मिट्टी, ऊबड़-खाबड़ धरातल, पर्वत-श्रेणियों और संकीर्ण घाटियों का जाल-जंजाल, सींचाई की कठिनाई, अति अल्प उत्पादन, विरली जनसंख्या, दूर-दूर पर स्थित छोटे-छोटे गांव, नगरों और कल-कारखानों का सर्वथा अभाव, क्षेत्र के द्वार पर पहुंचते ही रेलमार्गों की समाप्ति, थोड़े-से मोटरमार्ग, यत्र-तत्र जंगल-झाड़ियां और वन, तुरन्त इस अविकसित पर्वतीयप्रदेश का वास्तविक स्वरूप उपस्थित करदेतेहैं।

उत्तराखंडक्षेत्र के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश के वर्तमान देहरादून, टिहरी, उत्तरकाशी, चमोली, गढ़वाल, नैनीताल, अलमोड़ा और पिथौरागढ़ जिले आतेहैं। यमुना से शारदा तक फैले भाबरप्रदेश के वे भाग भी, जो आजकल सहारनपुर-बिजनौर जिलों के अन्तर्गत मानेजातेहैं, वास्तव में उत्तराखंडक्षेत्र के अभिन्न अंग हैं।

१- वाल्टन--पृ० २ २- वाल्टन--पृ० ४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र	जिला	वर्ग मील[२]	जनसंख्या[२]
गढ़वाल[१]	देहरादून	१२०१	२३११७६
	उत्तरकाशी	३०१८	१२०१५६
	टिहरी	१७४५	३४०१४०
	चमोली	३५२५	२५३१३७
	गढ़वाल	२१०६	४५४८२६
	सहारनपुर, बिजनौर का भाबरप्रदेश (अनुमानित)	३००	१०००००
कुमांऊं	पिथौरागढ़	२७८८	२६३५७६
	अलमोड़ा	२७१३	६०६१६३
	नैनीताल	२६३५	४६२१४२
		२००३१	२८३१३२८

उत्तराखंड का धरातल ८०० फीट से आरम्भ होताहै, और वेग से ऊंचा उठकर २५६६० फीट तक पहुँचजाताहै। धुर दक्षिण में पांच मील से लेकर पन्द्रह मील तक चौड़ी भाबर की लगभग चौरस संकरी पट्टी तथा दूनघाटियों को छोड़कर सारा क्षेत्र पर्वतश्रेणियों और संकरी घाटियों के जाल-जंजाल से घिरा है। कहीं भी एक वर्ग मील चौरस मैदानी क्षेत्र नहीं मिलता।

भारत से लेकर भारत-तिब्बत-सीमान्त तक फैलाहुआ यह सारा प्रदेश मध्यहिमालय के अन्तर्गत है। शिवालिकश्रेणियां भाबर से ही आरम्भ होजातीहैं। ज्यों-ज्यों हम उत्तर की ओर बढ़तेहैं, पर्वतश्रेणियों की संख्या और ऊंचाई बढ़तीजातीहै।

लघुहिमालय से मलवा लेकर आनेवाली नदियों के मार्ग में अवरोध

१- १८०३ तक ये जिले तथा सहारनपुर और बिजनौर का भाबरप्रदेश गढ़वालराज्य के अन्तर्गत थे।

२-आंकड़े, सेंसस आव इण्डिया--पेपर नं० २, (१९६२), पृ०४८ व ९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पन्न करके शिवालिकश्रेणियां उन्हें दून और भाबर में मलवा त्यागदेने के लिए विवश करदेतीहैं जिससे इन क्षेत्रों का धरातल ऊंचा होगयाहै[1]।

शिवालिकश्रेणियों की औसत ऊंचाई चार सहस्र फीट तक है। उनसे उत्तर की ओर लघुहिमालयश्रेणियों पर अपार वर्षा होने के कारण अगणित नदी-नालों ने उतरकर इन श्रेणियों को अनेक छोटे-छोटे डांडों में बांटडालाहै। निरन्तर अपने तटों को काटकर तथा समय-समय पर अपना मार्ग बदलतेरहने से इन नदी-नालों ने इन डांडों के बीच अगणित चौड़ी-संकरी रौलियां (घाटियां) बनाडालीहैं[2]।

शिवालिक पर बरसात में चालीस इंच से अधिक वर्षा होतीहै। शीतकाल में हिमपात नहीं होता। ओलों के तूफान वर्ष में कई बार आजातेहैं। जब महाहिमालय पर हिम के भीषण तूफान आतेहैं, तो कभी-कभी शिवालिक पर भी थोड़ा-सा हिमपात होजाताहै।

शिवालिकश्रेणियां मुख्यत: कौंगलोमरेट, बालुज शिलाओं और चूने की चट्टानों से बनी हैं। इसकी ढालों पर उपजाऊ मिट्टी नहीं मिलती, पर पेड़-पौधे सरलता से उगआतेहैं। कम ऊंची श्रेणियां साल, बांज, खैर, धौड़, बेर, ढ़ांक, मालू आदि के छुट-पुट वनों से ढकी हैं। ऊंची श्रेणियों पर यत्र-तत्र चीड़ के वृक्ष भी मिलतेहैं।

पश्चिम की ओर लघुहिमालय श्रेणियां, जिस भव्य रूप में मिलतीहैं, उस रूप में उत्तराखंड में नहीं मिलतीं। यहां उनका स्थान छोटे-बड़े पठारों ने लेलियाहै, जिनके चारों ओर यत्र-तत्र ऊंचे डांडे खड़े हैं।

इन डांडों की औसत ऊंचाई छै सहस्र फीट तक पहुँचतीहै। किन्तु यत्र-तत्र उनकी ऊंची चोटियां, जैसे देववन, नागटिब्बा, मूसा का कोठा, चीनाशिखर आदि सात से दस सहस्र फीट तक ऊंचो हैं। इन डांडों के

१- वाल्टन--पृ० १

२- वाल्टन--पृ० २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे शिखर जो छै-सात सहस्र फीट तक ऊंचे हैं, स्वास्थ्य और प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से अति उत्तम हैं। इन पर चकरौता, मनसूरी, नरेन्द्रनगर, लैन्सडौन, पौड़ी, रानीखेत, अलमोड़ा और नैनीताल नगर बसगएहैं।

लघुहिमालय सारे उत्तराखण्डक्षेत्र में पश्चिम से पूर्व तक रीढ़ की हड्डी के समान फैला है। उससे अनेक डांडे पसलियों के समान निकलकर नदी-घाटियों की ओर उतरतेहैं। इनमें मनसूरी-लंढौरडांडा, चन्द्रबदनी, घंढियाल, सुरकंडा, मदराज, हटकुणी, नागटिब्बा, धनपुर, अमोली, बिनसर, राणीगढ़, खतली, उतांई, दीपा का डांडा, दूनागिरि, दानपुर, गणनाथ, रानीखेत, अलमोड़ा और नैनीताल के डांडे मुख्य हैं।

लघुहिमालय पर चार-पांच सहस्र फीट की ऊंचाई तक, ऊंचाई के साथ वर्षा की मात्रा बढ़तीजातीहै तथा कई क्षेत्रों में १२० इंच तक वर्षा होतीहै। छै सहस्र फीट की ऊंचाई पर ६० इंच से लेकर १०० इंच तक वर्षा होतीहै। ऊंची श्रेणियों पर शीतकाल में पर्याप्त हिमपात होताहै। छै सहस्र फीट तक थोड़ा हिमपात होताहै, और शीघ्र पिघलजाताहै।

लघुहिमालय की ऊंची श्रेणियों पर अभ्रक मिली चट्टानें मिलतीहैं। जिन्हें खोदकर उपजाऊ मिट्टी नहीं बनती। पर, उन पर यत्र-तत्र चीड़, बांस, बुरांस, मोड़ू, खरसू, रागा, रांसल आदि के सुन्दर वन मिलतेहैं[1]। इन वनों में वृक्षों के नीचे हरियाली की दूसरी परत के रूप में रसीली झाड़ियां उगतीहैं, जिससे ये पठार संसार के सर्वोत्तम चराईक्षेत्रों के अन्तर्गत गिनेजातेहैं[2]।

लघुहिमालय की उत्तरी सीमा पर पश्चिम से पूर्व तक लगभग तीस मील की चौड़ाई में महाहिमालयश्रेणियां फैलीहैं, जिनकी औसत ऊंचाई बीस सहस्र फीट से अधिक है। इस क्षेत्र में ८० से अधिक

१- ओ' मैस्टन--पृ० १६-२१ २- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखर बाईस सहस्र फीट से अधिक ऊंचे हैं[१]। उनके बीच बीच में मोतियों के बीच हीरों के समान कुछ ऐसे भी शिखर हैं जो संसार भर के सर्वोच्च और सर्वोत्तम शिखरों में गिनेजातेहैं[२]।

संसार की इस सर्वोच्च पर्वतशृंखला को टोंस, यमुना, जाडगंगा, भागीरथी, मन्दाकिनी, विष्णुगंगा, धौलीगंगा, पिंडार, गोरी, दरमा और कुटी-याङ्ती नदियों ने चीरकर अपने दस से पन्द्रह सहस्र फीट तक गहरे महागर्त बनाडालेहैं, जिनके द्वारा महाहिमालयशृंखला कतिपय शिखरपुंजों में बंटगईहै। इनमें बन्दरपूंछ, केदारहिमाल, गन्धमादन, नन्दादेवी, पंचचुली और रिङ्नाजोङ् मुख्य हैं।

भापभरी वायु के मार्ग में स्थित ऊंचे पठारों पर ४० इंच से ८० इंच तक वर्षा होतीहै जिसका लगभग १५ प्रतिशत शीतकाल में वर्षा और हिम से प्राप्त होताहै। १०००० फीट से ऊंची भीतरी घाटियों में १० इंच से ४० इंच तक वर्षा होतीहै जिसका कम से कम ३० प्रतिशत शीतकाल में हिमरूप में गिरताहै। महाहिमालय के पार की घाटियों में १० इंच से कम वर्षा होतीहै जिसका ५० प्रतिशत से अधिक शीतकाल में हिमरूप में गिरताहै[3]।

महाहिमालयश्रेणी की दक्षिणी ढालों पर दस सहस्र फीट की ऊंचाई तक चीड़, देवदारु, रागा, रांसल, बांज, बुरांस, खरसू, मोरू और कहीं-कहीं भोजपत्र के सुन्दर वन हैं। इनमें भी वृक्षों के नीचे हरियाली की दूसरी परत के रूप में अनेक रसीली झाड़ियां और रिंगाल की झुरमटें मिलतीहैं[४]।

ज्यों-ज्यों ऊंचाई बढ़तीहै, वृक्ष विरले और ठिंगने बननेलगतेहैं। अन्त में ग्यारह-बारह सहस्र फीट की ऊंचाई पर हिमालय की सुन्दर

१- स्थिति तथा ऊंचाई, एटकिनसन--जि० १, पृ० १७८

२-'वर्णन, शिष्टन--पृ० १६३; वेबर--पृ० ५७ ३- ओ' मैस्टन--पृ० ८

४- ओ' मैस्टन--पृ० १६-२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुग्यालें और उनसे अधिक ऊंचाई पर पयारें आरम्भ होतीहैं जो हिमरेखा के निकट समाप्त होजातीहैं[१]।

महाहिमालय की उत्तरी ढालों से आगे भारत-तिब्बत-सीमान्त तक जन्सकरहिमाल फैलाहै, जिसकी औसत ऊंचाई अट्ठारह सहस्र फीट से अधिक है। इस श्रेणी से भारत और तिब्बत की अनेक छोटी-बड़ी नदियां निकलतीहैं। इसके द्वारा निर्मित जलविभाजक को भारत और तिब्बत के बीच परम्परागत सीमा मानाजाताहै।

इस श्रेणी में प्रसिद्ध कामेतशिखर तथा अनेक गिरिद्वार हैं, जिनमें जेलूखगा, माणा[२], नीती[३], चोरहोती[४], दमजन[५], शलशल, कुंगरी-बिंगरी, दरमा तथा लिपुलेख मुख्य हैं[६]।

ये गिरिद्वार अति प्राचीनकाल से ही भारत-तिब्बत के बीच मनुष्यों के आवागमन, व्यापार, तीर्थयात्रा और सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेहैं। आज की युद्धजन्य परिस्थिति में फिर सारे भारत की दृष्टि उनकी ओर आकर्षित होगईहै।

जन्सकरहिमाल के निचले भागों में यत्र-तत्र ही देवदारु और भोजपत्र के वन मिलतेहैं। पर इसके कई भागों में अनेक सुन्दर पयारें हैं।

महाहिमालय पर शाश्वत हिमरेखा सत्रह सहस्र फीट की ऊंचाई पर और ग्रीष्मकाल में कहीं-कहीं अट्ठारह सहस्र फीट की ऊंचाई पर मिलतीहै। महाहिमालय और जन्सकर की श्रेणियों, ऊंची ढालों और बगलों पर हिम की सैकड़ों फीट मोटी परतें फैलीहैं, जो उनकी बगल की घाटियों में स्थित हिमानियों का पोषण करतीहैं।

१- वर्णन, डबराल--पृ० २४७ २- वर्णन, स्वेन हेडिन--जि० ३, पृ० ३०१
३- वर्णन, डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ११३ ४- वर्णन, डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ११४ ५- वर्णन, डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ११४
६- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० २१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड की मुख्य हिमानियां गंगोत्तरी, केदारनाथ, रैकाना, कोसा, माणा, बामिनी, नन्दादेवी[1], पिंडार और मिलम हैं। नन्दादेवीहिमाल पर अनेक हिमानियां हैं। प्रमुख हिमानियां पांच मील से लेकर सोलह मील तक चौड़ी हैं। मिलमहिमानी, जो तिब्बत तक पहुँचीहै, कुछ स्थानों पर पच्चीस मील से अधिक चौड़ी है[2]।

सारा उत्तराखण्ड यमुना, अलकनन्दा और कालीगंगा की पनढालों में बंटा है। यमुना, बन्दरपूंछहिमाल से निकलनेवाली अनेक धाराओं के योग से बनी है। इसकी मुख्य सहायक टोंस है।

भागीरथी नारायणपर्वत से गौमुख तक फैलीहुई हिमानी से निकलतीहै। भैरोंघाटी के पास इसमें इसकी मुख्य सहायक जाडगंगा आकर मिलतीहै। भागीरथी देवप्रयाग में अलकनन्दा में मिलजातीहै।

गंगाजी की मुख्य धारा अलकनन्दा, जो विष्णुप्रयाग से पहले विष्णुगंगा भी कहलातीहै, बदरीनाथ से आगे अलकापुरीहिमानी से निकलतीहै। इसकी मुख्य सहायक धौलीगंगा, नन्दाकिनी, मन्दाकिनी, पिंडार, नयार और भागीरथी हैं।

रामगंगा दूधातोलीपठार से निकलकर गढ़वाल और कुमांऊ के दक्षिणी भागों का जल लेकर कन्नौज के पास गंगाजी में मिल जातीहै।

गोरीगंगा जन्सकरहिमाल में ऊंटाधुरा के निकट से निकलकर असकोट के पास कालीगंगा में मिलजातीहै। दरमा, जो पूर्वी धौली भी कहलातीहै, ऊंटाधुरा के निकट से निकलकर खेला के पास कालीगंगा में मिलजातीहै।

कुटीयाङ्ती लङ्प्या घाटे के पास जन्सकर हिमाल से निकलकर दक्षिणपूर्व की ओर बहतीहुई गर्ब्याङ् पहुँचतीहै। यहां इसका नेपाल से आनेवाली काळीनदी से संगम होताहै। संगम से आगे यह नदी

१- वर्णन, पातीराम--पृ० २०-२२ २- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० १५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालीगंगा कहलातीहै और नेपाल, पिथौरागढ़ तथा अल्मोड़ा की सीमा बनातीहुई बर्मदेव के पास मैदान में उतरतीहै। यहां से आगे यह शारदा कहलातीहै।

महाहिमालय से निकलनेवाली नदियों में अपार जल होने पर भी उनसे सींचाई करना अति कठिन है। लघुहिमालय से निकलनेवाली नदियों में यद्यपि जल कम होताहै, और उनमें से कुछ तो ग्रीष्मकाल में सूख भी जातीहैं, पर बरसात में उनमें से अनेक छोटी सींचाई योजनाओं के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होतीहैं।

उत्तराखंड के उत्तरी भाग में यमुनोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ और नीतीघाटी में अनेक तप्तकुण्ड हैं। यह प्रदेश अपने अति सुन्दर सरोवरों के लिए प्रसिद्ध है, जिनमें मसरताल, सहस्रताल, देवरीताल[1], विरहीताल[2], नैनीताल[3], भीमताल, मलवाताल, नौकुचियाताल आदि मुख्य हैं।

उत्तराखंड के धरातल को वर्तमान रूप देने के लिए उत्तर में हिम और दक्षिण में नदियां विशेषरूप से उत्तरदायी हैं। हिमयुग में जब हिमराशि बढ़कर खिसकनेलगी तो उसने ऊबड़-खाबड़ और ऊंचे-नीचे धरातल को छीलकर चौरस करदिया तथा अनेक स्थानों में, विशेषकर जहां धरातल में पहले से दरारें थीं, खोदकर गहरे गर्त बनादिए। उसने सीधी खड़ी पर्वतश्रेणियों को ऐसी निर्दयता से खोद-खुरचडाला कि उनमें कहीं तिलभर भी मिट्टी बच न सकी और वे आज तक वनस्पति से हीन सर्वथा नग्न खड़ी हैं[3]।

उत्तरी भागों में हिमनिर्मित धरातल (ग्लेशिएटेड टोपोग्राफी) के सभी चिह्न मिलतेहैं, घिसकर बनीहुई चिकनी शिलाएं, अनेक गर्तों में झीलें और सर्वत्र मोरेन के ढ़ेर। ऐसे क्षेत्र कृषि के लिए सर्वथा

१- वर्णन, पातेराम--पृ० ३३ २- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ७२
३- राहुल--'कुमांऊ'--पृ० २८३ ४- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ७३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुपयुक्त हैं[1] ।

हिमरेखा के नीचे बुग्यालों में मिट्टी की हलकी परतों पर प्रति वर्ष पिघलाहुआ हिम मिट्टी की नई परतें बिछाताहै, जिससे बुग्यालों का ऊबड़-खाबड़ धरातल सुडौल बनगयाहै और उस पर उत्तम बुग्गी घास उत्पन्न होतीहै । जो इस मरुभूमि में मनुष्य और पशुओं के लिए प्रकृति का वरदान है ।

हिमनिर्मित धरातल में, केवल हिमबगड़ों पर ही, जहां सींचाई की सुविधा है, ग्रीष्मकाल में थोड़े-से जौ, फाफड़ और आलू उग सकतेहैं।

दक्षिण में भाबर और शिवालिकश्रेणियों की मध्यवर्ती दूनघाटियां पर्याप्त चौरस हैं और वे उपज की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं । अन्यत्र सर्वत्र पहाड़ी ढालों या संकरी नदीघाटियों में पत्थरों की दीवारें रखकर खेत बनाएजातेहैं ।

कहीं-कहीं नदीघटियां थोड़ी-बहुत चौरस होनेलगतीहैं, और कहीं-कहीं लगभग चौरसभूमि के ऐसे टुकड़े मिलजातेहैं, जिनमें से कुछ सौ एकड़ तक के होसकतेहैं । नदियों के तटों पर फैन-जैसे चौरस भाग कुछ अधिक संख्या में मिलतेहैं जो 'बगड़' कहलातेहैं । जहां सींचाई की सुविधा है, बगड़ों पर उत्तम खेती उत्पन्न होतीहै ।

पहाड़ी ढालों पर मिट्टी की परतें बहुत पतली हैं । जीवांश और खाद बरसात में सरलता से बहजाने के कारण, उनकी उर्वराशक्ति प्रति वर्ष घटतीजातीहै । निचली घाटियों में तथा नदीतटों पर पर्वतों से बहकर आई मिट्टी और खाद के कारण उपजाऊ गंगवार मिट्टी मिलतीहै ।

उत्तराखण्ड में सर्वत्र, ५००० फीट की ऊंचाई तक वर्ष में दो फसलें होजातीहैं । बरसाती फसल में धान, झंगोरा, कौणी, मंडुवा और उड़द-गहथ तथा गरमी की फसल में गेहूँ और जौ उत्पन्न होतेहैं । निचली

1- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ७३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घाटियों और भाबर में जहां सींचाई की सुविधा है, अच्छी उपज होतीहै। ५००० फीट से ऊपर ज्यों-ज्यों धरातल की ऊंचाई बढ़ती जातीहै, कृषि घटतीजातीहै।

अनउपजाऊ और कंकड़-पत्थर भरे खेतों में कुछ उत्पन्न करने के लिए अधिक खाद की आवश्यकता पड़तीहै और पशुपालन कृषि का आवश्यक अंग बनजाताहै। ज्यों-ज्यों ऊंचाई बढ़तीहै, कृषि का महत्व घटताजाताहै, और धीरे-धीरे पशुचारण आजीविका के मुख्य साधन का रूप लेलेताहै।

उत्तराखण्ड के निवासी उत्तराखण्ड को 'माल', 'पहाड़' और भोट', इन तीन भागों में बांटतेहैं।

माल या भाबर उत्तराखण्ड के दक्षिण में पश्चिम से पूर्व तक ५ से १५ मील तक चौड़ी लगभग चौरस पट्टी है जो गंगाजी के मैदान और शिवालिकश्रेणियों के मध्य में स्थित है।

भाबर में रेता, बजरी, कौंगलोमरेट और गोल-मटोल बालुज शिलाओं के ऊपर मिट्टी की हलकी परतें फैली हैं, जिन पर सहस्राब्दियों तक घने वन रहने के कारण पर्याप्त मात्रा में जीवांश मिलगयाहै। अब भी भाबर के बड़े भाग पर वन फैले हैं, और केवल उन्हीं भागों में खेती होतीहै जहां सींचाई होसकतीहै।

जहां सींचाई की सुविधा है, भाबर में गंगाजी के मैदान के समान, उत्तम खेती उत्पन्न होतीहै, इसलिए उत्तराखण्ड के पर्वतीय भागों से प्रति वर्ष बहुत से परिवार भाबर में बसतेजातेहैं।

मैदान और पर्वतीयक्षेत्र के बीच की सम्मिश्रण भूमि भाबर और दून का प्राचीन काल से ही राजनैतिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक महत्व रहाहै। आज भी देहरादून, ऋषिकेश, हरिद्वार, कोटद्वार, काशीपुर और रामनगर आदि नगरों की शृंखला इसका महत्व सूचित करतीहै। भविष्य में इस क्षेत्र का और भी अधिक विकास होना निश्चित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाबर से आगे उत्तर की ओर महाहिमालय की दक्षिणी ढालों तक पहाड़प्रदेश फैला है। सारा पहाड़प्रदेश अगणित समानान्तर और टेढ़े-मेढ़े डांडों से घिरा है जिनके बीच में छोटी-बड़ी सभी नदियों ने अगणित रौलियां काटडाली हैं। जहां घाटियां अपेक्षाकृत चौड़ी हैं, अथवा पर्वतश्रेणियां धीरे-धीरे ढलुवां होतीगई हैं, वहां खेत बनाने की न्यूनाधिक सुविधा के अनुसार गांव बसे मिलते हैं। अन्यत्र नंगे, वनस्पतिहीन डांडे या झाड़ियों और वनों से ढकी पर्वतश्रेणियां मिलती हैं।

महाहिमालय की दक्षिणी ढालों से आगे उत्तर की ओर तिब्बत तथा रामपुर-बुशहर के सीमान्त तक उत्तराखण्ड का भोट (भोटांतिक) प्रदेश फैला है। सारा भोटांतिकप्रदेश महोच्च पर्वतश्रेणियों, हिमशिखरों और हिमानियों से घिरा है[1]। इस प्रदेश की केवल छै अति संकीर्ण नदी-घाटियों में ही थोड़े-से व्यक्ति बसे हैं, जिनमें से अधिकांश को, शीतकाल में हिमपात से पूर्व इन दुर्गम घाटियों से भागकर निचली सुरक्षित घाटियों में उतर आनापड़ता है।

भाबर की उत्तरी ओर पहाड़प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर घने और अस्वास्थ्यकर वन फैले हैं। भाबर से चलकर पहाड़प्रदेश के गांवों तक पहुँचने के लिए प्रायः पांच मील से लेकर दस मील की चौड़ाई में डांडों और रौलियों में फैले इन वनों को पार करनापड़ता है।

पहाड़प्रदेश का अधिकांश धरातल १५०० फीट से ७५०० फीट तक ऊंचा है। इसमें १५०० फीट से २५०० फीट तक ऊंचा क्षेत्र अति अल्प है और केवल छोटी-बड़ी नदियों की निचली घाटियों में ही मिलता है। ऐसी कम ऊंची घाटियां 'गड्डी' कहलाती हैं। अधिकांश गड्डियां अति संकीर्ण, पथरीली और ऊबड़-खाबड़ हैं, तथा प्रायः वनों से ढकी हैं।

बड़ी नदियों की घाटियों में, जहां गड्डियां अधिक चौड़ी और

१- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक चौरस हैं, सींचाई की सुविधा होने पर भाबर के समान उत्तम खेती उत्पन्न होतीहै। तथा परिवार के निर्वाह के लिए अन्न खरीदने की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती।

पहाड़प्रदेश के वे भाग, जो २५०० फीट से ५००० फीट तक ऊंचे हैं, 'सलाण' कहलातेहैं, और जनसंख्या तथा कृषि की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। उत्तराखण्ड की लगभग ७५ प्रति शत जनता सलाण में बसी है।

'सलाण' का अर्थ है 'सलामी' अर्थात् अपेक्षाकृत धीरे-धीरे ढलुवां होनेवाली पर्वतीय भूमि[1]। यद्यपि उत्तराखण्ड के केवल थोड़े-ही परगनों के नाम के साथ सलाण शब्द जुड़ा है, किन्तु देहरादून, टिहरी, गढ़वाल, अलमोड़ा और नैनीताल के वे समस्त भाग भी जो २५०० फीट से ५००० फीट तक ऊंचे हैं, सलाण-वर्ग के अन्तर्गत गिनेजासकतेहैं।

सलाण ऊंचे पठारों और भाबर सहित निचली घाटियों का मध्यवर्ती क्षेत्र है। इसमें भाबर और पठारों, ऊष्ण कटिबंध तथा शीत कटिबंध, दोनों की विशेषताएं और वनस्पति मिलतीहैं।

सलाण में नदीतटों के कम ऊंचे बगड़, जिन पर उपजाऊ गंगवार मिट्टी फैली है, और सींचाई की सुविधा है, उपज में भाबर से प्रतिद्वन्दिता करतेहैं। इस क्षेत्र की पर्वतश्रेणियों के अधिक ऊंचे, ऊबड़-खाबड़ एवं चट्टानी भाग मध्यहिमालय के पठारों के समान हैं।

पहाड़प्रदेश के वे भाग, जो ५००० फीट से ७५०० फीट तक या अधिक ऊंचे हैं, 'राठ', 'बाड़', 'ढांगू' या 'पठार' कहलातेहैं। इनका धरातल अत्यन्त ऊबड़-खाबड़, पथरीला और सीधे खड़े भेलोंवाला है।

पठारप्रदेश उत्तराखंड का सर्वोत्तम भाग है। इसका जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक और दक्षिणी यूरोप के जलवायु के समान है। इसीलिए इसमें मनसूरी, चकरौता, नरेन्द्रनगर, लैन्सडौन, पौड़ी,

---

१- इवेटसन--मल्लासलाण--पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रानीखेत, अलमोड़ा, नैनीताल जैसी पर्वतों की रानियां बसगईहैं।

इस प्रदेश के वन भविष्य में भारत की अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्पत्ति सिद्ध होंगे। इसके बांज के वनों को उत्तम उद्यानों में सरलता से परिणित कियाजासकताहै। इसकी अनेक छोटी-बड़ी नदियां बिजली उत्पन्न करने के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होसकतीहैं। इसकी सुन्दर झीलों और अद्भुत प्राकृतिक दृश्यावली पर संसार मुग्ध है।

उत्तरप्रदेश के केवल इसी क्षेत्र में लोहा[1], तांबा[2], जिप्सम[3], बिजौत्रा, अभ्रक, गन्धक[4], ग्रेफाइट[5], शिलाजीत, फिटकरी जैसे अनेक खनिज प्राप्त होतेहैं।

इस क्षेत्र के मनुष्य बलिष्ठ, कर्मठ, स्वस्थ और सुन्दर हैं। और यहां के पशु-पक्षी सारे हिमालय के सर्वोत्तम पशु-पक्षियों में गिनेजातेहैं।

राठ या पठारप्रदेश कृषि की अपेक्षा पशुचारण के अधिक उपयुक्त है। यद्यपि राठप्रदेश में भी कृषि होतीहै, किन्तु ज्यों-ज्यों धरातल ऊंचा होताजाताहै, त्यों-त्यों सहायक या मुख्य व्यवसाय के रूप में पशुचारण का महत्व बढ़ताजाताहै। प्रकृति स्वयं इस प्रदेश में पशुचारण को प्रोत्साहन देतीहै[6]।

उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ जिलों में महाहिमालय की दक्षिणी ढालों पर हिमरेखा के नीचे अति उत्तम पयारें हैं, और उनके नीचे दस-ग्यारह सहस्र फीट की ऊंचाई पर अति उत्तम बुग्यालें पाई जातीहैं। इन बुग्यालों से दक्षिण की ओर पश्चिम में रूपीं-सूपीं से लेकर पूर्व में पिंडार की सहायक सांपू तथा कालीगंगा तक फैली पर्वतमालाओं की ढालों पर मुख्य व्यवसाय भेड़-बकरियां पालना है और कृषि सर्वथा नगण्य है[7]।

---

१ से ५ क्रमशः एटकिनसन--'मिनरालौजी'--पृ० २ ८, २१, ३४, ३३, ३२

६- डबराल--'पशुचारक'--पृ० २२

७- डबराल -'पशुचारक'--पृ० २३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पठारप्रदेश की उत्तरी सीमा पर धरातल वेग से ऊंचा उठकर संसार की सर्वोच्च पर्वतश्रेणी में परिणित होगयाहै। उसकी उत्तरी ढालों पर, भोटांतिकप्रदेश में, धरातल का अधिकांश वर्ष भर हिम से ढकारहताहै। शीतकाल का हिम पूरा पिघलने से पहले ही पुनः हिमपात होनेलगताहै। लाखों वर्षों के अविरल हिमपात ने इस प्रदेश को सर्वथा भीषण, अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ और नंगी चट्टानोंवाली पर्वतश्रेणियों का क्षेत्र बनादियाहै[१]।

इस क्षेत्र में मनुष्य के लिए सह्य जलवायु केवल ज्येष्ठ से आश्विन तक रहताहै। कार्तिक से लेकर चैत्र तक ध्रुवप्रदेशीय शीतऋतु रहतीहै। जिसमें निरन्तर हिमपात होतारहताहै। अधिकांश क्षेत्र सर्वथा उजाड़, निश्तब्ध और घोर निर्जन बनजाताहै[२]।

जीवन के चिह्न सर्वथा लुप्त होजातेहैं। पेड़-पौधे और घासें हिम में छिपजातीहैं। पशु-पक्षी और सभी प्रकार के छोटे-बड़े जीवजन्तु या तो स्थान त्याग करदेतेहैं, अथवा छः-मासी दीर्घनिद्रा में सोजातेहैं, या शीत से नष्ट होजातेहैं। और मनुष्य को भी अपने प्राण बचाने निचली घाटियों में भागना पड़ताहै[3]।

भोटांतिकप्रदेश का ९९ प्रतिशत धरातल मानव-आवास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। महानदियों की अति संकीर्ण घाटियों में, जहां छोटे-छोटे हिमनिर्मित बगड़ हैं, वहां अति कष्ट-सहिष्णु एवं साहसी भोटांतिकों के थोड़े-से गांव हैं। संसार के किसी भी भाग में ऐसे अति दुर्गम, ऊबड़-खाबड़ और भयंकर क्षेत्र में गांव बसे नहीं मिलते, जैसे इन भोटांतिक घाटियों में मिलतेहैं[४]।

कृषि सर्वथा नगण्य है। नंगी चट्टानों, हिमानियों और महोच्च श्रेणियों से ढके इस प्रदेश में चराईक्षेत्र बहुत थोड़े हैं। उन पर केवल चार मास तक ही पशुचारण संभव होने के कारण यहां पशुचारण-मात्र

१- एटकिनसन--जि० ३, पृ० ८४ २- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ५४
३- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ५४ ४- एटकिनसन--जि० ३, पृ० ८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से निर्वाह होना असम्भव है[1]। इस प्रदेश के निवासियों की जीविका का एक मात्र आधार, तिब्बत से व्यापार, वर्तमान युद्धजन्य परिस्थिति में समाप्त होगयाहै।

भाबर और दूनघाटियों को छोड़कर उत्तरखंड के अन्य भागों में वहां की वेग से बढ़तीहुई जनसंख्या के लिए अन्नों का पर्याप्त उत्पादन नहीं होता। बढ़तीहुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस अविकसित पर्वतीय प्रदेश में, जिसमें कुटीरउद्योगों और कल-कारखानों का सर्वथा अभाव है, थोड़े-से व्यक्तियों को ही आजीविका मिलपातीहै। यहां के लाभदायक व्यापार पर अन्य क्षेत्रों के कुशल व्यापारियों का एकाधिकार है, जिनकी चतुर प्रतिद्वन्दिता में यहां के निवासी टिक नहीं सकते। उत्तराखंड में उन्हें केवल वही नौकरियां प्राप्त होसकतीहैं, जो अन्य क्षेत्रों के निवासियों को यहां आकर्षित नहीं करसकतीं[2]।

इसलिए परिवार के प्रत्येक सक्षम पुरुष को निकट या दूर के क्षेत्र में, अस्थायी या स्थायी प्रवास का आश्रय लेकर अपनी आजीविका का उपार्जन करनापड़ताहै। जिस प्रकार पक्षी रात खुलते ही अपने घोंसलों से उड़कर दाना चुगने चलेजातेहैं, और समय-समय पर अपने बच्चों के लिए, अपनी चोंच पर थोड़ा-सा भोजन लेकर अपने घोंसलों में आते रहतेहैं, उसी प्रकार उत्तराखंड के विभिन्न भागों के युवक यौवन में पदार्पण करते ही अपने गांवों से बाहर प्रवास में आजीविका जुटाने चलपड़तेहैं और समय-समय पर अपने गांवों में लौटकर अपने परिवार को प्रवास की कमाई से पालतेरहतेहैं[3]।

उत्तराखण्ड के इतिहास पर उसकी भूगोलिक विशेषताओं का रोचक प्रभाव मिलताहै।

१- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ५१   २- डबराल--'उपत्यका'--पृ० १८६
३- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ७३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवालिक की तलहटी अति प्राचीनकाल से ही पशुओं और मनुष्यों के प्रव्रजन का मार्ग निर्धारित करतीरहीहै। प्रागैतिहासिक काल में, जब हिमालय की ऊंची श्रेणियां हिम से और गंगाजी का महामैदान दलदलों से ढकाथा, शिवालिक की झाड़ियों तथा जंगलों में अगणित पशु चरतेथे और उस युग के मानव अपने पाषाणआयुधों से उनका आखेट करने वहां पहुंचतेथे।

ऐतिहासिक काल में भी शिवालिक की तलहटी का यही महत्व सदा बनारहा। युग-युग में धर्मप्रचारक, तीर्थयात्री, व्यापारी और पर्यटकों की अगणित टोलियां, खड्ग और अग्निमशाल लेकर उत्पात मचानेवाली आक्रांताओं की विशाल सेनाएं, घरों और प्रियजनों से बिछुड़ी पशुवत् हांकी जानेवाली दास-दासियों की बिलखतीहुई भीड़ तथा प्राण बचाने हेतु भागनेवाले शरणार्थियों के दल इस प्रदेश का आश्रय लेकर आगे बढ़तेरहे।

बांज, खर्सू और मोड़ू के वनों से ढकी लघुहिमालय की श्रेणियां प्राचीनकाल से ही पशुचारकों के लिए अति आकर्षक बनीरहीं। यहां बसी पशुचारक जातियां इस प्रदेश के पठारों पर तब तक चिपकीरहीं जब तक किसी आगन्तुक सशक्त जाति ने उन्हें इसके लिए सर्वथा विवश न करदिया। फलत: ये पठार प्राचीन रोचक परम्पराओं और रक्त की चिरकाल तक सुरक्षा करतेरहे[१]।

इन छोटे-बड़े पठारों को घेरनेवाली श्रेणियों की महत्वपूर्ण चोटियों पर स्थित गढ़ियों के गढ़पति चिरकाल तक बाह्यसंसार से सर्वथा दूर, अपनी ही निरंकुश मन की मौज के अनुसार अपनी निकटवर्ती घाटियों और पर्वतीय ढालों के निवासियों के भाग्यनिर्णायक बनेरहे[२]।

महाहिमालय की नीची ढालें, संकरी घाटियां और उनके पार स्थित दुर्गम भोटांतिकप्रदेश चिरकाल से दक्षिणी पठारों की उत्पाटित जातियों

१- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ९५ २- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ११२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए शरणालय बनेरहे। जिससे यहां के निवासियों में आज तक भारत के प्राचीनतम रक्त और प्राचीनतम परम्पराओं के अवशेष प्राप्त होतेहैं[1]।

भोटांतिकप्रदेश की उत्तरी सीमा पर जन्सकर श्रेणी के जेलूखगा, माणा, नीती, दरमा आदि गिरिद्वार, जिनमें से प्रत्येक सोलह सहस्र फीट से अधिक ऊंचा है, उजाड़, दरिद्र और साधनहीन हूणदेश के निवासियों के लिए उर्वर, साधनसम्पन्न एवं समृद्ध भारत का मार्ग खोलतेहैं। अपने आंगन से उतरनेवाली इन सीढ़ियों के द्वारा प्राचीनकाल से आज तक पशुचारकों, तीर्थयात्रियों, व्यापारियों और दस्युओं की टोलियां निरन्तर उत्तराखण्ड में प्रवेश करतीगई। और उत्तराखण्ड को प्राचीनतम जातियां, तीर्थयात्री, व्यापारी, पर्यटक और दस्युदमन हेतु यहां की सेनाएं इन्हीं मार्गों से हूणदेश में पहुंचतीरहीं[2]।

उत्तराखंड के सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक विकास की गाथा का निर्माण नदियों के तटों पर हुआ। उन्हीं के कछारों ने बाड़ाहाट (उत्तरकाशी), कार्तिकेयपुर (जोशीमठ), चांदपुरगढ़ी, श्रीनगर, बैजनाथ, लखनपुर, टिहरी आदि स्थानों पर राजधानियों की स्थापना और उत्पाटन को देखा। युग-युगान्तर से उन्हीं के तटों से होकर चराईक्षेत्र, आश्रय, भूतप्रेतों के प्रकोप की शान्ति और एकान्त की ढूंढ़ में भटकनेवाली मानवता आगे बढ़तीरही। प्रकृतिनिर्मित उन्हीं के महामार्गों पर इतिहास बार-बार अपनी आवृत्ति और पुनरावृत्ति करतारहा।

उत्तराखण्ड के मार्ग इन नदियों की घाटियों से होकर आगे बढ़कर अन्त में उस प्रदेश में पहुंचादेतेहैं जहां यमुना, भागीरथी, मन्दाकिनी, विष्णुगंगा, नन्दाकिनी, पिंडार, गोरी, दरमा और कालीगंगा के स्रोतों पर बीस सहस्र फीट से अधिक ऊंचे शिखरों के पादप्रदेश में दस-पन्द्रह सहस्र फीट नीची अति संकीर्ण घाटियों में ये महानदियां विस्मयकारी वेग

१- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० २० २- 'डबराल--'उपत्यका'--पृ० ३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से घोर घोष करतीहुई दौड़रहीहैं[1] ।

आकाश को बींधकर खड़े इन महोच्च शिखरों में से कुछ के पादप्रदेश में स्थित यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ तथा बदरीनाथ आदि की रोमांचकारी दृश्यावली और पावनता से मंत्रमुग्ध होकर सहस्राब्दियों से भारत के कोने-कोने से नर-नारियों की अगणित पंक्तियां उत्तराखण्ड के संकीर्ण मार्गों पर च्यूंटियों के समान रेंकतीहुई अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने पहुँचतीहैं[2] ।

भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष में उत्तराखण्ड की महानदियों, यमुना, गंगा और शारदा के महत्व को आंकना असंभव है। उन्होंने केवल उत्तरभारत के मैदान का ही निर्माण नहीं किया, वरन् सारे भारत की धार्मिक भावनाओं को, और लोक तथा परलोक सम्बन्धी मान्यताओं को भी आश्चर्यजनक ढंग से प्रभावित कियाहै[3] । गंगा-यमुना के उद्गम क्षेत्र, उत्तराखण्ड को सारे भारत के हिन्दु अपने लिए उतना ही पुनीततम प्रदेश समझतेहैं जितना जेरूसलेम ईसाइयों के लिए और मक्का मुसलमानों के लिए है[4] ।

उत्तराखण्ड के इस पावन, दुर्गम और बीहड़ रंगमंच पर समय-समय पर जिन जातियों और महत्वपूर्ण व्यक्तियों का प्रवेश और निष्क्रमण होतारहा, उनके सम्बन्ध में अब तक उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का वर्णन-विश्लेषण अगले परिच्छेदों में कियाजाएगा।

१-डबराल-'उपत्यका'--पृ० ९६-९७ २-डबराल-उ० यात्रा-दर्शन--पृ० १४८

३- डबराल-उ० यात्रा-दर्शन--पृ० ५३ ४- ओकले--पृ० १३३

—: o :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विलुप्त संस्कृतियां

गंगाद्वार-संस्कृति—(१)

भारत में पाषाणकाल का आरम्भ लगभग छै लाख वर्ष पूर्व होचुकाथा[1]। यह इतनी लम्बी अवधि है कि इसके विस्तार का अनुमान लगाना भी दुष्कर है[2]।

इस युग में भारत में जो मानव रहताथा वह अपने स्मारक के रूप में अपने पाषाण-उपकरणों को छोड़गयाहै। उसके उपकरण भद्दे और बेडौल थे। किन्तु उन्हें देखकर यह स्पष्ट होजाताहै कि वह मानव अपने दैनिक प्रयोग के लिए उपलब्ध पत्थरों के प्राकृतिक आकार-प्रकार पर निर्भर न रहकर उन्हें तोड़-फोड़कर अपनी आवश्यकतानुसार उपकरण बनाने की कला सीखनेलगाथा। पशु-अवस्था से ऊपर उठकर वह निर्माता और आविष्कर्ता की कोटि में आनेलगाथा[3]।

इसके लगभग एक लाख वर्ष पश्चात् यूरोप और सम्भवत: अफरीका में भी मानव पाषाण के ऐसे उपकरण बनानेलगाथा जो भारतीय मानव के प्राचीनतम उपकरणों की अपेक्षा अधिक उपयोगी थे[4]। विद्वानों का अनुमान है कि जावा में जिस प्राचीनतम मानव का कपाल मिलाहै, वह उसी युग का था[5] जिसमें भारत से पूर्व की ओर जावा तक और पश्चिम की ओर यूरोप तथा अफरीका तक पाषाणकालीन संस्कृति फैलीथी[6]।

उस युग के मानव के पाषाण-उपकरण दक्षिण के पठार पर अनेक स्थानों में, नर्मदा की घाटी में, मिर्जापुर में, पंजाब में पिंडीघेप के पास

१-५ पिगौट--पृ० २२ | ६- पिगौट--पृ० ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोहननदी की घाटी में तथा पोतवार-पठार के दक्षिण में करगिल और नमक की पहाड़ियों की दोनों बगलों पर प्राप्त हुएहैं[१]।

सोहनघाटी के आरम्भिक उपकरणों का निर्माण मध्य प्लीएस्तोशीन युग में उस समय हुआथा जब हिमयुग का द्वितीय शुष्ककाल चलरहाथा। सोलर रेडियेशन विधि से इन उपकरणों का समय आज से अधिक से अधिक चार लाख वर्ष पूर्व और कम से कम दो लाख वर्ष पूर्व निश्चित हुआहै[२]।

भारत के दक्षिण-पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी भागों में जो उपकरण प्राप्त हुएहैं, वे भी सोहन-उपकरणों के समकालीन मानेजातेहैं[३]।

उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में, कनखल से हरिद्वार, ऋषिकेश, लछमनझूला तक का प्रदेश, जो प्राचीन काल में गंगाद्वारक्षेत्र[४] कहलाताथा, अत्यन्त प्राचीनकाल से मानव की क्रीड़ाभूमि रहाहै। १९५१ में यहां हरिद्वार से ८ मील पश्चिम को ओर बहादराबाद नामक स्थान पर गंगाजी की नहर की उपशाखा खोदते समय मजूरों को ताम्रयुगीन बस्ती के अवशेष मिलेथे[५], जिनके सम्बन्ध में आगे कहाजाएगा।

उसी क्षेत्र में १९५३ में खुदाई करके डा० यज्ञदत्त शर्मा ने एक प्रस्तरयुगीन बस्ती का पता लगायाथा[६]। इस बस्ती के चिह्न तीन फीट की गहराई तक फैलेथे। उनके ऊपर बीस फीट की ऊंचाई तक मिट्टी, रेता और बजरी जमा होगएथे[७]।

बहादराबाद में प्राप्त पाषाण-उपकरणों के अध्ययन के आधार पर श्रीकृष्णस्वामी का अनुमान है कि ये उपकरण गंगाजी के तट पर उपलब्ध गोलमटोल शिलाओं को तोड़कर बनाएगएथे[८]। इनमें से कुछ उपकरण फ्लेक Flake वर्ग के थे। उनके निर्माता मूलशिक्षा को तब

१- पिगौट--पृ० ३० २-३- पिगौट--पृ० ३१ ४-आदिपर्व--९७।१
५- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ७१ ६- राहुल-अतीत से वर्तमान--पृ० १८७ ७-८-- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक तोड़तेगए जबतक वांछित आकार-प्रकार का उपकरण बनसका[१]।

यहां प्राप्त कुछ उपकरण, जो स्क्रेपर Scrapers वर्ग के थे, ठीक उसी प्रकार के थे, जिस प्रकार के सोहननदी की घाटी में प्राप्त हुएहैं।

इन रोचक उपकरणों का प्रयोग वर्तमान गंडासे के समान किया जाताथा। इनमें अगली ओर पतली धार पर आरी-जैसे दांत बनेहैं, और पीठ की ओर शिला मोटी तथा गोल है[२]। अग्रभाग का प्रयोग सम्भवत: कन्द, मूल, फल, छोटी टहनियों और मांस आदि को काटने के लिए कियाजाताथा। पीठ का प्रयोग सम्भवत: हथौड़े के समान ठोकने के लिएहोताथा। ऐसे उपकरण पांच-छै इंच तक लम्बे मिलेहैं[3]। यहां कुछ चौपर्स Choppers भी मिलेथे, जिनकी सहायता से शिलाओं को तोड़कर नए उपकरण बनाएजातेथे[४]।

उपकरण बनाते समय गोल शिलाओं को तोड़कर उनके जो अनपयुक्त शेष खण्ड बचेथे, उनमें से कई इस स्थान पर प्राप्त हुएहैं[५]। इन अनपयुक्त शिलाखण्डों में से एक सूचित करताहै कि वह उस शिला का अवशेष है जिसे तोड़कर पाषाणछुरियां microlithic blades बनाईगई होंगी[६]। इससे अनुमान लगताहै कि यदि ढूंढ़ कीजाए तो इस क्षेत्र में पाषाणछुरियां microliths भी प्राप्त होसकतीहैं[७]।

डाक्टर यज्ञदत्त शर्मा को यहां की खुदाई में अन्य पाषाणउपकरणों के साथ क्वार्टजाइट शिलाओं के फ्लेक तथा हलके-लाल गेरूरंगे पात्र Pale-red Ochre-washed pottery भी प्राप्त हुएथे[८]। ऐसे पात्रों का सम्बन्ध भारत में उत्तरपाषाणकाल की उस संस्कृति से जोड़ा जाताहै, जिसमें लोहे का प्रयोग अज्ञात था, किन्तु मानव तांबे और कहीं-कहीं कांसे का प्रयोग करनेलगाथा[९]।

१- फ्लेक के लिए देखिए, पिगौट--पृ० २७   २-६-एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ७१   ७-८-- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ७१

९- 'Microlithic industry was essentially a feature

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ्लेक, चौपर्स और माइक्रोलिथ आदि वर्गों के उपकरण एक ही स्थान पर विभिन्न परतों में मिलने से निश्चित है कि इस क्षेत्र में पाषाणकाल की बस्तियां दीर्घकाल तक बनीरहीं और धीरे-धीरे उन्होंने विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाने की कला प्राप्त करली।

भारत में पाषाणछुरी microlithic संस्कृति के चिह्न दूर-दूर तक प्राप्त हुएहैं। महादेवश्रेणी, हैदराबाद, मैसूर, मध्यभारत, गुजरात, सिंध और पंजाब में इस संस्कृति का विस्तार[1] था।

डाक्टर संकालिया का अनुमान है कि गुजरात में इस संस्कृति के जो अवशेष मिलेहैं वे मोहेनजोदाड़ो संस्कृति (विक्रम से २३०० वर्ष पूर्व से २८०० वर्ष पूर्व तक) से पूर्ववर्ती हैं[2]। मैसूर की खुदाई में निचली परतों पर केवल पाषाणछुरियां मिलीहैं। किन्तु उपरली परतों में पाषाण-छुरियों के साथ नव पाषाणकाल के चिह्न मिलेहैं। इससे अनुमान लगताहै कि पाषाणछुरीसंस्कृति वाली जाति को कालान्तर में उन्नति करतेहुए उत्तर पाषाणकालीन संस्कृति प्राप्त होगई[3]।

पूर्व पाषाणकालीन संस्कृति के अधिकांश अवशेष दक्षिण के पठार पर मिलतेहैं। उत्तर पाषाणकालीन संस्कृति के चिह्न उत्तरी सिन्ध, सोहनघाटी, उत्तरी पंजाब और असम की पहाड़ियों पर मिलेहैं[4]।

विद्वानों का अनुमान है कि पूर्व पाषाणकालीन संस्कृति वाली जाति पहले दक्षिण में आबसी और धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़कर पंजाब में सोहनघाटी तक पहुंचगई[5]। कुछ विद्वानों का मत है कि यही जाति पूर्व की ओर फैलगई और उन्नति करके उत्तर पाषाणकालीन संस्कृति

---

of pre-iron neolithic culture, when the use of copper and occasionally bronze had begun.'-- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ६६

१-४- डी०एन० मजूमदार--'रसेज ऐंड कल्चर्स'--पृ० १४

५- डी०एन० मजूमदार--उपरोक्त--पृ० १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाली बनगई। दूसरे वर्ग के विद्वानों का मत है कि नव पाषाणकालीन संस्कृति लेकर कोई जाति दक्षिण-पूर्व से भारत में प्रविष्ट हुईथी[1]।

उपकरणों के साथ मानवअस्थियां उपलब्ध न होने से गंगाद्वार संस्कृति का विस्तृत अध्ययन न होसका। निश्चय ही नहर खोदनेवालों को मिट्टी की उपरली परतों पर मानव और पशुओं के ऐसे अवशेष मिलेहोंगे जो गंगाद्वार-संस्कृति की गाथा कहसकतेथे। किन्तु उनका महत्व न समझकर उन्होंने उन वस्तुओं को सदा के लिए नष्ट करदिया।

गंगाजी के मैदान के पूर्वी भाग, बिहार और उत्तरप्रदेश में एक शताब्दी में धरातल पर मिट्टी की लगभग छै इंच मोटी परत जम जातीहै[2]। इन क्षेत्रों में यदि हम धरती के उस स्तर को देखनाचाहें जिस पर आज से ढ़ाई सहस्र वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध विचरेथे तो हमें धरातल को साढ़े बारह फीट की गहराई तक खोदकर देखनाहोगा[3]।

इस अनुमान के आधार पर तेईस फीट नीचे दबीहुई गंगाद्वार-संस्कृति आज से कम से कम चार सहस्र छै सौ वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व की मानीजासकतीहै।

किन्तु बहादराबाद उस क्षेत्र के अन्तर्गत है, जहां गंगाजी पर्वत से मैदान में उतरतीहै। यहां गंगाजी का वेग तीव्र है। और वह समय-समय पर अपने तटों पर एकत्रित मिट्टी की परतों को बढ़ाती या बहाती रहतीहै। एक बरसाती नाला भी उस क्षेत्र से होकर बहताथा जिसके नीचे उपरोक्त उपकरण मिलेहैं[4]। इसलिए गंगाद्वार-संस्कृति का समय निश्चित करने के लिए अन्य तथ्यों और प्राप्त उपकरणों की कला पर विशेष ध्यान देनाहोगा।

१- डी० एन० मजूमदार--'रेसेज ऐण्ड कल्चर्स'--पृ० १५

२-४- राहुल-अतीत से वर्तमान--पृ० १८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगाद्वार-संस्कृति केवल बहादराबाद तक सीमित न रहीहोगी। उस युग में दूर-दूर तक फैले निर्जन प्रदेश में किसी एकाकी बस्ती की कल्पना नहीं होसकती। निश्चय ही गंगाद्वार-संस्कृति का प्रसार उत्तराखंड के दक्षिणी भागों में और गंगाजी के मैदान के उत्तरी भागों में दूर-दूर तक रहाहोगा।

कनखल से लक्ष्मणझूला तक फैले गंगाद्वारक्षेत्र में गंगाजी को पार करना अपेक्षाकृत सरल है। उस युग में, जब मनुष्य सम्भवत: बांस के बजड़े या खालों की मशक आदि से नदियां पार करताथा, इस क्षेत्र की स्थिति महत्वपूर्ण थी।

गंगाजी के सारे मैदान में कहीं उपकरण बनाने के लिए पाषाण उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए उस युग में गंगाजी के मैदान की बस्तियों को, अवश्य गंगाद्वार तथा मिर्जापुर-जैसे क्षेत्रों से, जहां उपकरणों के लिए शिलाएं उपलब्ध थीं, उपकरण मंगानेपड़ेहोंगे। यूरोप के समान भारत में भी पाषाणकालीन बस्तियों के बीच उपकरणों का व्यापार प्रचलित रहाहोगा।

सोहनघाटी, गंगाद्वार, सिंगरौली (मिर्जापुर), मयूरभंज और मद्रास आदि क्षेत्रों में प्राप्त पाषाणउपकरणों में जो रोचक समानताएं मिलतीहैं, उनसे सिद्ध होताहै कि उस प्राचीनकाल में भी इन क्षेत्रों का एक-दूसरे से सम्पर्क स्थापित होचुकाथा[१]।

गंगाद्वार-संस्कृति—(२)

१९५१ में बहादराबाद में नहर खोदनेवाले मजूरों को जिस ताम्र-युगीन बस्ती के अवशेष मिलेथे, वह निश्चय ही उस स्तर से भिन्न स्तर पर रहीहोगी जिससे डा० यज्ञदत्त शर्मा को पाषाणउपकरण प्राप्त हुएहैं। इस ताम्रयुगीन बस्ती का सम्बन्ध उन पात्रों से नहीं जोड़ा

१- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जासकता जो यहां डा० शर्मा को खुदाई करते समय प्राप्तहुएथे[1]। यह ताम्रयुगीन संस्कृति निश्चय ही एक भिन्न युग की रहीहोगी।

मजूरों को यहां तांबे की अनेक रोचक वस्तुएं प्राप्तहुईथीं, जिनमें बेंट या बिना बेंट वाले भाले (harpoons), कुल्हाड़ियां, तलवारें, भालों की कुन्देवाली नोकें आदि मुख्य थीं[2]। यहां तांबे के कुछ कड़े और कुछ चित्रांकन भी मिलेथे। यह अभी तक निश्चित नहीं होसका कि इनका उपयोग किस प्रकार होताथा[3]।

तांबे की ऐसी वस्तुएं उत्तरप्रदेश में राजापुर, परसू, फतेहगढ़, बिठुर, परिआर, बिसौली, सरथोली तथा शिवराजपुर में भी प्राप्तहुईहैं। उत्तरप्रदेश के बाहर विन्ध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, बिहार, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में भी वे उपलब्ध हुईहैं[4]।

इस ताम्रयुगीन संस्कृति का विस्तार, जिसे विद्वानों ने ताम्रढेर-संस्कृति Copper hoard culture नाम दियाहै, हड़प्पा-संस्कृति के विस्तार से कम न था[5]। उत्तरपश्चिम में, बहादराबाद से लेकर दक्षिण में कलूर तक, लगभग १००० मील की लम्बाई में तथा इन दोनों क्षेत्रों से लेकर पश्चिमी बंगाल में स्थित तामाजुड़ी तक, ७५०-८०० मील की चौड़ाई में, इस संस्कृति के अस्तित्व के प्रमाण मिलेहैं[6]।

आरम्भ में ताम्रढेर-संस्कृति के उपकरणों का सम्बन्ध आर्यजाति से जोड़ागयाथा। फिर उन्हें आर्यों के प्रसार से उत्पीड़ित भागतेहुए हड़प्पावासियों के उपकरण मानागया[7]। किन्तु अब उनका सम्बन्ध उत्तरभारत की उस जाति से बतलायाजाताहै जो यहां विक्रम से डेढ़-दो सहस्राब्दियां पूर्व बसी थी[8]।

तांबे के उपकरण और हलके-लाल गेरू रंगे पात्रों Pale-red

१- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, चित्रफलक ३१ २-३- एनशिएट इंडिया--जि० ९, पृ० ९१ ४-५- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ७१ ६- पिगौट--पृ० ३१ ७-८- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Ochre-washed pottery का प्रयोग करनेवाली इस जाति का गंगा-यमुना-द्वाब पर तबतक आधिपत्य बनारहा जबतक रंगेभूरे पात्रों painted gray ware का प्रयोग करनेवाली जाति ने आकर उसके क्षेत्र पर अधिकार न जमाया[१] ।

उत्तराखण्ड के रंगमंच पर जातियों के प्रवेश और निष्क्रमण के इतिहास की बहुत-सी प्रामाणिक सामग्री उसकी महानदियों, विशेषकर यमुना, भागीरथी, अलकनन्दा और काली के तटवर्ती बगड़ों पर सतर्क छानबीन से प्राप्त होसकतीहै। गंगाजी के तट से होकर बालावली से लक्ष्मणझूला तक चलते समय कुछ स्थानों पर गंगातट से सटे कई फीट ऊंचे टीले मिलतेहैं जिन्हें गंगाजी ने बीच से काटडालाहै। ऐसे स्थानों पर अन्वेषणकर्त्ताओं को विभिन्न युगों के मृतिकापात्र, मुद्राएं, उपकरण और अन्य महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होसकतीहै ।

गंगाद्वार क्षेत्र से केवल ५० मील दक्षिण की ओर हस्तिनापुर में गंगाजी के तट की मिट्टी के कटाव से १९५०-५२ में जो ऐतिहासिक सामग्री मिलीहै, वह विभिन्न जातियों के आगमन का कालक्रम निर्धारित करने में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुईहै[२] । इसमें सन्देह नहीं कि वह सामग्री गंगाद्वार क्षेत्र, उत्तराखंड के दक्षिणी भाग तथा उत्तरप्रदेश के उत्तरपश्चिमी भाग के इतिहास के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण है ।

हस्तिनापुर में ऐसी पांच बस्तियों के अवशेष मिलेहैं, जो ऐसे विभिन्न युगों की हैं, जिनके बीच की पर्याप्त अवधि उन्हें एक-दूसरे से पृथक् करतीहै ।

सबसे नीचे गेरुरंगे पात्रों वाली संस्कृति के अवशेष मिलेहैं जिसका समय विक्रमपूर्व बारह सौ वर्ष से बहुत पहले विक्रमपूर्व दूसरी सहस्राब्दी का मध्यभाग होसकताहै[3] ।

१-३- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके ऊपर जमी मिट्टी की मोटी परतों के ऊपर रंगे-भूरे पात्र Painted gray ware, मुख्यत: भूरे रंग की तशतरियां और कुतुप, जिन्हें स्वस्तिकों, वृत्तों, अर्द्धवृत्तों, समकेन्द्रवृत्तों, बिन्दुओं, डैशवाली पंक्तियों, सीधी खड़ी, तिरछी, आड़ी एवं एक-दूसरे को काटनेवाली रेखाओं द्वारा सजायागयाथा[१], प्राप्त हुएहैं ।

इनके साथ कच्ची ईंटों या मिट्टी, नरकुल आदि घासों से बनाईहुई दीवारों को मिट्टी से लीपने की प्रथा के प्रमाण भी प्राप्त हुएथे[२] । इस युग के निवासी धान आदि अन्न उगाते तथा भेड़-बकरी, गाय, भैंस और सुअर पालतेथे[३] ।

उनके उपकरण तांबे के बनतेथे । यहां हड्डी के ऐसे नुकीले उपकरण भी मिलेहैं, जिनका प्रयोग लिखने, अथवा बुनने के लिए होताथा[४] । इनके साथ हड्डी और कांच की चूड़ियां, मालाओं के मनके तथा खेल की वस्तुएं भी प्राप्त हुईहैं[५] ।

इस युग के अन्त में भीषण अग्निकांड से बस्ती जलगई और गंगाजी की भारी बाढ़ उसका बड़ा भाग बहालेगई[६] ।

पर्याप्त समय बीतने पर हस्थिनापुर में पुन: तीसरी बस्ती बसगई । इस युग के निवासी उत्तरी काली पालिस वाले पात्रों Northern black polished ware का प्रयोग करतेथे[७] । उनके कुतुप और तशतरियों में दूसरे युग के पात्रों से भिन्नता मिलतीहै[८] । वे कच्ची और पक्की ईंटों से घर बनातेथे । पानी के निकास के लिए वे ईंटों से बनी नालियों का प्रयोग करतेथे, जिनका जल विशाल मटकों में जमा होताथा[९] ।

वे तांबा और लोहा, दोनों धातुओं का प्रयोग करतेथे । इनसे वे बाणों की नोकें, छेनी, दरांती, कीलें आदि बनातेथे[१०] । उनमें चांदी और तांबे की आहत मुद्राओं का Punch marked coins तथा

१-१०- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ९५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तांबे की अंकनहीन मुद्राओं unscribed cast coins का प्रचलन था[१]। इस बस्ती का विनाश एक भीषण अग्निकांड द्वारा हुआथा[२]।

हस्तिनापुर में चौथी बस्ती विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी में बसी जिसकी पुष्टि उसमें मिली मथुरानरेशों की मुद्राओं और शुंगयुग की मृण्मूर्त्तियों से होतीहै[३]। कुषाणनरेश वासुदेव की मुद्राओं की नकल पर बनी मुद्राओं तथा अन्य सामग्री से विदित होताहै कि इसका अस्तित्व विक्रम की तीसरी शताब्दी तक रहा[४]।

पांचवीं बस्ती ११५७ विक्रमी के आसपास आरम्भ होकर सोलहवीं शताब्दी विक्रमी के मध्य में समाप्त हुई। इसकी मध्यवर्ती परतों में बलबन(१३२३-१३४४ वि०) की एक मुद्रा और उपरली परतों में मुगलों से पूर्ववर्ती चमकीले glazed पात्र प्राप्त हुएहैं[५]।

हस्तिनापुर में विभिन्न युगों की बस्तियों के ऊपर जमी मिट्टी की परतों की मोटाई से उनके बीच की अवधि का निर्णय करके विभिन्न युगों का समय निश्चित कियागयाहै।

पहला युग, जो ताम्रढ़ेर-संस्कृति से सम्बन्धित है, विक्रमपूर्व दूसरी सहस्राब्दी के मध्य में, अर्थात् विक्रम से कम से कम १५०० वर्ष पूर्व का सिद्ध हुआहै[६]।

दूसरा युग, जो रंगीन भूरे पात्रों का प्रयोग करनेवाली आर्यजाति से सम्बन्धित मानाजाताहै, विक्रम से १२०० वर्ष पूर्व का सिद्ध हुआहै[७]। पुराणों के अनुसार जब हस्तिनापुर गंगाजी की बाढ़ से बहगया तो पांडवों के वंशजों को अपनी राजधानी कौशाम्बी में स्थापित करनीपड़ी। यह बाढ़, जिसकी पुष्टि खुदाई से होचुकीहै, महाभारतयुद्ध (विक्रम से ९०० वर्ष पूर्व) से एक शताब्दी पश्चात्, विक्रम से ८०० वर्ष पूर्व आईहोगी[८]।

१-४- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ९६

५-८- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० १४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हस्थिनापुर को बहानेवाली बाढ़ के समय निश्चय ही गंगाजी के स्रोतप्रदेश उत्तराखण्ड की नदियों में प्रबल बाढ़ें आईहोंगी, जिनका उत्तराखण्ड की तत्कालीन बस्तियों पर, जो महानदियों के तट पर रही होंगी, अवश्य प्रभाव पड़ाहोगा। यदि ढूंढ़ कीजाए तो उस प्रभाव के प्रमाण मिलसकतेहैं और उनके आधार पर उत्तराखंड के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं के कालक्रम पर रोचक प्रकाश पड़सकताहै।

ताम्रढ़ेर-संस्कृति से तुरन्त-पूर्व उत्तराखण्ड में किस जाति का प्रसार था, इसके अभी तक पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुएहैं। किन्तु उत्तरभारत के पूर्वी छोर पर, छोटानागपुर के पठार में, पाषाणकालीन बस्तियों के अवशेष मिलेहैं, जिनसे पता चलताहै कि विक्रम से ४००० वर्ष पूर्व वहां पाषाणछुरियों microlithic blades का प्रयोग करने वाली कोई जाति रहतीथी[१]।

उड़ीसा की पाषाणकालीन बस्तियों के अवशेषों में—वन असुरिया, जसपुर, वैद्यपुर, दसपला आदि स्थानों में—पालिसलगी ऐसी पाषाण-कुल्हाड़ियां मिलीहैं, जैसी बर्मा, मलाया, हिन्दचीन तथा दक्षिणी चीन में प्राप्त हुईहैं। इससे विद्वानों का अनुमान है कि ऐसी कुल्हाड़ियां बनाने की कला इस देश में पूर्व की ओर से आईहै[२]।

अनुमान कियाजाताहै ऐसी कुल्हाड़ियां बनानेवाली जाति विक्रम से दो सहस्र वर्ष पूर्व इस देश में पहुंचीहोगी। हामी बरगुन्दा, तामाजुड़ी, भंगरापीर तथा दुनरिया की खुदाई से विदित होताहै कि पालिसवाली पाषाण-कुल्हाड़ियां बनानेवाली जाति के पश्चात् उस क्षेत्र पर ताम्रढ़ेर-संस्कृति वाली जाति जाबसीथी[३]। विक्रम से छः शताब्दी पूर्व उस क्षेत्र के पास राजगिर और वैशाली में उस जाति के जाबसने के प्रमाण मिलेहैं जो उत्तरी काली पालिसवाले पात्रों का प्रयोग करतीथी[४]।

१-४- एनशिएंट इंडिया--जि० ९, पृ० ९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चंडेश्वर-संस्कृति

उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग में एक ऐसी संस्कृति के अवशेष मिलतेहैं जिसमें विशाल शिलाओं को खड़ा करके पितरों के लिए वृताकार समाधियां बनाने की प्रथा थी। अलमोड़ा जिले में दूनागिरि चाय फैक्टरी के उत्तर-पूर्व की ओर, पंडकुली पर्वतश्रृंग (८००० फीट) पर एक धार्मिक स्थान है। यहां एक शताब्दी पहले १६ फीट व्यासवाला एक ऐसा वृत्त मिलाथा, जिसे अनगढ़ शिलाओं को एक-दूसरे के ऊपर रखकर बनायागयाथा, और उसके द्वार पर बड़ी-बड़ी शिलाएं खड़ी की गईथीं[1]। इस वृत्त के अन्दर ८ फीट व्यास वाला एक दूसरा वृत था जिसे कुछ बड़े और कुछ छोटे पत्थरों से बनायागयाथा। भीतरवाला वृत्त धरातल से ३½ फीट ऊंचा था और उसका द्वार दक्षिण की ओर था[2]।

भीतरवाले वृत्त द्वारा घिरे क्षेत्र में अनेक लिंग थे, जो निकट की शिलाओं से बनाएगएथे। एक छोटा सा दीपक, एक पुरानी घंटी और तीन छोटे त्रिशूल, बस, लोहे की बनी ये तीनों वस्तुएं ही उस आदिम मन्दिर की सम्पूर्ण सम्पत्ति थीं, जिसके ऊपर से त्रिशूलशिखर का भव्य दृश्य दिखाईदेताथा।

यहां कोई पुजारी नहीं रहता। विशेष पर्व पर यहां मेला लगताहै, जिसमें अनेक यात्री, विशेषकर, बन्ध्या नारियां आतीहैं[3]।

इस मन्दिर से ८ फीट दक्षिण-पश्चिम की ओर धरती से ५½ फीट ऊंची, तथा ८० फीट पश्चिम की ओर इतनी ही बड़ी एक दूसरी महाशिला monolith खड़ीहै। इन दोनों शिलाओं को महादेव मानाजाताहै[4]।

इस मन्दिर का आकार-प्रकार लगभग वैसा ही है जैसा यूरोप में

१-४- कारनाक--पृ० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्टोनहेन्ज तथा अवेबुरी में दिखाईदेताहै। उपरोक्त पंडुकुली मन्दिर के बाहर की महाशिला[1] उसी प्रकार की स्थिति में है, जिस प्रकार की स्थिति में स्टोनहेन्ज के बाहर की महाशिला है, जिसे फ्रायर्स हील कहाजाताहै[2]।

दूनागिरि से सोमेश्वर जातेहुए लोध चायफैक्टरी के निकट सड़क की दहिनी ओर इसी प्रकार की कई महाशिलाएं हैं, जिनमें से एक पर चद्रमा की और दूसरे पर सूर्य की आकृतियां बनीहैं। इन्हें योनिलिंग का सूचक मानाजाताहै[3]।

तीन मील आगे दो फीट ऊंचे चार पत्थरों के ऊपर शिलाएं रखकर एक छोटी-सा देवाला बनाथा, जिसके अन्दर एक शिवलिंग के ऊपर सिन्दूर लगाथा और वहीं एक छोटा--सा लोहे का दीपक था। इस देवाला के बाहर एक छोटा--सा पाषाणलिंग और था, जिसके सिर पर प्याला जैसा चिह्न बनाथा[4]।

आगे धान के खेतों में एक गोल टीला था जिसके बाहरी शिला-निर्मित वृत्त को खेत बनाने के लिए नष्ट करदियागयाथा। यहां एक भारी शिला पर तथा आगे खेतों में विशाल गोलमटोल शिलाओं पर प्याला-जैसे अंकन बनेथे[5]।

रानीखेत से बारह मील उत्तर तथा द्वाराहाट से २½ मील दक्षिण में स्थित चंडेश्वरमहादेव से २०० गज दक्षिण की ओर नाले के मध्य में, रानीखेत से द्वाराहाट जानेवाले पथिक के दहिने हाथ की ओर, एक शिला नाले से लगभग ४५° का कोण बनातीहुई, नाले से लगभग ७० फीट की ऊंचाई तक चलीगईहै। इस शिला का कुछ भाग छोटी-छोटी झाड़ियों से ढकाहै।

१- Monolith को हिन्दी में 'एकाकी महाशिला' और Megalith को 'महाशिला' कहसकतेहैं। यहां 'एकाकी' छोड़दियागयाहै।

२- कारनाक--पृ० ५ ३-५- कारनाक--पृ० ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धूप तथा वर्षा से चट्टान बहुत घिसगई है। फिर भी अच्छे प्रकाश में, ध्यानपूर्वक देखने से शिला पर प्याला जैसे चिह्न और अन्य अंकन स्पष्ट दिखाईदेतेहैं[१]।

इस शिला पर १४′×१२′ के क्षेत्र में लगभग २०० से अधिक प्याला-जैसे चिह्न खुदे मिलतेहैं। उनके आकार विभिन्न हैं। उनमें ६″ व्यास से लेकर १½″ व्यास तक के चिह्न हैं, जिनकी गहराई १″ से ½″ तक है। वे प्रायः समकोण बनातीहुई रेखाओं में बनाए मिलतेहैं। कुछ ऐसे अंकन हैं, जिनमें प्याला-जैसे अंकनों के बाहर वृत बनेहैं। कुछ अंकनों में ऐसे वृत्तों से बाहर जल निकलने हेतु नाली भी खुदी है। एक स्थान पर ऐसे चिह्न हैं जो नाग, स्वस्तिक और विल्वपत्र होसकतेहैं[२]।

कारनाक का अनुमान है कि शिला पर बने भीतरी वृत्त लिंग के और बाहरी वृत्त योनि के सूचक हैं। इनमें नाली अर्पित जल के बाहर निकलने हेतु बनाईगईहै। वह इसे योनि-लिंग-रूप में महादेव की पूजा का मूलरूप मानताहै[३]।

चंडेश्वरमन्दिर के बाहर ४½ फीट ऊंची एक अति प्राचीन महाशिला खड़ी है। भीतर ३७ समाधियां हैं जिन पर योनि-लिंग बनेहैं। यहां दूर-दूर से शव आतेहैं। यह ज्ञात न होसका कि समाधियों में शव गाड़ेगएहैं या दाह के पश्चात् उनकी अवशिष्ट अस्थियां गाड़ी गईहैं[४]।

इस प्रकार के शिलावृत और अंकन दक्षिण के पठार पर कई स्थानों में मिलेहैं। विद्वानों का अनुमान है कि इन चिह्नों को सजावट के लिए बनायाहुआ, या गड़रियों द्वारा खेल में खोदाहुआ नहीं मानाजासकता। इन अंकनों में अवाम लिपि से सादृश्य पायागयाहै। इस प्रकार के

१- कारनाक--पृ० १-२ २- कारनाक--पृ० ३ ३- कारनाक--पृ० ४
४- कारनाक--पृ० ४-५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंकन सिम्पसन ने यूरोप के अनेक देशों में जिनमें, स्काउटलैंड और इंगलैंड भी सम्मिलित हैं, पाएहैं[१]।

विद्वानों का अनुमान है कि यूरोप में पाएगए अंकन उस प्राचीन पूजाप्रकार के अवशेष हैं, जो किसी समय सारे विश्व में प्रचलित था और जो भारत में आज भी प्रचलित है[२]। ये चिह्न उस प्रवाजोजाति के स्मारक मानेजातेहैं जो अपने मूलस्थान मध्यएशिया से चलकर भारत और यूरोप में फैलगई। जब उसके प्रदेश में दूसरी अधिक शक्तिशाली जाति आबसी तो उसे ऐसे पर्वतीयप्रदेशों में शरण लेनीपड़ी जहां पीछा करनेवाले सरलता से नहीं पहुंचसकतेथे। ये अंकन यूरोप में सुदूर के छोरों पर मिलतेहैं, जिससे विदित होताहै कि इनके निर्माताओं को मध्य भागों से भागकर वहां शरण लेनीपड़ीथी[३]।

भारत में ऐसे अंकन हिमालय, नीलगिरि, मध्यभारत की पहाड़ियों तथा नागपुर के निकट, सतपुड़ा की ढालों और वनों से सुरक्षित प्रदेशों में मिलने से भी यही सिद्ध होताहै[४]।

मद्रास के सलेमजिले में, बंगलौर के पास जालागांव में तथा अन्यत्र पाएगए शिला द्वारा निर्मित वृत्तों को पांडुकुड़ी, पंडवरगुडी अर्थात् पांडवों का देवाला, पांडवों अथवा पितरों की समाधि, पितृकुडो कहा जाताहै[५]। इन समाधियों में कहीं-कहीं अनेक रोचक वस्तुएं प्राप्त हुईहैं—जैसे-पाषाण की कुल्हाड़ियां, लोहे के उपकरण, चाक पर बने मृतिकापात्र तथा विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर विक्रम की चौथी शताब्दी तक की मुद्राएं[६]।

ऐसी समाधियां दक्षिण के पठार पर अनेक स्थानों में, मध्यप्रदेश में नागपुर के पास, उत्तर-पश्चिम में बिलोचिस्थान और कराची में, उत्तर

१- कारनाक--पृ० ९-१० २- कारनाक--पृ० १० ३- कारनाक--पृ० ११
४- कारनाक--पृ० ६१ ५- एनशिएंट इंडिया--जि० ६, पृ० ११२
६- एनशिएंट इंडिया--जि० ६, पृ० १०७-८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में तिब्बत की सीमा पर लेहघाटी में, उत्तराखंड में देवीधुरा में, तथा मध्यभारत एवं पूर्वी भारत में भी मिलीहैं। इनमें कहीं तो पृथक परिवारों की पृथक समाधियां मिलीहैं और कहीं कई परिवारों की साझी समाधियां पाईगईहैं। विद्वानों ने महाशिलाओं से समाधियां बनानेवाली उस जाति को मेगालिथनिर्माता Megalith builders नाम दियाहै[1]।

दक्षिण के पठार पर इन समाधियों के निर्माता तालाब बनाकर जल का संचय करतेथे। वे चौरस भूमि पर खेती करते और ऊबड़-खाबड़ भूमि पर समाधियां बनातेथे।

इन समाधियों में श्याम और रक्त मृतिकापात्र Black & Red ware तथा कहीं-कहीं मुद्राएं मिलने से उनकी तिथि निर्धारित करने में बड़ी सहायता पहुँचीहै। तमिल के प्राचीन ग्रंथ मणिमेकलई में भी ऐसी समाधियों का उल्लेख मिलताहै[2]।

समाधियों में प्राप्त कपालों के अध्ययन से विद्वानों ने पता लगायाहै कि इनके निर्माता द्रविड़जाति के थे और वे विक्रमपूर्व ७०० से विक्रम पूर्व ४७० के बीच किसी समय दक्षिण में आबसेथे[3]। द्रविड़जाति उत्तर-पश्चिम के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुईथी। इसलिए उत्तरभारत में उसका आगमन इस समय से पहले माननापड़ेगा। किन्तु यह जाति कब भारत में प्रविष्ट हुई, यह अभी तक अनिर्णीत है[4]।

समाधियों से विदित होताहै कि उनके निर्माताओं को लोहे के उपकरण और चाक से मृतिकापात्र बनाने की कलाओं का ज्ञान था। वह अपने शवों को जलाने के पश्चात् बचीहुई अस्थियों को पात्रों में भरकर गाड़तीथी। आज भी भारत के कुछ भागों में इस प्रकार की समाधियां देने की प्रथा है[5]।

१- एनशिएंट इंडिया--जि० ६, पृ० १०६ २- उपरोक्त--पृ० १११
३-४- उपरोक्त- पृ० ११४ ५- उपरोक्त--पृ० ११५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ विद्वान मेगालिथ-निर्माताओं को द्रविड़जाति से भिन्न जाति का मानतेहैं। मेगालिथ-संस्कृति और रोमसागरीय-संस्कृति में अत्यधिक समानता मिलने से विद्वानों का अनुमान है कि यह संस्कृति समुद्री मार्ग से अथवा उत्तर-पश्चिम के स्थलीय मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुईथी[1]।

मजूमदार मेगालिथ-निर्माताओं को मूल-आस्त्रोलाइद जाति का मानतेहैं। विक्रम से ३३०० वर्ष पूर्व जब द्रविड़जाति सिन्धुघाटी में नगर-संस्कृति का विकास कररहीथी, उन दिनों यह मूल-आस्त्रोलोइद जाति केवल उत्तरपाषाणकालीन-संस्कृति तक पहुँचसकीथी[2]। यह जाति दीर्घकाल तक पाषाणकालीन-संस्कृति से आगे न बढ़सकी। मैसूर में ब्रह्मगिरि नामक स्थान पर प्राप्त मेगालिथ-संस्कृति के अवशेषों का समय विक्रम से दो-तीन शताब्दी पूर्व सिद्ध हुआहै[3]।

चंडेश्वर और देवीधुरा आदि क्षेत्रों के मेगालिथ-अवशेषों का अभी तक विधिपूर्वक अध्ययन नहीं होसकाहै। फिर भी उनसे इस अनुमान की पुष्टि होतीहै कि प्राचीनकाल में उत्तरभारत के मैदान में किसी सशक्त जाति के प्रसार से मेगालिथ-निर्माता जाति को हिमालय की निचली श्रेणियों की तथा दक्षिण के पठार की शरण लेनीपड़ीथी।

मलारी–संस्कृति

प्राचीनकाल में मिश्रदेश के निवासियों में तथा मध्यएशिया की शकजाति में अपने मृतकों की समाधियों में उनकी प्रिय वस्तुओं को रखने की प्रथा थी। दक्षिणी रूस, मध्यएशिया, अनातोलिया और ईरान के पठार पर ऐसी अनेक समाधियां प्राप्तहुईहैं जिनमें कंकालों के साथ अनेक रोचक वस्तुएं मिलीहैं।

१--२ डी० एन० मजूमदार--' रेसेज ऐण्ड कल्चर्स '--पृ० १७

३- डी०एन० मजूमदार, उपरोक्त--पृ० २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लद्दाख[१], लाहुल[२], चम्बा[३] और कनौर में[४], लिप्पा, रूपू से आगे तिब्बती सीमान्त पर स्थित भारत के अन्तिम गांव नमग्या तक[५] ऐसी समाधियां मिलीहैं जिनमें शव घुटने मोड़कर लिटाएगएथे और उनके शिर के पास भोजन तथा पेय के मृतिका या कांसे के पात्र रखेहुएथे[६]।

१९५६ में मैंने भारत-तिब्बत-सीमान्त के निकट स्थित धौलीघाटी के मलारीगांव (१०९१४ फीट) में इसी प्रकार की समाधियों का अध्ययन कियाथा[७], जिनका पता मकानों के लिए भूमि खोदते समय लगाथा। तथा १९४८ में औसनेटर नामक जरमन को नहर खोदते समय मध्यतिब्बत में इसी प्रकार की समाधियां मिलीथीं[८]।

द्वाराहाट (कुमांऊ) में चौकोर कटे पत्थरों की कुछ समाधियां मिलीथीं, जिनका सम्बन्ध ट्रेल ने तातारजाति से जोड़ाथा[९]। कनिंघम ने उन्हें मौनजाति के चबूतरे मानाथा[१०]। स्थानीय जनता उन्हें साधुओं की समाधियां मानतीथी[११]। इन समाधियों को बिना अध्ययन किए ही खोदकर नष्ट करदियागयाहै।

मलारी की समाधियां गोल गड्ढों-जैसी थीं। उनमें शवों के चारों ओर अनगढ़ी शिलाएं खड़ी कीगईथीं। इन शिलाओं के ऊपर शवों को ढकने के लिए बड़ी-बड़ी चपटीं शिलाएं (पटाल) रखकर उनके ऊपर मिट्टी-पत्थर डालकर बन्द करदियागयाथा। कालान्तर में उन पर झाड़ियां उगगईथीं।

१- राहुल-गढ़वाल--पृ० ५८ २- एटकिनसन--जि० २, पृ० ५१२ टि०
३- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५८ ४- राहुल--किन्नर प्रदेश में--पृ० १३३
५-६- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५८ ७- देखिए, कर्मभूमि--२, १७, २४ जुलाई ५६; ३१ दिसम्बर ५७, अप्रैल ५८ ८- हारर--पृ०२१४
९- एटकिनसन--जि० ३, पृ०२७ १०- कनिंघम--आ०स०रि०-जि०१४, पृ० १२७ ११- पांडे--कुमांऊं का इतिहास--पृ० ३३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन समाधियों में शवों को घुटने मोड़कर औंधा लिटायागयाथा। समाधि के अन्दर शवों के सिर के पास हड्डियों से भरी मिट्टी की तशतरियां तथा हत्थे एवं टूटीदार मिट्टी के खाली कुतुप रखेहुए मिलेथे।

दीर्घकाल तक जल, मृतिका और कीटाणुओं से प्रभावित होने के कारण शवों की अस्थियां बिखरचुकीथीं। कोमल अस्थियां मिट्टी में बदलगईथीं और जो शेष थीं वे नीली-भूरी तथा सरलता से टूटनेयोग्य बनचुकीथीं। कुछ कंकालों के नाक, कान और अंगुलियां लुप्त होचुकीथीं। केवल कपाल, रीढ़, जंघा तथा बाहें ही शेष थीं।

कंकालों के अध्ययन से अनुमान लगताहै कि उस जाति के नर-नारी लगभग सवा पांच फीट तक लम्बे होतेथे। उनकी पसलियां सुदृढ़ और छाती चौड़ी थीं उनके जबड़े और दांत बड़े तथा सुदृढ़ थे।

कपालों का विधिपूर्वक अध्ययन नहीं होसका। लिप्पा की एक समाधि के अध्ययन से राहुल का अनुमान है कि यह जाति दीर्घ कपाल थी[1]।

कंकालों के शिर के पास मिली तशतरियां लगभग ·२ इंच मोटी और ५-६ इंच व्यासवाली सुन्दर गोल और सुडौल थीं। इनके किनारे ऊपर की ओर मुड़ेथे। कुछ तशतरियों के पेन्दों पर रेखाएं खिंचीथीं।

छोटी-बड़ी सभी तशतरियां लगभग एक-जैसी थीं। किन्तु कुतुप विभिन्न आकार-प्रकार के थे। कुछ कुतुप छोटे गोल और लगभग चार छटांक से आठ छटांक तक जल रखने योग्य थे। कुछ लम्बोतरे और कुछ ऊंचाई में १५ इंच तक थे। पर गोलाई में ८-१० इंच से अधिक न थे।

सभी कुतुपों पर जल निकलने की टूटियां और हत्थे थे। रचना की दृष्टि से टूटियों और हत्थों में विभिन्नता थी। हत्थों को चिह्नित करके

१- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सजाने का प्रयत्न कियागयाथा। कुछ कुतुप आकार-प्रकार में तांबे के उन गड़ुवों के समान थे, जिनका प्रयोग आजकल प्याऊ में पथिकों की अंजुलि में जल डालने के लिएहोताहै।

इन पात्रों के लिए मृतिका किसी तालब के बीच से निकालकर उसमें अभ्रकमिली मिट्टी मिलाईगईथी, जिससे सुखाते और आग में पकाते समय वे चटके नहीं हैं।

यद्यपि तशतरियां और प्याले दोनों आग में पकाएगएथे, किन्तु खोदने पर तशतरियां सरलता से टूटगईं। कुतुप शताब्दियों तक उन समाधियों के अन्दर रहने पर भी, जिनमें शवों की अस्थियां तक बुरी तरह नष्ट होगईथीं, भली प्रकार सुरक्षित बनेरहे।

इनमें से एक कुतुप को जब आग में पकायागया तो वह इतना सुन्दर बनगया कि उस पर कीलें ठोकना सम्भव होगया और उसका रंग बदलकर काला होगया[१]।

कुतुप प्राय: ·१ इंच से ·२ इंच तक मोटे थे। इनमें से कुछ लाल रंग के थे, कुछ सादे। सम्भवत: लाल पात्र गेरू और गोंद के मेल से रंगाएगएथे, और उन्हें चमकीला बनाने के लिए सुहागे का प्रयोग भी कियागयाथा।

पकाने से पहले कुतुपों की तलहटी और पेंदे पर बाहर की ओर देवदारु के पत्तों या घोड़े अथवा गदहे के बालों की कूची से एक-दूसरे को काटतीहुई रेखाएं खींचीगईथीं।

कुछ कुतुप पकाने से पहले रिंगाल की चटाई या छोटी टोकरी में रखकर चित्रित किएगएथे। पकाने पर भी उन पर चटाई के चिह्न शेष थे[२]। गुल मुहम्मद से मिले पात्र भी, जिन्हें ईसा से २००० वर्ष पूर्व का मानाजाताहै, इसी प्रकार चटाई से दबाकर चित्रित किएगएथे[3]।

१- यह पात्र पुरातत्वविभाग के पास आगरा भेजागयाहै।

२- इनमें से एक कुतुप मेरे पास है। ३- राय--पृ० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलारी के जो कुतुप मेरे पास हैं, उनकी तलहटी तथा पेन्दे पर सुन्दर रेखाचित्र हैं, जिनमें समानान्तर तिरछी रेखाएं एक-दूसरे को काटरहीहैं। उन पर हत्थों के नीचे त्रिभुज बनाकर उनके अन्दर चित्रणशैली (स्टाइलाइज़ेशन) पर देवदारु की पत्तियां बनाईगईहैं।

पच्चीस गुना बड़ा आकर दिखानेवाले अनुवीक्षणयंत्र के द्वारा इनमें से एक पात्र को देखने से लगताहै कि शिर और जंघा पर वस्त्र लपेटे हुए कुछ व्यक्ति पंक्तिबद्ध होकर तथा एक-दूसरे का हाथ थामेहुए अनेक पंक्तियों में आगे बढ़रहेहैं। सम्भवतः वे किसी सरदार, राजा, देवता, सन्त या महापुरुष की सेवा में पहुंचरहेथे, जिसका चित्र पात्र के उस भाग में रहाहोगा जो टूटचुकाहै।

ईरान के पठार पर सार-इ-पुल गांव के बाहर चट्टान पर बने लुलुबी-नरेश अन्नुबनिनी के चित्र में दूसरी पंक्ति में नरेश और निन्नीदेवी के चित्र के नीचे ठीक इसी प्रकार पंक्तिबद्ध बन्दी चलते दिखाईदेतेहैं, जिनके हाथ पीछे बंधेहैं, और केवल शिर पर टोपी-जैसा वस्त्र है[१]।

मलारी से पुरातत्वविभाग आगरा को भेजेगए दो कुतुपों में से एक पर लाल चमकदार पालिश है! लगभग १५ इंच ऊंचे इस अति सुन्दर कुतुप के हत्थे पर मोनाल का आकर्षक चित्र बनाहै। हड़प्पा के पात्रों पर उड़तेहुए मोरों के चित्र मिलेहैं[२]।

मलारी के कुम्भकार अपनी कला में पूर्ण कुशल थे। उन्होंने बड़ी चतुरता से इन सुन्दर पात्रों की रचना कीथी और उन्हें चित्रित करने के लिए पर्याप्त परिश्रम कियाथा। पकाते समय उन्होंने ऐसी भट्टी का प्रयोग कियाथा जिसमें पात्रों पर सर्वत्र आवश्यक तापमान पहुंच सकताथा। इसीलिए उन पर सर्वत्र एक--जैसा रंग दिखाईदेताहै।

ये कुतुप जल नहीं सोखते। सिन्धुघाटी के कुतुपों पर आलातद्रव्य रखने के लिए बिटूमन और जिपसम का पलस्तर लगायागयाथा[३]।

१-घृशमैन--पृ० ५५, चित्र २२   २-काला--पृ० १४५   ३-काला--पृ० १६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलारी के कुतुपों पर भी भीतर से किसी चिपकदार काली वस्तु का तथा स्थानीय जिप्सम के पलस्तर का प्रयोग कियागयाथा। इन कुतुपों का प्रयोग सम्भवतः मृतकों के लिए मदिरा रखने हेतु हुआथा।

इन समाधियों से मिले कंकाल प्राकृतिक मृत्यु से मरे व्यक्तियों के थे, और उन्हें प्रचलित विधि के अनुसार समाधि में लिटायागयाथा। ईरान में सियाल्क तथा अन्य स्थानों की समाधियों में भी, जो कि ईसा पूर्व २००० वर्ष से पहले की हैं, शवों को घुटने मोड़कर लिटायागयाथा[१]।

एक बड़ी समाधि में, जिसमें बड़े-बड़े कुतुप मिलेथे, तथा सम्भवतः कुछ बहुमूल्य वस्तुएं, आभूषण और धातुपात्र भी खोदनेवाले को मिलेथे, दो कंकाल आमने-सामने घुटने मोड़कर लिटाएहुए पाएगए। इस समाधि में घोड़े और मेंढ़ों के अस्थिपंजर भी मिलेथे।

सम्भवतः यह किसी सामन्त या सरदार की समाधि थी, जिसकी आत्मा की सन्तुष्टि के लिए घोड़े और मेंढ़ों की बलियां दीगईथीं। साथ का दूसरा कंकाल सम्भवतः उसकी पत्नी, दासी या सेवक का था।

ल्हा-सा के निकट औसनेटर ने जिन समाधियों को खोदाथा, उनमें पूर्ण सुरक्षित कंकालों के साथ मृतिका के पात्र, कुतुप और मूल्यवान रत्न मिलेथे। ये समाधियां सहस्रों वर्ष पुरानी किसी ऐसे युग की थीं, जिसका तिब्बत के ऐतिहासिक ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता[२]।

१- घृशमैन--पृ० ३०

२- ' In the course of his excavations, he (Aufschnaiter) had made some most interesting finds. Graves containing perfectly preserved skeletons with bowls and semi-precious stones besides them were opened......which dated back thousands of years (and were) a proof of a former Tibetan civilization. None of the

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चय ही यह जाति एक पशुचारक जाति थी, जो भेड़, घोड़े और सम्भवतः बकरी, गदहे, चमर तथा कुत्ते भी पालतीथी।

प्रतीत होताहै कि यह जाति जौ की खेती करतीथी, या उसे बाहर से मंगातीथी। उसके भोजन में मद्य-मांस का प्रमुख स्थान था। मदिरा बनाने के लिए वह सम्भवतः जौ का प्रयोग करतीथी। वह खालें और ऊनीवस्त्र पहनतीथी। वह पशुचारक जाति पर्याप्त सभ्य थी। उसे मिट्टी के सुन्दर पात्र बनाने का ज्ञान था। सम्भवतः वह अपने दैनिक जीवन में भी मिट्टी के पात्रों का प्रयोग करतीथी।

इन पात्रों का निर्माण स्थानीय कुम्भकारों ने ही कियाहोगा। अधिक दूर से, दुर्गमप्रदेश में ऐसे पात्रों का आयातकरना असम्भव था। विभिन्न क्षेत्रों की समाधियों में सर्वत्र इसीप्रकार के मृतिकापात्र मिलने से सिद्ध होताहै कि कुम्भकार, उस समाज का आवश्यक अंग था। उस युग के कुम्भकार द्वारा पात्रों पर बनाएगए चित्र उस समाज की उत्तम रुचि के द्योतक हैं।

लिप्पा की एक समाधि में राहुल को एक कांसे का पात्र भी मिलाथा[१]। सम्भवतः ऐसे पात्रों का बाहर से आयात कियाजाताथा। उत्तरभारत के कई स्थानों में कांस्ययुगीन संस्कृति के अवशेष मिलेहैं, पर इस प्रदेश में अभी तक कहीं नहीं मिले।

इस जाति को किसी न किसी रूप में लोहे का प्रयोग ज्ञात था और वह लोहे तथा चकमक की टक्कर से अग्नि उत्पन्न करना जानतीथी।

---

lamas could throw light on his finds, and there was no mention in the old history books of an epoch in which the Tibetans used to bury their dead and put gifts in their graves.'-- हारर--पृ० २१४

१- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कंकालों के गले और हाथों पर लिपटे तारों से विदित होताहै कि इस जाति को विभिन्न प्रकार की मालाओं और आभूषण पहनने का चाव था। मालाओं के मनके, सम्भवतः, सोने, रंगीन पाषाणों, पशुओं की अस्थियों, लकड़ी, जिपसम, सेलखड़ी तथा विभिन्न रंगों की मिट्टियों से बनतेथे। सम्भवत: उन पर पालिश भी कीजातीथी।

सोना, कांसे के पात्र, रंगीन पाषाण, अन्न तथा सम्भवत: कुछ आभूषण भी बाहर से मंगाएजातेथे। उनके बदले सम्भवत: ऊन, खालें, समूर, पशु, कश्तूरी, जड़ी-बूटियां आदि वस्तुएं दीजातीथीं।

इस जाति में पितरों की पूजा प्रचलित थी। उसका विश्वास था कि मृत्यु के पश्चात् भी प्रेतात्मा भोजन करताहै। उसे दूसरे लोक में अपने पशु, वाहन, सम्भवत: पत्नी या दास-दासी की, तथा आभूषणादि की भी आवश्यकता पड़तीहै, जैसा कनौर और तिब्बत की समाधियों में मिले आभूषणादि से पता लगताहै[1]।

भूत-प्रेतों से भयभीत रहने के कारण इस जाति में शवों को घुटने मोड़कर औंधा लिटाने की प्रथा थी, जिससे प्रेत का मुंह धरातल की ओर रहे और वह पुन: ऊपर उठकर उन्हें हानि न पहुंचावे[2]। जिन वस्तुओं से उसे प्रेम होताथा, वे उसकी समाधि में रखदीजातीथीं, जिससे उनकी लालसा से वह पुन: वापस न आजावे।

अत्यन्त शीतल प्रदेश में रहने के कारण इस जाति को अवश्य शीतकाल में निचली घाटियों में उतरनापड़ाहोगा। पशुचारक होने के कारण वह अवश्य घोषयात्री रहीहोगी। निचली घाटियों और चराई-क्षेत्रों में उसका सम्पर्क अवश्य तत्कालीन दूसरी जातियों से हुआहोगा।

लिप्पा की समाधि के आधार पर राहुल का अनुमान है कि यह

१- राहुल--किन्नर प्रदेश में--पृ० १३४

२- देखिए, प्लौडेन--जि० ३, पृ० ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति दीर्घकपाल थी[१]। अस्तु हिमालयप्रदेश के वर्तमान आयतकपाल और मध्यकपाल निवासियों से, जिन्हें ऐसे कपाल तिब्बती रक्त के अधिक मिश्रण से मिलेहैं, भिन्न थी[२]।

निश्चय ही ये समाधियां उस युग की हैं, जब इस प्रदेश के निवासियों में मंगोल-रक्त नहीं मिलाथा। इस प्रदेश में तिब्बती मंगोलों का प्रसार आठवीं शती में होने के कारण ये समाधियां अवश्य ही आठवीं शती से बहुत पहले की हैं[३]।

समाधियों में भोजनादि रखने से विदित होताहै कि यहां के निवासियों पर तब तक बौद्धधर्म या हिन्दूधर्म के कर्मसिद्धांत का प्रभाव नहीं पड़ाथा[४]।

हिमालय में इस प्रदेश के वर्तमान निवासी खश और भोटांतिक अपने मृतकों को जलातेहैं। विशेष परिस्थिति में यदि वे मृतक बच्चों और विशेष रोगों से मरे व्यक्तियों को गाड़ते भी हैं, तो उन्हें घुटने मोड़कर औंधा नहीं लिटाते और न उनकी समाधियों में भोजनादि रखतेहैं।

कनौर की ये समाधियां उस क्षेत्र में खछे रोम्खङ् (मुसलमानी कबरें) कहलातीहैं। तिब्बती भाषा में कश्मीर और कश्मीरियों को 'ख-छे' कहतेहैं जो 'खश' शब्द का दूसरा रूप है। मुसलमानों को पहले-पहल कश्मीरीखशों के रूप में देखने से तिब्बतवासी उनके लिए ख-छे शब्द का प्रयोग करनेलगे[५]। और उसी को कनौर ने अपनालिया।

राहुल का अनुमान है कि इन समाधियों का सम्बन्ध खशजाति से था[६]। किन्तु इस क्षेत्र में अर्थात् लद्दाख से सारे उत्तरी-सीमान्त पर, तथा मध्य तिब्बत तक, कभी खशजाति का प्रसार रहाहो, इसके प्रमाण नहीं मिलते।

१- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५८ २-५- राहुल--किन्नर प्रदेश में--पृ० १३४
६- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५६ १- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमालयप्रदेश में खशजाति के वर्तमान क्षेत्र के उत्तर और दक्षिण में, पश्चिम से पूर्व तक, किरातजाति की पट्टियां मिलने से इस अनुमान की पुष्टि होतीहै कि खशजाति ने पश्चिम से हिमालयप्रदेश में प्रवेश करके किरातजाति को उत्तर और दक्षिण के अनाकर्षक एवं दुर्गम, बीहड़ क्षेत्रों में शरण लेने के लिए बाध्य करदियाथा।

एटकिनसन ने लिखाहै कि लाहुल में मिली समाधियों को स्थानीय परम्परा के अनुसार किसी ऐसी जाति ने बनायाथा जो यारकन्द के पार से इस ओर आईथी[1]।

दक्षिणी रूस से लेकर मध्यएशिया में अलताई तक, तथा ईरान के पठार में इसी प्रकार की समाधियां अनेक स्थानों पर मिलीहैं, जिन्हें विद्वान शकजाति की समाधियां मानतेहैं[2]। हमारे सीमांत पर लद्दाख से मलारी होकर मध्यतिब्बत तक फैली इन समाधियों का सम्बन्ध खश, शक या किसी अन्य जाति से था, यह अनिर्णीत है।

हमारे देश में विक्रमपूर्व पहली शती के मृतिकापात्रों में, जिन्हें कुषाणकालीन मानाजाताहै, मद्य और पानी रखने के बरतनों पर टोंटी और पकड़ने के लिए कुण्डे बने मिलतेहैं[3]। ऐसे मृतिकापात्र रोपड़, तक्षशिला और हस्तिनापुर से प्राप्त हुएहैं[4]। दिल्ली में पुराने किले की खुदाई से मिले पात्रों में एक टोंटी लगा गडुवा भी था[5]।

मलारी के कुछ पात्रों को देखकर पता चलताहै कि उनकी त्रुटियां छिपाने के लिए उन्हें चटाई से ढ़कागयाथा। ऐसी चतुराई कुषाणकालीन कुम्भकार भी करताथा[6]।

भूगोलिक परिस्थिति को दृष्टि में रखतेहुए यह निश्चयपूर्वक कहा जासकताहै कि भारत के मैदान से इस प्रकार के पात्रों के निर्माण की कला

१- एटकिनसन--जि० २, पृ० ४१२ टि० २- राहुल-गढ़वाल--पृ० ५८
३-४- राय--पृ० ४८ ५- राय--पृ० ५२-५३ ६- राय--पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलारी नहीं पहुँची। मलारी के पात्रों को मैदान में प्राप्त कुषाणकालीन पात्रों से पूर्ववर्ती मानाजासकताहै।

ईरान के पठार में शियाल्क तथा तेपे हिसार[1] की समाधियों के पात्रों और शवों को लिटाने के ढंग में लगभग वे सब विशेषताएं मिलतीहैं जो हम मलारी की समाधियों में पातेहैं। ऐसा प्रतीत होताहै कि शवों को औंधा लिटाने और उनके साथ मृतिका पात्र रखने की प्रथा ईरान, अफगानिस्थान, मध्यएशिया होकर पश्चिमी हिमालय में फैली।

आज से ढाई-तीन सहस्र वर्ष पूर्व तुर्की से लेकर कश्मीर तक मिट्टी के Black on Red शैली के पात्रों के निर्माण का प्रचार था[2]। उस युग में आग के ऊपर पात्र उलटे रखकर पकाएजातेथे। इससे उनकी भीतरी सतह काली और बाहरी सतह लाल बनजातीथी। उस युग में यह शैली कई जातियों में प्रचलित थी। इस शैली का प्रभाव मलारी के पात्रों पर भी पड़ाथा।

इस जाति की समाधियों में मिट्टी के पात्रों के प्रयोग से, तथा सभी स्थानों पर एक-जैसी समाधियां मिलने से निश्चित है कि यह जाति हिमालय की इस उत्तरी पट्टी में कुछ काल तक अवश्य बसी थी।

इस जाति का, इस प्रदेश में वर्तमान समय में मिलनेवाली भोटांतिक जाति से कब सम्पर्क हुआ, उसके साथ इसके कैसे सम्बन्ध थे, इस जाति का लोप कैसे हुआ, क्या उसे आगन्तुक जातियां पचागईं, आदि का निर्णय इस क्षेत्र में बचीहुई समाधियों के विधिपूर्वक अध्ययन करने से ही होसकेगा।

गंगाद्वार, चंडेश्वर और मलारी की संस्कृति से सम्बन्धित जातियां हमारी श्रद्धांजलि प्राप्त करने की अधिकारी हैं। उस आदिम तमसावृत्त

१- घृशमैन--पृ० ५३   २- पिगौट--एनशिएट सिटीज, मानचित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युग में, जब प्रकृति सर्वदा बाढ़, हिमपात, हिमानीस्खलन और भूचाल आदि के द्वारा उनके संहार के लिए, व्याघ्र, भालू, हाथी, सर्प, बिच्छू और मच्छर सर्वत्र उनका रक्त चूसने के लिए, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष और पितर, दिनरात उन्हें पीड़ित करने के लिए तथा कालाज्वर, हैजा और चेचक जैसी महामारियां उनके सर्वनाश के लिए प्रस्तुत रहतीथीं, वे साधन, सहायता, सूचना एवं अस्त्र-शस्त्रों के सर्वथा अभाव में भी, केवल अपने क्षुद्र और हास्यास्पद उपकरणों की सहायता से ही अपनी रक्षा करके साहसपूर्वक अग्रसर होतीरहीं।

उन्होंने घने वनों, अज्ञात नदीघाटियों और निर्जन पर्वतीय ढालों पर अपने पगचिह्नों से प्रारम्भिक मार्गों की स्थापना की, उपयोगी और हानिकारक पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों का पता लगाया, पेट भरने, शरीर ढकने, वस्तुसंग्रह करने और आवश्यकता पड़ने पर शिर छिपाने हेतु भोजन, वस्त्र, उपकरण और घर बनाने की आदिम प्रणालियां ढूंढ़ी, तथा वनों को जलाकर पर्वतीय ढालों को मानव के आवास के योग्य बनाया। स्वयं विलुप्त होकर भी वे आगामी पीढ़ियों और जातियों के लिए सभ्यता का टिमटिमाता दीपक छोड़गईं।

—०—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातियों का आगमन

कोल (मुंड) जाति

डा० मजूमदार की धारणा है कि देहरादून, गढ़वाल, रवांई और हिमाचलप्रदेश के निवासी मुख्यत: तीन नृवंशों की संतति हैं। महोच्च पर्वतीय ढालों पर तिब्बती और अन्य मंगोलोइद जातियां हैं। मध्यवर्ती पठारों पर एक लम्बी, गोरी जाति मिलतीहै, जिसके प्रतिनिधि खशराजपूत, खशब्राह्मण, कनेत और भट्ट हैं। उनके साथ अपेक्षाकृत काले रंगवाली आदिवासी डोमजाति मिलतीहै, जिसमें सभी शिल्पकार जातियां, कोली, कोल-टा, बाजगिर और ओड सम्मिलित हैं[1]।

१- ' In the cis-Himalayan region, in Dehradun district, in Garhwal, Rawain and the Simla States, we have three important racial strains. The highest altitudes are inhabited by the Tibetans and other Mongoloid people, the central belt is composed of a tall, fair race represented by the Khas-Rajputs and Khas-Brahmins, the Kanets, the Bhats, and a comparatively dark aboriginal type represented by the Doms, a generic name used to include all artisan castes, the Kolis and the Koltas, the Bajgirs and the Oadh, who are originally of Dom extraction.'--डी० एन० मजूमदार--' रेसेज ऐंड कल्चर्स ', पृ० ३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्रवर्ण, गौरवर्ण और कृष्णवर्ण की इन जातियों का सम्बन्ध क्रमशः किरात, खश और कोल (मुण्ड) नृवंशों से जोड़ाजाताहै। अनुमान कियाजाताहे कि कोल या मुंडजाति भारत और हिमालय की प्राचीनतम जाति है, और उसके पश्चात् क्रमश: किरात और खशजातियां हिमालयप्रदेश में आबसीं।

विद्वानों का अनुमान है कि भारत की कृष्णवर्ण जाति प्राचीन नेग्रितो और मूलआस्त्रोलोइद जातियों की संतान है[१]। नेग्रितोजाति, जो पूर्व प्रस्तरयुगीन संस्कृति तक हो बढ़सकीथी, अपनी कतिपय विशेषताओं को छोड़कर अब समाप्त होचुकीहै। सम्भवत: उसे उसके पश्चात् उत्तर-पश्चिम के द्वार से भारत में प्रविष्ट होनेवाली मूलआस्त्रोलोइदजाति पचागई[२]।

मूलआस्त्रोलोइदजाति उत्तरप्रस्तरयुगीन संस्कृति लेकर आईथी। उसकी भाषा के अध्ययन से विद्वानों ने अनुमान लगायाहै कि उस जाति ने भारत में सभ्यता का प्रकाश लाने में महत्वपूर्ण योग दियाथा[३]।

उसने धान और कतिपय साग-सब्जियों के उगाने की विधि का पता लगालियाथा। वह गन्ने से गुड़ बनाने, सूती कपड़ा बुनने और बीसी (२० या कोड़ी) के आधार पर गिनने को प्रणाली से परिचित थी। सम्भवत: पुनर्जन्म की कल्पना तथा अनेक धार्मिक और पौराणिक गाथाओं की रचना भी उसीके द्वारा हुईथी[४]।

वह विश्व की संचालकशक्ति को आकारहीन मानतीथी। आज भी उसकी संतान साकार देवताओं और उनकी मूर्तियों की कल्पना नहीं करसकीहै और अपना इष्ट निराकार (निरंकार) को मानतीहै[५]। इस जाति में महाशिलाओं Megaliths द्वारा वृत्त बनाकर अपने पितरों को समाधि देने की प्रथा थी[६]।

१-३- आर०सी० मजूमदार--पृ० १४ ४- आर०सी० मजूमदार--पृ० १६
५- आर०सी० मजूमदार--पृ० १८ ६- आर०सी० मजूमदार--पृ० १७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्वानों का अनुमान है कि विक्रम से तीन सहस्र वर्ष पूर्व जब द्रविड़जाति सिन्धुघाटी में नगरसंस्कृति का विकास कररहीथी, मूल-आस्त्रोलोइदजाति केवल उत्तरप्रस्तरयुगीन संस्कृति तक ही पहुँच-सकीथी[1] और चिरकाल तक उससे आगे न बढ़सकी[2]।

आज भी भारत में सर्वत्र, विशेषतः तथाकथित निम्नजातियों में मूलआस्त्रोलोइदजाति की विशेषताएं मिलने से विद्वानों का अनुमान है कि इस जाति का भारत में व्यापक प्रसार हुआथा[3]। पहले यह जाति कोल या मुंडभाषा बोलतीथी, जो आगे चलकर द्रविड़जाति के संसर्ग से द्रविड़भाषाओं से प्रभावित होगई[4]।

मूलआस्त्रोलोइदजाति ने तत्कालीन अन्य जातियों, विशेषकर नेग्रितो-जाति से, जो उसके आगमन से पूर्व भारत में बसीथी, घुलमिलकर कोल या मुंडजाति को जन्म दियाथा[5]। पूर्व की ओर इस जाति ने मंगोलोइद जाति के मिश्रण से असम, बर्मा तथा हिन्दचीन में मोन-ख्मेर जाति को, तथा उन कई आदिमजातियों को उत्पन्न कियाथा जो हिन्दद्वीपसमूह, मेलानेसिया और पौलीनेसिया तक बिखरीहैं। कश्मीर से लेकर ईस्टर टापुओं तक फैली इस जाति की बोलियों को आस्त्रिकपरिवार की मानाजाताहै[6]।

प्राचीनकाल में कोल या मुंडजाति उत्तरभारत के सारे मैदान पर छाईहुईथी। कालान्तर में उत्तरभारत पर द्रविड़जाति के प्रसार के कारण उसे दक्षिण के पठार में तथा हिमालय के वनप्रदेश में शरण लेनीपड़ी[7]।

मुंडजाति एक स्वतन्त्र जाति के रूप में, इसी नाम से, मध्यभारत के ऊबड़-खाबड़ भागों में आज भी मिलतीहै। इससे इस अनुमान की पुष्टि होतीहै कि उत्तरभारत के मैदान पर द्रविड़जाति और फिर

१-आर०सी० मजूमदार-पृ० १८ २-३- आर०सी० मजूमदार--पृ० २७
४-आर०सी० मजूमदार--पृ०३३ ५-६- आर०सी० मजूमदार--पृ० १४
७- ग्रियर्सन--जि० १, भाग १, पृ० ३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्यजाति के व्यापक प्रसार के पश्चात् भी इस जाति का हिमालय की निचली श्रेणियों और पठारों के वनप्रदेशों में निश्चय ही चिरकाल तक स्वतन्त्र अस्तित्व बनारहाहोगा[१]।

उत्तराखण्ड और हिमालयप्रदेश के ग्रामीणसमाज में आज हंत्या, पितृप्रकोप, भूत, प्रेत, डाकिनी, चुड़ैल, घात, दाग, दोष और छाड़ाताड़ा आदि के संबंध में जो मान्यताएं प्रचलित हैं, उनकी आरंभिक कल्पना का श्रेय निर्जन वनप्रदेशों, दुर्गम पर्वतीयढालों और नदियों की संकीर्णघाटियों में भटकनेवाली इसी जाति को है[२]। उत्तराखण्डवासियों का आज भी विश्वास है कि कोलजाति के वंशज हरिजनों द्वारा किएगए (नीच को करियूं) नकझाड़, झाड़ाताड़ या घडियाला द्वारा दोष, दाग आदि का निवारण और शत्रु के विनाशहेतु घात आदि के प्रयोग अमोघ होतेहैं।

उत्तराखण्ड में प्रचलित निरंकार, नरसिंह और नागपूजा की प्रारंभिक कल्पना का श्रेय भी निर्जन वनप्रदेशों में नरभक्षी व्याघ्र और सर्पों से नित्य संत्रस्त रहनेवाली इसी कोलजाति को मिलनाचाहिए।

जब किरातजाति का प्रसार हुआ तो कोलजाति को या तो उसका ग्रामसेवक बननापड़ा अथवा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षाहेतु दुर्गम और बीहड़ पठारों, उच्च पर्वतीयढालों या भोटांतिकप्रदेश की उन संकीर्ण

१- 'At the present day the Mundas have themselves survived as a recognised people in the wild hill country of Central India, and it is in accordance with this that they should also have survived for a longer time in the forests of Himalayas, than on the Aryanised plains of Northern India'.--ग्रियर्सन--जि० १, भाग १, पृ० ३९

२- देखिए, डबराल 'उपत्यका'--पृ० १००-१०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्जन घाटियों की शरण लेनीपड़ी, जिनसे आगे बढ़ने का मार्ग भारत-तिब्बत-सीमान्त पर स्थित हिमाच्छादित श्रेणियां रोकेहुईहैं[1] ।

कालान्तर में पश्चिम की ओर से खशजाति ने हिमालय के उत्तम चराईक्षेत्रों से किरातजाति को उत्तर की निर्जन, दुर्गमघाटियों की ओर धकेलदिया । वहां पहले से बसी कोलजाति को धीरे-धीरे सशक्त किरातजाति पचागई । फलस्वरूप भोटांतिकप्रदेश की किरातजाति के रक्त, भाषा और सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं पर कोलजाति का प्रभाव आज भी दिखाईदेताहै ।

भारत-तिब्बत-सीमान्त के दक्षिण की ओर दार्जिलिङ् से लेकर कनौर तक तिब्बती-बर्मी-परिवार की कुछ ऐसी बोलियां प्रचलित हैं[2], जिनमें कोल (मुंड) भाषा की विशेषताएं आज भी स्पष्ट दिखाईदेतीहैं[3] । इससे सिद्ध होताहै कि तिब्बती-बर्मी भाषा का प्रयोग करनेवाली किरात-जाति के आगमन पूर्व से वहां कोल या मुंडजाति का आधिपत्य था ।

१- भारत में आए कुछ तिब्बती शरणार्थियों की मुखाकृति आदि से पता लगताहै कि सम्भवत: कोलजाति की कुछ टोलियां पश्चिमी तिब्बत में भी पहुंचीथीं ।

२- धीमाल, धामी, लिम्बू, याखा, खम्भू, राई, वायु, चेपाङ्, कुसुण्ड, भ्रामु, थाकस्या, मनचाती, चम्बालाहुली, बुनान (राङ्लोई), कनाशी, कनौरी, जङ्ली, रङ्कश, दरमिया, चौदाङ्सी, ब्याङ्सी । अन्तिम चार उत्तराखण्ड के भोटांतिकप्रदेश में बोलीजातीहैं । --ग्रियर्सन--जि० १, भाग १, पृ० ३५

३- ' The indication of ancient Munda influence on these forms of speech is a matter of greatest interest. It connects languages spoken in Lahul, Chamba and Kanawar with the Munda languages of Central India and through them

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड के ब्यांस, चौंदांस और दरमा के भोटांतिक तथा नेपाल की कुछ किरांती जातियां आज भी उसी प्रकार के रमबङ्, हम्बाघर या कुमार-कुमारी-गृह रखती हैं, जैसे छोटानागपुर की आंरांव और उसकी पड़ोसी मुंड तथा होजाति में धुमकुड़िया आदि नामों से मिलते हैं। इस तथा अन्य प्रथाओं से भी इस क्षेत्र में कोलजाति का किरातजाति द्वारा आत्मसात् कियाजाना सिद्ध होताहै[1]।

प्राचीनकाल में कोलजाति के व्यापक प्रसार की साक्षी हमारी वे अगणित नदियां हैं जिनके नामांत में कोलभाषा के प्रत्यय डा, दा, ता या गाड (=जलपूर्ण) आज तक चलेआतेहैं। उत्तराखंड की अलकनं-दा, जलकनं-दा, शार-दा तथा भारत की नरम-दा, बहु-दा, बर-दा, केन-दा, द-सान, तिस-ता, प्रणी-ता आदि का नामकरण करनेवाले निश्चय ही कोलवंशी थे[2]। उत्तराखण्ड में सर्वत्र समस्त छोटी नदियों, नालों और गधेरों को आज तक 'गाड' कहतेहैं। यथा सिलगाड, लंगूरगाड आदि।

पश्चिम में बिलोचिस्तान में कुल्ली से पूर्व और दक्षिण की ओर

---

with the Khasi spoken in Assam and with Mon-Khmer languages of further India'.--ग्रियर्सन--जि० १, भाग १, पृ० ५६

१- डी० एन० मजूमदार--अफेर्स आब ए ट्राइब, पृ० २४

२- 'Several great rivers of Northern India have the Kolish affix दा as पद-दा, नरम-दा, बहु-दा; the term of the river in Kolish dialect is गड्ड or great water from गाड=great water. The following some of the great rivers seem to me of Kolish origin although they may have been Sanskritised, मन-दा (now महानदी), बर-दा etc.'--कनिंघम--आ० स० रि०, जि० १४, पृ० १३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोल्-हान्, कोल्-हापुर और कोल्-टी तक विस्तृत क्षेत्र में अनेक स्थानों का सम्बन्ध कोलजाति से जोड़ाजाताहै। केदारखंड में गढ़वाल के श्रीक्षेत्र (श्रीनगर) को कोलासुर की राजधानी बतायागयाहै[1]।

उत्तराखण्ड के अनेक गांवों के नाम आज भी कोलजाति के व्यापक प्रसार की सूचना देतेहैं[2]। आज भी अनेक गांवों के नामों के साथ कोलभाषा के गड या गाड़ जिनका अर्थ जल होताहै[3], बड[4] तथा बिर, कोलवर्ग की संथालीभाषा में जिनका अर्थ वन होताहै[5], चिपके हुए इसी तथ्य की पुष्टि करतेहैं[6]।

१- केदारखण्ड--अध्याय १७८

२- यथा, गढ़वाल में—कोलकोट, कोलकांडी, कोलखी, कोलखांडी, कोलखाड, कोलगाड, कोलडुंगरी, कोलसी, कोलसेरा, कोलसारी कोलागाड, कोलाडुंगरी, कोलारी, कोदाड़ी, कलोड़ी, कोलासी, कोलामी, कोलियारी, कोली, कोलीधार, कोलीगांव, कोलू, कोल्याणी, कौली, क्वाली, क्वीली आदि, देखिए, राजेश्वरीप्रसाद--'गढ़वाल'

३- यथा, गढ़वाल में--अमगडी, कोलागाड, कुगड्डा, खनगड, गडअमोला, गडकोट, गडखरक, गडसिर, गडमूनी, गडरिया, गडसारी, गडवौ, गड्डी, गड्डीगांव, गड्डीबगड़, गडील, गडोला, गड्यूण, तिगड्डा, दुगड्डा, बनगड, बरगडी, सगोडा, सिगड्डी, सुगाड आदि, देखिए, राजेश्वरी प्रसाद-- 'गढ़वाल'

४- यथा, गढ़वाल में---बड, बडाली, बड्यूण, बडेला, बडयारगांव, बडियार, बडोलगांव, बडोली, बडोलीगांव, बडरांऊं, बिडोला, बिडोली, बिड्याडांडा, बिडला, बुडोली, बेडगांव, बेडूबगड, बेडमोली, बैडल आदि, देखिए, राजेश्वरीप्रसाद--'गढ़वाल'

५- मिश्र--भारतीय संस्कृति में आर्येतरांश, पृ० १०२-१०४

६- यथा, गढ़वाल में---बरमोली, बरस्वार, बिरकोट, बिरकागांव, बिरखेत, बिलखेत, बिरही, बिराणा, बिराऊं, बिरतोली, बिरसोली,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बंगला के समान गढ़वाली और कुमाउनी बोलियों में भी कोलभाषा के टा, ठा, ठ्या प्रत्ययों का प्रचुर प्रयोग मिलताहै[1]। इन बोलियों में मध्यवर्ती तथा अन्तिम ल के स्थान पर ल़ का सार्वभौम प्रयोग[2], जो कि कोल और द्रविड़भाषाओं की विशेषता है, होताहै। आर्यपरिवार की दो भाषाओं, मराठी और उड़िया में इस ल़ ध्वनि का प्रचुर प्रयोग उन्हें दीर्घकाल तक कोल और द्रविड़जातियों के संसर्ग से प्राप्तहुआहै[3]। उत्तराखण्ड की बोलियों में भी इस ल़ का सार्वभौम प्रयोग निश्चय ही कोल और द्रविड़जातियों की देन है।

बिराली, बिरमोली, बिरस्वार आदि, देखिए राजेश्वरीप्रसाद-'गढ़वाल' यथा अलमोड़ा में--बिर, बिरही, बिरगोला, बिरता, बिरमा, बिरलुवा, बिरूड़ी, बिरूड़ा आदि, देखिए, राजेश्वरीप्रसाद--'अलमोड़ा'

१- यथा, गढ़वाली में—फुल-टा, सोल-टा, कोल-टा, डुम-टा-ल, खश-टा-ल, फोल-टी, सोल-टी, छग-टी, खने-टी, सिमल-टी, लगु-ठ्या, बगुठ्या आदि

२- यथा, गढ़वाली में---काल़ो, खल़पट, खाल़, खंख्वाल़, गल़, गल़ी, गंडेल़, घ्याल़ी, चमस्यूल़, जोल़, टाल़बराई, ढ़ाल़फोल़, पेटपाल़, बग्वाल़, ब्याल़ी, बिराल़ी, भेल़, मल़ऊ, मल़, मल़खेत, रख्वाल़ी, स्याल़ आदि

३- ' The curious heavy ल़ is very widely employed in the Dravedian group of languages, where it interchanges freely with र and ड़ and is also found in the Kol family of Central India. The Marathas and the Urias are perhaps of all Aryan tribes, those which have been for the longest time, in contact with Kols and Dravedians, and it is not surprising, therefore, to find

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोलभाषा के समान[1] उत्तराखंड की बोलियों में भी सार्थक शब्द के पीछे लगभग समान ध्वनिवाले सार्थक या निरर्थक शब्द जोड़ने[2] की तथा बीसी के आधार पर गिनती करने की[3] सार्वभौम प्रवृत्ति मिलतीहै।

भाषा, रक्त और सांस्कृतिक परम्पराओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि खशदेश और किरातदेश बननेसे पूर्व उत्तराखंड का पावनप्रदेश असंस्कृत कोलजाति का क्रीड़ास्थल था। केदारखंडग्रन्थ द्वारा श्रीक्षेत्र (श्रीनगर) में कोलासुर की राजधानी का उल्लेख भी इसी तथ्य का द्योतक है[4]। सम्भवत: इसीसे शक्तिसंगमतंत्र में मायापुर (हरिद्वार) से सप्तशृंग (गन्धमादन) तक का प्रदेश बर्वरदेश कहागयाहै[5]।

कोलजाति के वर्तमान प्रतिनिधि उत्तराखंड की कोल-टा आदि डोम (शिल्पकार) जातियां मानीजातीहैं[6]। डोम शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। उत्तराखंड के गांवों में बिठाणा या सवर्णों की बस्ती से कुछ दूरी पर डोमाणा या शिल्पकारों की बस्ती गांव के अन्दर एक उपगांव के समान है। उत्तराखंड की बोलियों में अनेक तिब्बती शब्द

---

the cerebral ल़ more freely used by them than by others.'--बीम्स--पृ० २४५, उ० काल्डवेल--पृ० ६०

१- मिश्र--पृ० ३३

२- यथा, गढ़वाली में—झगड़ा-रगड़ा, झाड़ो-ताड़ो, झगुली-टोपिली, तसबीर-मसबीर, ब्वारी-म्वारी, बेटी-माटी, बेटुलू-माटलू, बासी-कूसी, भांडु-कूंडु, मुट्ठि-माट्ठी, रौलि-खौलि, लाखड़ो-पातड़ो, सल़-मल़, सात्तु-मात्तू आदि

३- मिश्र- पृ० ३३ ४- केदारखण्ड--अ० १७८

५- ....बर्वरं शृणु पार्वति !
मायापुरं समारभ्य सप्तशृंगास्तथोत्तरे।
बर्वराख्यो महादेशो---।। शक्तिसंगम, ३।७।५५-५६

६- डी० एन० मजूमदार--'रेसेज एन्ड कल्चर्स'--पृ० ३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलने से तथा उत्तराखंड और तिब्बत के मध्य चिरकाल से सम्पर्क रहने के कारण डोमाणा को तिब्बतीभाषा के डोम्-बा (छोटागांव) से जोड़ने की कल्पना होसकतीहै[१]।

किन्तु डोमशब्द भारत में सर्वत्र प्रचलित है, तथा भारत के विभिन्न भागों में अनेक डोमबोलियां मिलतीहैं[२]। कुछ लोग डोम और डोमड़ा शब्दों का मूल तमिल के द्रम और द्रमिड़ शब्दों में ढूंढतेहैं[३]। यह कल्पना साधार हो या नहीं पर उत्तरभारत के कोल-टा को तमिल के को-टा (हरिजनजाति) से जोड़ाजासकताहै। मुंड, गोंड और डोम शब्दों का रोचक ध्वनिसाम्य सम्भवत: उनका निकटसम्बन्ध सूचित करताहै।

कोलजाति के जो वंशज मैदान में डोमजाति के नाम से मिलतेहैं, उन्हें एटकिनसन हिमालय की डोमजाति से भिन्न मानतेहैं। उनका मत है कि हिमालय की डोमजाति खशजाति की वंशपरम्परागत दासजाति है। अफगानिस्तान, कश्मीर, जम्मू, हिमाचलप्रदेश, उत्तराखंड और नेपाल में जहां-कहीं खशजाति मिलतीहै, वहां उसकी यह दासजाति अवश्य मिलतीहै[४]।

१- डबराल--'उपत्यका'--पृ० १५५

२- डोम-जिप्सी, डोम्बारी (कोल्हाटी), डोम्बो, डोमाड़ा, डोमड़ी; ग्रियर्सन--जि० १, खंड १, पृ० ४४७; तथा यूरोप की जिप्सी--सिंगानजाति की रोमणी (डोमणी) बोली

३- 'Some inquirers have held the identity of Dravedians with primitive shudras, and something may be said in support of this hypothesis'.--काल्डेवेल--पृ० १०६

४- एटकिनसन--उ० क्रुक--एथनोग्रैफिकल हैंडबुक, पृ० ६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड में अंगरेजीराज्य के आरम्भिक वर्षों में ट्रेल ने डोमजाति को नाटा आकार, हट्टाकट्टा शरीर तथा ऊन-जैसे बालोंवाला बतलायाथा[1]। कुमांऊं के कमिश्नर गार्डनर ने लिखाथा—'उनके गालों की अस्थियां उभरी होतीहैं। उनका आकार नाटा और शरीर हृष्टपुष्ट होताहै। वे आकार-प्रकार में गोंड आदि आदिमजातियों से मिलते-जुलतेहैं। रूप-रंग तथा शरीराकृति में वे अच्छे नहीं लगते और उच्चजाति के हिन्दुओं से उन्हें तुरन्त पृथक् पहचानाजासकताहै। निश्चय ही इस जाति का आर्यजाति से कोई रक्तसम्बन्ध नहीं है[2]'।

वर्तमान वैज्ञानिकविधियों से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होगयाहै कि उत्तराखंड की शिल्पकारजाति का सम्बन्ध उस नृवंश से नहीं जोड़ाजासकता, जिस नृवंश से वहां के ब्राह्मण और राजपूतों का सम्बन्ध है[3]।

उत्तराखंड में अब थोड़े-से शब्दों[4] और स्थान-नामों को छोड़कर[5]

१- ईलियट ऐंड बीम्स--जि० २, पृ० ३०२ २- इलियट ऐंड बीम्स--जि० २, पृ० ३१४

३- 'While the Brahmins and the Rajputs (of Dehradun, Garhwal, Rawain and Simla States) do not show any divergence (in the Coeffi, cient of Rocial Likeness), the artisan elements cannot be taken to be racially of the same stock as that represented by the Brahmins and the Rajputs'.--डी०एन० मजूमदार--'रेसेज ऐंड कल्चर्स',पृ० ३९

४- डूमखोल, डूमजौ, डूमजोगी, डूमडर, डूम-डाली, डूम-डोकल्या, डूमत्योहार, डूमनेत, डूमबांटी, डूमाणा आदि तथा कतिपय कहावतें

५- यथा, डुमकोट, डुमगांव, डुमरगांव, डुमार, डुमलौ, डुमैला, आदि, देखिए, राजेश्वरीप्रसाद--टिहरी, गढ़वाल, अलमोड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डोमशब्द का प्रयोग समाप्त होगयाहै। अब इस जाति के लिए शिल्पकार या हरिजन शब्द का प्रयोग होताहै। इनमें एक जाति, संभवत: उत्तराखंड पर अपने पूर्वजों के पिछले अधिकार की स्मृति के कारण, अपने को अन्य शिल्पकारजातियों से उच्च समझतीहै, और उनसे रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं करतीहै। मध्यवर्ती वर्ग को समाज में इस जाति से निम्नतर तथा तृतीय वर्ग से उच्चतर स्थान प्राप्त है।

तृतीय वर्ग, जो दास या खुरमुंडोदास कहलाताथा, सम्भवत: खशजाति की परम्परागत दासजाति से[1] सम्बन्धित है। यह वर्ग उत्सवों पर ढोल बजाता और वंशावलियां गाताथा। ठाकुरों की मृत्यु पर उसके वंशजों के साथ दास का भी शिरमुंडन होताथा। कालान्तर में मैदान या हिमालय के अन्य भागों से आई अनेक नर्तकजातियों की टोलियां भी दासवर्ग के साथ मिलगईं।

अन्यत्र के समान इस क्षेत्र में भी शिल्पकारजाति में सवर्णजातियों का रक्त प्रचुर मात्रा में मिलचुकाहै। सवर्णजातियों से बहिष्कृत नर-नारियों को तो इसमें आश्रय मिला ही है, साथ ही इस जाति की नारियों ने सवर्णयुवकों को आकर्षित करके अपनी सन्तान के रूप-रंग और आकार-प्रकार को पर्याप्त प्रभावित करदियाहै[2]।

१- क्रुक--पृ० ६६

२-मिलाइए, 'The tribes of scavengers, such as Bhangi and Dom, have for many generations formed a sort of cave of Adullam for outcastes of the higher races, and the notorious immoral character of women of these tribes must have had a powerful effect in modifying the physique and appearance of castes such as these.'--ईलियट तथा बीम्स--जि० २, पृ० ३१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर भी इस क्षेत्र के हरिजनों में से अनेक नाक, होंठ, जबड़ा, गालों की अस्थियां तथा बालों की विशेषताओं आदि की दृष्टि से भारत के अन्य भागों में मिलनेवाली उन अनेक आदिमजातियों से कुछ समानता रखतेहैं जिनमें कोल, किरात या द्रविड़रक्त का मिश्रण बतलायाजाताहै[1]।

हरिजनजाति में सुन्दर नारियां मिलने[2] तथा अन्य प्रमाणों से विद्वानों की धारणा है कि पहले समाज में इस जाति को आज से उच्चतर स्थान प्राप्त था। यह जाति इतनी अधिक पिछड़ी न थी, जितनी आज है[3]। सहस्राब्दियों से लगे राजनीतिक और सामाजिक प्रतिबन्धों ने[4] उसे वर्तमान पिछड़ी अवस्था प्रदान करदीहै[5]।

१- देखिए, रिजले--पीपुल्स आफ इंडिया, फलक १, ५, ६, १२, १३, १६, १८ और २० में क्रमश: खशमीनारी, मिशमीबाला, नागा-पुरुष, लिम्बूपुरुष, लिम्बूनारी, मुण्डनारी, ओरांवपुरुष और जुआङ् बाला

२- मिलाइए, 'It is not merely true to say that the laxity of morals of the Dom women has resulted in a lot of illegitimacy and hybridization but it is equally a fact that the incidence of handsome and attractive features among the Dom women is a cause rather than consequence of such miscegenation.'--डी० एन० मजूमदार--उपरोक्त, पृ० ३७

३ तथा ५- डी०एन० मजूमदार--उपरोक्त, पृ० ३७

४- नाग-मुंड दासी से उत्पन्न वासवखत्तिया का पुत्र राजकुमार विडूडभ जब अपने नाना महानामशाक्य के घर कपिलपुर में आया तो उसे किसी ने प्रणाम नहीं कियाथा और संस्थानागार में जिस फलक पर वह बैठा उसे एक दासी ने घृणापूर्वक दूध-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखण्ड के शिल्पकार ऊन, भांग और खालों के वस्त्र[१], बांस, लकड़ी और धातु के उपकरण, तथा पात्रादि बनाने में बड़े सिद्धहस्त थे[२]। पुराने मकानों की खोलियों पर नाग, सूर्य, चन्द्र, मत्स्य, हरिण, हस्ती और नाना प्रकार की लताओं तथा पुष्पों के चित्रण उनके कारु-कौशल के प्रमाण हैं। उत्तराखंड के मन्दिरों की अति सुन्दर मूर्तियां उन अज्ञात कलाकारों की कृतियां हैं जिन्होंने देवविग्रह के निर्माण में तल्लीन होकर पाषाण पर भी उन भावभंगिमाओं को अंकित करदियाहै जिन्हें कागज पर भी अंकित करना कठिन है[३]। आर्थिक दृष्टि से वे भले ही पिछड़े रहेहों, ललितकलाओं के कौशल में वे किसी से घटकर न थे।

उत्तराखण्ड में शिल्पकारजाति पर उतने कठोर प्रतिबंध नहीं रहे जितने उस पर अन्यत्र लगेहुएथे। सम्भवतः मृत गौ का मांसभक्षण जैसी प्रथाओं के कारण उन्हें गांव में पृथक् स्थान दियाजाताथा और उनसे रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं होताथा[४]।

इस प्रदेश के कुछ भागों में, विशेषकर टोंस, भिलंगना, मन्दाकिनी, नयार, पिंडार और कालीनदी आदि की घाटियों में सवर्णजातियों में भी यत्र-तत्र कोलजाति की शारीरिक विशेषताएं मिलने से विदित होताहै, कि प्राचीनकाल में कुछ कोलवंशियों को भी, जो सम्भवतः गोमांस त्यागचुकेथे, और भूमि, शक्ति तथा धन से परिपूर्ण थे, सवर्ण-जातियों में स्थान मिलगयाथा। अन्यत्र भी सहस्त्राब्दियों के साहचर्य से[५]

पानी से धोयाथा। इससे विदित होताहै कि विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी में नाग, कोल या मुंडजाति को तिरष्कार की दृष्टि से देखाजानेलगाथा। देखिए, राहुल--बुद्धचर्या--पृ० ४४१

१- डबराल--'भोटांतिक'-पृ० ३६ २- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ५०ख

३- राहुल--गढ़वाल--पृ० ४४१-४२ ४- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ९३

५- मिलाइए, 'डूम तै जगा देई मैंस हूण को आयो'--लोकोक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कारण सवर्णजातियों में कोल-किरातजातियों के रक्तमिश्रण के प्रमाण अलभ्य नहीं हैं[1]।

किरातजाति

ऐतिहासिक आधारों[2], साहित्यिक प्रमाणों[3] एवं भाषाविज्ञान के साक्ष्यों से[4] विदित होताहै कि प्राचीनकाल में जब हिमालय के जंगलों में कोलजाति आखेट और कन्द, मूल, फल आदि से अपना निर्वाह करतीथी, पूर्व की ओर से लघुहिमालय की ढालों पर पशुचारण करतीहुई किरातजाति ने हिमालयप्रदेश में प्रवेश किया। धीरे-धीरे कोलजाति को बीहड़क्षेत्रों की ओर धकेलकर या आत्मसात् करके यह जाति असम से नेपाल, कुमांऊं, कांगड़ा, होतीहुई स्पिति, लाहुल और लद्दाख[5] तक फैलगई[6]।

प्राचीन साहित्य और स्थापत्य में इस जाति का किरात, कीर, किन्नर और भिल्ल नामों से उल्लेख मिलताहै। कीर या किन्नर सम्भवतः किरातजाति की प्राचीनतम शाखा थी। उसका सम्बन्ध मुख्यत: भागीरथी से पश्चिम के पर्वतीयक्षेत्रों से जोड़ाजाताहै[7]। भिल्ल शब्द का प्रयोग

१- 'There is association between all the three samples (Mongoloid, Khas and Dom), which is perhaps due to intermixture which must have occurred during centuries of contacts, cultural and otherwise'.--डी० एन० मजूमदार--उपरोक्त, पृ० ९०

२- रैप्सन--पृ० ३५ ३- उपाध्याय--कालिदास का भारत, भा० १, पृ०६४ ४- ग्रियर्सन--जि०१, भा०१, पृ०४१-४५ ५- उपाध्याय--उपरोक्त--पृ० ६४ ६- राहुल--' आर्य '--पृ० ८२

७- राहुल--गढ़वाल--पृ० ४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भवतः किरात और अन्य वनचरजातियों के लिए व्यापकअर्थ में होताथा[१] ।

असम, सिकिम और भूटान में तो आज भी किरातजाति का बाहुल्य है। प्राचीनकाल में मिथिला, नेपाल, जिसका पूर्वी भाग आज भी किरांती या किरातदेश कहलाताहै, कुमांऊ, जहां आज भी राजी या राजकिरात रहतेहैं[२], गढ़वाल, जहां अनेक कीर-नामयुक्त गांव मिलतेहैं[३], टिहरी, जहां भागीरथी की प्रमुख सहायक आज भी भिलंगना (भिल्लगंगा)[४] कहलातीहै, गंगोत्तरी का टंकणौरप्रदेश, जहां भागीरथी ऋग्वेदिककाल में किराती नाम से प्रसिद्ध थी[५], यमुनाघाटी, जहां कश्यपसंहिता के अनुसार किरातजाति का गढ़ था[६], तथा कांगड़ा, जहां बारहवीं शताब्दी तक बैजनाथ कीरग्राम (किरातग्राम) कहलाताथा[७], किरातजाति के प्रमुख केन्द्र थे ।

चपटी मुखाकृति, चपटा भाल, छोटी या पिचकी नाक, मूंछ-दाढ़ी की कमी, पीला या गेहुंवा रंग, अपेक्षाकृत नाटा आकार एवं हृष्टपुष्ट शरीर, ये किरातजाति की विशेषताएं हैं, जो महाहिमालय की उत्तरी और दक्षिणी ढालों के निवासियों में लद्दाख, लाहुल और कनौर से

१- यथा—'चकार वसतिं तत्र भिल्लानां निचयैर्युतः ।
तत्तदाचरणं कुर्वन्स तदा भगवानृषिः ।
रेमे सोऽपि किरातैश्च'—केदारखण्ड, २०६।२-३

२- शेरिंग--पृ० १५

३- यथा--किरखू, किरसू, खिरसू, किरमाणा, किरमोला, किरमोली, किरसाल, किरसिया, कीर आदि, राजेश्वरीप्रसाद-- गढ़वाल तथा देखिए अलमोड़ा तथा टिहरी

४- केदारखण्ड--अध्याय--२०६
डौसन--पृ० १०८

५- राहुल--'आर्य' पृ० ६

६- उ० अत्रिदेव--पृ० २०६

७- कांगड़ा--गजेटियर--पृ० ५०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकर असम तक मिलतीहैं[१]।

पूर्व की ओर असम के नागाप्रदेश से आगे बर्मा, थाई (श्याम) होतेहुए हिन्दचीन-कम्बोदिया तक इस जाति का प्रसार मिलताहै। इस किरातजाति को वर्तमान विद्वानों ने तिब्बती-बर्मी भाषा के 'मोन' शब्द और कम्बोदिया (कम्बुज) की भाषा के 'ख्मेर' शब्द को जोड़कर 'मोन-ख्मेर', नाम दियाहै[२]।

किरातजाति पशुचारक-आखेटक जाति थी[3]। वह भेड़ें पालती और काले कम्बल की गाती से शरीर ढकतीथी[४]। हाथ में धनुष-बाण लिए, कमर पर कटारी खूंसे, वह वन में पशुओं का पीछा करतीथी[५]। उसमें शौचनिवृत्ति पर जल से धोने तक की प्रथा न थी, फिर स्नान और संध्या की प्रथा कहां से होती[६]?

वह वन्यपशुओं का मांस खातीथी[७]। पर्वतीय ढालों पर झाड़ियां जलाने की अग्निजीवी (झूम या कटील) विधि से[८] वह सम्भवत: मंडुवा और तिल उगालेतीथी।

इस जाति में जातिप्रथा नहीं थी। वह न जनेऊ पहनतीथी और न पुरोहित रखतीथी। शौचाचार से अनभिज्ञ उसका जीवन म्लेच्छों-जैसा था[९]। अन्य पशुचारकजातियों के समान उसमें भी पति-पत्नी के सम्बन्ध

१- डबराल--'भौटांतिक'--पृ० ८ २- राहुल--'आर्य'--पृ० ८३; कनिंघम--आ० स० रि०, जि० १४, पृ० १२७

३- डबराल--'भोटांतिक'-- पृ० ८

४-७- मिलाइए, 'रेमे सोऽपि किरातैश्च संध्यास्नानपराङ्मुखः।
मृगमांसाशनो नित्यं कृष्णकम्बलकंचुकः ॥
धनुर्हस्तो बाणकरः कटिविन्यस्त खड्गकः।
मलसंदिग्धकायश्च...' केदारखण्ड, २०६।४-५

८- वृहत्संहिता--५।३८ ९- 'भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः'-अमरकोष २।१०।२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ढीले-ढाले होतेथे[1]।

किरातजाति के वर्तमान वंशजों के रूप-रंग, आकार-प्रकार, भाषा एवं मान्यताओं के अध्ययन से पता चलताहै कि इस जाति ने हिमालयप्रदेश में पहले से बसी कोलजाति से किसी न किसी रूप में यौनसम्बन्ध स्थापित करलियाथा[2]। आगे चलकर जब इस प्रदेश में खशजाति ने किरातजाति से यौनसम्बन्ध स्थापित किया तो उसकी सन्तान पर तलछट के रूप में कोल और किरात-विशेषताएं भी किसी न किसी मात्रा में आगईं।

हमारे उत्तरी सीमांतप्रदेश में, लद्दाख, लाहुल, चम्बा, कनौर से लेकर मलारी तक ऐसी समाधियां मिलीहैं, जिनमें शवों को घुटने मोड़कर लिटायागयाथा और कंकालों के साथ भोजन और पेय के मृतिकापात्र मिलेथे[3]। इस जाति की समाधियों में मिट्टी के पात्रों के प्रयोग से तथा अनेक स्थानों में मिलनेवाली समाधियों से निश्चित है कि यह जाति इस प्रदेश में कुछ काल तक अवश्य बसी थी।

इस जाति का इस प्रदेश में वर्तमान समय में मिलनेवाली भोटांतिक जाति से कब सम्पर्क हुआ, उसके साथ इसके कैसे सम्बन्ध थे, क्या यह जाति किरातजाति और तिब्बतियों के प्रसार से नष्ट होगई, अथवा आगन्तुक जातियों ने ही उसे पचालिया, इन प्रश्नों का निर्णय मलारी आदि स्थानों की शेष समाधियों का विधिपूर्वक अध्ययन करने से ही होसकेगा।

लघुहिमालय के पठारों पर किरातजाति के प्रसार से कई शताब्दियों पश्चात्, किन्तु भारत में आर्यजाति के आगमन से पूर्व, पश्चिम में ईरान-अफगानिस्तान के मार्गों से दरद-खश नामक पशुचारकजाति की टोलियों ने दरदिस्तान, कश्मीर होकर लघुहिमालय के पठारों पर पूर्व की ओर बढ़ना आरम्भ किया[4]।

१- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ८ २-३- देखिए, पृ० ७०
४- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० २०

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खशजाति पशुचारक-आटविक जाति थी। एशियामाइनर[1], बेबीलोन[2], ईरान और अफगानिस्तान[3] में सर्वत्र इस जाति को अपने अस्तित्व के लिए पड़ोसी प्रतिद्वन्दी जातियों से संघर्ष करनापड़ाथा।

खशजाति की प्रतिद्वन्दिता में किरातजाति टिक न सकी। खशजाति ने धीरे-धीरे उसके उत्तम चराईक्षेत्रों को छीनकर कश्मीर, कांगड़ा, हिमाचल, गढ़वाल, कुमांऊं तथा पश्चिमीनेपाल में स्थित लघु-हिमालय की ढालों पर अपना आधिपत्य जमालिया[4]।

विवश होकर किरातजाति की कुछ टोलियों को महाहिमालय की दक्षिणी ढालों तथा दुर्गम भोटांतिकघाटियों में शरण लेनीपड़ी और कुछ टोलियों को दक्षिण में भाबर और तराई के अस्वास्थ्यकर क्षेत्रों की ओर भागनापड़ा।

लुप्तहोने से पूर्व किरातजाति ने अपना रणकौशल दिखलायाथा। कांगड़ा के किरात ऋग्वेदिक आर्यों के प्रबल प्रतिद्वन्दी थे[5]। उनके नेता सम्बर ने आर्यों को लोहे के चने चबवाएथे[6]। जैनसाहित्य से पता लगताहै कि जब भरतचक्रवर्ती दिग्विजय करतेहुए कैलास की ओर बढ़ेथे तो गंगाजी के स्त्रोतप्रदेश (गढ़वाल) में उनका किरातों से घोर युद्ध हुआथा[7]।

किरातजाति के अवशेष अब मुख्यतः उत्तरी सीमांतप्रदेश और तराई में ही मिलतेहैं। इन क्षेत्रों में भी पश्चिम की अपेक्षा पूर्व की ओर किरातों की भारी जनसंख्या है।

कुमाऊं ... लद्दाख के भोटा, चम्बा के लाहुली, लाहुल के निचले भागों के निवासी, स्पिति के सिपत्याल, कुल्लू में मलाणागांव के मलाणी, सतलुज की ऊपरली घाटी के कनौर (किन्नर), नेलङ् के जाड, माणा-नीती के

१- हन्ना--पृ० ६० २- घृशमैन--पृ० ६४ ३- गिलगिट टेक्स्ट--पृ० ३१-३२ उ० मोतीचन्द्र--सार्थवाह--पृ० ४६ ४- डबराल--'उपत्यका'-पृ० ६१ ५- राहुल--'आर्य'--पृ० ८१ ६- राहुल--'आर्य'-पृ० ८२ ७- आदिपुराण, भा० २, पृ० १२७ तथा जैन--पृ० ११७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मारछा-तोलछा, मिलम के जोहारी, अ्सकोट (पिथौरागढ़) के राजी (राजकिरात)[१], पश्चिमीनेपाल के मगर और गुरङ्, मध्यनेपाल के तमङ्, नेपालउपत्यका के नेवार, पूर्वीनेपाल की तीनों किरांती जातियां, लिम्बू, याखा और राई, सिकिम के लेपचा और असम के नागा तथा कामरूप की अनेक मोन-पा जातियां, उसी महान् किरात या मोन-ख्मेर जाति की अवशेष मानीजातीहैं[२]।

किरातों की दक्षिणी शाखा थारू या भोग्ताजाति हरिद्वार से पूर्व की ओर नैनीताल, उत्तरप्रदेश और नेपाल तथा दरभंगा की तराई[३] में मिलतीहै। तिरहुत (तीरभुक्ति) को यह नाम इसी जाति के बाहुल्य से मिलाहै[४]।

पश्चिम की ओर यह जाति बोकसा और महर[५], नाम से गढ़वाल और देहरादून के भाबर में तथा घिरत, चांग और बाती[६] आदि नामों से होशियारपुर, कांगड़ा और जम्मू तक मिलतीहै[७]।

प्राचीनकाल में इस जाति का प्रसार तराई के दक्षिण में पूर्वीउत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल में व्यापकरूप से हुआथा। पंजाब-सिन्धु के मैदान में भी किरातों की टोलियां फैलीथीं, जैसा हड़प्पा की एक समाधि के कपाल से विदित होताहै[८]।

लघुहिमालय के ऊंचे तथा बीहड़ पठारों पर भी, जहां पशुचारकादि कृषक खशों ने बसना पसन्द नहीं किया, भिल्ल-किरातों की कई टोलियां बचीरहगईं और शताब्दियों तक अपनी विचित्र रीति-नीति के कारण अपना पृथक् अस्तित्व बनाएरहीं।

रुद्र, भैरव, घंटाकर्ण--जैसे पर्वतशिखरों, निर्जन वनप्रदेशों और

१- शेरिंग--पृ० १५ २- राहुल--'आर्य'--पृ० ८३ ३- राहुल--पुरातत्वनिबंधावली--पृ० ११५ ४- हौडीवाला--पृ० ४८ ५- वाल्टन--पृ० ६८ ६- डार्लिंग--पृ० २४ ७- कांगड़ा-गजेटियर--पृ० १७२ ८- पिगौट--पृ० २२६

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदीघाटियों में पशुओं के साथ भटकतेहुए, भीषण उच्चैस्वर से चिल्लाने वाले[१], क्रूर देवी-देवताओं की आरम्भिक कल्पना का श्रेय इसी जाति को है। किरातों के भयंकर रुद्र से आतंकित होकर वैदिकआर्यों को भी उसे अपने उपास्यों में स्थान देनापड़ाथा[२]। अर्जुन को शिव उत्तराखंड में किरातवेश में ही मिलेथे[३]।

शिवादि क्रूर देवताओं की उपासक भिल्ल-किरातों की ये टोलियां इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शिवांश ग्रहण करतीथीं और भैड़ा, भेल्डा आदि नामों से प्रसिद्ध थीं। इन टोलियों के स्मारक आज भी अनेक गांव सारे उत्तराखंड में मिलतेहैं[४], जिनमें से कुछ अब पुजियारगांव कहलानेलगेहैं।

खश-सागर के मध्य भिल्ल-किरातों की ये टोलियां रक्त की दृष्टि से पूर्णतः खशों में विलीन होचुकीथीं। इस शताब्दी में उन्होंने अपने लिए नए जातिनाम प्रचारित करके रहा-सहा अन्तर भी मिटाडाला।

ऐसा प्रतीत होताहै कि खशों ने भारी संख्या में किरात नारियां रखलीथीं। हिमालयप्रदेश के अनेक क्षेत्रों की नारियों, विशेषकर वृद्धा नारियों और बच्चों की मुखाकृतियों से तुरन्त प्रकट होजाताहै कि उनमें किरातरक्त की कुछ विशेषताएं अब तक चलीआतीहैं[५]।

खशजाति के सम्पर्क में रहकर अल्पसंख्यक किरातों ने धीरे-धीरे अपनी मूलभाषा भुलाकर उनकी भाषा अपनाली। उत्तरी क्षेत्रों में निरन्तर तिब्बतियों के संसर्ग में रहने से वे तिब्बती या मिश्र

१- वाजसनेयीसंहिता, शतरुद्रियसूक्त १६।१।६६

२- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन--पृ० १६७ ३- वपनर्द--ग्र० ४२

४- यथा, गढ़वाल में -- भैड़ियाणा, भैड़ासी, भैड़गांव, भैड़ागांव, भैड़खोली, भिल्डा, भेल्डा, भिल्डियाणा, भेल्डाणा, भिल्डुंगा आदि, राजेश्वरीप्रसाद--'गढ़वाल'

५-देखिए, जोशी-पृ०१७-१६. लायल-कांगड़ा सेटलमेंट रि०, पृ० १५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिब्बतीभाषा का प्रयोग करनेलगे।

एशिया की मध्यवर्ती पर्वतमालाओं और स्टेपप्रदेश में मंगोलमुख मुद्रा हूणों की देन है[1]। ह्वांगहो के उद्‌गमप्रदेश से जब मंगोलमुख-मुद्रा वाली तिब्बती-चीनीजाति दक्षिण में उतरकर असम की पहाड़ियों से पश्चिम की ओर बढ़ी तो उसे यहां पहले से बसी किरातजाति मिली[2]। आठवीं शताब्दी से तिब्बती मंगोल भी हिमालय के इस ओर बढ़कर किरातों में मिलतेरहे[3] और आज भी मिलतेजारहेहैं।

किरातजाति चीनी-तिब्बती-मंगोल जाति से दूर का सम्बन्ध रखतीहै, जो लगभग उसीप्रकार का है जैसा भारतीय और यूरोपीय आर्यजाति में मानाजाताहै[4]।

किरात (मोन-ख्मेर) नर-नारियों के मुखों पर मंगोलायित मुखमुद्रा होतीहै। इससे भारत-तिब्बत-सीमान्त पर बचरहे किरातों को भी कितने ही विद्वान तिब्बती समझबैठतेहैं। साधारण व्यक्तियों से तो ऐसी भूल होजाना स्वाभाविक है।

वेद, रामायण, महाभारत, निरुक्त, कालिदास, बराहमिहिर, बाण और ताल्मी को हिमालय के किरातों का पता था। रामायण में तो समुद्री किरातों (हिन्द-चीनियों) तक का उल्लेख है। इससे निश्चित है कि मंगोल-मुखमुद्रा वाली किरातजाति हिमालयप्रदेश में कम से कम पिछले तीन सहस्र वर्षों से है।

तिब्बती मंगोल विक्रम की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पश्चिमी मानसरोवरप्रदेश और नेपाल की धुर उत्तरी ढालों की ओर बढ़े। उनके आगमन से पूर्व जो मंगोल-मुखमुद्रा वाली जाति हिमालय में बसीथी, उसे वे मोन या मोन-पा कहनेलगे।

१- राहुल--मध्यएशिया का इतिहास, भाग १, पृ० ७६

२- ग्रियर्सन--जि० १, खं० १, पृ० ४१

३- शेरिंग--पृ० २०४-५

४- राहुल--'आर्य'--पृ० ८२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमालयप्रदेश में इस मोन या मोन-पा जाति के वंशज, चाहे उन्होंने परिस्थितिवश तिब्बती भाषा, तिब्बती रीतिनीतियां और तिब्बत में प्रचलित लामाधर्म की विशेषताएं भी अपनालीहों, अवश्य किरातवंशी और भारतीय हैं।

लद्दाख, जन्सकर और रुपशु के जिन निवासियों का कालिदास ने किरातनाम से उल्लेख कियाहै[1], वे अवश्य तिब्बती मंगोलों से पूर्ववर्ती हैं। इस लम्बी अवधि में उनकी स्थिति में अनेक उलटफेर हुए जिससे उनमें कोल, खश एवं तिब्बतीरक्त का पर्याप्त मिश्रण होगया।

तिब्बत में सरकारी उत्पीड़न और अन्य कारणों से अनेक तिब्बती निरन्तर भोटांतिक घाटियों में आकर धीरे-धीरे भोटांतिकों में मिलतेरहे[2]। खश-दास-दासियों का रक्त भी, जिनका वे व्यापार करतेथे[3] उनमें मिलतागया।

दसवीं शताब्दी से हमारे उत्तरी सीमान्त के लिए, जो मानसरोवर प्रदेश के दक्षिण में लद्दाख से कामरूप (उ०पू०सी०) तक विस्तृत है, 'भोट' (तिब्बत) के[4] सीमान्त से मिला होने के कारण 'भोटांत' नाम का प्रयोग होनेलगा[5]। और इस उत्तरी सीमान्त के किरातों के लिए भुट्ट, भोटा, भोटांतिक—जैसे नामों का प्रयोग आरम्भ हुआ। दसवीं शताब्दी में काशी के किसी कवि—सम्भवत: विद्याधर ने नेपाल के नेवारों के साथ

१- उपाध्याय--भाग १, पृ० ६४

२- शेरिंग--पृ० २०४-५ ३- विलियम्स--पृ० ११०

४- बोद् (तिब्बत) से भोट की व्युत्पत्ति के लिए देखिए, ग्रियर्सन, जि० ३, खंड १, पृ० १४

५- काश्मीरन्तु समारभ्य कामरूपाच्च पश्चिमे ।
भोटान्तदेशो देवेशि ! मानसेशाच्च दक्षिणे ॥
—शक्तिसंगमतंत्र ३।७।३३; उ० सरकार--पृ० ७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोटांतों का उल्लेख कियाहै[१]।

ग्यारहवीं शताब्दी में क्षीरस्वामी ने दर्दरों के साथ भुट्टों को भी म्लेच्छों में गिनाहै[२]। इसी शताब्दी में कल्हण ने तिब्बत के भूतों और लद्दाख के भुट्टों का[३], तथा अलबरूनी ने लद्दाख के भूटवारी दस्युओं और भूटेसर (भूटान) का उल्लेख कियाहै[४]।

भोटांतिकघाटियों के निवासी तो किरातवंशी हैं ही, साथ ही महाहिमालय की दक्षिणी ढालों के कुछ खड्वालों में भी किरातजाति के वंशज मिलसकतेहैं। इसी प्रकार लघुहिमालय के पठारों पर यत्र-तत्र बचीहुई किरात-टोलियों को, जो आजकल खशसमाज में अपना स्थान बनाचुकीहैं, उनकी मुखमुद्रा के कारण पहचानना कठिन नहीं है[५]।

दुर्गम सीमांतप्रदेश में बसकर भी किरातजाति के इन वंशजों ने उत्तराखण्ड और भारत की समृद्धि के निर्माण में जो महत्वपूर्ण योग दियाथा उसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

खशजाति

खशजाति, जिसने अपने प्रसार से किरातजाति को दुर्गम प्रदेशों में शरण लेने के लिए वाध्य कियाथा, लम्बी मुखाकृति, लम्बी और सीधी नाक, मूंछ-दाढ़ी की प्रचुरता, गोरा या गेहुँवा रंग, अपेक्षाकृत लम्बा आकार और हृष्टपुष्ट शरीर के कारण भिल्ल-किरातजाति से भिन्न और आर्य-शक-जैसी गोरी जातियों के समान है।

१- 'जेहि किज्जिअ घाला, जिण्णु णिवाला, भोट्टन्ता पिट्टन्त चले।
भंजाबिअ चीणा, दप्पहि हीणा, लोहावल हाकंद पले॥
......काशी राआ जखण चले'। उ० राहुल--पुरातत्वनिबंधावली पृ० १६६
२- 'म्लेच्छजातीया:--दरदभुट्टभेदादयश्चांडालभेदा: क्षीरस्वामी--पृ० २२९
३- देखिए, जैन--पृ० २९
४- ईलियट ऐण्ड डौसन--पृ० ९०; हौडीवाला--पृ० ५५
५- जोशी--पृ० १७-१८; लायल--कांगड़ा सेटलमेंट रिपोर्ट, पृ० १५०

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना प्राचीन साहित्यभंडार न होने के कारण इस जाति को वह ख्याति प्राप्त न होसकी, जो आर्यजाति को उसके प्राचीन साहित्य की चकाचौंध से इतिहासकारों ने देडाली। फलत: खशजाति के वंशज भी आर्य-दादा के गुणगान से ऐसे प्रभावित होगए कि यूरोप के गौरांगों के समान अपने को भी उसी का वंशज बतलाना अपने लिए गौरव की बात समझनेलगे।

ऐतिहासिक खोजों ने यूरोप के वर्तमान निवासियों के पूर्वजों और भारतीय आर्यों के पूर्वजों की एकता के सिद्धान्त को भ्रमपूर्ण सिद्ध करदियाहै[१], और खशजाति के रोचक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालाहै।

खशजाति ने एशिया, यूरोप और उत्तरीअफ्रीका में विशाल साम्राज्यों की स्थापना की थी। उसकी गतिविधियों ने प्रशान्तमहासागर से लेकर अन्धमहासागर तक बसी जातियों में खलबली मचादीथी। इस जाति ने आज से छै सहस्राब्दियां पूर्व ही, जब कि आर्य आदि जातियां पाषाणयुगीन संस्कृति से आगे न बढ़सकीथीं, कृषि और पशुचारण में दक्षता प्राप्त करलीथी, और वह कांस्ययुगीन संस्कृति को भलीप्रकार अपनाचुकीथी[१]।

आर्यजाति के स्मारकस्वरूप आज केवल ईरान, आर्यावर्त, आर्यपुत्र जैसे थोड़े-से शब्द बचसकेहैं, जब कि खशजाति के ऐसे सैकड़ों स्मारक स्थान काकेशश, कशपियन, कजबिन, कशगर, कश्मीर, कश्तवार,

---

२- 'It is now generally agreed that there never was any Aryan Race, the common progenitor of all the subsequent races who spoke and speak the Indo-Aryan and Indo-European Languages.'--हाना--पृ० १०; देखिए, कून--पृ० २२३

२- कून--पृ० २२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांगड़ा, हिमाचल, कुमाऊं से लेकर नेपाल तक फैलेहैं, जिनके नाम के साथ, खशजाति की क्रीड़ाभूमि होने के कारण, खश, कप, कफ, आदि शब्द जुड़ेहैं[1]।

खशजाति का प्राचीनतम उल्लेख विक्रमपूर्व चौबीसवीं शती में पुजुर शिशुनाक युग के अभिलेखों में मिलताहै[2]। विक्रमपूर्व तीसरी सहस्राब्दी तक इस जाति को विशेष महत्व नहीं मिलसका[3]। स्ट्रैवो ने इस जाति का कस्सेआई, कस्साइत और कस्सी नामों से उल्लेख कियाहै। असीरिया-निवासी भी इस जाति को कस्सी नाम से जानतेथे[4]।

स्ट्रैवो ने कस्सीजाति का मूलस्थान तेहरान के उत्तर में कशपियन सागर के तट पर बतलायाहै[5]। कजविननगर और कशपियनसागर—दोनों में कश-कस्सी जाति का नाम जुड़ाहै[6]। मेदजाति के अधिकार से पूर्व हमदान का नाम अक्केसिया था, जिसे असीरियन लोग करकस्सी (कस्सीनगर) कहतेथे[7]। इस क्षेत्र में टिन मिलने के कारण यूनानीभाषा

१- यथा, गढ़वाल में—कशखाल, कचुंडा, कसुंडा, कशबाड़ी, कशली, कशलीनगर, कशमोली, कशलोड़ी, कशाणी, कश्याली, केष्टा, कपोली, कपरोली कपेटी, कफोला, कफल्डी, कफोलगांव, आदि, राजेश्वरीप्रसाद--'गढ़वाल'

यथा अलमोड़ा में—कशण, कशाणी, कश्पारी, कशौली, केष्टा, कफतारा, कफतोला, कफोली, कफलता, खशपरजा, खशोती, खशोली आदि, राजेश्वरीप्रसाद--'अलमोड़ा'

यथा टिहरी में—कश, कशलो, कशमोली, कशराल, कशूर, कशखाल-गांव, कशमोला, कफना, कफल्ड, कफोलगांव, खशराड़ा, खशौटी, मश (कश) मोला, तुश (कुश) कंडी, लश (कश) मोली, नशो (कशो) गी; शश (कश) माणा, जस (कश) पुर, ल (क) श्यालगांव, खशपट्टी आदि, राजेश्वरीप्रसाद--'टिहरी'

२-७- घृशमैन--पृ० ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में टिन को कस्सपोई (कस्सीजाति के देश से प्राप्त) कहाजाताथा[१]।

पहले अनुमान कियाजाताथा कि खशजाति आर्यजाति की ही एक प्राचीन शाखा थी, जो आर्यजाति के भारत में आगमन से शतियों पूर्व भारत में प्रविष्ट हुईथी[२]। किन्तु अब खशजाति को आर्यजाति से भिन्न एक वर्णसंकरजाति मानाजाताहै जिसकी उत्पत्ति का श्रेय काकेशशप्रदेश, पश्चिमी एशिया एवं अरब में फैली मेलानकोईजाति को दियाजाताहै[3]।

कस्सीजाति पर्वतीय जाति थी। कभी-कभी यह मैदानों में भी उतरआई किन्तु इसने अपना प्रसारक्षेत्र मुख्यत: पुरानी दुनिया की पर्वतमालाओं पर ही बनाएरखा[४]।

पूर्वपाषाणकाल के अन्त में मूलकस्सीजाति की एक शाखा, जो काकेशश-अनातोलिया से पश्चिम की ओर चलकर मध्ययूरोप में प्रविष्ट हुईथी, यूरोप के इतिहास में पीली-गोरी-आयतकपाल (एलोह्वाइट-ब्रौडहेड्स) जाति के नाम से प्रसिद्ध है[५]। यूरोप में नवपाषाणकाल में मृतकों को जलाने और पितरों की स्मृति में वृताकार समाधियां (राउंड बैरोज) बनाने की प्रथावाली इसी जाति का विभिन्न विद्वानों ने वृत्तकपाल, लघुकपाल, वर्गकपाल, अलपाइन, अनातोलियन और आर्मेनोइद आदि नामों से उल्लेख कियाहै[६]।

यूरोप की वर्तमान प्रसो-जर्मनजाति को, जिसकी हलचलों से बार-बार धरती कम्पित होचुकीहै, तथा दूर-दूर तक बिखरीहुई स्लाविकजाति को कस्सीजाति की वंशज मानाजाताहै[७]।

कस्सीजाति की दूसरी शाखा एशियामाइनर में तारसपर्वतमाला से सीरिया और फिलस्तीन होकर दक्षिण की ओर अफरीका में प्रविष्टहुई, जहां उसने नील के बड़े मोड़ के पास वादीहलफेह तथा आबूहमांद

१- घूशमैन--पृ० ६५ २- ओकले--पृ० ८७; जोशी--पृ० १६

३- हाना--पृ० ३४ ४- हाना--पृ० ३५ ५-७- हाना--पृ० ४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बीच कुशसाम्राज्य की स्थापना कीथी[१]।

इस जाति की तीसरी शाखा तुर्की, ईरान और ईराक के मध्यवर्ती पर्वतीय भाग करदूजी में जाबसी, जहां वह आज भी कुर्दजाति के रूप में उपरोक्त तीनों देशों के लिए नित्य नई उलझनें पैदाकरतीहै[२]।

इसी शृंखला पर आगे बढ़कर यह जाति नम्-मा या भेड़ियों के देश में, जो हित्तीभाषा में सि-नम कहलाताथा और जो आगे चलकर ए-लाम या ए-इ-लाम (अति उच्च प्रदेश) तथा कुर्दुनिया के नामों से विख्यात हुआ, जाबसी[3]।

जाग्रौसपर्वतमाला से इस जाति की एक शाखा फारिस की खाड़ी के पास जाबसी, जहां वह सुमेर में करदा, कलदा, कशदा आदि नामों से, जिनसे चालदिया बनाहै, प्रसिद्ध हुई[४]।

जाग्रौस से कस्सी आयुधजीवी निरन्तर बेबीलोनिया के समृद्ध नगरों और गांवों पर छापे मारते और लूटमार मचातेथे[५]। सम्राट हम्मूरवि के पुत्र के अभिलेखों से विदित होताहै कि उसने कस्सी आयुधजीवियों के आक्रमणों को विफल करके उन्हें खदेड़दियाथा[६]। तब से लगभग १५० वर्षों तक यह पर्वतीय जाति कृषि-मजदूरों के रूप में बेबीलोनिया में शान्तिपूर्वक प्रविष्ट होतीरही[७]।

नगरों और गांवों में भारी संख्या में कस्सी मजूरों के फैलजाने के पश्चात् विक्रमपूर्व अठारहवीं शती में इस जाति ने विशाल दल-बादल लेकर बेबीलोनिया पर अधिकार करलिया और उस पर ५७६ वर्षों तक, विक्रमपूर्व १६९६ से विक्रमपूर्व ११२० तक, निरंकुश शासन किया[८]। इस जाति ने बेबीलोनिया में ऐसा आतंक जमायाथा कि उसे वीरता और साहस का प्रतीक मानाजाताथा[९]।

बेबीलोन में कस्सीसाम्राज्य का पतन होजाने पर भी काकेशश

१-४- हाना- पृ० ४२ ५-८- घृशमैन--पृ० ६४ ९- मिलाइए, 'बांको खश्या'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(कब्बकश) तथा अनातोलियाप्रदेश में इस जाति का एकाधिकार चिरकाल तक बनारहा[1]। कब्ब-कश, कप्पोडोशिया, केफाशिऊ आज भी खशवाचक, कश, कब्ब, कप्प, कफ, नामों से जुड़े हैं[2]। इस पठार की खत्ती, खेता या हित्तीजाति (हेत की सन्तान) इसी जाति की वंशज मानीजातीहै[3]।

इस जाति की एक अन्य शाखा ने अति प्राचीनकाल में ही, पूर्व की ओर चलकर ए-इ-लाम तथा अ-इ-रान (वर्तमान ईरान) पर अधिकार करलियाथा। तूरान में यह जाति तूरानियों से घुलमिलगई और पर्वतों में बसीहोने से तोख या तोखारी (तुषारी = हिमश्रेणियों के मानव) कहलाई[4]।

मध्यएशिया में कशगर (खशगिरि), कूचा (कुशा) आदि स्थानों तथा अनेक नदी-पर्वतों के नाम उनसे खशजाति का प्राचीन सम्बन्ध सुचित करतेहैं[5]।

खशजाति आर्यजाति के भारत में आगमन से अनेक शतियों पूर्व प्रविष्ट हुई और धीरे-धीरे कश्मीर से नेपाल तक सारे मध्यहिमालय पर तथा भारत के उत्तरी मैदान और दक्षिण के पठार पर छागई। भारत में पहले से बसी निषादजाति के साथ घुलमिलकर इस जाति ने अनेक वर्णसंकर जातियों को जन्म देदिया[6]। भारत के प्राचीन साहित्य में यह जाति तुषार, दरद, कश, कुश, खोसा, खोजा, दस्यु, (अरमानियन तथा अवस्था में दह्यु) तथा कुषाण आदि नामों से प्रसिद्ध है[7]।

विद्वानों का अनुमान है कि अशोक के समय जिस यक्षजाति का वर्णन मिलताहै, वह खशजाति ही थी[8]। यक्ष के दो रूप बने जख और यकस। इसी यकस से कस या खश बनगया। यदि यह धारणा सत्य

१- ३- हाना--पृ० ४१ ४- हाना--पृ० ४३ ५- विलफोर्ड--लेख, एशियाटिक रिसर्चेज--जि० ६, पृ० ४५५ ६-७- हाना--पृ० ४४
८- एटकिनसन-उ० पांडे--कुमाऊं का इतिहास, पृ० ५३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं तो उत्तराखण्ड के अगणित गांव जिन पर 'जख' चिपका है, खशजाति के स्मारक हैं[१]।

महाभारत में कुलिन्दननरेश सुबाहु के राज्य गढ़वाल में मोटे-तकड़े तुषार और दरदों का वर्णन है[३]। तुषारनारियों की प्राचीन अंगिया को आज भी जौनसार-जौनपुर की नारियां तथा मध्यएशिया में कूचा की नारियां अपने जातीयवस्त्र के रूप में धारण करतीहैं[४]।

विष्णुपुराण[५] तथा भीष्मपर्व में[६] खशिरजनपद का, जिसे खशजाति से सम्बन्धित मानाजाताहै, एवं द्रोणपर्व में खशदेश का[७], जिसे गढ़वाल कुमांऊं का सूचक मानाजाताहै[८], उल्लेख है।

मारकंडेयपुराण में खशजाति का नीहार तथा गुरगण (नेपाल की नेवार एवं गुरुङ्) जातियों के साथ वर्णन है[९]। भागवतपुराण में विष्णुभक्ति से खशों के उद्धार का[१०] तथा वायुपुराण में वशिष्ठ द्वारा सगर के हाथ से खशों की रक्षा का वर्णन मिलताहै।

वराहमिहिर ने कुलूत, तंगण जौर कश्मीरवासियों के साथ खशजाति का अनेक स्थानों पर उल्लेख कियाहै[११]। राजतरंगिणी के अनुसार खशजाति कश्तवार से वितस्ताघाटी तक फैलीथी[१२], और उसकी स्वतंत्र ठकुराइयां भी थीं। खश कश्मीरराज्य में उच्च पदों पर नियुक्त

१- यथा, गढ़वाल में—जखनी, जखणिया, जखेर, जखनरी, जखोला, जखोली, जखमल, जखोलू, जखेट, जखेटी, जखमोल, जखमोलगांव, जाख, जाखी, जाखंडी, जाखणी, जैखोली, जैखंडी, जुखंडी आदि, राजेश्वरीप्रसाद--'गढ़वाल'

२- वनपर्व--१७६।१ ३- राहुल--पृ० ६४-६५ ४- विष्णुपुराण--(सं० विलसन) पृ० १६५, टि० १५७ ५- भीष्मपर्व--६।६८

६- द्रोणपर्व--१२१।४२ ७- जोशी--पृ० १२ ८- मारकंडेय--(सं० परजिटर)--पृ० ३४५ ९- भागवत--२।४।१८

१०- बराहमिहिर--१०।१२; १४।२९-३१ ११- कल्हण--१।३१७ आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होतेथे और राजनीतिक दावपेच में सक्रिय भागलेतेथे।

ललितविस्तर के अनुसार खशलिपि का प्रचार दरदिस्तान से लेकर सिन्धु की उपरली घाटी में चीन (तिब्बत) तक था[१]। ज्ञानगुप्त ने (५८९ ई० से ६१८ ई०) खशजाति का सम्बन्ध कशगर (खशगिरि) से जोड़ा है[२]।

वर्तमान समय में केवल हिमालयप्रदेश के निवासी ही खशजाति से सम्बन्धित मानेजातेहैं किन्तु प्राचीनकाल में गंगाजी के मैदान और दक्षिण के पठार पर भी दूर-दूर तक इस जाति का प्रसार हुआथा[३]। द्रोणपर्व[४] तथा उद्योगपर्व[५] से विदित होताहै कि महाभारत में दुर्योधन की सहायता के लिए खश-सेनाएं अनेक दिशाओं से आईथीं। मारकंडेयपुराण के अनुसार खशजाति भारत के पर्वतीयक्षेत्र; दक्षिण, पूर्व-उत्तर, तथा पूर्व में मगध तक बसीथी[६]।

हरिवंश से विदित होताहै कि जब परशुराम ने क्षत्रियों का विनाश आरम्भ किया तो मैदानी भागों में बसेहुए अनेक खश भागकर पर्वतों में जा छिपे[७]। एटकिनसन का अनुमान है कि जब भारत के उत्तरी मैदान में आर्यजाति का प्रसार हुआ तो मैदानों में बसी खशजाति को हिमालय और विन्ध्याचल के पर्वतीय क्षेत्रों में शरणलेनीपड़ी। विंध्याचल और बीकानेर में अब तक खशजाति के लोग मिलतेहैं जो अब मुसलमान बनगएहैं और खोसा कहलातेहैं[८]।

सिन्ध-गजेटियर से विदित होता है कि खोसा (खश) जाति के लोग सिन्ध, थारपरकर की जंगली बस्तियों तथा बिलोचिस्तान में बसेहैं। बक्खर तथा शिकारपुर में उनकी बड़ी संख्या है, जो अब मुसलमान

१-२- मोतीचन्द्र--'स्टडीज'--पृ० ७५-७६ ३- हाना--पृ० ४४
४- द्रोणपर्व--१२११४३ ५- उद्योगपर्व--१६०।१०३ ६- सं० मारकंडेय पुराण--पृ० ११५-१६ ७- उ० पांडे--पृ० ५३६
८- उ० पांडे--पृ० ५३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनगईहै[1] ।

खशजाति की दरदभाषा का प्रभाव सारे पंजाब में, जहां तक पंजाबी और लहंडी भाषाएं बोलीजातीहैं, मिलताहै। सारे हिमालयप्रदेश में कश्मीर से नेपाल तक, आज भी काशू, कश्कर, कश्तवारी, खशप्रजा तथा खशकुरा आदि खशजाति से संबंधित बोलियां बोलीजातीहैं। जिससे मैदान तथा हिमालय में खशजाति के व्यापक प्रसार की पुष्टि होतीहै।

हम आगे देखेंगे कि खशजाति की विचित्र प्रथाएं जो आज केवल हिमालय के खशों में हो मिलतीहैं, किन्तु जो किसी समय उत्तरभारत में व्यापकरूप से फैलीथीं, इसी तथ्य की पुष्टि करतीहैं। महाभारत में वर्णित पांडवों की रीतिनीतियां भी इसी तथ्य की ओर संकेत करतीहैं।

पूर्व की ओर काशी, कुश, कुशस्थल, कुशीनगर आदि का सम्बन्ध सम्भवत: प्राचीन खश-कश-कुश जाति से ही था। पठार पर नर्मदा की घाटी में नवदाटोली की खुदाई में प्राप्त अवशेषों से सिद्ध होगयाहै कि प्राचीनकाल में इस प्रदेश का सम्बन्ध खश-कश कुश जाति से था[2]।

उत्तरभारत की वर्तमान भाषाओं में ऐसे शब्दों की भरमार है, जिनका सम्बन्ध संस्कृत, कोल और द्रविड़भाषाओं से नहीं जोड़सकते[3]। इस तथा अन्य प्रमाणों से काल्डवेल का अनुमान है कि आर्यजाति के आगमन से पूर्व उत्तरभारत पर किसी शिथियनजाति ने, जो कोलजाति से भिन्न थी, आकर अधिकार जमालियाथा। और उसके प्रसार से द्रविड़जाति को दक्षिण की ओर भागनापड़ाथा[4]।

१- उ० पांडे--कुमाऊं का इतिहास, पृ० ५३७ २- मोतीचन्द्र--पत्र, उ० डबराल--उत्तराखण्ड-यात्रा-दर्शन पर सम्मति (२)

३- ट्रम्प--ग्रामर आव सिंधी लैंग्वेज, उ० काल्डवेल--पृ० ६०; तथा काल्डवेल--पृ० ५८

४- 'Those pre-Aryan Scythians, by whom I have been supposing the Dravedians to have been

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के अध्ययन से हाना की धारणा है कि आर्यजाति के आगमन से पूर्व खशजाति सारे उत्तरीभारत पर फैलीथी और उसने भारत की निषादजाति से घुलमिलकर अनेक वर्णसंकर जातियों को जन्म दियाथा[1]।

आर्यजाति के आगमन से पूर्व भारत में खशजाति का आगमन[2], तथा उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार पूर्व में काशी और दक्षिण में नर्मदा तक उस जाति के प्रसार की गाथा के आधार पर अनुमान लगताहै कि खशजाति भी उस जाति या उन जातियों में सम्मिलित थी, जिसके या जिनके द्वारा द्रविड़जाति उत्तरभारत से अपदस्थ कीगई और कालान्तर में जिन्हें आर्यजाति से भिड़नापड़ा।

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर विलफोर्ड, एटकिनसन, हाना आदि विद्वानों ने खशजाति के प्रसार के जिन तथ्यों पर प्रकाश डालाहै उनकी पुष्टि पुरातत्व एवं नृवंशशास्त्र के द्वारा भी होगईहै।

प्राचीन जरमनजाति के उपलब्ध कपालों तथा पंजाब और पश्चिमोत्तरप्रदेश के उत्तरी पर्वतीय भागों के वर्तमान निवासियों के कपालों के वैज्ञानिक अध्ययन से भी सिद्ध होगयाहै कि धरती के इन सुदूर छोरों पर बसीहुई ये जातियां एक ही वंश की हैं[3]।

---

expelled from the northern provinces, are not to be confounded with the Kols, Santals, Bhils, Doms and other aboriginal tribes of the north.'—काल्डवेल--पृ० १०७

१- देखिए, जोशी--पृ० २१ २- हाना--पृ० ४४

३- 'Unpublished series of living peoples from the mountainous regions of the Northern Panjab and North West Frontier Province which will be published by Dr. Gordon T.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धुर पश्चिम में काबुल के कटोरों, कश्कर के खोहों से लेकर पश्चिमी नेपाल के डोटियाल तथा सल्याणवासियों तक—लघुहिमालय के पठारों पर बसी नब्बे प्रतिशत जनता, जो अब हिन्दु, बौद्ध और इस्लाम धर्मों की अनुयायी बनचुकीहै, खशजाति की वंशज है[१]।

हिन्दुकुश और कनान की ढालों एवं घाटियों में बसेहुए शिनाकी, चिलासी, कस्तूरी, हुँजा, नागर, चित्राली तथा काफिर[२], सिन्ध और स्वात के मध्यवर्ती कोहिस्तान के निवासी, कशकर[३], कुनार की घाटी तथा आगे बाजौर और दीर के निवासी, जो आज भी कशकर (खशों की बोली) और दारदुई (दरदों की बोली) बोलतेहैं[४], काफिरिस्तान के काफिर[५], दरवाज और निकट की पर्वतश्रेणियों के पशुचारक गालचा[६], कशमीर को वर्तमान नाम देनेवाले काशू[७], जम्मू-कांगड़ा के डोगरा, नमक की पहाड़ियों के पदतल में बसे कुक्कुर खोहकर-खोकर[८], सभी उसी विशाल खशजाति के वंशज हैं। कालान्तर में उनमें अन्य रक्त के मिश्रण से यत्र-तत्र स्थानीय विशेषताएं आगईहैं।

Bowles, confirm closely to the metrical and morphological specifications of this type. Further more, it is very similar both metrically and morphologically to the early Germanic cranial group, and this virtual identity draws together the two geographically extremes of an originally united family.'-कून--पृ० २०१, नोट १- एटकिनसन--जि० २, पृ० ४४०-४१ २- देखिए, लीटनर--भाग २, पृ० ४५-४८ ३-४- एटकिनसन--जि० १, पृ० ३५ ५-६- एटकिनसन--जि० १, पृ० ३६ ७-८- देखिए, सभापर्व--५२।१३-१७ में पश्चिमी हिमालय के दरद आदि आयुधजीवियों की सूची; तथा ग्रियर्सन--जि० १, खं० १, पृ० १०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांगड़ा, कुल्लू ,सुराज[१], मंडी[२], सुकेत[३], चम्बा, हिमाचलप्रदेश[४] में बसे कनेत-कुनेत, जो प्राचीन कुलिन्द-कुणिन्दजाति के वंशज हैं[५], आज खशिया और राव दो वर्गों में बंटे हैं[६]। हिमालय और कांगड़ा के खशराजपूत ठाकुर और राठी नामक दो वर्गों में[७], उन्हीं क्षेत्रों के खशब्राह्मण शासनी और धड़ेवार वर्गों में[८], जौनसार-जौनपुर के खशठाकुर, ब्राह्मण और रजपूत वर्गों में[९], उत्तराखण्ड के पठारप्रदेश के खश, राठी, और पबीला वर्गों में तथा नेपाल के खश छेतरी, ठाकुर और पुरोहित (उपाध्याय) आदि वर्गों में बंटे हैं।

साइथजाति का सबसे प्राचीन उल्लेख विक्रमपूर्व ७०० के आसपास मिलताहै। तब यह जाति कालेसागर के उत्तर में देखीगईथी। उस समय इस जाति से पूर्व की ओर सरमासियनजाति, और उससे भी पूर्व की ओर शकजाति रहतीथी[१०]। शकजाति के अन्तर्गत वे सब पशुचारक जातियां गिनीजातीथीं जो ईरान के पठार के उत्तर में तथा दोनों तुर्किस्तानों में घूमती-फिरतीथीं[११]।

साइथ या सिथियनजाति के प्राचीन चित्रों और ईरान में मिले शक जाति के चित्रों में पूर्ण समानता मिलने से दोनों जातियां एक ही वर्ग

१- कांगड़ा-गजेटियर--पृ० १६७-६८ २- मंडी--गजेटियर--पृ० २८
३- सुकेत--गजेटियर--पृ० २० ४- देखिए, निम्न गजेटियर--भज्जी-पृ० ३; बघाल--पृ० ३; धामी--पृ०१; नालागढ़--पृ०८; ठ्योग-पृ०२; रवांईगढ़--पृ०३; खनेटी--पृ० ४; तथा इबेटसन-पंजाब एथनोग्राफी--पृ० २६०; सेंसस रिपोर्ट १८११, भाग ३, पृ० १३३
५- कनिंघम--जि० १४, पृ० १२६ ६- इबेटसन--सेंसस रिपोर्ट--१८८१, भाग १, पृ० २६८; भाग ३, पृ० १३४ ७- कांगड़ा--गजेटियर--पृ० १६७-६८ ८- बघाल--गजेटियर--पृ० ४-६
९- मजूमदार--रूरल प्रोफाइल्स--पृ० ३३ १०- कून--पृ० १९६
११- कून--पृ० १९६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की मानीजाती हैं[1]। ये जातियां गोरी और सुन्दर थीं तथा मंगोलजातियों से सर्वथा भिन्न थीं[2]। उनकी घनी दाढ़ी और लम्बे केश होतेथे। उनकी लम्बी और प्राय: ऊपर उठी नाक होतीथी। उनकी भौहें ऊंची और आंखें गहरी होतीथीं[3]। शक लोग पूरे बांह की जाकट, ढीली किन्तु एड़ी के पास तंग सलवार और ऊंची नुकीली टोपियां पहनतेथे[4]।

वे अश्वारोही, पशुचारक एवं आयुधजीवी थे, और प्राय: अपनी कमर में खड्ग खूंसे रहतेथे। वे चमड़े के ऊंचे जूते पहनते और सलवार का निचला शिरा जूतों के अन्दर खूंसे रखतेथे। एड़ी और घुटने के बीच वे पैरों पर सलवार के ऊपर चमड़े की पट्टी बांधतेथे[5]।

इतिहास से पता चलताहै कि विक्रमपूर्व पहली शती में शक बाल्हीक से शकस्थान (ईरान का पूर्वी भाग) होकर तक्षशिला, मथुरा और उज्जयिनी तक पहुँचेथे[6]। किन्तु अष्टाध्यायी से पता चलताहै कि पाणिनि (विक्रमपूर्व पांचवीं शती) से भी बहुत पहले किसी समय शक-जाति का प्रसार उत्तरपश्चिमी भारत में हुआथा[7]।

विक्रमपूर्व दूसरी शती से पहले ही किसी समय हमारे उत्तरी सीमांतप्रदेश में कोई आर्येतर जाति आबसीथी, जिसको पतंजलि ने शक-यवन बतायाहै। इसलिए उन्होंने शक, यवन और गब्दिक (चम्बा में गद्दीजाति का मूलस्थान गद्देरन), शौर्य (कुमांऊ का सौंकी घाटा) तथा क्रौंच (माणाघाटा)[8] को आर्यावर्त से बाहर मानाथा[9]।

गढ़वाल-कुमांऊ से प्राप्त कुछ प्राचीन लेखों के आधार पर कनिंघम का अनुमान है कि मौर्यवंश का अन्तिम नरेश राजपाल विक्रमपूर्व दूसरी

१- कून--पृ० १९७ २- कून--पृ० १९८ ३-४- कून- पृ० १९९
५- कून--पृ० १९८, चित्र ६- वासुदेव उपाध्याय--भाग १, पृ० १७
७- अग्रवाल--पृ० ८२ ८- डबराल--उ०यात्रा-दर्शन, पृ० २३; शल्यपर्व--४६।८४ ९- अग्रवाल--पृ० ४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शती में उत्तराखंड के राजा शकादित्य द्वारा मारागयाथा[१]। इससे अनुमान लगताहै कि विक्रमपूर्व दूसरी-तीसरी शती से पहले किसी समय हिमालयप्रदेश, उत्तराखण्ड में, कोई आर्येतर, सम्भवतः, शकजाति आबसीथी।

शकजाति पशुचारक एवं अश्वपालक जाति थी। उसमें प्राचीन मिश्र के निवासियों के समान अपने मृतकों की समाधि में उनकी प्रिय वस्तुओं को रखने की प्रथा थी[२]।

लद्दाख[३], लाहुल[४], चम्बा[५], और कनौर में[६], लिप्पा, स्पू से आगे तिब्बती सीमांत पर स्थित भारत के अन्तिम गांव नमग्या और मलारी तक, तथा मध्यतिब्बत में भी ऐसी समाधियां मिलीहैं, जिनमें शकसमाधियों की--सी विशेषताएं पाईगईहैं[७]।

शक और खश दोनों जातियां पशुचारक थीं। रूप-रंग और आकार-प्रकार में भी उनमें पर्याप्त समानता थी। शकजाति के आगमन से बहुत पूर्व ही कश्मीर से पश्चिमी नेपाल तक सारा मध्यहिमालय खशदेश बनचुकाथा। आगन्तुक शक तथा अन्य जातियां कालान्तर में उसी खशसागर में विलीन होगईं और खश-रीतिनीतियों को अपनाकर उससे अभिन्न होगईं।

प्राचीन कशजाति समकालीन अन्य पशुचारकजातियों के समान सुरियस (वैदिक सूर्य), मरुतस (वैदिक मरुत), बुरियस (यूनानी बोरीज) आदि देवताओं की उपासना करतीथी[८]। इस जाति का देवचिह्न अश्व था। अनुमान कियाजाताहै कि पश्चिमी एशिया में सबसे पहले अश्व पालनेवाली यही जाति थी[९]।

उसका प्रमुख देवता कश्शू था, जिसे वह अपनी जाति का

१- उ० पांडे--पृ० ५२९ २- वर्णन, राहुल- मध्यएशिया का इतिहास-- भाग १, पृ० ७५ ३-७- देखिए, पृ० ७०

८-९- घूशमैन--पृ० ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिरक्षक मानतीथी[१]। अपने लम्बे इतिहास और विस्तृत प्रसार में, इस जाति ने अनेक नए देवी-देवताओं को अपनाया और पुराने देवी-देवताओं को त्यागडाला, किंतु अपने इस इष्टदेवता को वह सदा और सर्वत्र पुजतीरही। आज भी कश्मीर से लेकर जौनसार तक के खश इसे महाशू के नाम से, चम्बा-कांगड़ा के गद्दी मणिमहेश के नाम से और समस्त भारत के हिन्दू महेश्वर के नाम से पूजतेहैं[२]।

कशजाति को अपने जातिनाम कश-खश से तथा अपने देववाचक 'शू' शब्द से इतना प्रेम था कि हिमालय के विभिन्न भागों में सैकड़ों स्थानों के साथ कश-खश या शू जुड़े मिलतेहैं[३]। बारहस्यूं आदि पट्टी-परगनों के नामों में यही शू स्यूं बनगयाहै[४]।

१- 'The native God Kashshu, doubtless bore the name of the people as is known to have occurred among other Asianic tribes.'--घृशमैन--पृ० ६९ २-३- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, भूमिका--पृ० ६

४- यथा, गढ़वाल में—अमलासू, उतरासू, कड़ासू, किनसूर, कंडासू, कुलासू, गुलासू, त्रासू, चमासू, चौमासू, जिलासू, जियासू, झिलासु, तंगसू, तगरासू, थलासू, थानसू, धरासू, नगरासू, नारसू, नालसू, पुल्यांसू, फरासू, फरसूंदखाल, फरसू, फरसूली, बणसू, बणासू, वासू, बामसू, बिलासू, विकासू, भयांसू, मासू, मुंडासू, रैंगड़सू, रमासू, लंगसू, लंगासू, सयनसू, समासू, सिमलासू आदि, देखिए, राजेश्वरीप्रसाद--'गढ़वाल'

यथा, टिहरी में—आरसू, उतरासू, कोठासू, किनसूर, गंडासू, गुरसूली, गंगालसू, दलमासू, दशूली, पपरासू, फलासू, फरसूली, फरसूडगांव बगनासू, बरसूली, बांसू, भैंसूली, भदरासू, मांगसू, मल्यासू, मसूवना, लदोसू, लंसू, सुदराणा, सुमाड़ी, स्यूरा, सुणांऊ, सिलसू, सिसूई, सिमालसू, स्यूंटा, सिमसु, सिलासू, सुपरस्या,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिमी एशिया में प्रचलित मातृदेवियों की उपासना में खशजाति विशेष सक्रिय भाग लेतीथी। वह शिमालियदेवी (हिमपर्वतों की रानी) की उपासक थी[1]। इसी शिमालिय से ईरानी भाषा के जिम, भारतीय आर्यभाषाओं के हिम एवं हिमालय शब्द बनेहैं[2]। खशजाति की यह शिमा, जिमा, हिमादेवी ही भारत में उमादेवी बनगई जिसे आर्य उमाहैमवती के नाम से पूजनेलगे। आज भी सारे हिमालयप्रदेश में वह उमा, नन्दा, गौरी, गिरिजा, पार्वती, हैमवती, आदि नामों से पूजीजातीहै और उसे पर्वतराज हिमालय की पुत्री मानाजाताहै[3]।

कश्शू-महाशू, महेश्वर तथा शिमालिय-शिमा-हिमा-उमादेवी की अनन्य उपासक खशजाति प्रत्येक कार्य के आरम्भ और पूर्ण होने पर प्रत्येक विपत्ति और सुख की घड़ी में उनका स्मरण करतीथी। पशुओं के ब्याहने पर वह उनका दूध आदि, और खेती पकने पर अन्न, फल आदि उन्हें बिना चढ़ाए स्वयं सेवन नहीं करतीथी[4]। उसमें अपनी प्रथम कन्या को प्रथम उत्पादन के रूप में इन आराध्यों के मन्दिरों में देवचेलियां बनाने के लिए चढ़ाने की प्रथा थी, जो नायकवर्ग की जातियों में आज भी मिलतीहै[5]।

हिमशिखरों के पादप्रदेश में और महानदियों के तटों पर पशुचारण करनेवाली खशजाति इन शिखरों और नदियों में प्राचीनकाल से ही देवत्व की कल्पना करनेलगीथी। उसने इन शिखरों के पादप्रदेश और नदी-घाटियों में अमरनाथ, त्रिलोकनाथ, बैजनाथ, ज्वालामुखी, यमुनोत्तरी,

---

सुरांसू, सूमा, स्यूरा, स्यूरी, सुकारी आदि, राजेश्वरीप्रसाद-'टिहरी'

१-२-'While Simalia, the Queen of Snow Mountains can hardly be separated from the name of the great mountain range Himalaya and the Iranian word for snow, zima.'--रैप्सन--६७

३-डबराल--उ०यात्रा-दर्शन, भू०--पृ०६ ४-५-डबराल--'उपत्यका'-पृ०१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगोत्तरी, उत्तरकाशी, बूढ़ाकेदार, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ, कालीमठ, बदरीनाथ, विनसर, पुन्यागिरि, द्रोणागिरि, बैजनाथ, द्वाराहाट, पशुपतिनाथ, खोचरनाथ आदि तीर्थों की स्थापना कीथी। इनमें से अनेक तीर्थों की पूजा आज भी खशजाति के हाथ में है[१]।

हिमालय के अगणित ग्रामदेवताओं और देवियों की कल्पना का श्रेय इसी जाति को है[२]। किन्तु कश्मीर से काली तक मिलनेवाली बूटधारी सूर्य की अनेक प्रतिमाएं तथा मन्दिर शकजाति की देन हैं, जो कालान्तर में खशजाति में ही विलीन होगई[३]।

किरातजाति के समान खशजाति भी न तो जनेऊ धारण करतीथी और न पुरोहित रखतीथी[४]। ब्राह्मण पुरोहितों के संसर्ग में न आने से उसका जीवन व्रात्यों-जैसा था[५]। वह अपने ग्रामदेवताओं को फसल पकने पर अथवा उनके कुपित होने पर जागर-घड्याला की विधि से पूजतीथी[६]।

निर्जन वन-पर्वतों और नदीघाटियों में विचरण करनेवाली यह जाति भूत-प्रतों और अतृप्त प्रेतात्माओं की हंत्या से सदा आतंकित रहती थी[७]। अजेय सर्पों और व्याघ्रों के प्रकोप को शान्त करने के लिए वह नाग और नरसिंह की पूजा करतीथी[८]।

खशजाति में जाति प्रथा न थी। आगे चलकर दूसरों के अनुकरण पर खशजाति में खशराजपूत और खश (भट) ब्राह्मण तथा गद्दीजाति में खत्रीगद्दी और भट्टगद्दी नामक दो वर्ग होगए, किन्तु इन दोनों वर्गों के बीच पूर्ववत् विवाह-सम्बन्ध होतेरहे और आज भी होतेहैं[९]।

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, भू०--पृ० ८ २- डबराल--'उपत्यका'--पृ०९९-१०० ३- राहुल--गढ़वाल--पृ०५८ ४-डबराल--'उपत्यका'--पृ० ९१ ५- मनु--१०।४३-४४ ६- मजूमदार--'रेसेज ऐंड कल्चर्स', पृ०२६१ ७-डबराल--'उपत्यका'--पृ०९९ ८-डबराल--'उपत्यका'--पृ० १००-१०२ ९- भट्टाचार्य--पृ० १२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खश अपने ग्रामसेवक डोम नर-नारियों को छूते, उनके साथ मिलकर कार्य करते किन्तु उनसे रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं करतेथे। सारे हिमालयप्रदेश में समय-समय पर चारों दिशाओं से अनेक जातियां आकर बसतीरहीं। उन समस्त जातियों से, जो अपने को डोमजाति से उच्च बतलातीथीं, खशजाति निसंकोच रोटी-बेटी का सम्बन्ध जोड़लेतीथी।

पिछले डेढ़ सौ वर्षों के अन्दर जब खशजाति के वंशजों ने अपने को राजपूत कहना आरम्भ करदिया तो वे समस्त तथाकथित क्षुद्रजातियां भी जो विशाल खश-वटवृक्ष की छाया में आचुकीथीं, उसके साथ अपने को भी राजपूत कहनेलगीं[१]।

समय-समय पर कच्ची लंगोट और कच्चे वैराग्य वाले अनेक आत्मवंचक तपस्या और सिद्धियों के लिए हिमालय में आतेरहतेथे। और सुन्दर, स्वस्थ, भोली पशुचारक नारियों को देखकर, जिन्हें कवि-कल्पना में अप्सरा कहागयाहै, आत्मसंयम खोबैठतेथे।

शकुन्तला, जिसकी गाथा लेकर कालिदास ने अपने अमर नाटक की रचना कीथी, जिसके पुत्र भरत के नाम से हमारे देश का नाम भारत पड़ा, तथा जिसके पौत्रों की अमरगाथा को लेकर भगवान् व्यास ने महाभारत की रचना कीथी. खशदेश, गढ़वाल की खशबालिका थी।

१- 'Such is the history of the Rajputs who form the bulk of the Kshatriya population in Garhwal. The Kshatriya caste in this country is like a huge banyan tree stretching its wide spreading branches over hundreds of castes and subcastes and covering with its innumerable leaves the high as well as low classes of Rajputs.'--पातेराम--पृ० ८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार ऊषा, जिसने श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का अपहरण कियाथा, और जिसने गुजरात में विशेष प्रकार के नृत्यों का प्रचार कियाथा, खशबालिका थी।

हिमालय के कुछ भागों के तथा उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग के खशों में सगे भ्राताओं की साझी पत्नियां होतीहैं[१]। खशसमाज में विधवाएं अपने घर पर टेक्वा या कठाला नामक सेवक-पति रखकर उससे अपने मृत पति के नाम पर सन्तान उत्पन्न करसकतीहैं[२]। महाभारत में धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर, तथा पांचों पांडवों की उत्पत्ति की कथाओं से और द्रौपदी का पांचों भ्राताओं की साझी पत्नी बनजाने की कथा से पता चलताहै कि चन्द्रवंशी आर्यों पर भी खशप्रथाओं का प्रभाव पड़ाथा।

हिमाचलप्रदेश, जौनपुर-जौनसार आदि में खशनारियां मैके में अधिक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करतीहैं। खशबालिकाओं के विवाह में माता-पिता जो कन्याशुल्क लेतेहैं, उसका एक भाग 'मामादाम' या 'मामाझोली' के नाम से बालिका के मामा को दियाजाताहै[३]। भानजे की वधू के लिए पति का मामा अस्पृश्य होताहै[४]।

प्रति वर्ष रवि की फसल कटने पर ग्रीष्मकाल में और खरीफ की फसल कटने पर शीतकाल में पुत्रियों को मैके बुलायाजाताहै और उन्हें पहनने के लिए नए वस्त्र, परिवार में बांटने के लिए पकवान तथा सुसराल में भोजन के लिए कम से कम एक दूण (३२ सेर) अन्न (गेहूं, जौ, धान, मंडुवा आदि) दियाजाताहै।

विभिन्न त्योहारों और उत्सवों के अवसर पर भी पुत्रियों को बुलाकर उन्हें वित्तानुसार कुछ देने की प्रथा है। विवाह के अवसर पर तथा विवाह के पश्चात् गर्भवती पुत्री को गाय और भेड़-बकरियां एवं प्रसव होने पर अन्न और वस्त्राभूषण दिएजातेहैं।

१- देखिए, अलबरूनी--पृ० १६०
२- जोशी-पृ० २
३- जोशी- पृ० ७४
४- जोशी--पृ० ७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन प्रथाओं के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि पहले खशसमाज मातृकुलपरक था[१]। पीछे जब उसने पितृकुलपरक प्रथा को अपनालिया तो वह मामा और पुत्रियों के पिछले अधिकारों की परम्परा को सर्वथा न त्याग सका[२]।

खशसमाज में आज भी देवर-भावज-विवाह[३] (Levirate) मामा और बुआ की पुत्रियों से विवाह[४], ढांटी-विवाह, छूट (तलाक), विधवा द्वारा सेवक-पति (टेक्वा, कठाला) रखने[५], कनीन, झंटेला[६] आदि सभी पुत्रों की मान्यता, बड़े भ्राता को जेठाली (ज्येष्टांश) देने आदि की रोचक प्रथाएं प्रचलित हैं[७]। एक सहस्र वर्ष पूर्व तक इन प्रथाओं का सारे भारत में व्यापकरूप से प्रचार था। इसलिए उन्हें कलिवर्ज्य कहकर स्मृतिकारों को बार-बार उनका निषेध करनापड़ाथा[८]।

खशजाति में 'अट्टा-सट्टा' अर्थात् साले को अपनी बहिन देकर उसकी बहिन से विवाह करने की सार्वभौम प्रथा थी। अब भी वे साले की पत्नी को बहिन कहतेहैं। तथा खशनारियां ननद के पति को भाई और उसके पिता को चाचा कहतीहैं। वे माता के भाई और बुआ के पति दोनों को मामा कहतेहैं।

खशपशुचारकों की संख्या वेग से बढ़ी और उन्हें अपने निर्वाह के लिए पशुचारण के साथ कृषि को भी अपनानापड़ा। अनातोलिया

१- जोशी--पृ० ६२-७४ २- जोशी--पृ०७६ ३- जोशी--पृ० १०३-४
४- जौनसार में अभीतक सास के लिए मामी तथा कहीं मौसी कहतेहैं।
५- पन्नालाल--पृ० ७ ६- पन्नालाल--पृ० ५ जोशी-पृ० २८१
८- देखिए, भट्टाचार्य रचित 'कलिवर्ज्य' नामक पुस्तक में निम्न प्रकरण:—मामा-बुआ की पुत्रियों से विवाह--पृ०११०-११९, १८३; भावज-देवर-बिवाह--पृ० १८९; ढांटी तथा विधवा-बिवाह--पृ० १३४, १४५, १८६; झंटेला आदि पुत्र--पृ० १४५-१५६, १९२; जेठाली--पृ० १५९-१६५, १९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काकेशश, ईरान, मध्यएशिया और हिमालय की ढालों एवं पठारों को खोदकर इन अथक परिश्रमी पर्वतपुत्रों ने अपने लिए अगणित भीड़ेवाले खेत बनाडाले और पाषाणहृदय पर्वतों को भी पर्याप्त अन्न, फल एवं साग-सब्जियां उत्पन्न करने के लिए विवश करदिया।

अनातोलिया से लेकर हिमालय तक सारे उच्च एवं दुर्गम भूखण्डों को अपने पगचिह्नों से नापतेहुए उन्होंने समस्त पर्वतों का, उनकी श्रेणियों और डांडों का, उनके शिखरों, हिमानियों और सरोवरों का, उनकी नदियों, नालों और प्रपातों का, तटवर्ती चट्टानों, गुफाओं और झेलों का, एवं घाटियों, रौलियों और बगड़ों का नामकरण करडाला।

उन्होंने इस सारे क्षेत्र के पर्वतों और घाटियों में उत्पन्न होनेवाले पेड़-पौधों को पहचाना, जड़ी-बूटियों की लाभदायक एवं हानिकारक विशेषताओं का पता लगाया, बनैली भेड़-बकरियों, कुत्तों, घोड़ों, गदहों और चिड़ियों का पालना तथा गेहूं, जौ, चना-जैसे अन्नों, घासों, लताओं एवं फलदार वृक्षों को उगाना आरम्भ किया।

उन्होंने प्रकृति द्वारा मिट्टी-पत्थरों के नीचे छिपाएगए खनिजों का पता लगालिया, उनको गलाकर उपकरण एवं आभूषण बनाने आरम्भ किए तथा खनिजों, चमकीले पाषाणखण्डों, चमड़ा और खालों, पर्वतों पर उपलब्ध पुष्पों, सुगन्धित लकड़ियों, जड़ी-बूटियों, मधु और पशु-पक्षियों तथा दास-दासियों के आदिम व्यापार की नींव डाली।

अपने पशुओं के गल्लों को लेकर पर्वतश्रेणियों की पीठ पर चलतेहुए उन्होंने अपने पगचिह्नों से जिन आरम्भिक मार्गों का निर्माण किया तथा दलदलों पर डण्डे रखकर, हिमानियों पर मिट्टी फेंककर, महानदियों को खालों की डोंगी से और रस्सियों के झूलों से पार करने की जिन अनेक रोचक विधियों का आविष्कार किया, उन्हीं के सहारे पिछले छै सहस्र वर्षों से अगणित उत्पाटित जातियां, शरणार्थियों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टोलियां, विजेताओं की सेनाएं, व्यापारियों के काफिले, चोर-डाकुओं के दल-बादल एवं साधु-सन्तों, तीर्थयात्रियों और घुमक्कड़ों की पंक्तियां चलतीरहीहैं।

उन्होंने अनातोलिया से हिमालय तक फैली पर्वतीय संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दिया, पश्चिम की अनेक रीतिनीतियों, देवी-देवताओं, लोककथाओं और पौराणिक गाथाओं का इस सारे भूखण्ड में प्रचार किया तथा उन रोचक परम्पराओं की नींव डाली जिसका खश समाज आज भी पालन करताहै।

यद्यपि खशजाति के मुख्य व्यवसाय सदा पशुचारण और उस पर पर आश्रित कृषि बनेरहे, पर जहां उनका इनके द्वारा निर्वाह न होसका वहां वे पड़ोस की घाटियों और मैदानों में उतरकर कृषिमजूर, घरेलू नौकर, वनोपयोग के मजूर आदि बनकर अपना निर्वाह करनेलगे।

स्वस्थ, सुन्दर और भोली खशनारियों की मन्दिरों में देवदासियां बनाने के लिए बड़ी मांग थी। खश स्वयं भी अपनी ज्येष्ठपुत्रियों को मन्दिरों में अर्पित करतेथे[1]। राजप्रसादों में पहरादेने, धनिकों के महलों में दासियां बनाने एवं नगरों में गणिका बनाने के लिए भी उनका विक्रय होताथा[2]।

रनिवासों की व्यवस्था तथा धनिकों की अनैसर्गिक वासना को शान्त करने के लिए पहले सुन्दर खशकुमारों को इतनी अधिक संख्या में शिखण्डी बनायाजातथा[3] कि उनके लिए खोजा (खश) शब्द ही

१- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ६८

२- 'The pictograph tablets from Uruk show that the signs women and mountains which meant foreign country, when put together meant a (female) slave.'--टर्नर--एनशिएंट सिटीज--पृ० १४५

३- एटकिनसन--जि० १, पृ० ३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयुक्त होनेलगा।

हट्टे-कट्टे खशयुवक प्राचीनकाल से ही आयुधजीवी (भाड़े के सैनिक) बनने के लिए प्रस्तुत रहतेथे। हिरोदात ने विक्रमपूर्व छटी शताब्दी में दारा की वाहिनी में उनकी महत्वपूर्ण टुकड़ियों का उल्लेख कियाहै[1]।

भारत में आबसने पर खशजाति ने हिमालय के विभिन्न भागों में अपने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कीथी। महाभारत में उत्तराखण्ड के कुणिन्दनरेश सुबाहु का वर्णन है, जिसकी राजधानी श्रीपुर (श्रीनगर, गढ़वाल) थी[2]। कुणिन्द, जिन्हें वर्तमान कनैतजाति का पूर्वज मानाजाताहै, खशजाति की एक शाखा थे[3]।

कुणिन्दराज्य का पाणिनि ने कुलुन रूप से और तौलेमी ने कुलिन्द्रीन रूप से उल्लेख कियाहै[4]। श्रीनगर में मिली एक सहस्र कुणिन्द मुद्राओं से भी कुणिन्दराज्य की पुष्टि होगईहै[5]।

उत्तराखण्ड के खश युधिष्ठिर के राजसूय में अपने पड़ोसी तंगणादि जातियों के समान पिपीलिक स्वर्णचूर्ण के अनेक भार, काले तथा श्वेत चमर, हिमालय का मधुर मधु, बहुमूल्य रत्न, औषधियां तथा तीर्थों का पवित्र जल लेगएथे[6]।

पांडवों को वनवास होजाने पर उन्होंने कौरवों की अधीनता स्वीकार करलीथी। महाभारत के युद्ध में उन्होंने दुर्योधन की सहायता कीथी और खड्ग, भालों तथा पत्थरों की वर्षा से पांडवसेना का संहार कियाथा[7]।

उत्तराखण्ड में खशराज्यों के उत्थान-पतन की गाथा पर विचार करने

१- उ० पांडे--पृ० ४२९   २- वनपर्व--१४०।२७-२९   ३- कनिंघम--आ०स०रि०--जि० १४, पृ० १२९   ४- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ०६९   ५- रतूड़ी--'इतिहास'--पृ० २५०   ६-सभापर्व--४८।३-७   ७-द्रोणपर्व-१२१।४३; उद्योगपर्व--१६०।१०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का हमें आगे भी अवसर मिलेगा। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से गढ़वाल में पंवारवंश[1] और कुमांऊं (चम्पावत) में चन्दवंश के शासन का क्रमबद्ध वर्णन मिलनेलगताहै[2]। अकबर के समय से हिमालय के खश-नरेशों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार करनी आरम्भ की।

मुगलों के ऐश्वर्य की देखादेखी अपने ठाठबाट के लिए और मुगल बादशाहों को भेंट में भारी राशियां देने के लिए वे प्रजा का रक्त चूसने लगे। अपनी खशप्रजा के दमन के लिए उन्होंने मैदानी भागों से सैनिक टुकड़ियां भरती कीं और उनके निर्वाह के लिए खशग्रामों की आय निर्धारित करके[3] उन ग्रामों के मूल निवासियों को वह पद प्रदान किया जो आगे चलकर 'खायकर' कहलाया।

सैनिकों की ये टोलियां तथा इनके साथ बाहर से आए पुरोहित खशों से शूद्रवत् व्यवहार करनेलगे। खशनरेश अपने को खशजाति से पृथक मैदानों से आई उच्च क्षत्रियजातियों की संतान बतलानेलगे। और धीरे-धीरे खश शब्द तुच्छता, शूद्रतुल्य एवं नीचवंश का द्योतक बनगया। यह दुर्व्यवहार यहां तक बढ़ा कि १८८४ की जनगणना में वीर खशजाति के वंशजों को अपने ही खशदेश गढ़वाल में शूद्रवर्ग के अन्तर्गत गिनागया[4]।

अंगरेजीराज्य में कर्तव्यनिष्ट, सरलस्वभाव, अथक परिश्रमी, कष्ट-सहिष्णु तथा स्वामिभक्त खशयुवकों को उन्नति के अवसर पर प्राप्त हुए। दोनों महायुद्धों में उन्होंने अपने वीरत्व से भारत का मस्तक उज्ज्वल किया।

शिक्षा के क्षेत्रों में आगे बढ़कर उन्होंने अनेक उच्च पद प्राप्त करलिए। ज्यों-ज्यों खशजाति के वंशज उन्नति करतेगए त्यों-त्यों वे भी अपने लिए मैदानी पूर्वजों की कल्पना करनेलगे और खश या खशिया नाम से सम्बोधित होना अपने लिए अपमानसूचक समझनेलगे[5]।

१- डबराल--उ०यात्रा-दर्शन--१८३ २- राहुल--कुमांऊं--पृ० ६०
३- जोशी--पृ० १० ४- जोशी--पृ० ४ ५- जोशी--पृ० ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खशजाति का मुख्य व्यवसाय सदा पशुचारण रहा। वह गौ को मातृदेवी हथोर का स्वरूप[१] मानतीथी और उसके प्रति पूज्यभावना लेकर भारत में प्रविष्ट हुईथी। उसके अनुकरण पर अन्य जातियों में भी गौ के प्रति पूज्यभावना जागृत होगई। गौमांस न त्यागने के कारण वह अपनी ग्रामसेवक डोमजाति को गांव में पृथक स्थान देतीथी और उससे रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं करतीथी[२]।

विक्रमपूर्व पांचवीं शती में सारा हिमालयप्रदेश उत्तम गाय-बैलों के लिए प्रसिद्ध था। उत्तराखंड में पिंडारउपत्यका के रंकु बैलों की ख्याति से पाणिनि[3] और भैंसों के खरकों से कौटिल्य भी परिचित थे[४]। सिकन्दर दरदप्रदेश के उत्तम बैलों और वलिष्ट पुरुषों से इतना प्रभावित हुआथा कि उसने वहां से २,३०,००० बैल और ४०,००० पुरुष मैसेडोनिया भेजेथे[५]।

उत्तराखंड के पशुचारक प्राचीनकाल से ही उत्तम भेड़-बकरियों के पालन और उत्तम ऊन के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध रहेहैं[६]। खश उत्तम बकरों के उत्पादन तथा उन्हें बधिया बनाने की कला में इतने चतुर थे कि खश एवं खश्शी शब्दों का प्रयोग क्रमश: बकरे और बधिया किए बकरे के लिए आज तक चलाआताहै। वे विभिन्न प्रकार के ऊनी और भांग के वस्त्र बनाने में भी बड़े कुशल थे।

द्रविड़जाति

डा० मजूमदार ने हिमाचल और उत्तराखण्ड के वर्तमान निवासियों के नृवंशों के उल्लेख में भारत की दो अतिप्रसिद्ध, द्रविड़ और आर्य जातियों को स्थान नहीं दियाहै[७]। द्रविड़ और आर्य दोनों जातियां

१- फोर्ड--पृ० ४४८ २- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ६३ ३- अग्रवाल-पाणिनिकालीन भारतवर्ष--पृ०२२० ४- कौटिल्य--२।२६, पृ०२०२ ५- रैप्सन--पृ० ३१७; त्रिपाठी--पृ० ६१ ६- अग्रवाल--उपरोक्त--पृ० ७०, १२७ ७- मजूमदार--'रेसेज ऐंड कल्चर्स'--पृ० ३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरपश्चिमी भारत में उस क्षेत्र में बसीथीं, जो हिमाचल और उत्तराखंड से जुड़ा है। अस्तु इन प्रदेशों में किसी न किसी मात्रा में उन जातियों के रक्त और सम्पर्क का प्रभाव पहुंचाहोगा।

गढ़वाल[1] और कुमांऊं[2] की कुछ ब्राह्मणजातियां अपना सम्बन्ध द्रविड़जाति[3] और कर्नाटकप्रदेश[4] से जोड़तीहैं। उनकी कल्पना साधार होसकतीहै। क्योंकि विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों से ही उत्तरभारत के शिव, महाकाल, भैरव और चंडिका आदि के मन्दिरों में दाक्षिणात्य तांत्रिक पुजारी अधिकार जमानेलगेथे[5]। रामेश्वरम् पर गंगाजल चढ़ाने की परम्परा और भी अधिक प्राचीन होसकतीहै[6]। ऐसा प्रतीत होताहै कि समय-समय पर द्रविड़-टोलियां उत्तराखण्ड में पहुँचकर सवर्ण और हरिजनजातियों में मिलनीगईं।

प्रागैतिहासिककाल में भी, जब द्रविड़जाति सिन्ध-पंजाब से लेकर बंगाल तक छायीथी, उत्तराखंड के निवासी उसके सम्पर्क से प्रभावित हुएथे। सम्भवत: कोल-माध्यम से या स्वत: ही द्रविड़रक्त भी इस प्रदेश में पहुंचाथा।

चंडेश्वरसंस्कृति और महाशिलावृत्त-निर्माताओं का सम्बन्ध किस जाति से था, यह अनिर्णीत है। किन्तु उत्तराखंड में सर्वत्र प्रचलित लिंगबास, पितरोड़ा या पितरकूड़ी बनाने की परम्परा[7] तथा नागपूजा की प्रथाओं को द्रविड़जाति की देन मानाजासकताहै।

महाभारत के उत्तरभारतीय पाठ में उत्तराखण्ड के तीर्थों, मार्गों और जातियों का उतना विस्तृत और रोचक वर्णन नहीं मिलता, जितना

१- पातेराम--पृ० ८५- ८७ २- पांडे--कुमांऊं का इतिहास--पृ०५८१-५८६ ३-४- रतूड़ी 'इतिहास'--३६६; रतूड़ी--'लौ'--पृ०३१ ५- देखिए, बाण--कादम्बरी, पूर्व० पृ० ४५५ ६- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, भू०, पृ० ६; ७- पांडे--कुमांऊं का इतिहास--पृ० २३३; डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, भू०, पृ० ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दाक्षिणात्य पाठ में मिलताहै । दाक्षिणात्यपाठ के सम्पादक ने उत्तराखंड की महिमा और उत्तराखंडी वीरों की शूरता के वर्णन में विशेष रुचि प्रदर्शित कीहै[१]। इससे विदित होताहै कि दाक्षिणात्यपाठ का सम्पादन निश्चय ही उत्तराखंड में हुआथा। उत्तराखंड का दक्षिण से सांस्कृतिक सम्बन्ध अवश्य अत्यन्त प्राचीनकाल से है।

उत्तराखंड में प्रचलित अनेक शब्द जो उत्तरभारत में कम मिलतेहैं या उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होते, दक्षिण में बहुप्रचलित हैं और उसी अर्थ में प्रयुक्त होतेहैं। ऐसे शब्द, विशेषकर घर और गुप्तांग सम्बन्धी शब्द[२] द्रविड़ सम्पर्क से प्राप्त मानेजासकतेहैं।

द्रविड़भाषाओं के उड़, ऊड़[३], तुड़ या तड़[४] और नाडा, नाड[५] जिनका अर्थ ग्राम या स्थान होताहै तथा बडा (घर) अथवा कोलभाषा के ओडक (घर) का 'डा' ड़ा, डो, ड़ी, डू, ड़ू के रूप में उत्तराखंड के अनेक ग्रामनामों में जुड़े मिलतेहैं[६-७]। अनेक ग्रामनामों में जोल, जोला,

---

१- देखिए, आगे, साहित्यिक साक्ष्य

२- गढ़वाली भाषा में — द्रविड़वर्ग की भाषाओं में

गढ़वाली भाषा में	द्रविड़वर्ग की भाषाओं में
कुड़ी, कूड़ी (मकान)	कूड़ी (मकान)
कोड़ी (मकान का कोना)	कोड़ी (किनारा)
त्रिक (मैथुन)	गोंडी में चिक (मैथुन)
पूठा (गुदा)	पुडै (गुदा, गुप्तांग)
पोकिनी (योनि), पोकि (योनि)	पोकिली (योनि), पोय (गड्ढा)

३- यथा, गढ़वाल में-- कठूड़ (कठ्-ऊड़), ककरुड़ा, घटूड़, जमरूढ़ा, पठूड़, मसूड़ा, मरुड़ा, सऊड़, (सौढ़), हथनूड़ आदि

४- यथा, अलमोड़ा में--दिगतड़, लिखतड़, धिगतड़, पीपलतड़, दुबतड़,

५- यथा, गढ़वाल की लंगूरपट्टी में नाडागांव

६-७- यथा, गढ़वाल में अमाडा, अरकंडा, उड्डा, कचुंडा, कांडा, कांडी, कांडै, गोंठिडा, चंडा, जुड्डा, भुड्डा, मांडै आदि तथा अगरोड़ा, असड़ा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोली, जिनका अर्थ द्रविड़भाषाओं में जल की धारा होताहै, और जोरा जिनका अर्थ कन्नड़ में बूंद टपकना होताहै, जुड़े मिलतेहैं। इसी प्रकार तमिल के पल्ली (गांव) पाली के रूप में, चोड़, सोड़ (स्थान) चौड़, सौड़ के रूप में प्राप्त होतेहैं।

विद्वानों का अनुमान है कि विक्रम से लगभग पन्द्रह शताब्दी पहले जब उत्तरपश्चिम के द्वार से आर्यजाति ने भारत में प्रवेश किया तो द्रविड़जाति का कुछ भाग दक्षिण में जाबसा और जो उत्तरभारत में रहगया उसे आर्यजाति का दास बननापड़ा[1]।

काल्डवेल आदि विद्वानों की धारणा है कि कोई भी ऐसा साहित्यिक, भाषावैज्ञानिक, पुरातात्विक या ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध होसके कि आर्यजाति ने द्रविड़जाति को उत्तरभारत से हटायाथा[2]। इसके विपरीत ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे सिद्ध होताहै कि आर्यजाति के द्रविड़जाति से सदा शान्तिपूर्ण सम्बन्ध रहेहैं[3]।

उनका अनुमान है कि जिस जाति के प्रसार से द्रविड़जाति को दक्षिण की ओर हटनापड़ा वह कोई शिथियनजाति थी, जो आर्यजाति के आगमन से पूर्व उत्तरभारत में छागईथी।

आर्यजाति के आगमन से बहुत पहले ही द्रविड़जाति उत्तरभारत में नागरिक-संस्कृति का विकास करचुकीथी। वह देश के विभिन्न भागों और विदेशों से व्यापार करतीथी। उसके नरेश सुदृढ़ प्रासादों में रहतेथे और छोटे-छोटे राज्यों पर शासन करतेथे। वह लिखने की कला से भली प्रकार परिचित थी। वह नावों और जहाजों के द्वारा जलयात्रा करतीथी।

अस्वाड़, ईड़ा, ऊड़ी, कमेड़ा, खेड़ा, चौंतड़ा, चोपड़ा, दमराड़ा, पितरोड़ा, पोखड़ा, मरोड़ा, रतोड़ा आदि

१- आर०सी० मजूमदार--पृ० २९ २- काल्डवेल--पृ० १०६

३- काल्डवेल--पृ० १०८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसमें शासन और समाज के निश्चित नियम थे और नियमानुसार बिवाह-बंधन की प्रथा प्रचलित थी। वह धातु, लकड़ी और मिट्टी के पात्र एवं उपकरण बनाना जानतीथी और कृषि करने, वस्त्र बुनने तथा रंगाने की कलाओं में दक्ष थी।

वह देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा के लिए देवमन्दिर बनातीथी। वर्तमान हिन्दुसमाज की बहुत-सी धार्मिक मान्यताएं उसी की देन हैं। पशुपति शिव, मातृदेवी, नाग और अनेक अन्य देवी-देवताओं एवं पीपल आदि वृक्षों की पूजा तथा पुष्प, पत्ते, फल, जल आदि उपचारों द्वारा देव-मूर्तियों की अर्चना का प्रचार आरम्भ में उसी के द्वारा हुआथा[१]।

आर्यजाति

पंजाब में आर्यजाति और तत्कालीन भारतीयजातियों के मिश्रण से हिन्दुजाति की उत्पत्ति हुई जिसने आर्यजाति की कुछ परम्पराओं को अधिकांश प्राचीन भारतीय परम्पराओं के साथ मिलाकर उत्साहपूर्वक 'कृण्वन्तु विश्वं आर्यम्' की घोषणा करतेहुए सारे भारत में इन मिश्रित परम्पराओं को पहुँचायाथा[२]। विश्व को रक्त की दृष्टि से आर्य बनाना उसके लिए असम्भव था। वह इस मिश्र संस्कृति का आर्य-संस्कृति के नाम से प्रचार-मात्र करसकतीथी।

यह कहना कि हिन्दुधर्म की सभी उत्तम मान्यताएं आर्यजाति की देन हैं और उनमें जो तुच्छ, कलुषित और अन्धविश्वासपूर्ण तत्व हैं, वे अनार्यों की देन हैं, सर्वथा असत्य है। तथ्य इसके सर्वथा विपरीत हैं। हिन्दुधर्म की सभी महत्वपूर्ण मान्यताएं मूलआस्त्रोलाइतजाति और द्रविड़जाति की मान्यताओं पर आधारित हैं और इन दोनों जातियों का

१- आर० सी० मजूमदार--पृ० १६ २- नेसफील्ड उ० क्रुक, जि० १, भूमिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दुधर्म के निर्माण में महत्वपूर्ण योग रहाहै[1]।

कुछ बातों में, विशेषकर भौतिक सभ्यता में, द्रविड़जाति आर्यजाति से अधिक उन्नत थी। निश्चय ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सभी अंग उस संस्कृति और सभ्यता से प्रभावित हुएहैं जिनका विकास सिन्धुघाटी में हुआथा[2]। हिन्दुधर्म के अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की नींव उसी घाटी में डालीगईथी[3]। अपनी भारतीय लिपियों, आहत-मुद्राओं और अनेक कला-कौशलों के लिए भी संभवत: हम उसी महान् संस्कृति के ऋणी हैं[4]।

अपने सिन्धुवासी पूर्वजों के कारण ही हिन्दुओं को यह नाम मिलाहै। विक्रम से पांच शताब्दी पूर्व दारा ने अपने बहिस्तीन अभिलेख में इस देश को आर्यावर्त या भारत न कहकर हिन्दु कहाहै[5]।

शक, शिथियन, गूजर

ऐतिहासिककाल में भी पश्चिम की ओर से अनेक जातियां भारत में प्रविष्ट हुईं जिनका शक, शिथियन, गूजर आदि नामों से उल्लेख कियाजाताहै। पोलियनस के अनुसार विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी में ईरान के सम्राट द्वारा ने बैक्ट्रिया के उत्तर में शकराज्य पर आक्रमण कियाथा[6]। सम्भवत: इसके फलस्वरूप शकों की टोलियों को हिमालय की शरण लेनीपड़ीथी।

राजा रिसालू की गाथा से, जो यमुनाघाटी में स्थित हरिपुर आदि स्थानों से जोड़ीजातीहै, कनिंघम का अनुमान है कि शिथियन गूजर सिंधसागरद्वाब से आकर इस प्रदेश में बसेथे, और अपने साथ अपने

१- आर०सी० मजूमदार--पृ०१७ २-३- आर०सी० मजूमदार--पृ०२५
४- आर०सी०मजूमदार--पृ० २५-२६ ५- उ० रैप्सन--पृ० ३०३
६- रैप्सन--पृ० ३०३, टि० २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन राजा रिसालू की गाथा भी लेआएथे[१]। उत्तराखण्ड के कत्यूरी आदि राजवंशों द्वारा अपना मूलपुरुष शक-शालिवाहन मानाजाने के कारण भी विद्वान उत्तराखण्ड में शकराज्यों की कल्पना करतेहैं[२]।

भाषाविज्ञान के आधार पर ग्रियर्सन का अनुमान है कि ऐतिहासिक काल में गूजर और राजपूत उत्तराखंड में प्रविष्ट हुएथे। उनकी भाषा की छाप आज भी उत्तराखण्ड की बोलियों पर, जो पहले प्राचीन खशबोली और पिशाचबोली पर आधारित थी, स्पष्ट दिखाईदेतीहै[३]।

ऐतिहासिक काल में भी उत्तरभारत से कुछ टोलियां उत्तराखण्ड में आकर बसतीरहीहैं। उत्तराखण्ड के नरेश भी बाहर के कुछ सैनिकों और ब्राह्मणों की टोलियों को यहां बसातेरहेहैं। शास्त्रीय हिन्दुधर्म के पालन में ये टोलियां भले ही इस प्रदेश के मूलनिवासियों से अधिक परायण रहीहों, रक्त की दृष्टि से वे भी उतनी ही मिश्रित थीं।

विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी तक, एक सहस्त्र वर्षों के रक्तमिश्रण ने आर्यजाति की काया को यथार्थ में बदलडालाथा। आर्यों का रंग गोरा, केश पीले और आंखें नीली होतीथीं[४]। विक्रम से दो सौ वर्ष पहले यह

१- वाल्टन--पृ० २३२ २- राहुल--'गढ़वाल'- पृ० १२

३- 'The people (of Kumaun and Garhwal) adopted the language of the Gujar and Rajputs who entered Kumaun and Garhwal in later times, but there are peculiarities which are sufficient to point out a relationship between the old Khas language and the Pishach language of N. W. F., Kashmir, Khowar, Shina and so forth'.--ग्रियर्सन--जि० ९, भाग ४, पृ० १०१ तथा १०९

४- राहुल--'आर्य'--पृ० ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशिष्टता केवल ब्राह्मणों में ही बचसकीथी[1]। और ब्राह्मण जन्मना जाति सिद्धकरने के लिए अपने रूप-रंग का, जो तब तक उनमें अपवादरूप से नहीं, वरन् सार्वभौमरूप से मिलताथा, प्रमाण देतेथे[2]।

शूद्रजाति में तो आदिवासियों का ही बाहुल्य था। वैश्यजाति में महत्वपूर्ण अंश उस आदिवासी पणिजाति का रहाहोगा, जिसके धन-धान्य और गोसम्पत्ति के अपहरण के लिए आर्य और उनके देवता बड़े उत्सुक रहतेथे[3]। वणिक्, बनिया, बणिज्, पण्य आदि शब्द उसी पणिजाति के स्मारक हैं।

क्षत्रियजाति में आरम्भ से ही धन-सम्पत्ति से पूर्ण पौंड्रक, औड्र, द्रविड़, किरात, दरद और खश-जैसी देशी अनार्यजातियों, एवं कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन (तिब्बती) जैसी विदेशी अनार्यजातियों को स्थान मिलजाने से[4], तथा विजेताओं को विजित शासकों द्वारा कन्यादान (डोला देना) से सन्तुष्ट करने की सार्वभौम प्रथा से[5] एवं शासकवर्ग में विभिन्न जातियों की अधिकाधिक नारियां जुटाने की होड़ के कारण रक्तमिश्रण के सभी सम्भवद्वार पूर्णतः खुलेथे।

विक्रम से दो शताब्दी पूर्व, जब पतंजलि ब्राह्मणजाति में आर्यजाति के गोरे रंग, पवित्र आचार, पीले केश आदि चिह्नों का उल्लेख कररहेथे,

---

१- 'गौरः शुच्याचारः कपिलः पिंगलकेश इत्येनान् अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान्कुर्वन्ति'--महाभाष्य

२- राहुल--'आर्य'--पृ० ३०   ३- राहुल--'आर्य'--पृ० ७६-८१

४- शनकैस्तु क्रियालोपाद् इमा क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा ऽदर्शनेन च ॥
पौंड्रकाश्चौड्रद्रविडाः कम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाः चीनाः किराताः दरदाः खशाः ॥
—मनुस्मृति १०।४३-४४

५- यथा, 'कन्योपायनदान'—समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदेशी अनार्य यवन और शक क्षत्रिय बनकर हिन्दुधर्म में अपनी गहरी निष्ठा की घोषणा कररहेथे[१]।

सहस्राब्दियों के रक्तमिश्रण के कारण आज ब्राह्मणजाति भी, जो पतंजलि के समय तक अपना आर्यरक्त सुरक्षित रखसकीथी और उसके पश्चात् भी इसके लिए अन्यजातियों की अपेक्षा अधिक प्रयत्नशील रही[२], आर्यजाति की शारीरिक विशेषताएं खोचुकीहै, तो अन्य जातियों में उनका न पायाजाना स्वाभाविक है।

१- '(दे) व देवस वा (सुदे) वस गरुड़ध्वजे अयं कारिते इ (अ) हेलिओदोरेण भागवतेन......' यवन हेलियोदोरा का वेसनगर-अभिलेख, विक्रमपूर्व द्वितीय शताब्दी
तथा, 'उषवदातेन त्रि-गोशत-सहस्रदेन नद्यां बार्णासायां सुवर्णदान-तीर्थकरेण देवत (ा) भ्यः ब्राह्मणेभ्यश्च षोडशग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण शतसाहस्री भोजापयित्रा...' शकक्षत्रप उषवदात का नासिक अभिलेख, प्रथम शताब्दी विक्रमी।

२- 'Both Anthropometry and Serology point to a gradual lowering of racial status from Brahmins to the aboriginal tribes and the order of social precedence may be said to correspond with the degree of social purity or hybridization. If the Brahmins, for example, started with a diluted blood, they have succeeded in resisting further dilution, more than other castes, but if they had started with purity, they have maintained it more than other castes'.--डी० एन० मजूमदार-- ' रेसेज ऐंड कल्चर्स'--पृ० २७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिन्धुप्रदेश से लेकर बंगाल तक तथा हिमालय से लेकर महाराष्ट्र तक फैली संस्कृतपरिवार की भाषाएं बोलनेवालों की मुखाकृतियां तुरन्त बतलादेतीहैं कि भारत की वर्तमान जनसंख्या आर्यजाति से कितनी दूर है।

यद्यपि आर्यजाति की केवल धुन्धली-सी स्मृति शेष रहगईहै[१], फिर भी आज जब काले मोटे होंठ, पिचकी नाक या चपटे पीले माथे वाली जातियों की टोलियां उत्साहपूर्वक आर्यजाति के जयजयकार से धरती-आकाश गुंजाती मिलतीहैं तो इस जाति के गहरे प्रभाव का पता लगताहै।

उत्तराखंड में पिछली डेढ़ शताब्दी में कई जातियों को समाज में उच्चतर स्थान प्राप्त करने में सफलता मिलीहै। अब कोलीराजपूतजाति भी जाग्रत होकर अपने नामांत में सिंह लगाने और अपने इतिहास का नवनिर्माण करने में संलग्न है। आशा है कि एक-दो पीढ़ियों में उसे भी वांछित सफलता मिलजाएगी।

१- 'The Aryan brother is indeed a much more mythical being than Rama or Krishna, or any other popular hero of Indian tradition.'-- 'नेसफील्ड, उ० कु--जि० १, भू०, पृ० CXLI

— —

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्यिक साक्ष्य

वैदिक साहित्य

ऋग्वेद में गंगाजी का उल्लेख केवल दो बार हुआहै[1]। विद्वानों का अनुमान है कि ऋग्वेद के समय तक आर्यजाति केवल यमुना के पश्चिमी तट तक पहुँचसकीथी[2]। उस समय तक उस जाति में गंगाजी के प्रति पूज्यभावना का प्रचार नहीं था[3]। किन्तु तैत्तिरीय आरण्यक के समय तक गंगा-यमुना के पवित्र तटों पर ऋषि-मुनि अपने आश्रम बनानेलगेथे। श्रद्धालु जनता उनके आश्रमों में दर्शनार्थ जाने और उनसे आशीष मांगनेलगीथी[4]। आर्यजाति में गंगाजी के प्रति ऐसी पूज्य भावना का प्रचार पूर्ववर्ती अनार्यजातियों के संसर्ग से हुआहोगा।

जैमिनीयब्राह्मण[5] और शतपथब्राह्मण[6] दोनों, गंगाजी का श्रद्धापूर्वक उल्लेख करतेहैं। शतपथब्राह्मण उत्तराखण्ड के इतिहास को उत्तर वैदिक-काल तक लेजाताहै।

इस ग्रन्थ के अनुसार दौषन्ति (दौष्यन्ति) भरत ने, जिसका जन्म महाभारत के अनुसार कण्वाश्रम में हुआथा, यमुनातट पर ७८ तथा

१- ऋक्, १०।७५।५ तथा ६।४५।३१ २-३ राहुल--'आर्य'--पृ० ९

४- 'नमो गंगायमुनायोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मा चिरं जीवितं वर्धयन्ति। नमो गंगायमुनोर्मुनिभ्यश्च नमो नमः।'—तैत्तिरीय, द्वितीय प्रपाठक, अनुवाक् २०

५- जैमिनीय, ३।१८३ ६- शतपथ, ३१।५।४।११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगाजी के तट पर ५५ अश्वमेध यज्ञ किएथे[1]। फिर सारी वसुधा को जीतकर उसने एक सहस्र से अधिक अश्वमेध यज्ञ किएथे[2]। उत्तराखण्ड में यमुनातट पर यज्ञ करने की यह परम्परा विक्रम की तीसरी शताब्दी तक बनीरही, जैसा महाभारत[3] और शिलालेखों से सिद्ध होताहै[4]।

पालि-साहित्य

जातकसाहित्य विक्रमपूर्व सातवीं शताब्दी से विक्रमपूर्व पांचवीं चौथी शताब्दी तक के सामाजिक जोवन का चित्रण करताहै। लगभग १५० जातकों में वोधिसत्व, प्रत्यकबुद्ध, तपस्वी या प्रव्रजित व्यक्तियों द्वारा हिमवन्त में जाकर तपस्या करने और समय-समय पर 'निमक-खटाई खाने' हेतु ग्राम-नगरों में लौटने का वर्णन मिलताहै। इनमें से कुछ गंगाजो की घाटी होकर गन्धमादन तक जातेथे[5]।

अनेक आखेटक भी खैर के अंगारों पर मांस भूनकर खाने[6], या किन्नरादि वनमानुषों के मांस का स्वाद लेने[7] या दास-दासियां खरीदने के लिए वहां पहुंचतेथे[8]। हिमालय में गंगातट के बन्दरों का[9] तथा

१- 'अष्टासप्तर्ति भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशतं हयान् इति'—शतपथ, १३।५।४

२- 'परः सहस्रानिन्द्रायाश्वान् मेध्यान् य आहरद विजित्य पृथिवीं सर्वामिति'—शतपथ, १३।११।१३

३- वन, ९०।५-७; ८; १२५।२१-२६; १२९।२; १६१।५६; १६२।२५; द्रोण, ६८।८; शान्ति २९।३६ आदि

४- एनशिएंट इंडिया, जि० ९, पृ० १४१

५- सुधाभोजनजातक, सामजातक, महावेस्सन्तरजातक आदि

६- भल्लाटियजातक ७- तक्कारियजातक, चन्दकिरनजातक

८- महावेस्सन्तरजातक ९- महाकपिजातक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके द्वारा गंगाजी में बहाए मधुर फलों को चखकर उनकी ढूंढ में उत्तराखण्ड में पहुँचनेवालों का वर्णन भी जातकों में मिलताहै[१]।

महावेस्सन्तरजातक में हिमालय की निचली श्रेणियों के वनों का अति सुन्दर एवं विस्तृत चित्रण है। निश्चय ही इस जातक के लेखक ने उत्तराखंड के निचले वनों में कुछ काल तक निवास करके उनकी मोहक छटा का अवलोकन कियाथा। भारतीय साहित्य में वनों का इतना सुन्दर वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

अति प्राचीनकाल में उत्तराखण्ड के निवासियों की रोचक दिनचर्या की झांकी भी इस जातक में मिलतीहै।

'हे देव ! मेरे दोनों माता-पिता नीरोग हैं। वे फल-मूल चुगकर निर्वाह करतेहैं। वहां डांस, मच्छर या रेंकनेवाले जीव अधिक नहीं हैं। तथा वनैले पशु भी हिंसक नहीं हैं।

'मेरी माता आलु, कलम्ब, बिलाली और तक्कल[२] खोदकर लातीहै। वह कोल, भल्लाटक तथा बेल्ले[३] लाकर हमें पोसतीहै। वह जो कुछ भी फल-मूल लातीहै, उसे हम रात में खातेहैं, दिन में नहीं।

'वृक्षों के फल चुग-चुगकर लातीहुई मेरी माता कृष्ण और पांडुवर्ण की होगईहै। वायु और धूप से उसकी दशा कुम्हलाए कमल-सी होगईहै। घोर जंगल में घूमतीहुई उसके बाल क्षीण पड़गएहैं'[४]।

उत्तराखण्ड के आश्रमों का, जहां तपस्वी रहतेथे, अति सुन्दर और विस्तृत चित्रण भी इस जातक में मिलताहै।

'हे महाब्राह्मण ! यह गन्धमादन पर्वत है, जहां पुत्रों सहित राजा वेस्सन्तर निवास करताहै। श्रेष्ठ वेष में अंकुश, आहुति डालने का सरुआ तथा जटा धारण किएहुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछाकर सोताहै और अग्नि

१- महाकपिजातक

२- सम्भवतः क्रमशः भेलपापड़ा, गींठी, सिराली और तैड़ू

३- सम्भवतः क्रमशः बेर, भलाव, बेल

४- महावेस्सन्तरजातक, गाथा, ६९९-७०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की पूजा करताहै[१] ।

'ये नीलवर्ण आकाशशिखर के समान, अंजनपर्वत पर उगेहुए फलदार वृक्ष दिखाईदेतेहैं । पहली बार मदिरापिए तरुण की भान्ति धव, अश्वकर्ण, खदिर, शाल, फन्दन तथा मालुव के वृक्ष वायु से हिल रहेहैं । पेड़ों की ऊपरी शाखाओं पर संगीत सुनाईदेताहै । नज्जूह तथा कोकिल एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदतीहैं । शाखाओं के हिलनेवाले पत्ते जानेवालों को बुलाते हैं, आनेवालों का मन बहलातेहैं और रहनेवालों को सुख देतेहैं । वहीं पुत्रों सहित राजा वेस्सन्तर निवास करताहै[२] ।

'कुछ आमों पर बौर आगयाहै, कुछ में गुठली पड़गईहै । कुछ कच्चे हैं, कुछ पके हैं । वहां नीचे खड़ा व्यक्ति भी पके आम तोड़ सकताहै—कच्चे और पके आम, रसीले और सुन्दर ! यह निवासस्थान देवताओं के नन्दनवन की भांति सुशोभित है[३] !

'कुटज, सलल, नीप, कोसम्ब, लबुज, धव और शाल इतने पुष्पित हैं कि उनके नीचे पड़ाहुआ फूलों का ढेर पराल के खलिहान के समान लगताहै[४] !

'उससे थोड़ी ही दूर पर मनोरमप्रदेश में पुष्करिणी के तट पर पुष्पों के रस से मस्त, मधुरभाषिणी कोयल हैं, जो ऋतु के अनुसार पुष्पित वृक्षों पर बैठी वन को निनादित करदेतीहैं । पद्मिनी के पत्तों पर मकरन्द झरताहै । दक्षिण तथा पश्चिम से वायु चलतीहै । पद्म की रेणु से आश्रम ढकाहुआहै[५] ।

'वहां बड़े-बड़े सिंघाड़े हैं । स्वयं उत्पन्न धान गिरकर पानी में बहते

१- महावेस्सन्तरजातक, गाथा ३३७-३८, पृ० ५७९ २-उपरोक्त--गाथा ३४०-४३, पृ० ५७९ ३- उपरोक्त--गाथा ३४७-४८, पृ० ५८१ ४- उपरोक्त--गाथा ३५३, पृ० ५८१ ५- उपरोक्त--गाथा ३५५-५६, पृ० ५८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिखाईदेतेहैं। भिखों से मधु चूता है और मृणालों से दूध! इस वन में नाना प्रकार की सुगन्धित वायु चलतीहै। पुष्पशाखाओं से यह वन लोगों को मस्त बनादेताहै। पुष्पगंध के कारण चारों ओर भ्रमर गूंजतेहैं। यहां नाना वर्णों के पक्षी हैं। वे परस्पर चहचहातेहुए अपनी भार्याओं के साथ आनन्द मनातेहैं। यहां पुत्रों के साथ वेस्सन्तर राजा रहताहै[1]।'

विनयपिटक से विदित होताहै कि बुद्ध के समय भी गंगातट पर विशेष पर्वों पर मेले लगतेथे जो गंगामहिया कहलातेथे[2]।

आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में गंगाजी के मूल स्रोतों का आवट्टगंगा, कण्हगंगा, आकाशगंगा, बहलगंगा और उम्मग्गगंगा के नामों से उल्लेख करतेहुए उनकी लम्बाई और तटवर्ती पर्वतश्रेणियों का उल्लेख कियाहै[3]।

चुल्लवग्ग[4] और महावंस[5] से विदित होताहै कि वैशाली की संगीति के समय आयुष्मान् सम्भूत साणवासी नामक भिक्षु अहोगंग पर्वत पर रहतेथे। तथा अशोककालीन मोग्गलिपुत्त तिस्स ने भी इस पर्वत पर, जिसकी पहचान हरिद्वार के पास की शिवालिकश्रेणी से कीजातीहै[6], सात वर्ष तक निवास कियाथा[7]। इस प्रकार उत्तराखण्ड के हरिद्वार के समीपवाले भाग का ज्ञान पालि-परम्परा को था[8]।

विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी से विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों तक बौद्ध भिक्षु तथा धर्मोपदेशक हिमवन्त में पहुंचतेरहे, उसी प्रकार जिस प्रकार वर्तमान साधु-सन्त वहां पहुंचतेहैं। अभी तक ऐसे ऐतिहासिक या साहित्यिक प्रमाण नहीं मिलेहैं, जिनसे यह मानाजासके कि कभी

१- महावेस्सन्तरजातक, गाथा ३५७-५९, पृ० ५८२

२- भरतसिंह--बुद्धकालीन भारत, पृ० १२७ ३- विनयपिटक, चुल्लवग्ग, (हि० अ०) पृ० ५३६ ४- विनयपिटक, (हि० अ०) पृ० ५५१

५-६- उ० भरतसिंह--उपरोक्त, पृ० १२७ ७- वापत--पृ० ४५

८- भरतसिंह--उपरोक्त, पृ० १२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड पूर्णतया बौद्धधर्मी बनगयाथा[१] ।

बदरिकाश्रम (बदरीनाथ) में बौद्धतीर्थ होने का उल्लेख बौद्ध साहित्य में कहीं नहीं मिलता। किसी ऐतिहासिक प्रमाण से भी इसकी पुष्टि नहीं होती[२]। इसके विपरीत महाभारत आदि ग्रन्थों में, बदरिकाश्रम में, नर-नारायण-आश्रम की स्थिति की पुष्टि होतीहै। विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी से आज तक वैष्णवतीर्थ के रूप में बदरिकाश्रम की अविच्छिन्न यात्रा की पुष्टि में अनेक साहित्यिक एवं ऐतिहासिक प्रमाण मिलतेहैं[३] ।

जैनसाहित्य

विक्रमपूर्व जैनसाहित्य में उत्तराखण्ड सम्बन्धी सूचनाएं नहीं मिलतीं। विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक के जैन प्राकृतसाहित्य में, सम्भवत: वृहत्कथा के आधार पर, उत्तराखण्ड की तंगणजाति, उसकी रोचक व्यापारिक पद्धति[४] तथा तंगणप्रदेश तक पहुंचने के वंशपथ, शंकुपथ और अजपथ-जैसे संकीर्णमार्गों का रोचक वर्णन मिलताहै[५] ।

जैन संस्कृतसाहित्य से, जो अधिक प्राचीन न होने पर भी, अति प्राचीन गाथाओं पर आधारित है, विदित होताहै कि भरतचक्रवर्ती कैलास की ओर जाते समय उत्तरदिशा के देशों को जीततेहुए वहां तक पहुंचेथे, जहां हिमवान् से गंगाजी गिरतीहै[६]। उनके सेनापतियों ने उत्तराखण्ड के म्लेच्छ किरातराज्य जीतेथे[७]।

उत्तराखण्ड के विद्याधरों के नरेश निमि ने अपनी बहिन सुभद्रा

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० १५१ २-३- देखिए, डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ४८९-४६४ ४- आवश्यकचूर्णि, पूर्व भाग, पृ० १२०; आवश्यक टीका, पृ० ९९-१००; उ० मोतीचन्द्र 'स्टडीज'-पृ० १२४ ५- देखिए, डबराल- 'भोटांतिक', पृ० ४५-४६ ६- आदिपुराण, भाग २, पृ०१२७ ७- आदिपुराण, भाग २, पृ० १२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरतचक्रवर्ती को अर्पित करके उसकी अधीनता स्वीकार करलीथी[१]। उत्तराखण्ड में जहां भरतचक्रवर्ती टिकेथे वहां गंगाजी के शीतलजल और देवदारु की सुगन्धि से सनी वायु बहरहीथी[२]।

पौराणिक साहित्य

पुराणों में उत्तराखण्ड का वर्णन मुख्यतः गंगा-यमुना के तटवर्ती तीर्थों एवं गंगा-यमुना के अवतरण और माहात्म्य के प्रसंग में मिलताहै। सती-दाह, काम-दहन, पार्वती-बिवाह, ऊषा-अनिरुद्ध-बिवाह, गणेश और कार्तिकेय की उत्पत्ति तथा देवीमाहात्म्य में वर्णित घटनाओं का संबंध उत्तराखण्ड से जोड़ाजाताहै।

पुराणों में ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के मिश्रण से ऐसा रूप देदियागयाहै कि उनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध होगईहै। घटनाओं के वर्णन में कालक्रम की सर्वथा अवहेलना, अनेक व्यक्तियों के लिए उनके मुख्य नाम के स्थान पर केवल उनके गोत्र या परिवार-नाम का प्रयोग तथा घटनाओं के साथ भौगोलिक वर्णनों का अभाव आदि कारणों से विशाल पौराणिक साहित्य से ऐतिहासिक तथ्यों को बीनना साधारण कार्य नहीं है।

ब्रह्मपुराण में उत्तराखण्ड से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रसंग निम्नलिखित हैं। गंगोत्पत्ति के प्रसंग में[३] सगर से लेकर भगीरथ तक की गाथा, गंगाजी का भागीरथी नामकरण[४] और माहात्म्य[५], सतीदाह, पार्वती-बिवाह[६], गौतम का कैलास-गमन[७] तथा ऊषा-अनिरुद्ध-बिवाह[८]। इस पुराण में महापंथ में आत्मघात से तुरन्त स्वर्गलोक प्राप्ति का रोचक

१- आदिपुराण, भाग २, पृ० १२६ २- आदिपुराण, भाग २, पृ० १३० ३- ब्रह्मपुराण--अ० ७१ ४- अ० ८ ५- अ० ७३-७५ ६- अ० ३४-३६ ७- अ० ३६ ८- अ० २०४-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख भी मिलता है[1] ।

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में पार्वती के जन्म और विवाह का वर्णन[2] स्वर्गखण्ड में कण्वाश्रम और शकुन्तला-उपाख्यान[3], भगीरथ द्वारा गंगा आनयन[4] बदरिकाश्रम-वर्णन[5], हरिद्वार[6] एवं गंगा- माहात्म्य[7] का विस्तृत उल्लेख है ।

विष्णुपुराण के प्रथम अंश में हम ध्रुव को यमुनातट पर तपस्या करते पातेहैं । शिवपुराण की रुद्रसंहिता में वर्णित समस्त घटनाओं का कार्यक्षेत्र उत्तराखंड है। कनखल में सती-दाह, हिमालय में उमा-जन्म, वहीं उमा-शिव-विवाह, कुमार-जन्म, दैत्य-विनाश, बाणासुर-पराजय, ऊषा-अनिरुद्ध-विवाह की घटनाएं हुईं । कोटिरुद्रसंहिता के अनुसार महाप्रस्थान के समय पांडव केदारेश्वर में पहुँचेथे[8] । उमासंहिता में उसी देवी-माहात्म्य का वर्णन है जो मारकण्डेयपुराण में है। वायवीयसंहिता के पूर्वखंड में सती-जन्म, दक्षयज्ञ-विध्वंस, काली-जन्म आदि का वर्णन है ।

श्रीमद्भागवतपुराण में उत्तराखंड से सम्बन्धित प्रसंग सती-चरित्र[9], भगीरथ द्वारा गंगा-आनयन[10], तथा ऊषा-अनिरुद्ध-विवाह[11] हैं, पर यह स्पष्ट नहीं है कि शोणितपुर कहां था[12] ।

वायुपुराण में ऐसे प्रसंग मैनाक की उत्पत्ति[13], सती दाह, दक्ष यज्ञ-विध्वंस[14], कैलास-मानसरोवर-वर्णन[15], गंगोत्पत्ति[16] और उत्तर के

१- महापथस्य यात्रा च कर्त्तव्या तुहिनोपरि ।
आश्रित्य सत्यं धैर्य्यं च सद्यः स्वर्गप्रदा हि सा ॥ उ० वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, पृ० ६०९ २- अ० ८ ३- अ० १-६
४- अ० १६ ५- अ० २-३ ६- अ० २१-२२ ७- अ० १३, ८२
८- कोटिरुद्रसंहिता--अ० १९ ९- श्रीमद्भागवत्--स्कन्ध, ४, अ० २-७
१०- स्कन्ध, ९, अ० ९ ११- स्कन्ध, १०, अ० ६२-६३
१२- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ८७ १३- वायुपुराण--अ० ३०
१४- अ० ४१ १५-१६- अ० ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कनखल आदि तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन है[१]।

नारदीयपुराण में गंगा-उत्पत्ति[२], गंगा-माहात्म्य[३], तथा गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर बदरिकाश्रम तक के तीर्थों के माहात्म्य[४] का विस्तृत वर्णन है।

अग्निपुराण में मेरुतीर्थ और गंगा-माहात्म्य का वर्णन है[५]। ब्रह्मवैवर्तपुराण में ऐसे प्रसंग गंगोपाख्यान[६], ऊषा-अनिरुद्ध-विवाह[७], कुमार-जन्म[८], सती-दाह, पार्वती-जन्म और मदन-दहन हैं[९]।

बराहपुराण में ऐसे प्रसंग गौरी-उत्पत्ति, गौरी-विवाह, गणेश-जन्म[१०], कार्तिकेय-उत्पत्ति[११] तथा कुब्जाम्रक[१२] से लेकर यमुनातीर्थ[१३] और बदरिकाश्रम तक के तीर्थों के वर्णन से सम्बन्धित हैं[१४]।

स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड में दक्ष-यज्ञ, सती-दाह, पार्वती-जन्म, कुमार-उत्पत्ति, तारक-वध, वैष्णवखंड में बदरिकाश्रम-माहात्म्य के प्रसंग उत्तराखंड से सम्बन्धित हैं। इस पुराण के अनुसार शिवजी ने सन्यासी का रूप धारण करके नारदतीर्थ से भगवान् की प्रतिमा को उठाकर विशालापुरी में स्थापित कियाथा[१५]।

मारकंडेयपुराण में गंगावतार[१६] तथा प्रसिद्ध देवीमाहात्म्य की घटनाएं उत्तराखंड में गंगाजी के तट पर हुईथीं। इस पुराण के अनुसार जब देवता हिमालय में विष्णुमाया की आराधना कररहेथे तो वहां गंगाजी में स्नान

१- वायुपुराण--अ० १११ २- नारदीयपुराण--पूर्वार्द्ध, अ० ११
३- उत्तरार्द्ध-अ० ३९-४३ ४- उत्तरार्द्ध-अ० ६७ ५- अग्निपुराण-अ० १०८-१० ६- ब्रह्मवैवर्त --प्रकृतिखंड, अ० १०; कृष्ण-जन्म खंड--अ० ३४ ७- उत्तरार्द्ध--अ० ११४-१८ ८- गणपति खंड--अ० १ ९-कृष्णजन्मखंड-अ०४६ १०-बराहपुराण--अ०२१-२३
११- अ० २५ १२- अ० १२६ १३- अ० १५४
१४- अ० १४१-४६ १५- वैष्णवखंड--५।२८
१६- मारकंडेयपुराण--अ० ५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने के लिए पार्वती पहुंचीथी[1]। कौशिकी के प्रकट होने पर पार्वती का रंग काला पड़गयाथा और वह हिमालय पर रहनेवाली कालिका के नाम से प्रसिद्ध हुईथी[2]। शुंभ निशुम्भ के भृत्य चंड-मुंड ने यहीं अम्बिका को देखाथा जो अपनी दिव्य कान्ति से हिमालय को उज्ज्वल बनारहीथी[3]। केदारखण्डग्रन्थ ने भी किसी प्राचीन परम्परा के आधार पर गढ़वाल में कालीमठ के पास देवीमाहात्म्य की घटनाओं का वर्णन कियाहै[4]।

वामनपुराण में उत्तराखण्ड सम्बन्धी प्रसंग देवीमाहात्म्य तथा पार्वती-उत्पत्ति[5], प्रह्लाद की तीर्थयात्रा[6] और तीर्थवर्णन हैं[7]।

कूर्मपुराण में ऐसे प्रसंग महालय और केदारादि तीर्थों के वर्णन से सम्बन्धित हैं[8]।

मत्स्यपुराण में ऐसे प्रसंग पुरुरवा द्वारा हिमालय के आश्रम में अप्सराओं की क्रीड़ा देखने[9] और कैलास तथा अलकापुरी[10] के वर्णन से सम्बन्धित हैं।

देवीभागवत में ऐसे प्रसंग देवीमाहात्म्य[11] तथा गंगा-उत्पत्ति[12] से सम्बन्धित हैं।

१- 'इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥—देवीमाहात्म्य, ५।७
एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वति ।
स्नातुमभ्याययो तोये जाह्नव्यां नृपनन्दन !—देवीमाहात्म्य, ५।८४
२- तस्यां विनिर्गतयां तु कृष्णाभूत साऽपि पार्वति ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ।—देवीमाहात्म्य, ५।८८
३-काप्यास्ति स्त्री महाराज ! भासयन्ती हिमाचलम् ।--देवीमाहात्म्य, ५।९०
४- केदारखंड--अ० ८२-८९ ५- वामनपुराण--अ० १७-२१
६- अ० ८३-८४ ७- अ० ३४-३७ ८- कूर्मपुराण--अ० ३७
९- मत्स्यपुराण--अ० ११६-१९ १०- अ० १२० ११- देवीभागवत-पुराण--स्कन्ध ५ १२- स्कन्द ८।११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिंगपुराण में सुमेरु आदि पर्वतों[1] तथा सती-दाह और पार्वती-जन्म[2] का वर्णन है।

हरिवंशपुराण में श्रीकृष्ण की कैलासयात्रा और घंटाकर्ण की समाधि का वर्णन है[3]।

देवीपुराण में केदारमाहात्म्य और देवीमाहात्म्य सम्बन्धी आख्यान उत्तराखण्ड से सम्बन्धित हैं[4]।

केदारखंड

उत्तराखण्ड की पावनता की प्रशंसा में केदारखण्ड और मानसखण्ड नामक दो ग्रन्थ हैं, जो अपने को स्कन्दपुराण का अंश बतलातेहैं[5]। नारदपुराण में दीगई स्कन्दपुराण की विषयानुक्रमणिका से मिलाने पर[6] तथा अनेक वाह्य और अन्त: साक्ष्यों के आधार पर विचार करने से ये दोनों ग्रन्थ क्षेपक सिद्ध होतेहैं[7]।

केदारखण्ड के दो संस्करण प्रकाशित होचुकेहैं। मानसखण्ड अभी तक अप्रकाशित है। केवल उसका सार-मात्र अंग्रेजी में प्रकाशित हुआहै। स्कन्दपुराण के बम्बई और लखनऊ संस्करणों में उपरोक्त दोनों ग्रन्थों का कुछ भी अंश नहीं मिलता। कल्याण के सं० स्कन्दपुराणांक में भी इन क्षेपकग्रन्थों की सामग्री नहीं मिलती।

केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार शिवाजी ने पार्वतीजी से हिमालय के पांच खण्डों—नेपाल, मानस, केदार, जालन्धर और कश्मीर का वर्णन इन्हीं नामों के पांच प्रस्तावों में कियाहै[8]।

१- लिंगपुराण--अ० ४८-५० २- अ० ६६-१०६ ३- हरिवंश-भविष्यपर्व, अ० ७३-८५ ४- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन--पृ०९३

५- 'इति स्कान्दे केदारखंडे एकाशीतिसाहस्त्रे ...' केदारखंड के अध्यायों की पुष्पिका ६-७- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन-- पृ० १०१-१३

८- केदारखंड-४०।२८-२९,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर श्वेतपर्वत (महाहिमालय) तक तथा तमसा (टोंस) के तट से लेकर बौद्धाचल या नन्दापर्वत (अथवा नन्दादेवी) तक विस्तृत पचास योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा क्षेत्र केदारमण्डल साक्षात् स्वर्गभूमि है[1]। यह क्षेत्र भूमि के अन्य भागों से अतिपुनीत है और देवता भी इसके लिए तरसते हैं[2]।

इस ग्रन्थ के अनुसार केदारमण्डल के विभिन्न तीर्थों में ध्रुव, सुद्युम्न, रोहिताश्व के पौत्र चंचु, सगर, दिलीप, भगीरथ, गोरक्ष, गौरी, प्रह्लाद, कुंभज, पांडु, नारद, रावण, कर्ण, देवतागण, नहुष, परशुराम, कार्तवीर्य, द्रोण, दक्ष, वीरभद्र, राम, लक्ष्मण, गरुड़, कालयवन, जटायु, कुबेर, अर्जुन, शिबि, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, कपिल, लोमश, वशिष्ट आदि ने तपस्या की थी[3]।

१- 'आगंगाद्वारमर्यादं श्वेतांत वरवर्णिनि !
तमसातटतः पूर्वमर्वाग्बौद्धाचलं शुभम् ।
केदारमण्डलं ख्यातं भूम्यास्तद्भिन्नकं स्थलम्' केदारखंड-४०।२८-२९
तथा—' नन्दापर्वतमारभ्य यावत्काष्टगिरिर्भवेत् ।
तावत्केदारकंक्षेत्रं शिवमन्दिरमुत्तमम् ॥' केदारखंड--१०१।३०

२- इति तत् परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।
पंचाशतयोनायामं त्रिशद्योजनविस्तृतम् ॥
इदं वे स्वर्गगमनं न पृथिवी तामहो विभो । केदारखंड--४०।२७-२८

३- देखिए, केदारखंड--क्रमशः ५।५६; १२।७; २६।७; २९।९७; ३०।३; ३४।१२; ४२।५२-५३; ५८।३५-३६; ५८।४०-४१; ५८।७०-७१; ५८।८५; ६३।५; ८२।१५-१६; ८१।४९; ८१।१०८; ९२।२९; ९३।९०; ९८।३७-३८; १०५।७; १०५।८९; १०८।७; १२४।३५-३६; १५८।६३; अ० १२९; १३२।१६; १६०।१८; १७२।१०; १७२।१३; १८८।१२; १९४।३२; १९४।४०; २०२।३; २०४।९; २०४।१२; २०६।४-७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस ग्रन्थ में वर्णित केवल थोड़े-से प्रसंग इतिहास आदि की दृष्टि से रोचक हैं।

अन्य पौराणिक ग्रन्थों के समान यह ग्रन्थ भी राजा सगर द्वारा शल्लक, कुरु, खश, कलिंग, तैलिंग, महाराष्ट्र, गुर्जर आदि जनपदों की विजय का उल्लेख करताहै[१]। इसके अनुसार श्रीक्षेत्र (श्रीनगर) में सत्यसंध नरेश ने कोलासुर का वध कियाथा[२]।

वशिष्ट और अरुन्धती ने हिमदाव में कई वर्षों तक किरातों की टोलियों के साथ निवास कियाथा। वे भी किरातों के समान काले कम्बल की गाती पहनते, हाथ में धनुष बाण लिए और कमर में कटारी खूंसे मृगों का पीछाकरते फिरतेथे। वे शरीर और उपवीत तक को स्वच्छ नहीं रखतेथे तथा स्नान, संध्या की सुध ही भूलगएथे[३]।

केदारखण्ड के निम्न उल्लेख बड़े रोचक हैं। इस ग्रन्थ में घोषणा कीगईहै कि जो व्यक्ति भृगुतुंग के महोच्च शिखर से श्रीशिला पर कूदकर प्राणत्याग करताहै वह तुरन्त परब्रह्म को प्राप्त होजाताहै[४]।

ज्ञानियों में श्रेष्ठ व्यासजी ने बदरिकाश्रम में महाभारत की षष्टिलक्षसंहिता की रचना कीथी[५]। जनमेजय ने ब्रह्महत्या के निवारण के लिए बदरिकाश्रम में व्यासपुस्तक नामक स्थान पर व्यासजी से महाभारत की कथा सुनीथी[६]।

इस ग्रन्थ में देवप्रयाग की प्रशंसा एक सहस्र से अधिक श्लोकों में

१- केदारखंड--२७।३-१२

२- 'सत्यसंधेन वै राज्ञा निहतः कोलरूपधृक्'।
तथा, 'अतो जेष्यसि दुष्टं हि राक्षसं कोलरूपिणम्'।—केदारखंड, १७२।१५; १७८।४४ ३- केदारखंड--२०६।४-७

४- केदारखंड--४२।८ ५- केदारखंड--६०।४०-४१ ६- केदारखंड--६१।८५-८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीगईहै। उसे समस्त तीर्थों का शिरोमणि[1] तथा समस्त पापों का विनाशक कहागयाहै। यहां निवास करनेवालों के भाग्य की बार-बार प्रशंसा कीगईहै[2]। ऐसे पुनीत तीर्थ में परदारागमन करनेवालों की भी डटकर भर्त्सना कीगईहै[3]।

तीनों लोकों में विश्रुत इस पावन क्षेत्र में एक शिवतीर्थ है, जो शूद्र को भी ब्राह्मणत्व प्रदान करदेताहै[4]। यहीं क्षत्रिय विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुईथी[5]। इसी तीर्थ के सेवन से ऋष्यश्रृंग की पत्नी क्षत्रिया शान्ता ब्राह्मणी बनसकीथी[6]। निश्चय ही इस महातीर्थ द्वारा प्रदत्त सुविधा से लाभ उठाकर अनेक ऋषिपुत्रों ने अपनी खश-दांटियों को ब्राह्मणी बनायाहोगा!

प्राचीनकाल में किस प्रकार बदरीनाथ के पंडे अवन्ती-जैसे सुदूरस्थ नगरों तक पहुँचकर जनता को बदरीनाथ की यात्रा के लिए प्रोत्साहित करतेथे, इसकी एक रोचक कथा को भी इस ग्रन्थ में स्थान दियागयाहै[7]।

मानसखंड

मानसखंड में उत्तराखंड के पूर्वी भाग कुमांऊं या कूर्मांचल का वर्णन है, जिसे शक्तिसंगमतंत्र में कूर्मप्रस्थ कहागयाहै[8]। मानसखण्ड भी

१- 'देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा भवान्।
तथा वै सर्वतीर्थानां देवतीर्थं प्रशस्यते'!

२- 'अहोभाग्यमहोभाग्यं वसतां देवतीर्थके'! केदारखंड--१४६।३०-३१

३- केदारखंड--१५०।७०-७५ ४- केदारखंड--१५३।४७

५- 'विश्वामित्रोऽपि तत्रैव ब्राह्मणत्वमुपेयिवान्'। केदारखंड-१५३।४८

६- केदारखंड--१५३।५० ७- केदारखंड--अ० ६२

८- 'कूर्मप्रस्थं महेशानि! कथ्यते शृणु साम्प्रतम्।
गोकर्णेश दक्षभागे कामाख्या पूर्वगोचरः।
उत्तरे मानसेशः स्यात् पश्चिमे शारदा भवेत्'। शक्तिसंगमतंत्र, ८।१२-१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना वर्णन विष्णु के कूर्म अवतार और सृष्टि की उत्पत्ति से आरम्भ करताहै[१]। वेणु के शरीर से पृथु की उत्पत्ति होजाने पर उसने पृथ्वी को फिर से वनष्पति उत्पन्न करने के लिए वाध्य किया। पृथु ने पर्वतादि तोड़कर ऊंची-नीची भूमि को चौरस और कृषियोग्य बनाया[२]। कालान्तर में अयोध्यानरेश ऋतुपर्ण[३], राम, लक्ष्मण और सीता[४] तथा द्वापर में दुःशासन भी कूर्माचल में पहुंचेथे[५]।

दक्षयज्ञ के पश्चात् शिवाजी ने जागीश्वर में तपस्या कीथी[६]। यहीं उनका लिंगपतन हुआ[७] और यहीं कार्तिकेय का जन्म हुआ[८]। मानसखण्ड शिव-पार्वती-बिवाह का स्थान वैजनाथ[९] एवं त्रिभांडेश्वर[१०] में बतलायाहै। इस ग्रन्थ के अनुसार द्रोण[११], कौशिक[१२], सत्यव्रत[१३], गर्ग[१४], मारकंडेय[१५] तथा सुतप ब्रह्म ने[१६] इस क्षेत्र में तपस्या कीथी।

अत्रि, पुलह और पुलस्त्य इन तीन ऋषियों ने त्रिषिसरोवर (नैनीताल) का[१७] तथा भीमसेन आदि ने कुमांऊं के अन्य सरोवरों का निर्माण कियाथा[१८]। पातालभुवनेश्वर में ऐसी गुफाएं हैं जिनसे होकर घड़ी भर में उज्जयिनी में महाकाल तक, सेतुबन्ध-रामेश्वर तक, और गोदावरी, गंगासागर तथा केदार आदि तीर्थों तक जासकतेहैं[१९]।

इस ग्रन्थ में काशीनरेश धन्वन्तरि को दत्तात्रेय ने काशी से कैलास-मानसरोवर जाने और यहां से लौटने का मार्ग बतलायाहै[२०]।

१- उ० पांडे--कुमांऊं का इतिहास-पृ० १६२ २- उ० पांडे-उपरोक्त, पृ० १६३ ३- उ० पांडे--उपरोक्त, पृ० १७४ ४- उ० पांडे-उपरोक्त, पृ० १७१ ५- उ० पांडे--उपरोक्त, पृ० १६९-७० ६-८- उ० पांडे-उपरोक्त, पृ०१६४-६५ ९- उ० पांडे--उपरोक्त, पृ०१६६ १०- उ० पांडे--उपरोक्त, पृ०१६९ ११-१६- उ०पांडे--उपरोक्त, पृ० १७०, ७१, ७२ १७- उ० पांडे--उपरोक्त, पृ०१७१ १८- उ०पांडे--उपरोक्त, पृ०७२ १९- उ०पांडे-उपरोक्त, पृ०१७४-७५ २०- उ० पांडे--उपरोक्त, पृ० ७६७-६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मशास्त्र

धर्मशास्त्रों में यत्र-तत्र उत्तराखण्ड की पावनता के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख मिलतेहैं। व्यासस्मृति[1] और शंखस्मृति[2] में उत्तराखण्ड के हरिद्वार, केदार और महालय तीर्थों का उल्लेख है। बौधायन उत्तर के पर्वतीय लोगों के भोजन, पशु, और व्यापारिक सामग्री से परिचित थे[3]। कतिपय तन्त्रों में भी उत्तराखण्ड के तीर्थों का सिद्धस्थानों के रूप उल्लेख मिलताहै[4]।

इतिहास, रामायण

रामायण और महाभारत, महाकाव्य तथा धर्मसंहिता होने के अतिरिक्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री से भरे हैं। रामायण के अनुसार शिवजी ने हिमालय में गंगाजी के तट पर तपस्या कीथी[5]। और वहीं तपस्या में विघ्न डालने पर कन्दर्प को भस्म कियाथा[6]। रामायण में भी गंगावतरण की कथा आतीहै[7]।

महाभारत

महाभारत में उत्तराखण्ड के प्राचीन इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रमाणिक सामग्री बिखरीपड़ीहै, जिसकी ऐतिहासिकता की पुष्टि पुरातात्विक, ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा अन्य स्रोतों से भी होजातीहै।

१- ' उत्तर के लोग, मदिरा पीतेहैं, ऊन, भेड़-बकरियों और अस्त्र-शस्त्रों का व्यापार करतेहैं, तथा समुद्र तक पहुंचतेहैं, इसलिए वे जातिच्युत होगएहैं' ।—बौधायन, २।१।२।२

२- व्यासस्मृति, ४।१५ ३- शंखस्मृति, १४।२७-२८

४- कुब्जिकातन्त्र, पटल ७; महानीलतन्त्र, पटल ५; प्राणतोषिणी, पृ० ४४३-४७ ५-रामायण, १।२३।१० ६-रामायण, १।२३।१०-१४

७- रामायण, १।३५।१०-१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवान वेदव्यास ने हिमालय की पवित्र गुफा में, जिसकी पहचान बदरिकाश्रम के समीप स्थित व्यासगुफा से कीजातीहै, स्नान आदि से पवित्र हो, कुशासन पर बैठकर ध्यानयोग में स्थित हो धर्मपूर्वक महाभारत इतिहास का निर्माण कियाथा[१]।

निश्चय ही महाभारतकार को उत्तराखण्ड अत्यन्त प्रिय था। उत्तराखण्ड की नदियों[२], पर्वतों[३], तीर्थों[४], महत्त्वपूर्ण स्थानों[५], तथा मार्गों की कठिनाइयों का[६], उसके जलवायु[७], वनस्पति[८], और खनिजों[९] का, उसके पशु-पक्षियों[१०], यक्ष-राक्षस और मानवेतर शक्तियों

१- आदि, १।२८ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

२- महाभारत में उत्तराखण्ड की नदियां—अपरनन्दा, अलकनन्दा, अश्वरथा, आवर्तनन्दा, इन्द्रतोया, कालिन्दी, गंगा, जाह्नवी, तमसा, नन्दा, भागीरथी, मन्दाकिनी, मालिनी, रथस्था, शैलोदा; सरोवर—इन्द्रद्युम्न, विन्दुसर, मानसरोवर

३- पर्वत—कालकूट, कालशैल, कैलास, क्रौंच, गन्धमादन, नागशत, नन्दापर्वत, नीलपर्वत, ब्रह्मतुंग, भृगुतुंग, मन्दराचल, मानसद्वार, माल्यवान्, मुंजपृष्ट, मेरु, मैनाक, यामुन, शतशृंग, श्वेतपर्वत, सप्तशृंग, हेमकूट

४- तीर्थ—अगस्त्यबट, अग्निशिर, कनखल, कुब्जाम्रक, कुशावर्त, कैलास, गंगाद्वार, गंगामहाद्वार, नागतीर्थ, बलाका, बसुधारा, बिल्वक, भृगुतीर्थ; आश्रम—अंगिराश्रम, कपिलाश्रम, कण्वाश्रम, बदरिकाश्रम, भरद्वाजाश्रम

५- स्थान तथा जनपद---एकचक्रा, कुलिन्द, खशदेश, चीरबासा, जतुगृह, तंगण, देववन, नन्दन, परतंगण, भरद्वाज, भृगुतुंग, यामुन, लाक्षागृह, शोणितपुर, स्रुघ्न, पाठान्तर सुह्म

६- मार्गों की कठिनाइयां-वन, अ० अ० १४२-४४

७- तूफानों का वर्णन--वन, १४३।७-१३

८- वनस्पति-वन, १५८।३६-५६

९- खनिज-स्वर्णचूर्ण, रंगीन पाषाण

१०- पशु-व्याघ्र, सिंह, हाथी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का[1] उसमें बसी जातियों[2], एवं उनकी व्यापारिक सामग्री[3] और वीरत्व का[4] जितना विस्तृत एवं रोचक तथा यथातथ्य वर्णन महाभारत में मिलताहै, उतना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं।

महाभारत के दाक्षिणात्यपाठ के सम्पादक तो उत्तराखण्ड की पावन-भूमि पर इतने मुग्ध थे कि उन्होंने उत्तराखण्ड सम्बन्धी प्रत्येक प्रसंग में कुछ न कुछ वृद्धि करके उसे उत्तरभारतीयपाठ की अपेक्षा अधिक रोचक और विस्तृत बनादियाहै[5]।

१- पक्षी-कलपिक, कोकिल, चकवा, चकोर, चातक, तोता, पुंस्कोकिल (मोनाल) प्रियक, भृंगराज, मोर, हारिल २- यज्ञ-राक्षस आदि वन, १३९।४-१० ३-जातियां-एकासन--खश, किरात, कुलिन्द(कुणिन्द), ज्योहा, झष, तुषार, तंगण, दरद, दीर्घवेणु, परतंगण, पशुप, प्रघस, पारद ४- व्यापारिक सामग्री--औषधि, चमर, पवित्र जल, मधु, मालायोग्य रत्न, स्वर्णचूर्ण ५- वीरत्व-कर्ण, अ०८५; द्रोण, अ०१२१
६- देखिए, हिमालय की पवित्र गुफा में व्यासजी द्वारा महाभारत की रचना--आदि, १।२८ से आगे; कण्वाश्रम के तपस्वियों का विस्तृत वर्णन--आदि, ७४।१२ से आगे; कुन्ती द्वारा वीर पुत्र उत्पन्न करने हेतु वायुदेव का आवाहन--आदि, १२२।१० से आगे; पांडु-निधन पर कुन्ती का शोक--आदि, १२४।२२ से आगे; कश्यप द्वारा पांडु की अन्त्येष्टि आदि, १२४।३१ से आगे; गंगाद्वार में नागकन्या उलूपी के गर्भ से इरावन् का जन्म--आदि, २१३।३६ से आगे; अर्जुन द्वारा मेरु, मन्दराचल के मध्य शैलोदा के तट पर बसे कुणिन्द, खश, तंगणादि जातियों की विजय--सभा, २८।६ से आगे; उत्तराखंड के कुणिन्दनरेश द्वारा युधिष्ठिर को दिव्यशंख की भेंट--सभा, ५१।७ से आगे; श्रीकृष्ण द्वारा शोणितपुर में प्रवेश--सभा, ३८।२९ से आगे; उत्तराखंड के दरद, तुषार, खश आदि आयुधजीवी म्लेच्छों का सात्यकि से प्रस्तर-युद्ध--द्रोण, १२१।४० से आगे; आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाभारत के अनुसार भारत को यह नाम देनेवाले भरत और उसकी माता का जन्म गढ़वाल में मालिनीतट पर स्थित कण्वाश्रम में हुआथा। पांडवों का जन्म गढ़वाल में गन्धमादनश्रेणी के निकट स्थित सप्तश्रृंग पर हुआथा। इस महाग्रन्थ में पांडु को नागपुराधिप और नागपुरसिंह कहागयाहै[1]। यह नागपुर कहां था? क्या इसे गढ़वाल का नागपुर मानाजासकताहै? विद्वानों को इसकी छानबीन करनीचाहिए और नागपुर के विस्तृत ध्वंसावशेषों की विधिपूर्वक खुदाई करनी चाहिए।

वारणावत, जहां पांडवों के विनाश के लिए जतुगृह बनायागयाथा, हिमालय की तलहटी में ऐसे स्थान पर स्थित था जहां से भागकर एकचक्रानगरी (चकरौता) पहुँचने के लिए पांडवों को गंगाजी को पार करनापड़ाथा।

उत्तर की दिग्विजय में अर्जुन ने उत्तराखण्ड को जीताथा। राजसूय में द्विजश्रेष्ठ कुणिन्दनरेश[2] ने युधिष्ठिर को दिव्यशंख अर्पित कियाथा। उत्तराखंड के खश, तंगणादि म्लेच्छगणाध्यक्ष राजसूय में सुवर्णादि उपायन लेगएथे। उत्तराखंड की तीर्थयात्रा के समय पांडव कुणिन्दनरेश सुबाहु के अतिथि बनेथे। उत्तराखंड में ही अर्जुन को पाशुपत की प्राप्ति हुईथी। जयद्रथवध के लिए मंत्रणाकरते समय पांडवशिविर में

१- महाभारत, वर्ष ३, अंक १२, पृ० १६५

२- क्षेपक जैमिनीयाश्वमेधपर्व के अनुसार केरलनरेश को युद्ध में वीरगति प्राप्त होने से उसकी रानी अपने अबोध बालक चन्द्रहास को छोड़कर सती होगई। धाय ने चन्द्रहास को लेकर कुन्तलपुर में शरण ग्रहण की। किन्तु अल्पकाल में ही उसकी मृत्यु होजाने के कारण बालक चन्द्रहास को वन में कुलिन्दनरेश ने पालापोसा। इस कथा का कुलिन्दनरेश उत्तराखंड का कुलिन्द (कुणिन्द) नरेश नहीं होसकता। देखिए, जैमिनीयाश्वमेधपर्व--अ० ५०-५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुणिन्दनरेश उपस्थित थे। कुणिन्दकुमार पांडवपक्ष में लड़तेहुए वीरगति को प्राप्त हुएथे। उत्तराखंड के खश आदि आयुधजीवी म्लेच्छ सम्भवतः दुर्योधन से धन प्राप्तकरके सात्यकि से प्रस्तरयुद्ध करतेहुए नष्ट हुएथे।

कण्वाश्रम

आखेट हेतु आएहुए दुष्यन्त ने नन्दनवन के समान एक मनोहर वन देखा जो बेल, आंक, खैर, कैथ और धव (धौड़, बाकली) आदि के वृक्षों से भरपूर था[1]। पर्वत की चोटी से गिरेहुए बहुत-से शिलाखंड वहां इधर-उधर पड़ेथे। अनेक योजन तक फैले उस वन में कहीं जल या मनुष्य का पता नहीं चलताथा[2]।

यह वन सर्वत्र मृग और सिंह आदि भीषण जन्तुओं तथा अन्य वनवासी जीवों से भराहुआथा। नरश्रेष्ठ राजा दुष्यन्त ने सेवक और सैनिकों के साथ नाना प्रकार के पशुओं का आखेट करतेहुए उस वन को रौंदडाला[3]।

वहां कितने ही व्याघ्र-स्वभाव के नृशंस जंगली मनुष्य भूखे होने के कारण कुछ मृगों को कच्चे ही चबागए। कितने ही वन में विचरण करनेवाले व्याध वहां आग जलाकर मांस पकाने की अपनी रीति के अनुसार मांस को कूटकूटकर रांधनेलगे। बड़े-बड़े जंगली हाथियों ने वहां भागते समय बहुत से मनुष्यों को कुचलडाला[4]।

एक हिंसक पशु का पीछा करतेहुए राजा दुष्यन्त ने दूसरे वन में प्रवेश किया। उस वन के दूसरे छोर में पहुंचने पर उन्हें एक महत्शून्य

१- आदि, ६९।२०

२- विषमं पर्वतस्रस्तैरश्मभिश्च समावृतम्।
निर्जलं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम्॥ आदि, ६९।१८

३- आदि, ६९।१९-२० ४- आदि, ६९।२८-३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(बहुत बड़ा ऊसर मैदान) मिला जहां वृक्ष आदि नहीं थे।

उस वृक्षशून्य ऊसर भूमि को लांघकर वे दूसरे विशाल वन में जापहुंचे जो अनेक उत्तम आश्रमों से सुशोभित था[1]।

देखने में अति सुन्दर होने के साथ ही वह मन में अद्भुत आनन्दोल्लास की सृष्टि करनेवालाथा। उसमें शीतल वायु चलरहीथी। वहां वन में फूलों से भरे वृक्ष सब ओर उसकी शोभा बढ़ारहेथे। वहां अति कोमल घास उगीथी[2]।

वह वन मालिनीनदी के कछार पर फैलाहुआथा। ऊंची ध्वजाओं के समान ऊंचे वृक्षों से भराहोने के कारण अत्यन्त मनोहर जानपड़ताथा। वन की शोभा को देखतेहुए राजा की दृष्टि एक उत्तम आश्रम पर पड़ी जो अत्यन्त मनोरम था[3]।

नाना प्रकार के वृक्षों से भरपूर उस आश्रम में स्थान-स्थान पर अग्निहोत्र की अग्नि प्रज्वलित होरहीथी। उसके प्रति राजा के हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न होगई।

वहां अनेक त्यागी-विरागी यति, वालखिल्य ऋषि तथा अन्य मुनिगण निवास करतेथे। अनेक यज्ञशालाएं उस आश्रम की शोभा बढ़ारहीथीं। वहां इतने फूल झड़कर गिरेथे कि उनके बिछौने-से बिछगएथे।

बड़े-बड़े तुन के वृक्षों से उस आश्रम की शोभा बहुत बढ़गईथी। वह आश्रम सुखद एवं स्वादिष्ट जलवाली पुण्यसलिला मालिनीनदी के दोनों तटों पर फैला था।

मालिनी में अनेक प्रकार के जलपक्षी निवास करतेथे, तथा तटवर्ती तपोवन के कारण उसकी मनोहरता और भी बढ़गईथी। वहां विषधर सर्प और हिंसक वनजन्तु भी सौम्यभाव से रहतेथे। सब ओर से अत्यन्त मनोरम वह आश्रम देवलोक-जैसा प्रतीत होताथा। उसके बीच

१- आदि, ७०।१-२   २- आदि, ७०।३-४   ३- आदि, ७०।१७-१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुण्यसलिला मालिनीनदी समस्त प्राणियों की जननी-सी विराज रहीथी। उसके तटप्रान्त में किन्नरों के निवासस्थान थे।

टापुओं से युक्त तथा सुरम्य तटवाली मालिनीनदी से सुशोभित वह आश्रम गंगानदी से शोभायमान् नर-नारायण के आश्रम-सा जान पड़ताथा[1]।

दूसरे ब्रह्मलोक के समान उस आश्रम में श्रेष्ठ ऋग्वेदी ब्राह्मण पद और क्रमपूर्वक ऋचाओं का पाठ कररहेथे। नरश्रेष्ठ दुष्यन्त ने वहां अनेक प्रकार के यज्ञसम्बन्धी कर्मों में पढ़ीजातीहुई वैदिक ऋचाओं को सुना[2]।

यज्ञविद्या और उसके अंगों की जानकारी रखनेवाले यजुर्वेदी विद्वान् भी आश्रम की शोभा बढ़ारहेथे। नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करनेवाले सामवेदी महर्षियों के द्वारा वहां मधुरस्वर से सामवेद का गान होरहाथा। मन को संयम में रखकर नियमपूर्वक उत्तम व्रत का पालन करनेवाले सामवेदी और अथर्ववेदी महर्षि भारुण्डसंज्ञक साममंत्रों के गीत गाते और अथर्ववेद के मन्त्रों का उच्चारण करतेथे, जिनसे उस आश्रम की बड़ी शोभा होरहीथी[3]।

श्रेष्ठ अथर्ववेदीय विद्वान् तथा पूगयज्ञिय नामक साम के गायक सामवेदी महर्षि पद और क्रमसहित अपनी-अपनी संहिता का पाठ करतेथे। शब्दसंस्कार से सम्पन्न दूसरे द्विजबालक स्थान, करण और प्रयत्न का ध्यान रखतेहुए संस्कृतवाक्यों का उच्चारण कररहेथे। इन सबके तुमुल शब्दों से गूंजताहुआ वह सुन्दर आश्रम द्वितीय ब्रह्मलोक के समान सुशोभित होरहाथा[4]।

यज्ञवेदी की रचना के ज्ञाता, क्रम और शिक्षा में कुशल, न्याय के तत्व और आत्मानुभव से सम्पन्न, वेदों के पारंगत, परस्पर विरुद्ध

१- आदि, ७०।१९-२९ २- आदि, ७०।३७ ३- आदि, ७०।३८-३९
४- आदि, ७०।४०-४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीत होनेवाले अनेक वाक्यों की एकवाक्यता करने में कुशल तथा विभिन्न शाखाओं की गुणविधियों का एक शाखा में उपसंहार करने की कला में निपुण, उपासना आदि विशेष कार्यों के ज्ञाता, मोक्षधर्म में तत्पर, अपने सिद्धान्त की स्थापना करके उसमें शंका उठाकर उसके परिहारपूर्वक उस सिद्धान्त के समर्थन में परम प्रवीण, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष तथा शिक्षा और कल्प—वेद के इन छहों अंगों के विद्वान्, पदार्थ, शुभाशुभ कर्म, सत्व, रज, तम आदि गुणों को जाननेवाले तथा कार्य (दृश्यवर्ग) और कारण (मूलप्रकृति) के ज्ञाता, पशु-पक्षियों की बोलियां समझनेवाले व्यासग्रन्थ का आश्रय लेकर मंत्रों की व्याख्या करनेवाले तथा विभिन्न शास्त्रों के प्रमुख विद्वान् वहां रहकर जो शब्दोच्चारण कररहेथे, उन सबको राजा दुष्यन्त ने सुना। वहां प्रमुख लोकायतों की बातें भी आश्रम में चारों ओर सुनाईदेरहीथीं[१]।

दुष्यन्त ने वहां नियमपूर्वक उत्तम एवं कठोर व्रत का पालन करने वाले श्रेष्ठ एवं बुद्धिमान् ब्राह्मणों को जप और होम में लगेहुए देखा। वहां प्रयत्नपूर्वक तैय्यार किएहुए सुन्दर एवं विचित्र आसनों को तथा द्विजों द्वारा देवालयों की पूजापद्धति को देखकर दुष्यन्त ने ऐसा समझा कि मैं ब्रह्मलोक में आपहुंचाहूं[२]।

वह श्रेष्ठ एवं शुभ आश्रम कश्यपनन्दन महर्षि कण्व की तपस्या से सुरक्षित तथा तपोवन के उत्तम गुणों से संयुक्त था। राजा उसे देखकर भी तृप्त नहीं होतेथे[३]।

महर्षि कण्व का वह आश्रम, जिसमें वे स्वयं रहतेथे, सब ओर से महान् व्रत का पालन करनेवाले तपस्वी महर्षियों द्वारा घिराहुआथा। वह अत्यन्त मनोहर, मंगलमय और एकान्त स्थान था[४]।

उस आश्रम में बहुत से ऐसे मुनि रहतेथे, जो जल पीकर, वायु पीकर

१- आदि, ७०।४२-४६ २- आदि, ७०।४७-४९ ३- आदि, ७०।५०
४- आदि, ७०।५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा सूखे पत्ते खाकर तपस्या करतेथे अनेक तपस्वी फल-मूलों पर निर्वाह करतेथे। वे सभी जितेन्द्रियं एवं इतने कृश शरीरवाले थे कि उनके शरीर की नस-नाड़ियां स्पष्ट दिखाईदेतीथीं। उत्तम व्रतों का पालन करनेवाले उन महर्षियों में से कुछ तो शिर पर जटा धारण करतेथे और कुछ शिर मुंडाएरहतेथे। कुछ वल्कल धारण करतेथे, कुछ मृगचर्म लपटेरहतेथे[1]।

अर्जुन की उत्तराखण्ड-विजय

अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर उत्तम तिथि, मुहूर्त और नक्षत्र में कुबेर द्वारा पालित उत्तरदिशा को जीतने के लिए प्रस्थान किया[2]।

महाबाहु धनंजय ने अत्यन्त दुःसह पराक्रम प्रकटकिए बिना ही, सरलता से, पहले कुलिन्ददेश के भूपालों को अपने अधीन किया। कुलिन्द, (गढ़वाल-कुमांऊं), कालकूट (कालसी-देहरादून) और आनर्तदेश (तराई) के राजाओं को जीतकर उन्होंने सेनासहित सुमंडल (दुरमंडल, जम्मू) को भी जीतलिया। तदन्तर शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले सव्यसाची ने सुमंडलनरेश को अपने साथ लेकर शाकलद्वीप (स्यालकोट) और राजा प्रतिविन्ध्य पर विजय प्राप्तकरली[3]।

१- आदि, ७४।१२ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

२- सभा, २५।४

३- पूर्वं कुलिन्दविषये वशे चक्रे महीपतीन्।
धनंजयो महाबाहु नातितीव्रेण कर्मणा ॥३॥
आनर्तान् कालकूटान् च कुलिन्दान् च विजित्य सः।
सुमण्डलं च विजितं कृतवान् सह सैनिकम् ॥४॥
स तेन सहितो राजन्! सव्यसाची परंतपः।
विजिग्ये शाकलं द्वीपं प्रतिविन्ध्यं च पार्थिवम् ॥५॥
—सभा, २६।३-५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पराक्रमी वीर पांडवश्रेष्ठ अर्जुन धवलगिरि को लांघकर द्रुमपुत्र के द्वारा सुरक्षित किम्पुरुषदेश में गए जहां किन्नरों का निवास था।[1]

हेमकूट, मेरु और नागोंद्वारा रक्षित देश पर अधिकार करके अर्जुन गन्धमादन को लांघकर केतुमालवर्ष में गए जो देवोपम पुरुषों और सुन्दरी स्त्रियों की निवासभूमि है। वहां से दुर्लभ रत्न लेकर वे मध्यवर्ती इलावर्तवर्ष में लौटआए[2]।

तदनन्तर शत्रुदमन करनेवाले सव्यसाची अर्जुन ने (इलावर्त से) पूर्व की ओर प्रस्थान करके मेरु और मन्दराचल के बीच शैलोदानदी के दोनों तटों पर कीचकवेणु (देवरिंगाल) की रम्य छाया का आश्रय लेकर रहनेवाले खश, झष, नद्योत्, प्रघस, दीर्घवेणिक, पशुप, कुलिन्द, तंगण, परतंगण आदि जातियों को पराजित किया। एवं उनसे रत्नों की भेंट लेकर वे माल्यवान् पर्वत पर चलेगए[3]।

उत्तराखंड से उपायन

द्विजश्रेष्ठ राजा कुणिन्द ने परम बुद्धिमान् धर्मराज-युधिष्ठिर को बड़े प्रेम से एक शंख निवेदन कियाथा। जिसमें सोने का हार जड़ा हुआथा और एक सहस्त्र स्वर्णमुद्राएं मढ़ीगईथीं। वह शंख अपने तेज

१- सभा, २८।१ २- सभा, २८।६ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

३- गत्वा प्राचीदिशं राजन् सव्यसाची परंतपः।
मेरुमन्दरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम्।
ये ते कीचकवेणूनां छायां रम्यामुपासते॥
खशाञ्झषांश्च नद्योतान् प्रघसान् दीर्घवेणिकान्।
पशुपांश्च कुलिन्दांश्च तंगणान् परतंगणान्॥
रत्नान्यादाय सर्वेभ्यो माल्यवन्तं ततो ययो।
—सभा, २८।६ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से प्रकाशित होरहाथा। साक्षात् विश्वकर्मा ने उसे रत्नों द्वारा विभूषित कियाथा[1]।

अन्नदान करने पर स्वतः बजउठताथा। उसके गम्भीर घोष को सुनकर धृष्टद्युम्न, पांडव, सात्यकि और श्रीकृष्ण को छोड़कर शेष समस्त उपस्थित भूपाल तेजोहीन होकर धरा पर गिरपड़ेथे[2]।

उस कुणिन्दनरेश सुमुख (सुबाहु) ने अजातशत्रु युधिष्ठिर के पास भेंट की महत्त्वपूर्ण वस्तुएं एवं नानाप्रकार के वस्त्र तथा सुवर्णादि भी भेजेथे[3]।

उत्तराखण्ड के उत्तरी भागों के निवासी अर्थात् मेरु और मन्दर के बीच बहनेवाली शैलोदानदी के दोनों तटों पर स्थित कीचकवेणु (देवरिंगाल) की रमणीय छाया में विश्राम करनेवाले एकाशन (स्थिरवासी) खश, ज्योहा, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिन्द, तंगण और परतंगण आदि गणाधीश च्यूंटियों द्वारा निकालागया कई द्रोण 'पिपीलिक' स्वर्णचूर्ण, सुन्दर काले एवं चन्द्रमा के समान श्वेत चमर, हिमालय का स्वादिष्ट मधु, उत्तरकुरुदेश से गंगाजल, माला बनानेयोग्य रत्न, कैलास से प्राप्त महाबला ओषधी एवं अन्य भेंट की सामग्री लेकर आएथे, और अजातशत्रु सम्राट युधिष्ठिर के सभाभवन के द्वार पर नम्रतापूर्वक हाथ

१- यश्च स द्विजमुख्येन राज्ञः शंखो निवेदितः।
प्रीत्या दत्तः कुणिन्देन धर्मराजाय धीमते॥
चितं निष्कसहस्रेण भ्राजमानं स्वतेजसा।
रुचिरं दर्शनीयं च भूषितं विश्वकर्मणा॥
—सभा, ५१।७ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

२- सभा, ५१।७ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

३- सुमुखेन बलिर्मुख्यः प्रेषितोऽजातशत्रवे।
कुणिन्देन हिरण्यंच वासांसि विवधानि च॥
—सभा, ५१।७ से आगे दाक्षिणात्यपाठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोड़कर प्रवेश-अनुमति की प्रतीक्षा में खड़ेथे[१]।

उत्तराखंड की तीर्थयात्रा

पांडवों के साथ उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा करनेवाले लोमशऋषि प्रत्यक्षद्रष्टा के रूप में कहतेहैं :—

'भरतवंश के श्रेष्ठ पुरुषो! इस पर्वतराज हिमालय पर आरूढ़ होकर तुम सब अयश फैलानेवाली और नामलेने के अयोग्य अपनी श्रीहीनता को शीघ्र ही दूर भगादोगे।

'युधिष्ठिर! ये कनखल की पर्वतमालाएं हैं, जो ऋषियों को बहुत प्रिय लगतीहैं। ये महानदी गंगाजी सुशोभित होरहीहैं। अजामीढ़-नन्दन! यहां गंगाजी में स्नान करके तुम सब पापों से छुटकारा पाजाओगे[२]'।

'इसके पश्चात् रैभ्य और यवक्रीतका उपाख्यान सुनातेहुए, किन्तु मार्ग के किसी तीर्थ आदि का उल्लेखकिए बिना, लोमशऋषि पांडवों

१- मेरुमन्दरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम्।
ये ते कीचकवेणूनां छायां रम्यामुपासते ॥२
खशा एकाशना ज्योहाः प्रदरा दीर्घवेणवः।
पारदाश्च कुलिन्दाश्च तंगणाः परतंगणाः ॥३
यद् वे पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः।
जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुं पुञ्जशो नृपाः ॥४
कृष्णांल्ललामांश्चमंराञ्छुक्लांश्चान्याञ्छशिप्रभान्।
हिमवत्पुष्पजं चैव स्वादु क्षौद्रं तथा बहु ॥५
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्चाप्यपोढं माल्यमम्बुभिः।
उत्तरादपि कैलासादोषधीः सुमहाबलाः ॥६
पर्वतीया बलिं चान्यमाहृत्य प्रणताः स्थिताः।
अजातशत्रोर्नृपतेर्द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ॥७—सभा, ५२।२-७

२- वन, १३५।१-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ बदरिकाश्रम के निकट के भूखण्ड में (बन्दरभेल में) पहुँच जातेहैं और कहतेहैं---

'भरतनन्दन युधिष्ठिर ! अब तुम उसीरध्वज, मैनाक, श्वेत और कालशैल नामक पहाड़ों को लांघकर आगे बढ़आए । यह देखो, गंगाजी सात धाराओं से सुशोभित होरहीहैं । यह (कालशैल) रजोगुणरहित पुण्यतीर्थ है, जहां सदा अग्निदेव प्रज्वलित रहतेहैं । यह देवताओं की क्रीड़ास्थली है, जो उनके चरणचिह्नों से अंकित है। एकाग्रचित्त होने पर तुम्हें इसका भी दर्शन होगा[1] ।

'कुन्तोकुमार ! अब तुम कालशैल को लांघकर आगे बढ़आए। इसके पश्चात् हम श्वेतगिरि तथा मन्दराचल में प्रवेशकरेंगे, जहां माणिवर यक्ष और यक्षराज कुबेर निवासकरतेहैं । राजन् ! यहां तीव्रगति से चलनेवाले अट्ठासी सहस्र गन्धर्व और उनसे चौगुने किन्नर तथा यक्ष रहतेहैं। उनके रूप एवं आकृति अनेक प्रकार की हैं[2] ।

'वे भांति-भांति के अस्त्र-शस्त्र धारणकरतेहैं और यक्षराज माणिभद्र की उपासना में लग्न रहतेहैं। यहां उनकी समृद्धि अतिशय बढ़ीहुईहै । तीव्रगति में वे वायु की समानता करतेहैं । वे चाहें तो देवराज इन्द्र को भी निश्चय ही अपने स्थान से हटासकतेहैं[3] ।

'तात युधिष्ठिर ! उन बलवान् यक्ष और राक्षसों से सुरक्षित रहने के कारण ये पर्वत बड़े दुर्गम हैं । अतः तुम विशेषरूप से एकाग्रचित होजाओ । यहां कुबेर के सचिवगण तथा अन्य रौद्र और मैत्र नामक राक्षसों का सामना करनापड़ेगा, अतः तुम पराक्रम के लिए तैयार रहो[4] ।

'राजन् ! उधर छै योजन ऊंचा कैलासपर्वत दिखाईदेताहै, जहां देवता आयाकरतेहैं । भारत ! उसी के निकट विशालापुरी (बदरिकाश्रम तीर्थ) है[5] ।

'कुन्तीनन्दन ! कुबेर के भवन में अनेक यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग,

१- वन, १३९।१-४ २-४- वन, १३९।५-१० ५- वन, १३९।११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुपर्ण तथा गन्धर्व निवास करतेहैं। तुम भीमसेन के वल और मेरी तपस्या से सुरक्षित हो। तप एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक रहतेहुए आज इन तीर्थों में स्नान करो[१]।

'राजा वरुण, युद्धविक्रमी यमराज, गंगा-यमुना तथा यह पर्वत तुम्हें कल्याण प्रदान करें। महाद्युते! मरुद्गण, अश्वनिकुमार, सरितायें और सरोवर भी तुम्हारा मंगल करें। देवताओं, असुरों तथा वसुओं से भी तुम्हें कल्याण की प्राप्ति हो[२]।

'देवि गंगे! मैं इन्द्र के सुवर्णमय मेरुपर्वत से तुम्हारा कलकलनाद सुनरहाहूं। सौभाग्यशालिनि! ये राजा युधिष्ठिर अजामीढ़वंशी क्षत्रियों के लिए आदरणीय हैं, तुम पर्वतों से इनकी रक्षा कराओ। शैलपुत्रि! ये इन पर्वतमालाओं में प्रवेश करनाचाहतेहैं, तुम इन्हें कल्याण प्रदान करो[३]'।

युधिष्टिर बोले--'लोमशजी का मत है कि यह प्रदेश अत्यन्त दुर्गम है। अतः यहां अत्यन्त शुद्ध आचार-विचार से रहो। भीमसेन! तुम सावधान रहकर द्रौपदी की रक्षा करो। तात! किसी निर्जनप्रदेश में जब कि अर्जुन हमारे समीप नहीं होता भय का अवसर उपस्थित होने पर द्रौपदी तुम्हारा ही आश्रय लेतीहै[४]'।

तत्पश्चात् महात्मा राजा युधिष्ठिर ने नकुल-सहदेव के पास जाकर उनका मस्तक सूंघा और शरीर पर हाथ फेरा। फिर नेत्रों से आंसू वहातेहुए कहा; 'भैया! तुम दोनों भय न करो और सावधान होकर आगे बढ़ो। भीमसेन! यहां बहुत से वलवान् और विशालकाय राक्षस छिपेरहतेहैं। अत: अग्निहोत्र एवं तपस्या के प्रभाव से ही हम लोग यहां से आगे बढ़सकतेहैं। वृकोदर! तुम वल का आश्रय लेकर अपनी भूख-प्यास मिटादो। फिर शारीरिक शक्ति और चतुरता का आश्रय लो[५]'।

अब वे ऐसे स्थान पर पहुँचगएथे, जहां से आगे रथ नहीं चल

१-३- वन, १३९।१२-१७ ४- वन, १३९।१८-२० ५- वन, १४०।१-२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकतेथे। भीमसेन ने कहा,---'राजन् ! अनेक कन्दराओं से युक्त इस पर्वत पर यदि रथों के द्वारा यात्रा संभव न हो तो हम पैदल ही चलेंगे। आप इसके लिए उदास न हों। जहां द्रौपदी नहीं चलसकेगी, वहां मैं स्वयं उन्हें कन्धे पर चढ़ा लेजाऊंगा। जहां सुकुमार नकुल-सहदेव दुर्गम स्थान में असमर्थ होजायेंगे वहां मैं पारलगाऊंगा'[1]।

इस प्रकार बातचीत करतेहुए वे सब लोग आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर कुलिन्दराज सुबाहु का विशाल राज्य दिखाईदिया।

वहां हाथी-घोड़ों की बहुतायत थी और सैकड़ों किरात, तंगण एवं कुलिन्द आदि जंगली जातियों के लोग निवास करतेथे। वह देवताओं से सेवित देश हिमालय के अत्यन्त समीप था। वहां अनेक प्रकार की आश्चर्यजनक वस्तुएं दिखाईदेतीथीं। राजा सुबाहु ने पांडवों का स्वागत किया[2]।

दूसरे दिन इन्द्रसेन आदि सेवकों, रसोइयों और पाकशाला के अध्यक्ष को तथा द्रौपदी के सारे सामानों को कुलिन्दराज सुबाहु के यहां सौंपकर वे महापराक्रमी पांडव द्रौपदी के साथ धीरे-धीरे पैदल ही चलदिए[3]।

मार्ग में लोमशजी ने कहा---'पांडवो ! यह मार्ग दिव्य मंदराचल की ओर जाएगा। अब तुम लोग उद्वेगशून्य और एकाग्रचित्त होजाओ। यह देवताओं का निवासस्थान है जिस पर तुम्हें चलनाहोगा। यह कल्याणमय जल से भरी पुण्यस्वरूपा महानदी (अलकनन्दा) है, जो देवर्षियों के समुदाय से सेवित है। इसका प्रादुर्भाव बदरिकाश्रम से ही हुआहै[4]।

आकाशचारी महात्मा बालखिल्य तथा महामना गन्धर्वगण भी नित्य इसके तट पर आतेजातेहैं और इसकी पूजा करतेहैं। सामगान

१- वन, १४०।१५-१७ २- वन, १४०।२७-२८ ३- वन, १४०।२९
४- वन, १४२।२-११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करनेवाले विद्वान् वेदमन्त्रों की पुण्यमयी ध्वनि करतेहैं। मरीचि, पुलह, भृगु तथा अंगिरा भी यहां जप एवं स्वाध्याय करतेहैं। देवश्रेष्ठ इन्द्र भी मरुद्गणों के साथ यहां आकर प्रतिदिन नियमपूर्वक जप करतेहैं! उस समय साध्य तथा अश्वनिकुमार भी उनकी परिचर्या में रहतेहैं। तात! तुम लोग इस दिव्यनदी के तट पर चलकर इसे प्रणाम करो[१]'।

महात्मा लोमश का वचन सुनकर सब पांडवों ने संयत चित्त से भगवती आकाशगंगा (अलकनन्दा) को प्रणाम किया[२]।

इसके पश्चात् उन्होंने मेरुगिरि के समान दूर से ही प्रकाशित श्वेतपर्वत को देखा, जो सम्पूर्ण दिशाओं में बिखरा-सा जानपड़ताथा[३]।

तदनन्तर पांडवश्रेष्ठ ब्राह्मणों को आगे किए, द्रौपदी के साथ गन्धमादनपर्वत की ओर प्रस्थित हुए। पर्वत के शिखर पर उन्होंने बहुत-से सरोवर, सरिताएं, पर्वत, वन तथा घनी छायावाले वृक्ष देखे। फल-फूल और मृगों से भरे प्रदेशों से होकर महात्मा पांडवों ने गन्धर्वों और अप्सराओं की प्रियभूमि, किन्नरों की क्रीड़ास्थली तथा ऋषियों, सिद्धों और देवताओं के निवासस्थान गन्धमादनपर्वत की घाटी में प्रवेश किया[४]।

वीर पांडवों के गन्धमादनपर्वत पर पदार्पण करते ही प्रचंड आंधी के साथ बड़े जोर की वर्षा होनेलगी। फिर धूल और पत्तों से भरा हुआ बड़ाभारी बवंडर उठा। जिसने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को भी सहसा आच्छादित करदिया। धूल से आकाश के ढकजाने से कुछ भी सूझ नहीं पड़ताथा। इसलिए वे एक-दूसरे से बातचीत भी नहीं करपातेथे। अन्धकार ने आंखों पर पर्दा डालदियाथा। जिससे पांडव लोग एक-दूसरे के दर्शन से भी वंचित होगए[५]।

१-२- वन, १४२।२-११ ३- वन, १४२।१२ ४- वन, १४३।१-६
५- वन, १४३।७-१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थरों का चूर्ण विखेरतीहुई वायु उन्हें कहीं-से-कहीं खींचलिए जातीथी। प्रचण्ड वायु के वेग से टूटकर निरन्तर धरती पर गिरनेवाले वृक्षों तथा अन्य झाड़ों का भयंकर शब्द सुनाईपड़ताथा। वहां वायु के झोंके से मोहित होकर वे सब के सब मन ही मन सोचनेलगे कि आकाश तो नहीं फटपड़ाहै, पृथ्वी तो नहीं विदीर्ण होरहीहै, अथवा कोई पर्वत तो नहीं फटाजारहाहै[१]।

तत्पश्चात् वे रास्ते के आस-पास के वृक्षों, मिट्टी के ढेरों और ऊंचे-नीचे स्थानों को हाथों से टटोलतेहुए वायु से डरकर यत्र-तत्र छिपनेलगे। उस समय महाबली भीमसेन हाथ में धनुष लिए द्रौपदी को अपने साथ रखकर एक वृक्ष के सहारे खड़ेहोगए। धर्मराज युधिष्ठिर और पुरोहित धौम्य अग्निहोत्र की सामग्री लिए उस महान् वन में कहीं छिपगए। नकुल, अन्यान्य ब्राह्मणलोग तथा महातपस्वी लोमशजी भी भयभीत होकर जहां-तहां वृक्षों की आड़ लेकर छिपेरहे[२]।

थोड़ी देर में जब वायु का वेग कुछ कम हुआ और धूल उड़नी बन्दहोगई, तो बड़ीभारी जलधारा बरसनेलगी। वज्रपात के साथ मेघों की गड़गड़ाहट होनेलगी और मेघमालाओं में चारों ओर चंचल चमकनेवाली बिजलियां संचरण करनेलगीं। तीव्र वायु से प्रेरित हो समस्त दिशाओं को आच्छादित करतीहुई ओलों सहित जल की धाराएं अविराम गति से गिरनेलगीं[3]।

वहां चारों ओर बिखरीहुई जलराशि समुद्रगामिनी नदियों के समान बहनेलगी। वह मिट्टी मिलजाने से मलिन दीखपड़तीथी। उसमें झाग उठरहेथे। फेनरूपी नौका से व्याप्त अगाध जलसमूह को बहातीहुई सरिताएं गिरेहुए वृक्षों को अपनी लहरों से समेटकर जोर-जोर से 'हर-हर' ध्वनि करतीहुई बहरहीथीं[४]।

थोड़ी देर पश्चात् जब तूफान का कोलाहल शान्त हुआ, वायु का

१- वन, १४३।७-१३ २- वन, १४३।१३-१६ ३-४- वन, १४३।१७-२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेग कम एवं सम होगया, पर्वत का सारा जल बहकर नीचे चलागया और बादलों का आवरण दूर होजाने से सूर्यदेव प्रकाशित होउठे तो वे समस्त वीर पांडव धीरे-धीरे अपने स्थान से निकले और गन्धमादनपर्वत की ओर प्रस्थितहुए[1]।

महात्मा पांडव अभी कोसभर ही गएहोंगे कि पांचालराजकुमारी तपस्विनी द्रौपदी सुकुमारता के कारण थककर बैठगई। वह पैदल चलनेयोग्य कदापि नहीं थी। उस भयानक वायु और वर्षा में पीड़ित हो, दुखःमग्न होकर वह मूर्छित होनेलगी। घबराहट से कांपतीहुई कजरारे नेत्रोंवाली कृष्णा ने अपने गोल-गोल और सुन्दर हाथों से दोनों जांघों को थामलिया। केले के वृक्ष की भांति कांपतीहुई वह सहसा पृथ्वी पर गिरपड़ी[2]।

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने देखा कि द्रौपदी के मुख की कान्ति फीकी पड़गईहै और उसका शरीर कृश होगयाहै। तब वे उसे अंक में लेकर शोकातुर हो विलाप करनेलगे। उसी समय धौम्य आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण भी वहां आपहुँचे। उन्होंने युधिष्ठिर को आश्वासन दिया तथा राक्षसों का विनाश करनेवाले मंत्रों के जप और शान्तिकर्म किए[3]।

पांडवों ने अपने शीतल हाथों से बार-बार द्रौपदी के अंगों को सहलाया। जल का स्पर्श करके बहतीहुई वायु ने भी उसे सुख पहुंचाया और उसे धीरे-धीरे कुछ चेत हुआ[4]।

चेत में आने पर दीनावस्था में पड़ीहुई तपस्विनी द्रौपदी को पकड़कर पांडवों ने मृगचर्म के विस्तर पर सुलाया और उसे विश्राम कराया। नकुल और सहदेव ने उसके लाल तलुओं से युक्त और उत्तम लक्षणों से अलंकृत दोनों चरणों को धीरे-धीरे दबाया[5]।

भीमसेन ने द्रौपदी और युधिष्ठिर को आश्वासन देतेहुए

१-२- वन, १४३।२२-२३ ३- वन, १४४।१-४ ४- वन, १४४।६-१८
५- वन, १४४।१९-२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा—'आप मन में खेद न करें। मैं स्वयं राजकुमारी द्रौपदी, नकुल सहदेव और आपको भी लेचलूंगा। हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच भी महान पराक्रमी है। वह मेरे ही समान बलवान है, और आकाश (जैसे ऊंचे पर्वतों) पर चलफिर सकताहै। आपकी आज्ञा होने पर वह हम सबको पीठ पर बिठाकर लेचलेगा[१]'।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर भीमसेन ने अपने राक्षस पुत्र का स्मरण किया। स्मरण करते ही धर्मात्मा घटोत्कच हाथ जोड़ेहुए वहां आ उपस्थित हुआ। उस महाबाहु वीर ने पांडवों तथा ब्राह्मणों को प्रणाम करके, उनके द्वारा सम्मानित हो, अपने भयंकर पराक्रमी पिता से कहा—'महाबाहो! आपने मेरा स्मरण कियाहै और मैं शीघ्र ही सेवा की भावना से आयाहूं। आज्ञा कीजिए[२]।

भीमसेन बोले—'हिडिम्बानन्दन! तुम्हारी माता द्रौपदी बहुत थकगईहैं। तुम इसे कन्धे पर बैठाकर हम लोगों के बीच रहतेहुए आकाश (को छूनेवाले ऊंचे पर्वतीय) मार्ग से इस प्रकार धीरे धीरे लेचलो, जिससे इसे तनिक भी कष्ट न हो[३]।'

घटोत्कच बोला—'अनघ! मैं अकेला ही धर्मराज युधिष्ठिर, पुरोहित धौम्य, माता द्रौपदी और चाचा नकुल-सहदेव को भी वहन करसकताहूं। फिर आज तो मेरे बहुत-से संगी-साथी उपस्थित हैं। आप लोगों को लेचलना हमारे लिए कौन-सी बड़ी बात है[४]'?

ऐसा कहकर वीर घटोत्कच तो द्रौपदी को उठाकर तथा उसके अन्य राक्षस पांडवों और ब्राह्मणों को उठाकर साथ-साथ चलनेलगे। अनुपम परम तेजस्वी महर्षि लोमश अपने ही प्रभाव से दूसरे सूर्य की भांति सिद्धमार्ग (ऊंचे पर्वतीय मार्ग) से चलनेलगे[५]।

अत्यन्त रमणीय वन और उपवनों का अवलोकन करतेहुए वे सब लोग विशाला बदरी (बदरिकाश्रम) की ओर प्रस्थित हुए। उन महा-

---

१-४- वन, १४४।२३-२८ ५- वन, १४५।१-१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेगशाली और तीव्रगति से चलनेवाले राक्षसों पर सवार हो वीर पांडवों ने उस विशाल मार्ग को इतनी शीघ्रता से पूर्ण करलिया मानो वह बहुत छोटा हो[१] ।

उस यात्रा में उन्होंने म्लेच्छों से भरे बहुत-से देश देखे, जो नाना प्रकार के रत्नों की खानों और धातुओं से व्याप्त थे। उन पर्वतीय शिखरों पर बहुत से विद्याधर, बानर, किन्नर, किम्पुरुष और गन्धर्व चारों ओर निवास करतेथे। मोर, चमरीगाय, बन्दर, रुरुमृग, सुअर, गवय (नीलगाय) और भैंस आदि पशु विचररहेथे। वह पर्वतीय प्रदेश अगणित वृक्षों से युक्त था[२] ।

तब पांडवों ने भांति-भांति के आश्चर्यजनक दृश्यों से सुशोभित पर्वतश्रेष्ठ कैलास का दर्शन किया। उसी के निकट उन्हें भगवान नर-नारायण का आश्रम दिखाईदिया जो नित्य फल-फूल देनेवाले दिव्य वृक्षों से अलंकृत था[३] ।

वहां उन्होंने 'गोल तने वाली विशाल और मनोरम बदरी भी देखी, जो स्निग्ध, घनी छाया से युक्त, उत्तम शोभा से सम्पन्न तथा सघन, कोमल और स्निग्ध पत्रों से युक्त थी। वह दीर्घ शाखावाली और ऐसे अत्यन्त स्वादिष्ट फलों से युक्त थी जिनसे मधु की धारा बहतीथी।' वह अनेक ब्राह्मणों से युक्त और महर्षिगणों से सेवित थी[४] ।

उस प्रदेश में डांस और मच्छरों का नाम नहीं था। फल, मूल (कन्द) और जल का बाहुल्य था। वहां की भूमि हरी-हरी घास (बुग्याल) से ढकीहुईथी। देवता और गन्धर्व वहां वास करतेथे। उस प्रदेश का भू-भाग स्वभावतः समतल और मंगलमय था। उस हिमाच्छादित भूमि का स्पर्श अत्यन्त मृदु था। उस प्रदेश में कांटों का कहीं नाम नहीं था[५] ।

१-२- वन, १४५।११-२० ३-५- १४५।११-२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस विशाला बदरी के पास पहुँचकर सब महात्मा पांडव उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ राक्षसों से धीरे-धीरे उतरे[1]।

ब्राह्मणों सहित पांडवों ने नर-नारायण के रमणीक आश्रम का दर्शन किया। वह अन्धकार तथा तमोगुण से रहित तथा पुण्यमय था। वहां धूप नहीं पहुँचतीथी। वह स्थान भूख-प्यास, ताप-शीत आदि दोषों से रहित और सम्पूर्ण शोकों का नाश करनेवालाथा[2]।

वह पावन तीर्थ मनुष्यों के समुदाय से भराहुआ और ब्राह्मी श्री से सुशोभित था। धर्महीन मनुष्यों के लिए वहां प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन था। वह दिव्यआश्रम देवपूजा और होम से अर्चित था। उसे झाड़बुहारकर भलीभांति लीपागयाथा। दिव्य पुष्पों के उपहार सब ओर से उसकी शोभा बढ़ारहेथे[3]।

विशाल अग्निहोत्रगृहों और स्रुक्, स्रुवा आदि सुन्दर यज्ञपात्रों से व्याप्त वह पावन आश्रम जल से भरेहुए बड़े बड़े कलशों और वर्तनों से सुशोभित था। वह सब प्राणियों के शरण लेनेयोग्य था। वहां वेद-मन्त्रों की ध्वनि गूंजतीरहतीथी। वह दिव्यआश्रम सबके रहनेयोग्य और थकावट को दूर करनेवालाथा[4]।

वह शोभासम्पन्न आश्रम अवर्णनीय था। देवोचित कार्यों का अनुष्ठान उसकी शोभा बढ़ाताथा। उस आश्रम में फल-मूल खाकर रहनेवाले, कृष्णमृगचर्मधारी, जितेन्द्रिय, अग्नि तथा सूर्य के समान तेजस्वी और तपःपूत, अन्तःकरण वाले महर्षि, मोक्षपरायण, इन्द्रिय-संयमी, यति तथा महान् सौभाग्यशाली, ब्रह्मवादी, ब्रह्मभूत महात्मा निवास करतेथे[5]।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर पवित्र और एकाग्रचित होकर भाइयों के साथ उन आश्रमवासी महर्षियों के पास गए। युधिष्ठिर को आश्रम में आया देख वे दिव्यज्ञानसम्पन्न सब महर्षि अत्यन्त प्रसन्न होकर

१- वन, १४१।११-२५ २-५- वन, १४५।२६-३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनसे मिले और उन्हें अनेक प्रकार के आशीर्वाद देनेलगे। उन्होंने युधिष्ठिर का विधिपूर्वक सत्कार किया और उनके लिए पवित्र फल-मूल, पुष्प और जल आदि सामग्री प्रस्तुत की[१]।

युधिष्ठिर ने भाइयों और द्रौपदी के साथ इन्द्रभवन के समान मनोरम और दिव्य सुगन्ध से परिपूर्ण उस स्वर्गसदृश्य शोभाशाली, पुण्यमय नर-नारायण-आश्रम में प्रवेश किया। उनके साथ ही वेद-वेदांगों के पारांगत विद्वान् सहस्रों ब्राह्मण (जो साथ आएथे तथा जो नर-नारायण-आश्रम के विभिन्न भागों में रहतेथे और अभी उन्हें मिलेथे) भी प्रविष्ट हुए[२]।

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने वहां भगवान नर-नारायण का आश्रम देखा जो देवताओं और देवर्षियों से पूजित तथा भागीरथीगंगा से सुशोभित था। वहां सुवर्णमय शिरों से सुशोभित और अनेक प्रकार के पक्षियों से युक्त मैनाकपर्वत था। वहीं शीतल जल से सुशोभित बिन्दुसर नामक सरोवर था[3]।

उस वन में सब ओर सुरम्य वृक्ष दिखाईदेतेथे। उनकी शाखाएं फलों के भार से झुकीथीं और अगणित पुंस्कोकिल (मोनाल) पक्षियों से सुशोभित थीं। इन वृक्षों के पत्ते स्निग्ध और सघन थे। उनकी छाया शीतल थी। वे बड़े रमणीय थे[४]।

उस वन में स्वच्छ जल से भरे अनेक विचित्र सरोवर भी थे। खिलेहुए उत्पल और कमल सब ओर से उनकी शोभा का विस्तार करतेथे। उन मनोहर सरोवरों का दर्शन करके पांडव सानन्द विचरने-लगे। गन्दमादनपर्वत पर पवित्र सुगन्ध से वासित, सुखदायिनी वायु चलरहीथी, जो द्रौपदी-सहित पांडवों को आनन्दनिमग्न किएदेतीथी[५]।

उन्होने विशाला बदरी के समीप उत्तम तीर्थों से सुशोभित शीतल जलवाली भागीरथी के पवित्र जल में स्थित हो परम पवित्रता के साथ

१-५- वन, १४५।३६-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण किया। इस प्रकार प्रतिदिन तर्पण और जप आदि करतेहुए वीर पांडव वहां ब्राह्मणों के साथ रहनेलगे[1]।

गन्धमादन से लौटते समय उन्होंने गन्धमादन पर आर्ष्टिषेण के आश्रम से क्रमश: कैलास, वृषपर्वा का आश्रम, विशालापुरी का पवित्र आश्रम, नर-नारायण-स्थान, कुबेर की पुष्करिणी होकर सुबाहु के राज्य की ओर प्रस्थान कियाथा[2]।

कुलिन्दराज्य के मोटे-तकड़े तुषार और दरद जाति के लोगों को तथा धन-रत्नों से सम्पन्न उस राज्य के विभिन्न भागों को देखतेहुए, हिमालय के दुर्गम स्थानों को पारकरके उन नरवीरों ने राजा सुबाहु का नगर देखा। राजा सुबाहु ने उनका स्वागत किया[3]।

तब वे अपने विशोक आदि सारथियों, इन्द्रसेन आदि परिचारकों, अग्रगामी सेवकों तथा रसोइयों से भी मिले। अगले दिन उन्होंने अपने सारे सारथियों और रथों को साथ लेलिया और अनुचरों सहित घटोत्कच को विदा करके वहां से उस पर्वतराज को प्रस्थान किया, जहां यमुना का उद्गम स्थान है[4]।

नरश्रेष्ठ पांडव अपने हाथों में खड्ग और धनुष लिएहुएथे। वे ऊंची चढ़ाई और पर्वतों की संकरी घाटियों में होकर आगे बढ़रहेथे। उनके मार्ग में सिंहों की मांदें पड़तीथीं। पर्वतीय नदियों को वे रस्सियों के झूलों (सेतु) से पार करतेथे। उन्हें बहुत-से झरने और ऊंची-नीची भूमि मिलतीथी[5]।

मार्ग में ऐसे विशाल वन भी थे, जो मृग, पक्षी एवं हाथियों से भरेथे। वे उस मार्ग पर धीरतापूर्वक आगे बढ़े। वे कभी रमणीय वनों, कभी सरोवरों के किनारे, कभी नदियों के तट पर और कभी पर्वतों की छोटी-बड़ी गुफाओं में दिन या रात के समय ठहरजातेथे। सदा ऐसे ही

१- वन, १४५।३९-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों में उन्हें टिकनापड़ताथा। अनेक बार दुर्गम स्थानों में टिककर उन्होंने मार्ग पार कियाथा[१]।

वे सबके सब तपस्या, इन्द्रिय-संयम और समाधि में तत्पर रहने वाले थे। बांस-रिंगाल (तृण) की चटाई, लकड़ी के पानी रखने के वर्तन, ओढ़ने के वस्त्र और सिल-लोढ़े (कूटने-पीसने के लकड़ी-पत्थर के पात्र, सिल-बट्टा) यही उनकी सामग्री थी[२]।

झरनों से युक्त हिमराशि उस पर्वतरूपी पुरुष के लिए उत्तरीय का काम करतीथी और उसका अरुण एवं श्वेत रंग का शिखर बालसूर्य की किरणें पड़ने से श्वेत एवं लाल पगड़ी के समान शोभा पाताथा[३]।

यमुनोत्तरीपर्वत पर पांडव विशाखयूप नामक वन में एक वर्ष तक रहे। उसके पश्चात् मरुभूमि के पास सरस्वती के तट पर द्वैतवन में चलेगए[४]।

कुलिन्दराजकुमारों का संहार

भीमसेन के आदेश से हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिए शत्रुओं का सामना करने में समर्थ द्रुपद के पांच श्रेष्ठ पुत्र, सात्यकि तथा द्रौपदी के पांच पुत्र—ये ग्यारह वीर कौरवपक्ष के हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों का अपने सर्पतुल्य बाणों द्वारा संहार करतेहुए रथों द्वारा वहां शीघ्रतापूर्वक आपहुँचेथे। किन्तु कौरवपक्ष के कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनिपुत्र उलूक, वृक, क्राथ और देवावृध—इन प्रमुख महारथियों ने अपने उत्तम बाणों का प्रहार करतेहुए पांडवपक्ष के उन ग्यारह महारथी वीरों को आगे बढ़ने से रोकदिया[५]।

तत्पश्चात् कुलिन्ददेश के योधा नूतन मेघ के समान काले पर्वत-

१- वन, १७७।३-६ २- वन, १७७।२८

३- तस्मिन् गिरौ प्रसवणोपपन्न हिमोत्तरीयारुणपांडुसानौ—वन, १७६

४- वन, १७६।१-२१ ५- कर्ण, ८५।२-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखरों के समान विशालकाय और भयंकर वेगशाली हाथियों द्वारा कौरववीरों पर चढ़आए[१]।

भली प्रकार सजाएहुए हिमालयप्रदेश के उन मदोन्मत्त हाथियों की पीठ पर सोने की जालियों से युक्त झूल पड़ेहुएथे और उनके ऊपर युद्ध की अभिलाषा रखनेवाले कुलिन्दवीर बैठेहुएथे। उस समय रणभूमि में वे हाथी आकाश में बिजलीसहित मेघों के समान शोभा पारहेथे[२]।

कुलिन्दराज के पुत्र ने लोहे के बनेहुए दस विशाल बाणों से सारथी और घोड़ों सहित कृपाचार्य को अत्यन्त पीड़ित करदिया। तदनन्तर शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य के बाणों द्वारा माराजाकर वह हाथी के साथ ही पृथ्वी पर गिरपड़ा[३]।

कुलिन्दराजकुमार का छोटा भाई सूर्य की किरणों के समान कान्तिमान् एवं लोहे के बनेहुए तोमरों द्वारा गान्धारराज के रथ की धज्जियां उड़ाकर जोर-जोर से गर्जना करनेलगा। इतने ही में गान्धारराज ने उस गर्जतेहुए वीर का शिर काटलिया[४]।

उन कुलिन्दवीरों के मारेजाने पर कौरवपक्ष के महारथी बड़े प्रसन्न

१- नवजलदसवर्णैर्हास्तिभिस्तानुदीयु--
गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः ॥ —कर्ण, ८५।४

२- सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा
रणाभिकामैः कृतिभिः समास्थिताः ॥
सुवर्णजालैर्वितता बभुर्गजा--
स्तथा यथा खे जलदाः सविद्युतः ॥ —कर्ण, ८५।४ ५

३- कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः कृपं ससूताश्वमपीड़यद् भृशम्।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः सहैव नागेन पपात भूतले ॥--कर्ण, ८५।६

४- कुलिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरै र्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दत स्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए। वे जोर-जोर से शंख बजानेलगे और हाथ में धनुष-बाण लिए शत्रुओं पर टूटपड़े[१]।

कुलिन्दराजकुमार के छोटे भाई से भी जो छोटा था, उसने श्रेष्ठ बाणों द्वारा दुर्योधन की छाती में चोट पहुंचाई। तब दुर्योधन ने अपने तीखे बाणों से उसके शरीर और हाथी दोनों को घायल करदिया[२]।

जैसे वर्षाकाल में इन्द्र के वज्र से आहतहुआ गेरु का पर्वत लालरंग का पानी बहाताहै, उसी प्रकार वह गजराज अपने शरीर से बहुत-सा रक्त बहाताहुआ कुलिन्दराजकुमार के साथ ही धराशायी होगया[३]।

अब कुलिन्दराजकुमार ने दूसरा हाथी आगे बढ़ाकर क्राथ के सारथि, घोड़ों और रथ को कुचलडाला। परन्तु क्राथ के बाणों से पीड़ित हो वह हाथी वज्रताड़ित पर्वत के समान अपने स्वामी के साथ ही धराशायी होगया[४]।

तदनन्तर, जैसे प्रचण्ड आंधी से उखाड़ाहुआ विशाल वृक्ष पृथ्वी पर गिरजाताहै, उसीप्रकार घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजसहित दुर्जय महारथी क्राथनरेश हाथी पर बैठेहुए एक पर्वतीय वीर के बाणों से माराजाकर रथ से नीचे जागिरा[५]।

१- ततः कुलिन्देषु हतेषुतेष्वथ प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसम्भवान् परांश्चबाणासनपाणयोऽभ्ययुः॥ ८

२- कुलिन्दराजावरजादनन्तरः स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत्।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः शितैः शरीरं व्यहनद् द्विपं च तम्॥१३

३- स नागराजः सह राजसूनुना पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन्।
महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा॥ १४

४- कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः क्राथस्य सूताश्वरथं व्यपोथयत्।
ततोऽपतत् क्राथशराभिघातितः सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः॥१५

५- रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः।
सबाजिसूतेष्वसनध्वजस्तथा यथा महाबातहतो महाद्रुमः॥ १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब वृक ने उस हिमालयनिवासी को बारह बाण मारकर अत्यन्त घायल करदिया। चोट खाकर पर्वतीयनरेश का वह विशाल गजराज वृक की ओर झपटा और उसने रथ तथा घोड़ों सहित वृक को अपने चारों पैरों से दबाकर तुरन्त ही उसका कचूमर निकालदिया[1]।

अन्त में बभ्रुपुत्र के बाणों से अत्यन्त आहत होकर वह गजराज भी संचालक सहित धरती पर लोटगया। फिर वह देवावृधकुमार भी सहदेव के पुत्र से पीड़ित होकर धराशायी होगया[2]।

तत्पश्चात् दूसरे कुणिन्दराजकुमार ने शकुनि को मारडालने के लिए दांत, शरीर और सूंड के द्वारा बड़े-बड़े योद्धाओं को मारगिरानेवाले हाथी की सहायता से उस पर वेगपूर्वक आक्रमण करके जब उसे अत्यन्त घायल करदिया तो गान्धारराज शकुनि ने उसका शिर काटडाला[3]।

कुलिन्दराज्य के पाषाणयोधि म्लेच्छों का संहार

ब्राह्मणों में श्रेष्ठ (द्विजमुख्य) कलिन्दराज अपने पुत्रों और सेना के साथ पांडवों की सहायता करतेहुए बलिदान होगएथे[4]। उनके राज्य में रहनेवाले अनेक आयुधजीवी म्लेच्छ, जिन्हें सभापर्व और वनपर्व में दरद, तुषार, खश आदि बतलायागयाहै, अपने पड़ोसी तंगणों तथा हिमालय के अन्य भागों के त्रिगर्त, खश, कम्बोज, वाह्लीक, यवन, पारद,

---

१- वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत्।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत्॥ १७

२- स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत् तथा हतोबभ्रुसुतेषुभिर्भृशम्।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः पपात नुन्नः सहदेवसूनुना॥ १८

३- विषाणगात्रावरयोधपातिना गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं ततोऽस्यगान्धारपतिः शिरोऽहरत्॥
—कर्ण, ८५।१९

४- कर्ण, ८५।२-१९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर आदि पर्वतीय आयुधजीवी योद्धाओं के साथ, सम्भवतः कौरवों की विजय निश्चित समझ, धनप्राप्ति की आशा से उनके पक्ष में लड़ेथे[१]।

तीन सहस्र अश्वारोही और हाथीसवार दुर्योधन को अपना अगुवा बनाकर चले। वे सबके सब कुपित हो हाथों में पत्थर लिए सात्यकि की ओर उसीप्रकार दौड़े जैसे शलभ अग्नि पर टूटपड़तेहैं[२]।

पत्थरों द्वारा युद्ध करनेवाले पर्वतीयों के पांच सौ शूरवीर रथी युद्ध के लिए सुसज्जित हो सात्यकि पर चढ़आए। जुगनुओं के दल के समान उद्भासित होनेवाले उन प्रस्तरचूर्णों से प्रायः सारी सेनाएं आहत हो हाहाकार करनेलगीं।

पर्वतीय सैनिकों द्वारा की हुई उस भयंकर पाषाणवर्षा को शिनिप्रवर सात्यकि ने अपने सर्पतुल्य नाराचों द्वारा छिन्नभिन्न करदिया[३]। बड़े-बड़े प्रस्तरखंड उठाए पांच सौ म्लेच्छ शूरवीर अपनी भुजाओं के कटजाने से धरती पर गिरपड़े[४]।

सात्यकि के भल्ल से चूर-चूर हुए शिलाखंडों द्वारा मारेगए म्लेच्छ प्राणशून्य होकर जहां-तहां पड़नेलगे। उन्हें समरभूमि में मारेजातेहुए देखकर पीछेखड़े म्लेच्छ सैनिक आगे बढ़कर उन पर पत्थरों की बड़ी भयंकर वर्षा करनेलगे[५]।

वे पाषाणों द्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर विजय के लिए यत्नशील होकर रणक्षेत्र में डटेहुएथे। उनकी संख्या अनेक सहस्र थी। परन्तु सात्यकि ने उन सबका संहार करडाला[६]।

१- कुलिन्दास्तंगणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः
पर्वतीयाश्च राजेन्द्र ! क्रुद्धाः पाषाणपाणयः
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ॥ —द्रोण, १२१।१३-१४

२- द्रोण, १२१।१४ ३- द्रोण, १२१।३७ ४- द्रोण, १२१।३८-३९

५- द्रोण, १२१।४० से आगे दाक्षिणात्यपाठ ६- द्रोण, १२१।४१

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बचेहुए दरद, तंगण, खश, लम्पाक और कुलिन्ददेशीय म्लेच्छों ने हाथ में लोहे के गोले और त्रिशूल लेकर तथा मुंह फैलाकर सात्यकि पर चारों ओर से पत्थर बरसाने आरम्भ करदिए। परन्तु प्रतीकारकरने में निपुण सात्यकि ने अपने नाराचों द्वारा उन सबको भी छिन्न-भिन्न करदिया[1]।

पुराणों में कलियुग के राजवंश

मत्स्य, वायु, ब्रह्मांड, विष्णु, भागवत, गरुड़ और भविष्य, इन सात पुराणों में विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी से विक्रम की तीसरी शताब्दी तक के प्रमुख राजवंशों की अति संक्षिप्त सूची मिलतीहै[2]। इस सूची में वर्णित अनेक नरेशों के अस्तित्व की पुष्टि विश्वस्त ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्रोतों से होजातीहै। उनमें से कतिपय नरेशों का उत्तराखण्ड पर भी अधिकार था।

परीक्षित की पांचवीं पीढ़ी में निचक्षु के राज्यकाल में गंगाजी की बाढ़ से हस्तिनापुर बहगया[3]। इससे निचक्षु ने अपनी राजधानी कौशाम्बी में बनाई[4]। कौशाम्बी में निचक्षु की चौबीसवीं पीढ़ी में क्षेमक नरेश हुआ। वह पौरववंश का अन्तिम नरेश था[5]।

अर्जुन ने उत्तर की दिग्विजय में उत्तराखण्ड भी जीताथा[6]। यह प्रदेश हस्तिनापुर से नातिदूर होने के कारण निचक्षु के राज्यकाल तक,

---

१- ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः।
अयोहस्ताः शूलहस्ताः दरदास्तंगणाः खशाः॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः॥ —द्रोण, १२१।४२-४३

२- देखिए, परजिटर--दि पुराण टेक्स्ट आव दि डाइनेस्टीज आव कलि एज

३-५- सं० विष्णुपुराणांक--पृ० ७३५

६- सभा, २६।३-५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भवत: अन्तिम नरेश क्षेमक के समय तक भी पौरववंश के अधीन रहाहोगा। हम आगे देखेंगे कि ब्रह्मपुर के ताम्रशासनों द्वारा विक्रम की सातवीं शताब्दी तक उत्तराखण्ड पर पौरववंश के अधिकार की पुष्टि होतीहै[१]।

महानन्दिन की शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र महानन्द ने समस्त क्षत्रियों (नरेशों) का विनाश करके ८८ वर्ष तक धरती पर शासन किया[२]। १२ वर्ष पश्चात् ब्राह्मण कौटिल्य ने महापद्म के ८ पुत्रों का विनाश करके चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया[3]। चन्द्रगुप्त से बृहद्रथ तक १० मौर्यसम्राटों ने १३७ वर्ष तक शासन किया[४]।

कालसी में अशोक के अभिलेख की प्राप्ति से विदित होताहै कि सारा उत्तराखण्ड या उसका दक्षिणी भाग अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था। चन्द्रगुप्त, बिंबसार या अशोक द्वारा इस प्रदेश को जीतने के प्रमाण नहीं मिलते। इससे अनुमान लगताहै कि इस प्रदेश पर नन्दवंश का अधिकार चलाआताथा और नन्दवंश के उत्पाटन के पश्चात् इस पर मौर्यवंश का अधिकार होगया।

बृहद्रथ के सेनापति शुंगवंशी पुष्यमित्र ने उसका विनाश करके मौर्यसाम्राज्य पर अधिकार करलिया[५]। १० शुंगवंशीनरेशों ने ११२ वर्ष तक उत्तरीभारत पर शासन किया[६]। पाटलिपुत्र, अयोध्या, विदिशा, जालन्धर, स्रुघ्न और शाकल (स्यालकोट) पर पुष्यमित्र के अधिकार से[७] विदित होताहै कि उत्तराखण्ड शुंगराज्य के अन्तर्गत था।

अन्तिम शुंगनरेश देवभूमि को उत्पाटित करके उसके मन्त्री वासुदेव ने शुंगराज्य पर अधिकार करलियाथा[८]। किन्तु अयोध्या के एक अभिलेख

१-मजूमदार तथा पुशलकर--पृ० १२३-२४ २-४- सं० विष्णुपुराणांक--पृ० ७३६ ५-६- सं० विष्णुपुराणांक--पृ० ७३६ ७- अग्निहोत्री--पृ० ६० ८- सं० विष्णुपुराणांक--पृ० ७३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से विदित होताहै कि शुंगसाम्राज्य के उत्तरपश्चिमी भाग पर शुंगवंश की एक शाखा का अधिकार विक्रम की प्रथम शताब्दी तक बनारहा[१]।

कनक नाम धारी नरेश का शासन स्त्रीराष्ट्र और भोक्ष्यक (भोजक, मूसिक) जनपदों पर था[२]। यदि पौराणिक कनक सम्राट कनिष्क का दूसरा नाम है, तो इस उल्लेख से उसका पश्चिमी और मध्यहिमालय पर अधिकार सिद्ध होताहै।

गुप्तवंशी नरेशों ने गंगाजी की घाटी में स्थित प्रयाग, साकेत और मगध जनपदों का भोग किया[3]। समुद्रगुप्त के समय से उत्तराखंड ने गुप्तसाम्राज्य की अधीनता स्वीकार करलीथी[४]।

१- धनदेव का अयोध्या--अभिलेख २- सं० विष्णुपुराणांक--पृ० ७३७

३- समुद्रगुप्त की प्रयाग--प्रशस्ति ४- सं० विष्णुपुराणांक--पृ० ७३७

यहां स्त्रीराज्य के स्थान पर त्रैराज्य छपा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्मृत समृद्धि

भाबर का वैभव

गंगा, यमुना और शारदा के मूलस्रोतों के कारण उत्तराखण्ड की पावनता की प्रसिद्धि सर्वविदित है, पर उसकी प्राचीन समृद्धि का अनुमान लगाने के लिए अनेक बिखरीहुई कड़ियों को जोड़ना आवश्यक है।

भाबर में, तथा उसकी उत्तरी सीमा पर स्थित कम ऊंची पहाड़ी ढालों और अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी एवं चौरस नदीघाटियों में खेत बनाना अधिक कठिन नहीं है। पर्याप्त उपजाऊ मिट्टी, वर्षा में दो फसलें उत्पन्न करनेयोग्य जलवायु, उपयोगी वनस्पति की प्रचुरता, पशुपालन और कृषि दोनों की सुविधा के कारण भाबर, दून और उसके निकटवर्ती कम ऊंचे पर्वतीयक्षेत्र मानवआबास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

मैदान और पर्वतों के बीच की इस सम्मिश्रणभूमि में मनुष्यों की एक के पश्चात् दूसरी लहरें आतीरहीं जो यहां पहले से बसी जातियों को उत्तर के अनाकर्षक क्षेत्र में धकेलकर उनका स्थान स्वयं लेती-गईं[1]।

दक्षिण के मैदानीराज्य प्राकृतिक और सुरक्षित सीमा प्राप्त करने के आग्रह से, एवं उत्तर के पर्वतीयराज्य इस उपजाऊ तथा समृद्ध पट्टी को अपने अधिकार में रखने की लालसा से सदा इस पर सतृष्ण दृष्टि

१- मिलाइए, सेम्पल--पृ० ५९५

से देखतेरहे । इसलिए यह क्षेत्र सदा रक्त, संस्कृति और राज्यों का सीमान्तप्रदेश बनारहा[1] ।

गंगाउपत्यका के उत्तर में स्थित भाबरप्रदेश उस समृद्धिशाली उपत्यका का उत्तरपश्चिम की ओर से सामरिक द्वार खोलताहै । यमुना, गंगाजी और शारदा यहां पर्वत से उतरकर तटवर्ती नगरों को धार्मिक और आर्थिक महत्व प्रदान करतीहैं ।

इस प्रदेश में मानवबस्तियों की शृंखला पाषाणकाल से ही आरम्भ होगईथी । ऐतिहासिककाल में जब राजगृह, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, हस्तिनापुर आदि भारत के प्राचीनतम नगर अपने वैभव की पराकाष्टा पर थे, उत्तराखण्ड के भाबरप्रदेश में भी महत्वपूर्ण समृद्धिशाली बस्तियां थीं ।

इनमें से अबतक केवल स्रुघ्न, सिंहपुर, कालकूट (कालसी), जगतराम, लाखामण्डल वीरभद्र, मायापुर, कनखल, ब्रह्मपुर, कण्वाश्रम, मोरध्वज और उज्जैन-गोविषाण (काशीपुर) का पता लगसकाहै ।

भविष्य में जब इस क्षेत्र का विधिपूर्वक पुरातात्विक अन्वेषण होगा तो गंगाजी और यमुना के दोनों तटों पर तथा देहरादून से ऋषिकेश-हरिद्वार एवं लछमणझूला से कोटद्वार होकर काशीपुर जानेवाले मार्गों के आसपास तथा देहरादून-सहारनपुर और गढ़वाल-बिजनौर के सीमांतक्षेत्र में कुछ और महत्वपूर्ण बस्तियों का पता लगेगा ।

देहरादून में हरिपुर, सिंहपुर, बिजनौर में बढ़ापुर के आसपास तथा नजीबाबाद से नगीना जानेवाले कच्ची सड़क पर गांगननदी के किनारे बचेहुए टीले महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री की अबतक सुरक्षा कररहेहैं ।

अबतक उपलब्ध प्राचीन अवशेषों और साहित्यिक सामग्री से पता लगताहै कि विक्रमपूर्व सातवीं शताब्दी से विक्रम की आठवीं शताब्दी तक की अवधि में उत्तराखण्ड के भाबरप्रदेश का वैभव चरम उत्कर्ष पर पहुँचाथा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस युग में यहां स्रुघ्न, वीरभद्र, ब्रह्मपुर और गोविषाण में विशाल एवं सुदृढ़ दुर्ग और प्रासाद खड़ेथे[1]। उनका निर्माण डेढ फीट लम्बी, पौन फीट चौड़ी लाल पक्की ईंटों से हुआथा[2]। गवाक्षों, तोरणों और द्वारों की सजावट के लिए विशेष प्रकार की, एवं विभिन्न आकार-प्रकार की ईंटें बनाईगईथीं, जिन पर नाना प्रकार के पत्र, पुष्प, लताएं तथा पक्षी, विशेषकर मयूर का चित्रण कियागयाथा।

दुर्गों से बाहर जल से भरी परिखाएं बनीथीं। दुर्ग से बाहर निकलने और नदीतट तक पहुँचने के लिए चौड़ी सीढ़ियां थीं। विपत्ति के समय छिपकर भागने के लिए धरातल के नीचे सुरंगें भी बनाईगईथीं।

अनेक स्थानों में प्राप्त प्राचीन मुद्राएं, विशेषकर आहत (पंचमार्क्ड) एवं कुणिन्दमुद्राएं, उनके प्राचीन महत्व की पुष्टि करतीहैं[3]। इस क्षेत्र की समृद्धि के दिनों में बौद्ध, जैन और शैव धर्मप्रचारकों ने इसे अपने प्रचार का केन्द्र बनायाथा। अशोक ने कालसी में अपने धर्मादेश अंकित कराएथे। विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी से विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दियों तक अनेक दिग्विजयी नरेशों ने यमुनातट पर अश्वमेधयज्ञ किएथे। तथा आगे चलकर नाथ और सिद्धों ने भी इस क्षेत्र को अपना क्रीड़ास्थल बनायाथा।

भाबर का वैभव उसे उत्तरभारत के प्राचीन वाणिज्यपथ पर उसकी महत्वपूर्ण स्थिति से प्राप्त हुआथा। यह वाणिज्यपथ, जिसका पाणिनि ने उत्तरपथ और कौटिल्य ने स्थलपथ के नाम से उल्लेख कियाहै, उत्तरभारत के जनपदों की राजधानियों और प्रमुख नगरों को जोड़ताहुआ इस देश के पूर्वी छोर पर ताम्रलिप्ति-राजगृह से पश्चिमी छोर

१- कनिंघम--एनशिएट ज्योग्राफी--पृ० १६१
२- डबराल--लेख, मोरध्वज स्तूप की लूट, दोगडा कालेज-पत्रिका, १९६४
३- कनिंघम--उपरोक्त--पृ० १६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर तक्षशिला-कपिशा तक पहुँचताथा।

दक्षिण के जनपदों की राजधानियों और प्रमुख नगरों से होकर इसकी शाखाएं बन्दरगाहों तक पहुँचतीथीं जहां से पूर्वी और पश्चिमी देशों के लिए जलमार्ग फूटतेथे।

कपिशा में यह वाणिज्यपथ उस महापथ से जामिलताथा जिसकी पूर्वी शाखा तरिमउपत्यका होकर कौशय के देश चीन तक और पश्चिमी शाखा पश्चिमी एशिया होकर मिश्र और यूरोप के नगरों तक पहुंचतीथी।

तीनों महासागरों और तीनों महाद्वीपों को जोड़नेवाले इन वाणिज्यपथों पर पिछले चार सहस्र वर्षों में इतिहास का निर्माण और पुनर्निर्माण होतारहाहै। इन वाणिज्यपथों के कुछ भागों पर रत्नगर्भा भारत के सार्थ इस देश की पण्यवस्तुओं को लेकर दूर-दूर तक विदेशों में पहुँचतेथे, और वहां से अपनी वस्तुओं का मुंहमांगा मूल्य और वहां की दुर्लभ वस्तुएं लेकर लौटतेथे।

इस व्यापार से भारत की समृद्धि की गाथा विदेशों में दूर-दूर तक फैलगईथी। इसमें सन्देह नहीं कि उसकी सच्ची या अतिरंजित गाथाओं से आकर्षित होकर ही विक्रमपूर्व छटी शताब्दी से पश्चिम के दस्यु भारत की ओर मुड़नेलगेथे। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी तक भी भाबरप्रदेश की समृद्धि की गाथाएं इतनी आकर्षक थीं कि १४५३ विक्रमी में सारे पंजाब के नगरों और दिल्ली तथा मेरठ को लूटलेने के पश्चात् भी तैमूर इस प्रदेश को लूटलेने की तृष्णा न रोकसकाथा।

उत्तरपथ की दक्षिणी शाखा[1] राजगृह से वाराणसी होकर यमुनातट पर स्थित कौशाम्बी, मथुरा और इन्द्रप्रस्थ पहुँचतीथी। वहां से आगे पंजाब के जनपदों की राजधानियों से होकर साकल, तक्षशिला और कपिशा तक जातीथी।

१- मोतीचन्द्र- सार्थवाह--पृ० ७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरी शाखा[1] मिथिला, से अहिच्छत्रा होकर गोविषाण के पास उत्तराखण्ड के भाबरप्रदेश में प्रवेश करके उसकी सीमा में लगभग ३०० मील तक चलतीथी। हिमालय की तलहटी का आश्रय लेकर यह शाखा मायापुर में गंगाजी को और कालसी के पास यमुना को पार करके पंजाब के पहाड़ियों की छाया में चलकर साकल और श्रीनगर (कश्मीर) पहुँचतीथी[2]।

हिमालय के पदतल से होकर जानेवाला यह वाणिज्यपथ राजधानियों से होकर जानेवाले वाणिज्यपथ की अपेक्षा अधिक सुरक्षित और सुगम था। इस पर चोर-डाकुओं और रोग-व्याधियों के उत्पात अधिक न थे। सम्भवतः चुंगी भी कम पड़तीथी। लालची राज-कर्मचारियों द्वारा पग-पग पर निचोड़ेजाने की सम्भावना कम थी। मुगलसाम्राज्य के अन्तिम दिनों की अराजकता में पंजाब या कश्मीर जानेवाले व्यापारी इसी मार्ग को अपनातेथे[3]।

इस मार्ग की गाथा कम से कम तीन सहस्र वर्ष पुरानी है। बुद्धकालीन उत्तरप्रदेश के सात जनपद— शाक्य, बूलिय, कालाम, भग्ग, कोलिय, मल्ल और लिच्छवी—सभी हिमालय की तलहटी से गंगाजी तक फैलेहुए प्रदेश में बसेथे[4]। उनकी प्रमुख बस्तियों और राजधानियों को मिलानेवाला पथ हिमालय के पादप्रदेश से होकर चलताथा।

विक्रमपूर्व सातवीं शताब्दी में भी श्रावस्ती और राजगृह के बीच दक्षिण के सीधे मार्ग की अपेक्षा उत्तर का चक्करदार मार्ग अधिक प्रचलित था, जो हिमालय की तलहटी से होकर वैशाली के उत्तर में पहुंचताथा और फिर दक्षिण की ओर मुड़कर गंगातट पर आताथा[5]।

१- मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० ७६ २- मोतीचन्द्र--उपरोक्त--पृ० २२

३- टीफेनथालर--उ० मोतीचन्द्र, उपरोक्त--पृ० २२

४-मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ०४७ ५-रेज डेविड्स--बुद्धिष्ट इंडिया-पृ० ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस मार्ग में हिमालय से आनेवाली नदियों को पारकरना अधिक सरल था[1]। रेज डेविड्स का अनुमान है कि आरम्भ में इस मार्ग के चयन को कुछ राजनैतिक कारणों ने भी प्रभावित कियाहोगा। शताब्दियों पश्चात् उन राजनैतिक कारणों का महत्व न रहने पर भी मार्ग पूर्ववत् चलतारहा[2]।

उस युग में यात्रा और भारवहन दोनों के लिए पशु आवश्यक होने के कारण पशुओं की सुविधा भी मार्गचयन को प्रभावित करतीथी। हिमालय की तलहटी से चलनेवाले इस मार्ग पर घास, जल, ईंधन और पड़ावयोग्य स्थान सर्वत्र सुलभ थे। ऐसे स्थानों की कमी नहीं थी जहां आवश्यकता पड़ने पर कई दिनों तक आश्रय मिलसकता।

पेड़ों की छाया, जल की प्रचुरता तथा शीतल आनन्ददायक वायु वाले इस मार्ग पर ग्रीष्म में भी पशु दिनभर चलसकतेथे। तराई के दलदली एवं अस्वास्थ्यकर तथा दक्षिण के शुष्क, घासहीन और धूलभरे प्रदेश की अपेक्षा यहां चलना, टिकना और श्रमकरना अधिक सरल था।

उत्तराखण्ड में इस मार्ग पर स्थित गोविषाण, मोरध्वज, ब्रह्मपुर, मायापुर, वीरभद्र, कालसी, सिंहपुर, स्रुघ्न और उत्तरभारत के प्रसिद्ध नगरों, विशेषकर साकेत, अहिच्छत्रा, कान्यकुब्ज, मथुरा[3] हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, स्थाण्वीश्वर आदि के बीच नियमित रूप से यातायात चलताथा। उनसे उत्तर की ओर भारत के सीमान्त पर स्थित जेलूखगा, माणा, चोरहोती, दरमा और लिपुलेख आदि गिरिद्वारों को महत्वपूर्ण अजपथ चलतेथे, जिनसे तिब्बत और मध्यएशिया से व्यापार एवं उत्तराखण्ड के तीर्थों और कैलास-मानसरोवर की यात्रा होतीथी[4]।

भाबर के ये नगर मैदानी और पर्वतीय वस्तुओं के विक्रय के केन्द्र थे।

१-२- रेज डेविड्स--बुद्धिष्ट इंडिया--पृ० ४७ ३- पतंजलि--उ० अग्निहोत्री--पृ० ३३६ ४- डबराल--उ०यात्रा-दर्शन--पृ० ३४१-८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम आगे देखेंगे कि साहसी तंगण-भोटांतिक मध्यएशिया और तिब्बत से सुवर्णचूर्ण, सुहागा, नमक, माला एवं आभूषण बनानेयोग्य बहुमूल्य रंगीन पाषाण, चमर, ऊनी वस्त्र, खालें, घोड़े, कुत्ते, मेंढ़े-बकरे, जड़ी-बूटियां और पवित्र जल आदि वस्तुएं तथा दास-दासियां लेकर इन मंडियों में पहुँचतेथे, जहां से वे भारत के विभिन्न भागों और विदेशों को भेजीजातीथीं[1]। अशोक के समय हिमालय की जड़ी-बूटियों की, जो इन मंडियों में बिकतीथीं, बड़ी मांग थी[2]।

हिमालय के विभिन्न भागों में उत्पन्न खनिजों, धातु, काष्ट और बांस से बने उपकरणों, पात्रों और आयुधों का विक्रय भी इन मंडियों में होताथा[3]। ब्रिटिशराज्य के आरम्भिक दिनों तक भी भाबर की मंडियों में लकड़ी, बांस, घास, चमड़ा तथा इनसे बने उपकरण और चकोर, बाज, चीते तथा दास-दासियों का विक्रय होताथा[4]।

महाभारत से विदित होताहै कि उस युग में भी इस मार्ग पर निरन्तर यातायात चलतारहताथा। हिमालय की ओर जानेवाले तपस्वी और तीर्थयात्री तथा पूर्व और पश्चिम के जनपदों की विजय के इच्छुक आक्रान्ता इस मार्ग की सुविधाओं से सुपरिचित थे।

पत्नियों सहित तपस्या के लिए जाते समय राजापांडु भाबर के शाल के वनों में संभवतः पांडुवालासोत में[5], कुछ काल तक रहकर फिर कालकूट (कालसी) होकर गन्धमादन और शतशृंग गएथे[6]। उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा के समय पांडव[7] तथा जयद्रथवध से पूर्व स्वप्न में कृष्ण के साथ कैलास जाते समय अर्जुन कालकूट होकर आगे बढ़ेथे[8]।

जब कृष्ण, भीम और अर्जुन के साथ जरासंध का गुप्तरूप से वध

१- डबराल--'भोटांतिक'--पृ० ३०-४२ २- देखिए, कालसी का दूसरा अभिलेख ३-डबराल-'भोटांतिक'--पृ०५०ख ४-डबराल-'भोटांतिक-' पृ० ५०ख ५- आदिपर्व, ११३।८ ६- आदिपर्व, ११८।४७-४८ ७- वनपर्व, १३६।१ ८- द्रोणपर्व, ८०।३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने निकले, तो वे कुरुजनपद से सीधे पूर्व की ओर न जाकर पहले पश्चिम में कुरु-जांगल (वर्तमान रोहतक-हिसार) की ओर गए। वहां से उत्तर की ओर कुरुक्षेत्र में पद्मसर होकर आगे बढ़कर कालकूट पहुँचे। और फिर हिमालय की तलहटी से सटेहुए मार्ग से चलतेहुए सरयू और गंडक नदियां पार करके मिथिला और राजगृह पहुंचेथे[१]।

उत्तराखण्ड की दिग्विजय के समय अर्जुन की सेना इन्द्रप्रस्थ से कालकूट पहुंचीथी और फिर गंगाजी की घाटी में आगे बढ़कर उसने कुलिन्दजनपद जीताथा[२]। वहां से पश्चिम की ओर सुमंडल (पुरमंडल, जम्मू) और साकल जीतने के लिए वह फिर उसी मार्ग पर पश्चिम की ओर बढ़ीथी[3]।

महाभारतयुद्ध से पूर्व उत्तर के आयुधजीवियों की सेना एकत्रित करते समय दुर्योधन ने हस्तिनापुर से सम्भवत: मायापुर होकर इसी मार्ग का आश्रय लेकर कालकूट में पड़ाव डालाथा। और आयुधजीवी पाषाणयोधि म्लेच्छों का दलबादल लेकर इसी मार्ग से लौटाथा[४]।

भगवान् बुद्ध के जीवनकाल में यह मार्ग बहुप्रचलित था। भगवान् स्वयं उशीरध्वजपर्वत तक पहुंचेथे[५] जो महाभारत के अनुसार कनखल की पहाड़ी से आगे था[६]। अशोक के समय तक वे समस्त स्थान, जहां भगवान् के पुनीत चरण पड़ेथे, तीर्थस्थान बनचुकेथे। अशोककालीन मोग्गलिपुत्त तिस्स[७] और वैशाली संगीति के समय आयुष्मान् सम्भुत साणवासी जिस अहोगंगपर्वत पर गएथे[८], वह संभवतः उशीरध्वज ही था।

हरिद्वार के पार गंगाजी के पूर्वी तट को चंडीशृंखला पर अभी कुछ समय पूर्व तक कापालिकों का गुप्तस्थान था। वहां का प्राचीन देवीमन्दिर सम्भवत: पहले बौद्धतांत्रिकों का पीठ था जो परिस्थितिवश

१- सभापर्व, २०।२४-३० २- सभापर्व, २६।४ ३-सभापर्व, २६।३-५
४- उद्योगपर्व, १६।३० ५- भरतसिंह--पृ० ८६ ६- वनपर्व, १३६।१
७-८- भरतसिंह--पृ० १२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोला बदलकर हिन्दूतांत्रिकों का सिद्धपीठ बनगया[१]। मोरध्वज के स्तूप से[२] और कोटद्वार के पास बौद्धबिहार के अवशेषों से भी[३] विदित होताहै कि विक्रमपूर्व तीसरी-दूसरी शताब्दी में इस क्षेत्र को बौद्धजगत में विशेष पावनता मिलचुकीथी।

महाभाष्य से विदित होताहै कि मौर्य-शुंग-काल में मथुरा और स्रुघ्न के बीच दैनन्दिन यातायात की व्यवस्था थी[४]। मथुरा से मार्ग यमुना के तट से होकर स्रुघ्न पहुँचताथा। आगे कालसी से पूर्व की ओर मुड़कर भावरप्रदेश के नगरों—वीरभद्र, मायापुर, ब्रह्मपुर, गोविषाण से होताहुआ साकेत और पाटलिपुत्र पहुंचताथा[५]। इसकी पुष्टि काशिका से भी होतीहै, जिसमें तदगच्छति पथि दूतयो: (४।३।८५) के प्रत्युदाहरण के रूप में स्रुघ्न जानेवाले सार्थों का उल्लेख है[६]।

स्रुघ्न से पाटलिपुत्र तक इतने लम्बे मार्ग पर सार्थ तभी चलसके होंगे जब यह मार्ग सुपथ रहाहोगा और इसकी सड़कों की सुरक्षा की सुव्यवस्था रहीहोगी[७]।

मौर्यसाम्राज्य की स्थापना और उथलपुथल में कुल्लू से लेकर उत्तराखण्ड तक के कुलूत, खश, शक आदि पर्वतीय आयुधजीवियों का विशेष हाथ था[८]। इन उदंड जातियों को नियन्त्रण में रखने के लिए, उसके साहसी युवकों को अपनी सेना में भरतीकरने के लिए तथा खैबर के पार काबुल तक फैले अपने विशाल साम्राज्य पर दो सहस्र मील दूर स्थित पाटिलिपुत्र से नियंत्रणरखने हेतु मौर्यसम्राटों के लिए

१- प्राणतोषिणी--पृ० ४४३-४७

२- डबराल--लेख, मोरध्वज स्तूप की लूट, दोगडा कालेज-पत्रिका, १९६४

३- फूरर--मोन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज आव N. W. P., पृ० ४५-४६

४- अग्निहोत्री--पृ० ३३६ ५- डबराल--उपरोक्त लेख

६- उ० अग्निहोत्री--पृ० ३२६ ७- अग्निहोत्री--पृ० ३३६

८- विशाखदत्त--मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह आवश्यक था कि वे हिमालय की तलहटी से होकर जानेवाले इस मार्ग की सुरक्षा और सुव्यवस्था का विशेष ध्यान रखते।

कालसी में अशोक के अभिलेखों की प्राप्ति से भी इस मार्ग की महत्ता सिद्ध होतीहै। कालसी के दूसरे अभिलेख से विदित होताहै कि अशोक ने जनपथों पर मनुष्यों और पशुओं के उपयोग के लिए (छायावाले) वृक्ष लगवाएथे और कुंए खुदवाएथे[1]। निश्चय ही अशोक के समय ये सुविधाएं उस महापथ पर भी उपलब्ध रहीहोंगी, जिस पर अभिलेखोंवाली शिला खड़ी है।

मौर्यकाल में सड़कों के निर्माण और सुव्यवस्था के लिए कुशल व्यक्ति नियुक्त किएजातेथे[2]। सड़कों पर प्रति दो मील पर स्तम्भ लगेहोतेथे जो दूरी और उपमार्गों की सूचना देतेथे[3]। राजमार्ग पर पड़नेवाले पड़ावों का प्रामाणिक खाता लिखाजाताथा[4]। मार्गों पर यात्रियों की सुख-सुविधा का भी पूरा ध्यान रखाजाताथा[5]।

यह मार्ग वनप्रदेशों से होकर आगे बढ़ताथा और इसमें कई नदियों को पार करनापड़ताथा। अर्थशास्त्र से विदित होताहै कि मौर्यकाल में मुद्राध्यक्ष मार्गों को जंगली हाथियों, हिंसक पशुओं और चोर-डाकुओं से सुरक्षित रखताथा[6]।

बटमारों का पता लगाने के लिए वह कुत्तेवाले शिकारियों को नियुक्त करताथा जो पेड़ों या पहाड़ों में छिपकर उनकी गतिविधियों का पता लगातेथे[7]। जलहीन मार्गों पर कुएं खुदवाना तथा पुष्प और फलों से युक्त बाटिकाएं लगवाना भी उसी का कार्य था[8]।

१- 'मगेसु लुखानि लोपितानि उदुपानानि चा खानापितानि पटिभोगाये पसुमुनिसानं'—कालसी का द्वितीय अभिलेख

२-५- मैक्रिंडल--उ० मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० ७८

६- अर्थशास्त्र--पृ० २२१

७- उपरोक्त--पृ० २२२

८- उपरोक्त--पृ० २२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदियों के घाटों पर उत्तम नावों का प्रबन्ध करना नौकाध्यक्ष का कार्य था[१]। पत्तनों पर यात्रियों को पार उतारने के साथ-साथ उनकी गतिविधियों और सामग्री पर भी कड़ी दृष्टि रखीजातीथी। जिन पर दूसरे की नारियां भगाने या धन उड़ाकर लेचलने का सन्देह होताथा, उन्हें तुरन्त पकड़लियाजाताथा[२]।

इसी प्रकार डरे-घबराए यात्री, बिना सामग्री वाले, छद्मवेशी, नए-मुंडे जोगी, रुग्णता का बहाना करनेवाले, बिना सूचना दिए छिपाकर गुप्त लेख, बहुमूल्य वस्तुएं या विष लेजानेवाले और बिना मुद्रा (पास-पोर्ट) के यात्रा करनेवाले को बन्दी बनालियाजाताथा[3]।

मौर्यों से साम्राज्य छीनलेने पर इस मार्ग की सुरक्षा का भार शुंगों को उठानापड़ा। पुष्यमित्र का राज्य पाटलिपुत्र से लेकर जालन्धर और साकल तक फैलाथा[४]। उसके राज्य में स्त्रुघ्न महत्वपूर्ण नगर था। जिसके उत्तम प्रासादों, प्राचीरों और समृद्धि का पतंजलि ने उल्लेख कियाहै[५]।

महाभाष्य से विदित होताहै कि शुंगकाल में भी इस मार्ग की सुरक्षा-सुव्यवस्था का मौर्यकाल के समान ही पूरा ध्यान रखाजाताथा। पश्चिमी भारत के सशक्त और महत्वाकांक्षी यवनों के आक्रमणों से शुंग राज्य की रक्षा के लिए ऐसा करना अत्यावश्यक था। पुष्यमित्र के जीवनकाल में ही यवन साकेत और मध्यमिका (नगरी) को रौंद चुकेथे[६]।

स्त्रुघ्न और मथुरा के बीच दैनन्दिन यातायात का सुप्रबन्ध था[७]। इस मार्ग पर पशु, मनुष्य और व्यापारिक वस्तुओं का नित्य आवागमन

१- अर्थशास्त्र--पृ० १९८ २- उपरोक्त, पृ० १९९ ३- उपरोक्त, पृ० २०० ४- अग्निहोत्री--पृ० ६० ५- उ० अग्निहोत्री--पृ० ११८
६- 'अरुणाद्यवन: साकेतम्, अरुणाद्यवन: मध्यमिकाम्'--म०भा०३।२।१११
७- उ० अग्निहोत्री--पृ०] ११८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होतारहताथा[1] । पतंजलि ने, मानों इस मार्ग पर खड़े होकर शिष्यों से कहा था—'यह है स्रुघ्न को जानेवाला मार्ग[2] !'

ये मार्ग इतने सुपथ थे कि इन पर रथ, बैलगाड़ियां और घोड़े वाले सार्थ निरन्तर दौड़तेरहतेथे[3] । ये विभिन्न प्रदेशों को जोड़तेथे। इनका नाम उस प्रदेश के नाम पर रखाजाताथा जहां तक वे जातेथे। स्रुघ्न को जानेवाला मार्ग स्रौघ्न कहलाताथा[4] । इन मार्गों पर यात्रियों की सुविधा के लिए कूप बनाएगएथे[5], तथा पड़ावों के लिए निश्चित विश्रामस्थल थे[6] ।

गुप्त, हर्ष और कत्यूरियों के राज्यकाल में भी इस मार्ग की सुरक्षा-सुव्यवस्था का पूरा ध्यान रखाजाताथा। इस मार्ग का व्यापारिक, सामरिक और धार्मिक महत्व उन्हें इसके लिए बाध्य करताथा। खशाधिपति द्वारा रामगुप्त की पराजय[7] और हर्ष का स्रुघ्नराज्य पर अधिकार[8], ऐसी घटनाएं थीं जिनका सम्बन्ध इस मार्ग से था। इसी मार्ग के बल पर जोशीमठ के कत्यूरी अपने अभिलेखों में हस्तिबल, अश्वबल और उष्ट्रबल की घोषणा करसकेहोंगे[9] ।

पालिसाहित्य, महाभारत और पुराणों से विदित होताहै कि हिमालय की तलहटी से होकर जानेवाले इस मार्ग के आरम्भिक प्रवर्तक बौद्ध और हिन्दु तपस्वी, धर्मप्रचारक एवं तीर्थयात्री थे। बेस्सन्तर तथा अन्य

१- उ० अग्निहोत्री--पृ० ११८ २- 'अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते'—महाभाष्य १।३।२५ ३-६- उ० अग्निहोत्री--पृ० ३३६

७- दत्त्वा रुद्धगतिः खशाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीम्
तस्मात्खंडितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणक्वणत्किन्नरे,
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगरस्त्रीणां गणैः कीर्त्तयः--काव्यमीमांसा

८- त्रिपाठी--हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० ११६

९- ललितशूर का अभिलेख, डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातकों में शिवालिकश्रेणी के शालवनों में स्थित आश्रमों का रोचक वर्णन है[१]। भारत के पश्चिमी और पूर्वी छोरों पर स्थित तक्षशिला और नालन्दा गुरुकुलों के समान मध्य में स्थित कण्वाश्रम गुरुकुल की भी बड़ी प्रसिद्धि थी[२]। यहां भी भारत के विभिन्न भागों से विद्यार्थी पहुंचते रहेहोंगे।

उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी से आजतक अविच्छिन्नरूप से चलीआतीहै[३]। विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों तक इस मार्ग के सम्बन्ध में अनेक रोचक गाथाएं प्रचलित होचुकीथीं, जिनमें से कुछ बृहत्कथा और कथासरित्सागर में भी मिलतीहैं[४]। इन्हीं दिनों पंजाब की पहाड़ियों के पदतल में स्थित चिंतपुरनी, आशादेवी, वज्रेश्वरी जैसे बौद्ध, और आगे चलकर, हिन्दु तांत्रिकपीठों की तीर्थयात्रा भी इसी मार्ग पर चलनेलगी।

प्राचीनकाल में ही चक्रवर्तीनरेशों के विजयक्षेत्र की सीमा हिमालय, से समुद्र तक निर्धारित होचुकीथी। महाभारत[५], अर्थशास्त्र[६], मारकंडेय-पुराण[७], वायुपुराण[८], रघुवंश[९] आदि ग्रन्थों से भी इस मान्यता की पुष्टि होतीहै। इस मार्ग के प्रचलन में दिग्विजयइच्छुक नरेशों का विशेष हाथ था।

अभिलेखों में कुमारगुप्त को समुद्र की चंचल मेखला और सुमेरु

१- महावेस्सन्तरजातक--पृ० ५७९ २- आदिपर्व, अ०७० ३-डबराल--उ०यात्रा-दर्शन--पृ०१४८-२१२ ४-कथा सरित्सागर-पृ०७३, १०५, १६१ ५- पांडवों की दिग्विजय, सभापर्व, अ० २५ ६- 'देश: पृथिवी। तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्त्रपरिमाणमतिर्यक् चक्रवर्तिक्षेत्रम्।' अर्थशास्त्र, ९।१।१७-१८, पृ० ५२१ ७- मारकंडेय पुराण, ५७।२९ ८- वायुपुराण, ९५।७५-७६ ९- रघु की दिग्विजय, रघुवंश, सर्ग, ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा कैलास के वृहत्पयोधरवाली धरा का[1], यशोधर्मन को गंगातट के हिमशिखरों से समुद्रपर्यन्त धरती का[2], देवपाल को गंगा के मूलस्रोत से सेतुपर्यन्त वसुधा का[3], भोज परमार को कैलास से मलयगिरि तक के क्षेत्र का[4], विग्रहराज को हिमाद्रि से विन्ध्याद्रि तक के आर्यावर्त का[5] विजेता कहागयाहै। बाण चंद्रापीड़ और हर्ष के राज्यों को गंधमादन तक पहुंचाताहै।

इन सभी नरेशों के लिए उत्तराखण्ड में स्थित गन्धमादन, बदरिकाश्रम, कैलास, केदार, बिन्दुसर आदि स्थानों तक अपनी सेनाएं पहुँचाना असम्भव था। उनकी घोषणा में तथ्य केवल इतना ही है कि उनकी सेनाओं ने हिमालय के पदतल में स्थित इस महामार्ग से होकर पूर्व-पश्चिम दिशा में एक बार प्रयाण कियाथा।

पिछले तीन सहस्र वर्षों से शान्ति और पुण्यप्राप्ति की अभिलाषा लेकर अगणित हिन्दु, बौद्ध तथा जैन तीर्थयात्री, तपस्वी, धर्मप्रचारक, जिज्ञासु, विद्यार्थी और पर्यटक इस मार्ग से गंगा, यमुना और हिमालय की शरण में आतेरहतेहैं। इस मार्ग पर आक्रान्ताओं के दलबादल खड्ग और अग्निमशाल लेकर तथा दिग्विजयकर्त्ताओं के अश्व अपना वैभव प्रदर्शित करतेहुए दौड़तेरहेहैं।

१- 'चतु (स्समुद्रान्त) विलोल मेखलां सुमेरुकैलासवृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति'॥
रा० व० पांडे--पृ० ८७-८८

२- 'आगंगाश्लिष्टसानोस्तुहिनशिखरिणः पश्चिमादापयोधेः'।
रा० व० पांडे--पृ० १३७

३- 'आगंगाममहितात्सपत्नशून्याम् आसेतोः प्रथितदशास्यकेतु कीर्त्तिः'
गौड़-लेख-माला--पृ० ३८

४- 'आकैलासान्मलयगिरितोस्तोयाद्रिद्वयादा'--ए०इं० जिल्द १, पृ०२३५

५- 'आविन्ध्यादाहिमाद्रे विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगात्'
हुतात्मा-परिचय, पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पण्य वस्तुओं को लेकर सार्थ और फेरीवाले, जनता का मनोरंजन करके मांग-खानेवाले आमोदी-प्रमोदी, आततायियों से अपने धर्म और प्राणों की रक्षा के लिए भागनेवाले शरणार्थी तथा रोते-बिलखते पशुओं के समान हांकेजानेवाले दास-दासी और बन्दी इस मार्ग से आगे बढ़तेरहेहैं।

आज इस मार्ग के बड़े भाग पर वन फैलेहैं किन्तु कभी इनसे होकर सार्थ चलतेथे। यहां कुंआ खोदना कठिन होने के कारण[1] पड़ावों पर तालाब बनाएगएथे। मार्गों की सुरक्षा के लिए स्थान-स्थान यक्ष, भैरव और सिद्धों की स्थापना कीगईथी[2]। पथिकों और साधु-महात्माओं के उपयोग तथा विक्रय के लिए आम और केलों के उद्यान लगाएगएथे[3]।

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी तक भी यह मार्ग पर्याप्त सुविधापूर्ण था। सम्वत् १०७६ में बारण (बुलन्दशहर), मथुरा और कन्नौज को लूटने के लिए महमूद ने कश्मीर की तलहटी से होकर इसी मार्ग के पश्चिमी भाग पर चलकर स्रुघ्न के पास यमुना पार कीथी[4]। सम्वत् १४५५ में दिल्ली और मेरठ की लूट के पश्चात् तैमूर हरिद्वार से इसी मार्ग पर चलकर कालसी पहुंचाथा[4]।

तैमूर, तुगलक, सिख, गूजर, रुहेले, गोरखे और भांतू आदि आततायियों के कारण कई बार यह मार्ग संकटपूर्ण और अप्रचलित होगया। वर्तमान समय में इस मार्ग के कुछ अंशों पर मोटरें चलनेलगीहैं। इसके पश्चिमी भाग की सुरक्षा-सुव्यवस्था की ओर सरकार विशेष ध्यान देरहीहै। जब हरिद्वार में गंगाजी पर मोटर-पुल बनजाएगा तो उत्तराखण्ड में काशीपुर से कालसी पहुंचनेवाला भाग भी अधिक उपयोगी बनजाएगा।

इस मार्ग पर पंजाब से लेकर बिहार तक हिमालय के पदतल में

१-- मेरा लेख,- मोरध्वज स्तूप की लूट, दोगडा कालेज-पत्रिका, १६६४

२- हबीब--सुल्तान महमूद आव गजनिन, पृ० ३८-३६

३- तुजक-इ-तिमूरी--पृ० ७०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज भी मीलों तक बिखरे प्राचीन उजड़ी बस्तियों के अवशेष, दुर्ग, प्रासाद, मन्दिर, पक्के कुएं और तालाबों के खंडहर, आम के उपवन उस प्राचीन समृद्धि के स्मारक हैं, जो आज विलुप्त होचुकीहै[१]। स्रुघ्न, सिंहपुर, हरिपुर, कालसी, वीरभद्र, मायापुर, ब्रह्मपुर, कण्वाश्रम, मोरध्वज, ढिकुली (रामनगर), गोविषाण (काशीपुर) के अवशेष उसी विलुप्त समृद्धि के स्मारक हैं।

याभुन

महाभारत और पाणिनि के अनुसार उत्तराखण्ड का पूर्वी भाग भरद्वाजजनपद[२-३] और पश्चिमी अर्थात् यमुनातटवर्ती भाग यामुन-जनपद[४-५] कहलाताथा। अथर्ववेद ४।६।१० में यामुन अंजन का उल्लेख

६- 'In this part of the country (northern boundary of Najibabad Tehsil), once the land was fully cultivated, as is evident from the ancient mango groves, masonary wells, and ruined buildings, some times extending over several miles consecutively. Nothing is known of these early inhabitants, beyond their fortresses and sculptured relics, but the same phenomena appears throughout the Bhaber in Nainital and also in the lowlands of Gonda, Gorakhpur and Basti, beneath the outer mountains of Nepalese Himalayas'.--बिजनौर-गजेटियर, पृ० ५ तथा १७१

२- भीष्मपर्व, ६।६८ ३- पाणिनि, ४।२।१४५ ४- भीष्मपर्व, ६।५१

५- अग्रवाल--पाणिनिकालीन, भारतवर्ष, पृ० ७०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलने से विदित होताहै कि वैदिककाल में भी इस प्रदेश का यही नाम था और जौनसार-जौनपुर के रूप में यह नाम आजतक चलाआताहै। अस्तु अलबरूनी द्वारा यामुन को यवन (यूनानी) से जोड़ने की कल्पना[१] अमान्य है।

कालसी

काले अंजन, ग्रेफाइट या काली मिट्टी के कारण यामुन पर्वतमाला[२] कालकूट[३], कलकूट[४], कालकोटि[५], कालशैल[६] अर्थात् कालापहाड़ कहलानेलगीथी, जिसका वर्तमान प्रतिनिधि कालसी (कालशिला या कालशैल) है[७]।

कालसी में अशोक के अभिलेख १० फीट लम्बी, ५० फीट ऊंची, एक सुन्दर क्वार्टजशिला पर खुदेहैं, जो आधार पर ८ फीट चौड़ी है और ऊपर की ओर संकरी होतीगईहै। लेख का अधिकांश शिला की दक्षिणपूर्वी सतह पर, जिसे घिसकर चिकना कियागयाहै, तथा शेष बांईं ओर लिखाहै। दहिनी ओर हाथी के रेखाचित्र के नीचे गजतमे (उत्तम हाथी) खुदा है।

इस शिला पर अशोक के तेरह अभिलेख एक साथ, एक ही स्थान पर पूर्ण और सुरक्षितरूप में मिलेहैं। तेरहवें अभिलेख में अन्तिओकश, तालेमी, अन्तिगोनास, मगस और अलेकजेंडर नामक तत्कालीन यवन-नरेशों के नाम स्पष्टरूप से पढ़ेजाने के कारण अशोककालीन घटनाओं की तिथियां निर्धारित करने में बड़ी सहायता पहुँचीहै।

इन अभिलेखों में अनेक ऐसे शब्द मिलतेहैं, जो अब हिन्दी में

५-अलबरूनी-इंडिया, पृ० ३०२ ६- अनुशासनपर्व, ६८।३ ७- आदिपर्व, ११८।४७-४८ ८- पाणिनि, ४।१-१७३ ९- सं० मारकंडेयपुराण, पृ० १५५; वृहत्संहिता, १४।४ १०- वनपर्व, १३९।१
११- अग्रवाल--पा० का० भारतवर्ष, पृ० ४३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयुक्त नहीं होते, पर उत्तराखण्ड की जौनसारी, गढ़वाली और कुमाउनी बोलियों में आजतक लगभग उसीप्रकार चलेआतेहैं।

इस अभिलेख से मौर्यकाल में कालसी के महत्व की पुष्टि भी होतीहै। इस शिला के निकट जो प्राचीन अवशेष रहेहोंगे उन्हें मकान और सड़क बनाते समय नष्ट करदियागया[१]। चौथी शताब्दी के आसपास कालसीशिला के निकट का प्रदेश वनों से ढकगया[२], और जनता शिला की गाथा भूलगई। सम्वत् ६९२ वि० में युवान चाङ् ने, जो नातिदूर स्रुघ्न तक पहुँचाथा, इसका कोई उल्लेख नहीं किया।

हरिपुर

स्थानीय लोकगाथा के अनुसार कालसी की शिला, जो चित्रशिला भी कहलातीहै, प्राचीनकाल में किसी पर्वतीय नागनरेश और मैदानी नरेश के राज्य के सीमांत की द्योतक है[३]। नागसिद्ध नामक पहाड़ी पर नागनरेश की तपस्या का स्थान बतलायाजाताहै[४]। कालसी के पास ही, टोंस और यमुना के संगम पर स्थित हरिपुरगांव में एक विशाल टीला है, जिसके नीचे प्राचीन नगर और दुर्ग के अवशेष छिपे हैं[५]।

जनकथा के अनुसार हरिपुर में भारतीय शक-गूजरों के पूर्वज राजारिसालू की राजधानी थी[६]। कनिंघम का अनुमान है कि भारतीय शक-गूजर जब सिन्धुसागरद्वाब से इस प्रदेश में आए तो अपने साथ राजारिसालू की गाथा भी लेआए[७]।

अभतराभ

उत्तरवैदिककाल में भरत दौष्यन्ति द्वारा गंगा और यमुना के तटों

१- वाल्टन--देहरादून गजेटियर, पृ० १६८ २- वाल्टन--उपरोक्त, पृ० २३२
३- वाल्टन--उपरोक्त, पृ० १६८ ४- वाल्टन--उपरोक्त, पृ० २३२
५-६- वाल्टन--उपरोक्त, पृ० १६८ ७- उ०वाल्टन--उपरोक्त, पृ० २३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर अनेक अश्वमेध करने का उल्लेख मिलताहै[1]। महाभारत के अनुसार भी भरत ने यमुनातट पर तीन सौ अश्वमेध किएथे[2]। सृंजयपुत्र सहदेव[3], मान्धाता[4], दानव सहदेवकुमार सोमक[5], नाभागपुत्र अम्बरीश[6] तथा राजाशान्तनु[7] ने यमुनातट पर अनेक अश्वमेधादि यज्ञ किएथे।

यमुनातट पर यज्ञ करने की प्राचीन परम्परा मौर्यकाल की समाप्ति पर पुनः प्रचलित होगई। फरवरी ६५ में देहरादूनजिले में यमुनातट पर अम्बरीगांव में, जिसका सम्बन्ध सम्भवतः यमुनातट पर यज्ञ करने वाले राजाअम्बरीष से था[8], राजाशिवभवानी का एक ब्राह्मी अभिलेख मिलाहै, जिससे विदित होताहै कि उसने यमुनातट पर अश्वमेधयज्ञ कियाथा[9]। यह लेख अभी तक प्रकाशित न होने के कारण उसके सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

रहे-सहे बौद्धप्रभाव को समाप्त करने के लिए विक्रम की तीसरी शताब्दी में राजाशीलवर्म्मन ने जगतराम में अश्वमेधयज्ञ किया जिसके लिए उसने कालसीशिला के ठीक सामने यमुना के बांए तट पर विशाल गरुड़ाकार यज्ञवेदिका बनाई[10]। इसकी ईंटों पर ब्राह्मीलिपि के संस्कृत लेख में उसे युगेश्वर, युगशैलमहीपति और वार्षगण का नृपति कहागयाहै[11]।

१- शतपथ, १३।५।४।११-१३ २- वनपर्व, ९०।८, द्रोणपर्व, ६८।८, शान्तिपर्व, २९।३६ ३- वनपर्व, ९०।५-७ ४- वनपर्व, १२५।२१-२६
५- वनपर्व, १२५।२१-२६ ६- वनपर्व, १२९।२ ७- वनपर्व, १६२।२५
८- वनपर्व, १२९।२ ९- नवभारत टाइम्स, ६ फरवरी ६५
१०- ए० इंडिया, जि० ९, पृ० १४१
११- युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपतेः
इष्टकावार्षगणस्य नृपते शीलवर्म्मणः — ए० इंडिया, जि० ९, पलेट, ५९ ए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे विदित होताहै कि विक्रम की तीसरी शताब्दी में कालशैल का दूसरा नाम युगशैल भी प्रचलित होगयाथा। डा० अग्रवाल ने युगशैल को युगन्धर मानकर उसकी पहचान जगाधरी से कीहै[१]। किन्तु इसकी संगति वार्षगण से नहीं बैठती। महाभारत में वार्षगराय नामक एक प्राचीन ऋषि[२] और वार्ष्णेय नामक एक प्राचीन जनपद का[३] उल्लेख है। युगशैल दो श्रेणियों या शिखरोंवाले यामुनजनपद के लिए भी प्रयुक्त होसकताहै, जो कालशैल और यमुनोत्तरी (बन्दरपूंछ), नामक हिमालय की दो श्रेणियों से घिराहै।

श्री रामचन्द्रन् ने, जिन्होंने शीलवर्म्मन् की यज्ञवेदिका की ईंटों के अभिलेख का अध्ययन कियाहै, उसे यौधेय राजकुमार मानाहै[४]। इस क्षेत्र में कुणिन्दमुद्राएं[५] तथा इसके दक्षिण-पश्चिम में पूर्वीपंजाब में सतलुज से यमुना तक यौधेयमुद्राएं[६] मिलीहैं। यौधेयमुद्राओं पर मिलनेवाले 'द्वि' अर्जुनायनगण और 'त्रि' शब्द कुणिन्दगण के सूचक मानेजातेहैं। यदि यहां मिली यौधेयमुद्राओं पर 'त्रि' लिखाहो तो इस क्षेत्र में कुणिन्द-आधिपत्य की कल्पना होसकतीहै।

महाभारत के अनुसार कालकूट कुलिन्दराज्य के अन्तर्गत था[७]। इस क्षेत्र में प्राप्त मुद्राओं और अन्य ऐतिहासिक तथ्यों से कनिंघम ने भी इस क्षेत्र को कुणिन्द-जनपद के अन्तर्गत मानाहै, और उसकी राजधानी स्रुघ्न बतलाईहै[८]। हम आगे देखेंगे कि शीलवर्म्मन् संभवतः सिंहपुर के यादवों का आदिपुरुष था।

१- अग्रवाल--इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि, पृ०५५-५७; उ०अग्निहोत्री--पृ०१०३ २-शान्तिपर्व, ३१८।५९ ३-सभापर्व, ५१।२४
४- ए० इंडिया, जि० ९, पृ० १४१ ५- कनिंघम--क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७१ ६- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० ७६
७- सभापर्व, २९।३-४ ८- कनिंघम--उपरोक्त, पृ०७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्रुघ्न

कुणिन्द[1], कौणिन्द[2], कौलिन्द[3] या कुलिन्दजनपद[4] अनेक ठकुराइयों में बंटाथा[5]। उसके अन्तर्गत यमुना के दोनों तटों पर हिमालय से भाबर तक फैलाहुआ स्रुघ्नजनपद भी था[6]। महाभारत में इसके लिए सुह्म[7] और स्रुघ्न[8] दो नामों का प्रयोग मिलताहै। पूर्वीभारत के सुह्मजनपद से इसका पृथक् अस्तित्व सूचित करने के लिए इसके लिए स्रुघ्नोदीच्य (उत्तर का स्रुघ्न) भी कहाजाताथा[9]।

दिव्यावदान में वर्णित एक अनुश्रुति के अनुसार, जिसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है, भगवान् बुद्ध ने यहां पहुंचकर एक ब्राह्मण के अभिमान को दूर कियाथा। किन्तु भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् यह प्रदेश पुनः हिन्दूधर्मावलम्बी होगया। अस्तु कुछ प्रवीण बौद्ध-आचार्यों ने वहां पहुंचकर बौद्धधर्म की पुनर्स्थापना कीथी[10]।

मौर्यकाल में, और उसकी अवनति के दिनों में भी, स्रुघ्नराज्य उन्नति की चरमसीमा पर था। भारहुत के तोरण-अभिलेख से विदित होताहै कि विक्रम से डेढ़ शताब्दी पूर्व, जब भारत के विभिन्न जनपदों के नरेश भारहुत में तथा अन्यत्र चैत्यों, स्तूपों और मन्दिरों का निर्माण कररहेथे तो उत्तराखण्ड के बौद्ध स्रुघ्ननरेश ने भी इस पुनीत कार्य में योग दियाथा।

१- वनपर्व, १४०।२७-२९ २- बृहत्संहिता, १४।३०; १४।३३
३- बृहत्संहिता, ४।२४ ४- बृहत्संहिता, उ० अलबरूनी, पृ० ३००
५- 'कुलिन्दशतसंकुलाम्'--वनपर्व, १७६ ६- युवान चाङ्--उ० कनिंघम--ए० ज्योग्राफी, पृ० २९२ ७- महाभारत, गीताप्रेस सं०, आदिपर्व, ११८।४७-४८, सभापर्व २७।२१; बृहत्संहिता, ५।३७
८- महाभारत--उ० ए० इंडिया, जि० ९, पृ० १४१ ९- बृहत्संहिता, १६।२१ १०- युवान चाङ्-उ० दत्त तथा बाजपेयी--उत्तरप्रदेश में बौद्धधर्म का विकास, पृ० २३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस लेख के अनुसार, भारहुत के उस तोरण को, जिस पर यह लेख[1] खुदाहै, स्रुघ्नराज्य[2] के नरेश गार्गीपुत्र विश्वदेव के पौत्र, कौत्सीपुत्र अग्रराज के पुत्र, वात्सीपुत्र धनभूति ने बनवायाथा।

शुंगयुग से इस प्रदेश में बौद्धधर्म की अवनति आरम्भ हुई। यमुनातट पर फिर से अश्वमेध होनेलगे। स्रुघ्नराज्य की समृद्धि पूर्ववत् बनीरही। स्रुघ्नराज्य ने, पुष्यमित्र की, जिसका साम्राज्य पाटलिपुत्र, से लेकर जलन्धर, साकल तक फैलाथा, अधीनता स्वीकार करली।

पुष्यमित्र के दरबारी पंडित और उसके अश्वमेधयज्ञ के आचार्य पतंजलि ने स्रुघ्नराज्य की समृद्धि का[3], स्रुघ्ननगर के प्रासादों और प्राकारों का[4] मथुरा और स्रुघ्न के मध्य दैनन्दिन यातायात का[5] बार-बार उल्लेख कियाहै। उन्होंने स्रौघ्नी नारियों का उत्तम विशेषणों से आदर के साथ उल्लेख कियाहै[6]।

विक्रम की सातवीं शताब्दी में स्रुघ्नराज्य पर हर्ष का अधिकार होगया[7]। चीनी यात्री युवान चाङ् सम्वत् ६९२ वि० में स्रुघ्ननगर में पहुँचाथा। उन दिनों सु-लुकिन-न या स्रुघ्नराज्य यमुना के दोनों तटों पर फैलाथा[8]। उसके मध्य से होकर यमुना बहतीथी[9]। उत्तर की

१- 'सुगनरजे रञो गार्गीपुतस विसदेवस पौतेण गोतिपुतस आगरजुस पूतेण वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां सिल कं मं तो च उपणं' रा०व० पांडे--पृ० ४३

२- हुल्श ने 'सुगनरजे' का संस्कृत अनुवाद 'शुंगराज्ये', और कनिंघम तथा मित्र ने 'स्रुघ्नराज्ये' कियाहै। पाली और प्राकृत में स्रुघ्न से सुघन, सुगन रूप बनतेहैं, इसलिए कनिंघम और मित्र का अनुवाद मान्य है। ३- महाभाष्य, ४।३।२५; ४।३।१२; ६।३।४२; अग्निहोत्री--पृ० १०३ ४- उ० अग्निहोत्री--पृ० ११८ ५-महाभाष्य, १।३।२ ६-उ०अग्निहोत्री, पृ०१३ ७-त्रिपाठी--हिस्ट्री आव कन्नौज, पृ०११३ ८-९- उ०कनिंघम--ए० ज्योग्राफी, पृ०२९२

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर उसका विस्तार महोच्च हिमश्रेणी तक था, और पश्चिम की ओर गंगाजी तक। उसका घेरा ६००० ली अर्थात् १००० मील था[१]।

इस वर्णन के आधार पर कनिंघम का अनुमान है कि स्रुघ्नराज्य का विस्तार पश्चिम में गिरिनदी से पूर्व में गंगाजी तक, तथा उत्तर में महाहिमालय से दक्षिण में अम्बाला और सहारनपुर के भाबरप्रदेश तक था। वर्तमान सिरमौर और टिहरी-गढ़वाल (उत्तरकाशी सहित) उसके अन्तर्गत थे[२]।

किन्तु कनिंघम ने स्रुघ्नराज्य की सीमा का जो अनुमान लगायाहै उसके अनुसार उसका घेरा केवल ५०० मील निकलताहै[३], जबकि चीनी यात्री ने उसे १००० मील बतलायाहै। इसका समाधान करतेहुए कनिंघम ने लिखाहै कि चीनी यात्री ने यमुना और गंगाजी के बीच की दूरी का तथा स्रुघ्न राज्य की हिमालयवर्ती सीमा की लम्बाई का गलत अनुमान लगायाहै[४]।

स्रुघ्ननगर

कनिंघम ने स्रुघ्ननगर की पहचान वर्तमान सुघगांव से कीहै जो कालसी से दक्षिण की ओर यमुना के दहिने तट पर एक त्रिभुजाकार टीले पर बसाहै[५]। यह तीन ओर यमुना की पुरानी धारा की तलहटी से घिराहै, जिसमें अब पश्चिमी यमुनानहर बहतीहै। उत्तर और पश्चिम की ओर दो गहरे नालों ने इसे दुर्ग के समान सुरक्षित बना दियाहै[६]।

इस त्रिभुजाकारक्षेत्र के तीनों कोनों पर तीन दुर्गों के अवशेष हैं। यहां अब दयालगढ़, मांडलपुर और सुघगांव बसेहैं[७]। इन गांवों में

१- उ० कनिंघम--ए० ज्योग्राफी, पृ० १६२ २-५- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २६३ ६- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २६१ ७- कनिंघम--उपरोक्त--पृ० २६१-६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी की आहतमुद्राओं से लेकर बारहवीं शताब्दी तक की तोमर-चौहानों की मुद्राएं प्राप्तहुईहैं[१]। नामसाम्य, दुर्ग, सुरक्षित स्थान और प्राचीन मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर कनिंघम वर्तमान सुघगांव को ही प्राचीन स्रुघ्ननगर मानतेहैं[२]।

युवान चाङ् के अनुसार थानेश्वर से १६⅔ मील दक्षिण की ओर स्थित गोकंठमठ से उत्तर की ओर ६६⅔ मील की दूरी पर स्रुघ्ननगर था[३]। कनिंघम थानेश्वर से दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम में स्थित गुनान को गोकंठमठ मानतेहैं[४]। किन्तु यहां से उत्तर की ओर उपरोक्त सुघगांव की दूरी केवल ५० मील है[५]। युवान चाङ्-जैसे सावधान लेखक ने केवल ५० मील लम्बे मार्ग को, जिस पर वह स्वयं चलाथा, कैसे ६६⅔ मील मानलिया, इसका समाधान कनिंघम नहीं करसके[६]।

यदि चीनी यात्री द्वारा दीगई दूरी सही है तो स्रुघ्न के लिए सुघगांव से १५-१६ मील दूर उत्तर की ओर यमुनातट पर कोई दूसरा स्थान ढूंढनापड़ेगा। ऐसा स्थान सिंहपुर है।

युवान् चाङ् ने स्रुघ्नजनपद के नरेश का नाम नहीं दियाहै, इससे विद्वानों का अनुमान है कि स्रुघ्नजनपद अर्थात् वर्तमान सिरमौर, उत्तरकाशी और टिहरी-गढ़वाल के जिले हर्ष के साम्राज्य के अन्तर्गत थे[७]।

युवान् चाङ् के समय पुष्यमित्र के राज्यकाल का समृद्धिशाली स्रुघ्ननगर हर्ष के राज्यकाल में उजाड़ होनेलगाथा[८]। वहां के निवासियों की आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति थानेश्वर-निवासियों-जैसी थी[९]। वहां उन दिनों बौद्धों के केवल पांच मठ थे जिनमें एक सहस्र भिक्षु रहतेथे।

१-२- कनिंघम- ए० ज्योग्राफी, पृ० २६२ ३-५- कनिंघम--उपरोक्त पृ० २६० ६- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २६१ ७- त्रिपाठी--हिस्ट्री आव कन्नौज, पृ० ११६ ८-९- युवान चाङ्--उ० त्रिपाठी, उपरोक्त, पृ० १६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें से कुछ भिक्षु बड़े विद्वान और हीनयान के सिद्धान्तों की व्याख्या करने में बड़े कुशल थे। दूसरे स्थानों के भिक्षु उनके पास अपनी शंकाओं के समाधान के लिए आतेथे[१]।

लाखामंडल (३६५० फीट)

जौनसार-बाबर के उत्तरपूर्वी कोने पर यमुना और मोरदगाड के संगम पर, लाखामंडल (लक्षमंडल या लाक्षामंडल) में, जहां कहतेहैं, महाभारतकाल में लाक्षागृह बनायागयाथा, शिव, पांचों पांडव, विष्णु और परशुराम के मन्दिर हैं। यहां एक महाशिला केदार के रूप में पूजीजातीहै।

यहां चारों ओर अनेक प्राचीन मूर्तियां बिखरीपड़ीहैं। दो विशाल मूर्तियां, जिन्हें अर्जुन और भीम की, या जय-विजय की बतलायाजाताहै, और जिनके मुखों को रुहेलों ने विकृत करदियाहै, अति सुन्दर हैं। एक शिला पर गणेश, दुर्गा आदि स्मार्त देवी-देवताओं की आकृतियां खुदीहैं। मन्दिर से एक संकीर्ण सुरंग चट्टान के अन्दर होकर नदीतट तक जातीहै।

मन्दिरों की निर्माणशैली और अनेक मूर्तियों की निर्माणकला छटी-सातवीं शताब्दी की लगतीहैं। बड़े मन्दिर की शिरोवेष्ठिनी अवश्य पीछे से जोड़ीगईहै, और उत्तराखण्ड के अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों की 'कत्यूरीवेष्ठिनी' से मिलती-जुलतीहै।

सैंहपुर (सिंहपुर)

लाखामंडल के शिवमंदिर में एक संस्कृत शिलालेख मिलाहै, जिसके अनुसार इस मन्दिर का निर्माण सैंहपुर की राजकुमारी ईश्वरा ने अपने

१- युवान चाङ्--उ० दत्त तथा बाजपेयी--उत्तरप्रदेश में बौद्धधर्म का विकास, पृ० २३१-३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वर्गीय पति जालन्धर के राजकुमार चन्द्रगुप्त की आत्मा की शान्ति के लिए कियाथा[1]। शिलालेख में ईश्वरा के पूर्वज सैंहपुर के यादवनरेशों की वंशावली दीगईहै।

चीनी यात्री युवान चाङ् द्वारा वर्णित सेङ्-हो-पु-लो या सिंहपुर और लाखामंडल-शिलालेख के सैंहपुर को एक मानकर तथा शिलालेख की लिपि का भी ध्यान रखकर डाक्टर भूलर ने उसे ५५७ वि० से ७५७ वि० तक का मानाहै[2]। किन्तु दयाराम साहनी[3] और डाक्टर जायसवाल उसे छटी शताब्दी ईसवी का मानतेहैं[4]।

चीनी यात्री द्वारा वर्णित सिंहपुर तक्षशिला से ११७ मील दक्षिण-पूर्व की ओर नमक की पहाड़ियों की तलहटी में स्थित था। उसके नरेश का नाम न देकर यात्री ने उसे कश्मीरजनपद के अधीन बतलायाहै[5]। प्रशस्ति में सैंहपुरनरेशों की विस्तृत नामावली से सिद्ध होताहै, यह सैंहपुर यात्री के सिंहपुर से भिन्न था।

भूलर ने सैंहपुरराज्य को जालन्धरराज्य के अन्तर्गत[6] और जायसवाल ने दोनों को एक ही मानाहै[7]। यदि सैंहपुर जालन्धरराज्य के अन्तर्गत होता तो शिलालेख में ईश्वरा के पूर्वजों का सम्मान बढ़ाने के लिए जालन्धरराजवंश की भी कुछ कीर्ति अवश्य गाईगईहोती। इसके विपरीत अभिलेख में ईश्वरा के पति के पिता तक का नाम न आने से, उसके वंश के सम्बन्ध में एक भी शब्द न होने से और केवल ईश्वरा के पूर्वजों के शौर्यवीर्य का ही विस्तृत गुणगान मिलने से विदित होताहै कि

१- लाखामंडल--अभिलेख, श्लोक १९-२०; एपि०इं०, जि० १८, पृ०११
२- एपि० इं०, जि० १८, पृ० ११ ३- एपि०इं० जि०१८, पृ० १२५
४- जायसवाल--अं०यु० भारत, पृ० १६४ ५- उ०कनिंघम--उपरोक्त, पृ० १०७ ६- एपि०इं०, जि० १८, पृ० ११ ७- जायसवाल--उपरोक्त, पृ० २६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैंहपुर एक स्वतन्त्र राज्य था और जलन्धर के राजवंश से किसी प्रकार घटकर न था।

सैंहपुर और जलन्धर का एकीकरण स्वयं अभिलेख से खण्डित होजाताहै, जिसमें जलन्धरनरेश को नृप और सैंहपुरनरेशों को भी नृपति कहागयाहै। चीनी यात्री के समय जलन्धरजनपद के अधीन चम्बा, मण्डी, सुकेत और शतद्रु (सरहिन्द) के क्षेत्र सम्मिलित थे। इनमें से किसी के राजकुमार चन्द्रगुप्त से ईश्वरा का बिवाह हुआथा।

नमक की पहाड़ी के पदतल में स्थित सिंहपुर की राजकुमारी द्वारा इतनी दूर लाखामण्डल के बीहड़ क्षेत्र में अपने पति की स्मृति में मन्दिर बनाने की कल्पना संगत नहीं लगती। अभिलेख से प्रतीत होताहै कि ईश्वरा विधवा होने पर अपने मैके सैंहपुर में रहनेलगीथी, और यहां सम्भवतः अपने पितृकुल की सहायता से उसने अपने पति की सद्गति के लिए मन्दिर का निर्माण कियाथा। इसीलिए अभिलेख में पितृकुल की प्रशस्ति आईहै।

अर्जुन ने उत्तरदिशा की दिग्विजय में चित्रायुध के द्वारा सुरक्षित सुरम्य सिंहपुर को वलपूर्वक जीतलियाथा[१]। शिलालेख में सैंहपुरनरेशों को यादव कहागयाहै[२]। और उनका उस क्षेत्र पर युग (कलियुग) के आरम्भ से अधिकार बतायागयाहै। महाभारत के अनुसार जरासन्ध के भय से यादवों की कुछ टोलियां मथुरा से पश्चिम की ओर जाबसीथीं[३]। जायसवाल लाखामण्डल-अभिलेख के यादवों को उन्हीं टोलियों में से एक मानतेहैं[४]।

नौंवी शताब्दी विक्रमी में, जब धर्मपाल (८२७ वि० से ८६७ वि०) ने कन्नौज के सिंहासन पर इन्द्रायुध के स्थान पर चक्रायुध को बिठाकर

१- सभापर्व, २७।१८-२१

२-'यदुवंश भुवां राज्ञां सैंहपुरराज्यमायुगद्दधताम्'--ला०मं०अभि०श्लो०२

३- सभापर्व, २७।२० ४- जायसवाल--अं० युगीन भारत, पृ० १६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दरबार किया तो भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गंधार और कीर जनपदों के नरेशों ने उपस्थित होकर उसके कार्य का अनुमोदन कियाथा[१]। मजूमदार का अनुमान है कि इस सूची के यदु सैंहपुर के यादव थे[२]।

सुघगांव से १६ मील उत्तर की ओर, और कालसी से लगभग ८ मील दक्षिण की ओर यमुना के दहिने तट पर, यमुना और गिरिनदी के संगम पर आज भी सिंहपुर गांव मिलताहै। यहां प्राचीन बस्तियों के अवशेषों से और संगम पर उसकी महत्वपूर्ण स्थिति से उसकी प्राचीन महत्ता पर प्रकाश पड़ताहै। हमारा अनुमान है कि यही सिंहपुर लाखामंडल के अभिलेख का सैंहपुर है।

स्रुघ्नराज्य के अस्तित्व का विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी से निरन्तर उल्लेख मिलताहै। चीनी यात्री के समय, सम्वत् ६९२ में स्रुघ्नराज्य की सीमा गिरिनदी से गंगाजी तक और हिमालय से अम्बाला, सहारनपुर, देहरादून के भाबरप्रदेश तक फैलीथी। इसी शताब्दी में इसी क्षेत्र के अन्तर्गत लाखामंडल का अभिलेख इस क्षेत्र को सैंहपुरराज्य बतलाताहै और वहां के यादवनरेशों की १२ पीढ़ियों की नामावली देताहै। जिनका राज्यकाल २५ वर्ष प्रति नरेश को देने पर लगभग ३०० वर्ष निकलताहै।

विदित होताहै कि स्रुघ्नराज्य का दूसरा नाम सैंहपुर या सिंहपुरभी था। सम्भवतः वंशावली के सातवें नरेश सिंहवर्म्मन ने सैंहपुर नामक नगर

१- 'भोजैर्मत्स्यैः समद्रैः कुरुयदुयवनावन्ति गान्धारकीरै—
भूपैर्व्यालोलमौलिप्रणति परिणतैः साधुसंगीर्यमाणः।
हृष्यत्पञ्चालवृद्धोधृतकनकमय स्वाभिषेकोद् कुम्भो
दत्तः श्रीकन्यकुब्ज (ब्ज) स्सललितचलित भ्रूलतालस्मयेन'॥
रा०व० पांडे--पृ० २२७

२- मजूमदार तथा पुशलकर-एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्थापना की थी। और फिर राजधानी के नाम पर अभिलेख में स्रुघ्न का नाम भी सैंहपुर लिखदियागया।

जायसवाल का अनुमान है कि सैंहपुर के यादवों के राज्यकाल का आरंभ २५० ईसवी के आसपास हुआहोगा। इससे सिंहपुर के प्रथम यादवनरेश सेनवर्म्मन का राज्यकाल ईसा की तीसरी शताब्दी के अन्तिम भाग में मानाजासकताहै।

शीलवर्म्मन का समय, जिसने कालसीशिला के ठीक सामने यमुना के बांए तट पर जगतराम में अश्वमेधयज्ञ कियाथा, रामचन्द्रन् ने तीसरी शताब्दी ईसवी निर्धारित कियाहै[1]। सैंहपुर के यादववंश के सभी नरेशों के नामान्त में वर्म्मन मिलताहै। और सर्वप्रथम नरेश सेनवर्म्मन का राज्यकाल भी तीसरी शताब्दी ईसवी निकलताहै। अस्तु जगतराम में अश्वमेध करनेवाले शीलवर्म्मन और शिलालेख के सेनवर्म्मन को एक ही व्यक्ति मानाजासकताहै।

भरहुत और लाखामण्डल के अभिलेखों तथा अन्य प्रमाणों से विदित होताहै कि उत्तराखंड के पश्चिमी भाग यामुनप्रदेश पर विक्रम से दो शताब्दी पूर्व से लेकर एक शताब्दी पूर्व तक बौद्धनरेश विश्वदेव, अग्रराज, धनभूति और उनके वंशजों का अधिकार रहा। विक्रमपूर्व १२७ के लगभग इस प्रदेश पर शुंग-आधिपत्य होगया और लगभग एक शताब्दी तक बनारहा।

३०० विक्रमी के लगभग यहां लाखामंडल-अभिलेख के सेनवर्म्मन यादव का राज्य था। उसके वंशजों का इस क्षेत्र पर कम से कम नौवीं शताब्दी विक्रमी के अन्त तक, सम्भवतः उसके पश्चात् भी कुछ काल तक अधिकार बनारहा। बीच में ६६३ विक्रमी से ७०५ विक्रमी तक इस प्रदेश पर हर्ष का आधिपत्य होगया।

१- एनशिएट इंडिया, जि० ६, पृ० १४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरद्वाज

उत्तराखंड के पूर्वी भाग, गंगाजी से कालीगंगा तक फैले प्रदेश के, प्राचीनकाल में भरद्वाज और पांचाल (पंचाल) नाम मिलतेहैं। ऋग्वेद के वृद्धतम ऋषि भरद्वाज ने अपनी ऋचा में यमुना का उल्लेख कियाहै[१]। सम्भवत: उनका आश्रम यमुनातट पर था। महाभारत के अनुसार भरद्वाज का आश्रम गंगातट पर गंगाद्वार में था[२]। यहीं घृताचीअप्सरा के कारण उनके अयोनिज पुत्र द्रोण का जन्म हुआथा[३]।

गंगाद्वार में भरद्वाज के आश्रम के कारण निकटवर्ती प्रदेश भी भरद्वाज कहलानेलगा। पाणिनि ने भरद्वाजदेश और उसके अन्तर्गत कुकण और पर्ण नामक गांवों का एवं पतंजलि ने उसके ऐणीक तथा सौसुक दो अन्य ग्रामों का उल्लेख कियाहै[४]। मारकंडेय, वायु, ब्रह्मांड आदि पुराणों की जनपदसूची में गिनेगए भरद्वाजप्रदेश[५] की पहचान परजिटर ने गंगाजी की उपत्यका के पर्वतीयप्रदेश, गढ़वाल से कीहै[६]। महाभारत, पुराणों, पाणिनि के गणपाठ और महाभाष्य में[७] अत्रि या आत्रेय और भरद्वाज का प्राय: साथ-साथ उल्लेख मिलताहै[८]।

भरद्वाज के वंशजों या शिष्यपरम्परा का सम्बन्ध उत्तराखंड से चिरकाल तक बनारहा। इसीसे आज उत्तराखंड के अधिकांश ब्राह्मण-राजपूत अपना गोत्र भरद्वाज बतलातेहैं[९]।

शक्तिसंगमतंत्र के अनुसार प्राचीनकाल में इन्द्रप्रस्थ से तीस योजन

१- राहुल--ऋ० आर्य-पृ० ६ २- आदिपर्व १२६।३३
३- आदिपर्व, १२६।३३-३८ ४- अग्निहोत्री--पृ० १०६
५- 'आत्रेयाश्च भरद्वाजा: पुष्कलाश्च कशेरुका:'--मारकंडेयपु० अ० ५७
६- परजिटर--मारकंडेयपु०, पृ० ३२० ७- महाभाष्य, २।४।६२; ४।१।८९ ८- अग्निहोत्री--पृ० १०६ ९- देखिए, मैठाणी--भा० गोत्र--प्रवर-दीपिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर की ओर अतिसुन्दर प्रदेश पांचाल कहलाताथा[1]। इस उल्लेख के अनुसार यामुन और भरद्वाज दोनों प्रांत सहित सारा उत्तराखंड पांचाल के अन्तर्गत रहाहोगा।

उत्तरकालीन वैदिकसंहिताओं तथा ब्राह्मणग्रन्थों में पांचालवासियों का सैकड़ों बार उल्लेख मिलताहै। बृहदारण्यक (६।१।१) एवं छान्दोग्य (५।३।१) उपनिषदों तथा सांख्यायनश्रौतसूत्र (१२।१३।६) में पांचाल के ब्राह्मणों द्वारा दार्शनिकचर्चा में भागलेने का उल्लेख मिलताहै।

पांचाल की सीमाएं बदलतीरहीं। महाभारतकाल में पांचाल उत्तर में हिमालय से दक्षिण में चम्बल तक फैलाथा[2]। विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी में पंचाल के दो भाग थे,—पूर्व और उत्तर[3]। पंतजलि पंचाल, विशेषकर उत्तरपंचाल से, जो स्रुघ्न से अतिनिकट था, सुपरिचित थे[4]। उन्होंने पंचालजनपद को सुभिक्ष, सम्पन्नपानीय तथा बहुमाल्यफल बतलायाहै[5]। उन्होंने पंचाल के एक शासक ब्रह्मदत्त का उल्लेख कियाहै[6], जिसका उल्लेख जातकों में भी मिलताहै। महाभारतकाल में उत्तरपांचाल गंगा के उत्तरतट पर था। उसकी राजधानी अहिच्छत्रा (बरेली के निकट आंवला) थी[7]।

गंगाद्वार

लछमनझूला से कनखल तक गंगाजी के दोनों तटों पर फैले प्रदेश, गंगाद्वार को अति प्राचीनकाल में ही धार्मिक महत्व प्राप्त होगयाथा। किसी प्राचीन गाथा के अनुसार यहां देवहस्ती ऐरावत ने उशीनरपर्वत के

१- 'इन्द्रप्रस्थान्महेशानि ! दशत्रियोजनोत्तरम्।
पांचालदेशो देवेशि ! सौन्दर्यगर्वभूषितः॥' शक्तिसंगम, ३।७।२३

२- अग्निहोत्री, पृ० १०५ ३- महाभाष्य, ४।३।१२५, ५।१।११५

४- अग्निहोत्री--पृ० १०५ ५ - महाभाष्य, १।२।५२ ६- महाभाष्य, २।३।६ ७- आदिपर्व, १३७।७०-७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखर को तोड़कर गंगाजी को उताराथा[1]।

गंगाद्वार में प्रतीप ने[2], पत्नीसहित महर्षि अगस्त्य ने[3] तथा जयद्रथ ने तपस्या कीथी[4]। यहां भीष्म ने अपने पिता का श्राद्ध कियाथा, जिसमें पिंड लेने शान्तनु का हाथ प्रकट हुआथा[5]। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के साथ गंगाद्वार के वन में दग्ध हुएथे। यहीं युधिष्ठिर ने उनका श्राद्ध कियाथा[6]। अर्जुन ने गंगाद्वार की तीर्थयात्रा कीथी[7]। उन दिनों यहां नागजाति की कुछ बस्तियां थीं। अर्जुन ने यहां नागकन्या उलूपी से बिवाह कियाथा[8]।

गंगाद्वार को स्वर्गद्वार समझाजाताथा। गंगाद्वार के अन्तर्गत कोटितीर्थ, सप्तगंग, त्रिगंग, शक्रावर्त, कपिलावट, नागतीर्थ, ललितक, कुब्जाम्रक (कुब्जार्मक)[9], कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत और कनखल आदि वे सभी तीर्थ गिनेजातेथे जो लक्ष्मणझूला से कनखल तक फैलेहैं[10]।

पुराणों[11] और केदारखण्डग्रन्थ में गंगाद्वार के तीर्थों की भूरि-भूरि प्रशंसा कीगईहै। हिमालय में, विशेषकर मायाक्षेत्र (गंगाद्वार) में भक्तकुल में जन्म लेना परमसौभाग्य का सूचक बतायागयाहै[12]। गंगाद्वार में जाते ही शम्बूक शूद्र को इतनी पावनता प्राप्त होगईथी कि उसे भगवान् रामचन्द्रजी के सन्मुख देहत्याग का सुअवसर मिलगया[13]।

१-कथा-सरित्सागर, ३।४-५ २-आदिपर्व, ९७।१ ३-वनपर्व, ९७।११
४- वनपर्व, २७२।२४-२६ ५- अनुशासनपर्व, ८४।११-१५
६- आश्रम०पर्व, ३९।१४-२० ७- आदिपर्व, अ० २१३
८- आदिपर्व, २१३।१२ ९- स्थानवाची अर्मकान्त शब्द विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी में प्रचलित थे। अग्रवाल--पा० का० भारतवर्ष, पृ० ८१ १०- वन अ० ८४; अनुशासनपर्व, २५।१३ ११- देखिए, वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश, पृ० ५७५-७७ १२-केदारखंड, ११५।१५
१३- केदारखंड, १०९।१-९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कनखल में दक्षप्रजापति ने यज्ञ कियाथा, जिसमें शिवजी का तिरस्कार देखकर सती ने आत्महत्या करदी और क्रुद्ध होकर शिवजी के वीरभद्रादि गणोंने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करदिया[1]। अन्त में शिवजी की महत्ता को स्वीकार करके दक्ष ने उनसे क्षमायाचना की[2]।

इस पौराणिक कथा का ऐतिहासिक आधार भी होसकताहै। शैवमत के प्रचार की प्रारम्भिक घटनाओं से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा-जाताहै। इस कथा से एक भौगोलिक संकेत भी मिलताहै। गंगाद्वार में, गंगातट पर समृद्धिशाली नगर और गांव जब भयंकर बाढ़ से बहगए तो कम वर्षा वाला युग आने पर प्रजापति ने वहां फिर से ग्राम और नगर बसाएथे। विक्रमपूर्व आठवीं शताब्दी में हस्तिनापुर को नष्ट करनेवाली बाढ़ से गंगाद्वार की तत्कालीन बस्तियों का विनाश हुआहोगा।

समय-समय पर आनेवाली अनेक बाढ़ों तथा अग्निकांडों के द्वारा गंगाद्वार के प्राचीन ऐतिहासिक अवशेष नष्ट करदिएगए। सड़क, रेलमार्ग और नए भवनों के निर्माण के समय रहे-सहे अवशेषों को मिटादियागया। पुजारियों के पास ज्यों-ज्यों धन एकत्रित होतागया त्यों-त्यों वे पुराने छोटे मन्दिरों को तोड़कर उनके स्थान पर नए ढंग के मन्दिर बनाकर उनकी प्राचीनता मिटातेगए।

मुसलमानों के प्रहार से जो मूर्तियां और कलापूर्ण वस्तुएं बचसकीं, उनमें से अधिकांश को मूर्तिविक्रेता उठालेगए। नहर खोदते समय पाषाणकालीन बस्तियों के जो अवशेष मिलेथे, उनकी भी सुरक्षा न होसकी। फिर भी गंगाजी के बांए तट पर लछमनझूला से लेकर चंडीघाट से आगे तक ढूंढ़करने पर अब भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री मिलसकतीहै। इस क्षेत्र में तथा अन्यत्र नवनिर्माण के आवेश में पुरातत्व का वेग से विनाश होरहाहै। आधी शताब्दी में रही-सही सामग्री भी समाप्त होजाएगी।

१- शान्तिपर्व, २८४।३६-५० २- शान्तिपर्व, २८४।६१-१८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीरभद्र

केदारखण्डग्रन्थ में वीरभद्र और उसके निकटवर्ती क्षेत्र की पावनता की बड़ी प्रशंसा कीगईहै। वीरभद्र के पश्चिम में अति पावन शालिहोत्रेश्वर[1] और पूर्व में रम्भानदी और गंगाजी के संगम पर रंभेश्वर नामक शिवमन्दिर बताएगएहैं[2]।

ब्रह्महत्या के निवारण के लिए भगवान् राम और लक्ष्मण ने वीरभद्र के पास कुब्जाम्रक में तपस्या कीथी[3]। लक्ष्मण ने यहां एक पैर पर खड़े होकर १२ वर्षों तक निराहार रहकर शिवजी की आराधना की थी[4]। उसके पश्चात् वे सौ वर्ष तक केवल कमलदल और फलों पर निर्भर रहकर तपस्या करतेरहे[5]।

वीरभद्र का वर्तमान मन्दिर अति प्राचीन अवशेषों के ऊपर बना हुआहै। यहां से थोड़ी दूर पर गंगाजी के पश्चिमी तट पर एक छोटे-से नातिप्राचीन मन्दिर में एक अति सुन्दर मुखलिंग है, जिसका निर्माण विक्रम की पहली-दूसरी शताब्दी में हुआहोगा। निकट के खेतों में अनेक टूटे-फूटे मन्दिरों के अवशेष बिखरेपड़ेहैं। इनसे प्राप्त मूर्तियां विक्रम की दूसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक की होसकतीहैं।

गंगाजी और रम्भानदी के संगम के पास गंगाजी के दहिने तट पर प्राचीन दुर्ग की दीवारों और सीढ़ियों के अवशेष मिलतेहैं। इस दुर्ग पर, जिसे आज भी गढ़वालनरेश का दुर्ग कहाजाताहै, सवा फीट लम्बी और पौन फीट चौड़ी लाल पक्की ईंटें मिलने से इसका निर्माणकाल विक्रम की पहली-दूसरी शताब्दी में मानाजासकताहै।

स्रुघ्नराज्य की दक्षिणपूर्वी सीमा पर इस दुर्ग की स्थिति सामरिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण थी। इसे गंगाजी की दहिनी ओर गंगाजी से लगभग पच्चीस फीट ऊंचे तट पर बनायागयाथा। इसकी पूर्वी सीमा

१- केदारखंड, ११५।३५
२- केदारखंड, ११५।५२
३- केदारखंड, १२३।१
४-५- केदारखंड, १२३।१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगाजी, रम्भानदी और एक बरसातीनाले तथा गंगाजी के पार विस्तृत वनप्रदेश के कारण बड़ी सुरक्षित थी। दुर्ग से गंगाजी तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनीथीं। दुर्ग के बाहर वीरभद्र और अन्य देवताओं के मन्दिर थे।

दुर्ग के द्वारों और गवाक्षों पर नाना प्रकार की चित्रित ईंटों का प्रयोग हुआथा। उनमें से कुछ पर बेलबूटे, फूल-पत्ते और पशु-पक्षी, विशेषकर मयूर बनेहुएथे। इनमें से एक ईंट श्री फूलचन्द त्रिपाठी के पास है। दुर्ग के अन्दर और बाहर दीवारों की ताकों में अनेक सुन्दर मूर्तियां स्थापित कीगईथीं। बीस वर्ष पूर्व मैंने यहां जितनी मूर्तियां और प्राचीन अवशेष देखेथे, उनमें से अधिकांश मुझे इस वर्ष नहीं दिखाईदिए।

दुर्ग के अवशेषों के ऊपर कुटिया बनानेवालों ने प्राचीन वस्तुएं नष्ट करदीहैं। यहां अब भी एक विशाल शिला पर खुदीहुई नांद है, जिसमें कई भैंसों को एक साथ जल, चारा-भूसा खिलासकतेहैं।

दुर्ग से थोड़ी दूरी पर, जहां नवीन वीरभद्रनगर बसायाजारहाहै, प्राचीन नगर बसाहुआथा। इस के भवनों का निर्माण सवा फीट लम्बी, पौन फीट चौड़ी पकी लाल ईंटों से हुआथा। यहां सड़क के लिए भूमि खोदते समय ऐसी ईंटों से बनी लम्बी दीवार के अवशेष लगभग आधा मील की दूरी तक लगातार मिलने से विदित होताहै कि नगर के बाहर सम्भवतः प्राकार बनीहुईथी। भवनों के बीच में सम्भवतः गलियां और जल निकलने के लिए नालियां बनीहुईथीं।

बड़े खेद की बात है कि नवनिर्माण के आवेश में इस प्राचीन नगर के अवशेषों के अध्ययन का कुछ भी प्रयत्न नहीं कियागया। खुदाई में प्राप्त दीवारों को तोड़कर सड़क पर बिछादियागया। और प्राचीन अवशेषों का तनिक भी महत्व न समझकर उनके ऊपर भवनों का निर्माण करदियागया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामरिक महत्व के अतिरिक्त वीरभद्र का आर्थिक महत्व भी था। यह नगर उस महामार्ग पर, गंगातट पर बसाथा, जो हिमालय के पाद-प्रदेश से होकर पूर्व से पश्चिम तक जाताथा। यहां हिमालय और मैदान से आनेवाली विक्रयवस्तुओं के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण केन्द्र रहाहोगा। गंगाजी को पार करने के घाट पर इसकी स्थिति चुंगी वसूल करने की दृष्टि से भी बड़ी महत्वपूर्ण थी। उत्तराखण्ड के तीर्थों के यात्रामार्ग पर भी इस नगर का महत्व कम न था।

मायापुर, हरिद्वार

महाभारत में कनखल का[1] उल्लेख तो मिलताहै, किन्तु मायापुर और हरिद्वार का नहीं। महाभारत में हरिद्वार के लिए गंगाद्वार नाम का प्रयोग मिलताहै[2]। चौथी शताब्दी विक्रमी में कालिदास ने कनखल[3] का उल्लेख कियाहै, मायापुर, हरिद्वार और गंगाद्वार का नहीं।

अमरसिंह द्वारा विष्णुपदी[4] का उल्लेख मिलने से विद्वानों का अनुमान है कि विष्णुपद-सम्बन्धी गाथा विक्रम की पांचवीं शताब्दी से पहले चलपड़ीथी[5]। तैमूर के इतिहासलेखक शरीफुद्दीन ने कोहपैड़ी या पैड़ोपहाड़ का[6] और अबुलफजल ने माया उर्फ हरिद्वार का उल्लेख कियाहै। शरीफुद्दीन ने हरिद्वार के लिए कपिल की घाटी का भी प्रयोग कियाहै[7]। महाभारत में गंगाद्वार के कपिलतीर्थ का उल्लेख मिलताहै[8]।

विक्रम की सातवीं शताब्दी से पूर्व किसी समय मायापुर नाम प्रचलित होगया। स्युन से युवान् चाङ् मो-ती-पु-लो या मादीपुर

१- वनपर्व, ८४।३०; ९०।२२; इत्यादि २- आदिपर्व, ६७।१; आदि
३- पूर्वमेघ, ५१ ४- अमरकोष, १-१०।३१ ५- कनिंघम--
ए० ज्योग्राफी, पृ० २९७ ६- जफरनामा, पृ० १३५
७- जफरनामा--पृ० १३७ ८- वनपर्व, ८४।३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्तमान मंडावरनगर में पहुंचाथा और वहां से उत्तर की ओर चलकर गंगाजी के पूर्वी तट पर स्थित मो-यु-लो या मयूर नामक नगर में गयाथा। इस नगर के पास ही एक विशाल मन्दिर था जो गंगाद्वार कहलाताथा। इसके अन्दर एक कुंड था जिसमें गंगाजी की नहर का जल भरा रहताथा[1]।

यात्री ने लिखा है—यहां के निवासियों का दृढ़ विश्वास था कि गंगाजी में मज्जन करने से दिव्य लोकों में जन्म होताहै। महान् सन्त और आचार्य आर्यदेव एक बार वहां गए और उन्होंने कुछ लोगों को विश्वास करादिया कि गंगाजल के द्वारा पापी का उद्धार असंभव है[2]। युवान चाङ् जयगुप्त नामक एक सौतांत्रिक आचार्य से शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए कुछ काल तक गंगाद्वार में रहाथा[3]।

उन दिनों मयूरनगर बड़ा घना बसाथा[4]। उसका घेरा २० ली या ३$\frac{1}{3}$ मील था[5]। कनिंघम ने मयूरनगर की पहचान गंगाजी की नहर के स्रोत पर स्थित मायापुर के उजाड़ कसबे से कीहै। उसका अनुमान है कि विक्रम की सातवीं शताब्दी में मायापुर श्रवणनाथ के मन्दिर से लेकर गंगानहर के तट पर स्थित राजाबेन के दुर्ग तक फैलारहाहोगा[6]।

यात्री ने मयूरनगर और गंगाद्वार, दोनों की स्थिति गंगाजी के पूर्वी तट पर बतलाई है। उसके इस लेख से भी, कि ये स्थान मंडावरराज्य के उत्तरपश्चिमी सीमांत पर थे, यही सिद्ध होताहै। यदि वे गंगाजी के पश्चिमी तट पर होते तो उन्हें स्रुघ्नराज्य के उत्तरपूर्वी सीमांत पर बतलाना अधिक संगत होता[7]। आजकल ये दोनों नगर गंगाजी के पश्चिमी तट पर हैं। इस क्षेत्र का सावधानी से निरीक्षण करने[8] पर

१- उ०कनिंघम--ए० ज्योग्राफी, पृ० २६५ २- उ०दत्त तथा बाजपेयी- पृ० २३६ ३- दत्त तथा बाजपेयी--पृ० २३६ ४-६- कनिंघम-- उपरोक्त, पृ० २६७ ७- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २६५
८- कनिघम-उपरोक्त, पृ० २६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कनिंघम इस निश्चय पर पहुँचेथे कि प्राचीनकाल में गंगाजी मायापुर-कनखल से लेकर ज्वालापुर तक पश्चिम की ओर बहतीथीं। पीछे जब गंगाजी ने अपना मार्ग बदलदिया तो उसकी सूखी तलहटी में हरिद्वार के नए मकान बनगए[1]।

डेढ़ शताब्दी पहले तक हरिद्वार में अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवशेष थे। राजाबेन के दुर्ग का खंडहर ७५० फीट लम्बी और इतनी ही चौड़ी भूमि पर फैलाथा[2]। यहां अनेक ऊंचे टीले थे जो टूटीफूटी ईंटों के ढेरों से ढके थे। इनमें से एक अतिविशाल टीला नहर के पुल से थोड़ी दूर पर ऊपर की ओर था[3]। नारायणशिला, मायादेवी और भैरव के मन्दिरों की प्राचीनता तब तक सुरक्षित थी[4]।

गंगातट पर अपनी महत्वपूर्ण भूगोलिक स्थिति के कारण गंगाद्वार-मायापुर को प्राचीनकाल से ही प्रसिद्धि और समृद्धि प्राप्त होगईथी। यहां सर्वत्र प्राचीन विशाल ईंटें और अनेक अति प्राचीन मुद्राएं मिलने से[5] भी इसकी प्राचीन समृद्धि की पुष्टि होतीहै।

ब्रह्मपुर जनपद

पांचवीं शताब्दी में बराहमिहिर ने हिमालयवर्ती जनपदों में कीर, कश्मीर, अभिसार, दरद, तंगण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र और कौणिन्द के साथ ब्रह्मपुर का उल्लेख कियाहै[6]। विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्त में चीनी यात्री युवान चाङ् के समय गंगाजी के पूर्वी तट से कालीगंगा तक फैला प्रदेश वर्तमान गढ़वाल (चमोली सहित) तथा कुमांऊं (पिथौरागढ़, अलमोड़ा और नैनीताल) का क्षेत्र ब्रह्मपुरराज्य के अन्तर्गत था[7]।

महाभारत में ब्रह्मपुर का उल्लेख नहीं मिलता। समुद्रगुप्त की

१- कनिंघम -ए०ज्यो०, पृ०२९६ २-५-कनिंघम--उपरोक्त, पृ०२९५
६- बृहत्संहिता, १४।३० ७- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० ३००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयागप्रशस्ति में, जिसकी रचना संभवत: ४०७ विक्रमी के आसपास हुईथी, गुप्तसाम्राज्य की उत्तरी सीमा पर कामरूप (आसाम) और नेपाल के पश्चात् कर्त्तपुरराज्य का उल्लेख मिलताहै[1], जिसके अन्तर्गत विद्वान गढ़वाल और कुमांऊ दोनों को गिनतेहैं[2]। समुद्रगुप्त के समय या तो इस प्रदेश के, कर्तपुर और ब्रह्मपुर, दोनों नाम प्रचलित थे, अथवा ब्रह्मपुर नाम का प्रयोग प्रयागप्रशस्ति के पश्चात् आरम्भ हुआथा।

चीनीयात्री के समय ब्रह्मपुरराज्य का घेरा ४००० ली अर्थात् ६६७ मील था[3]। उत्तराखंड के पूर्वी भाग, अलकनन्दा से कालीगंगा तक फैले प्रदेश का घेरा भी, मानचित्र पर लगभग इतना ही निकलताहै[4]।

ब्रह्मपुर

ब्रह्मपुरनगर की स्थिति विवादास्पद है। विद्वानों ने इसकी पहिचान टिहरी-गढ़वाल में बाड़ाहाट-उत्तरकाशी से[5], पौड़ी-गढ़वाल में पांडुवाला से[6], कुमांऊ में ढिकुली[7] और लखनपुर-वैराटपट्टन से[8] तथा बिजनौर में

१- 'समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्त्तपुरादिप्रत्यन्त-नृपतिभिः...'
—प्रयाग-प्रशस्ति, पंक्ति, २२

२- भ० श० उपाध्याय--प्रा०भा० का इतिहास, पृ० २३७; J.R.A.S. १८९८, पृ० १९८-९९; फ्लीट और ऐलेन के मत के खंडन के लिए देखिए, भ० श० उपाध्याय-उपरोक्त, पृ० २३८

३-उ०कनिंघम--ए०ज्यौ०--पृ०३०० ४-कनिंघम--उपरोक्त, पृ०३००

५- कनिंघम-- उ० पातेराम--पृ०१९७ तथा राहुल-गढ़वाल, पृ० ५७

६- फूरर--मौ० ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४५-४६ ७- बदरीदत्त पांडे--पृ० १८५ ८- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २९९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़ापुर से[१] कीहै।

युवान चाङ् स्रुघ्न से चलकर पहले मो-ती-पु-लो या मादीपुर, वर्तमान मंडावरनगर में गया[२] और फिर वहां से उत्तर की ओर ३००ली अर्थात् ५० मील चलकर पो-लो-कि-मो-पु-लो या ब्रह्मपुर पहुँचाथा[३]।

मंडावर से ५० मील उत्तर की ओर लालढांग के पास पांडुवाला स्रोत में दूर-दूर तक फैले ध्वंसावशेषों को फूरर ने ब्रह्मपुर के अवशेष मानाहै[४]। पांडुवाला के अवशेषों के विस्तार से सम्भवतः पूर्णपरिचित न होने के कारण कनिंघम ने ब्रह्मपुर की पहचान कुमांऊं में लखनपुर-बैराटपट्टन से कीहै।

मंडावर से बैराटपट्टन उत्तर में न होकर उत्तर-पूर्व में स्थित है। मानचित्र में इसकी दूरी ५० मील न होकर ८० मील से अधिक है। इसलिए बैराटपट्टन पर ब्रह्मपुर की पहचान थोपने के लिए कनिंघम को कुछ रोचक कल्पनाएं करनीपड़ीहैं।

उनका कहना है कि यात्री ने दिशाभ्रमवश उत्तरपूर्व के स्थान पर उत्तर लिखदियाहै[५]। उसने ब्रह्मपुरराज्य में तांबे की जिन खानों का वर्णन कियाहै, वे गढ़वाल में धनपुर और पोखरी की खानें हैं[६]। यह प्रदेश पहले कत्यूरीराज्य में था, जिसकी राजधानी रामगंगा के तट पर लखनपुर-बैराटपट्टन थी। ब्रह्मपुर मंडावर से ८० मील और मंडावरराज्य के उत्तरपश्चिमी सीमांत पर स्थित कोटद्वार से ५० मील की दूरी पर है[७]।

या तो यात्री ने ब्रह्मपुर की दूरी मंडावर से न देकर कोटद्वार से दी है[८], अथवा उसने मंडावर से दूरी न देकर गोविषाण से दूरी दीहै, जहां वह ब्रह्मपुर के पश्चात् गयाथा[९]। गोविषाण से बैराटपट्टन ५० मील

१- बदरीदत्त पांडे--पृ० १८८ २- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २६३
३- कनिंघम--उपरोक्त- पृ० २९९ ४- फूरर--मो० ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४५-४६ ५-९. कनिंघम--उपरोक्त, पृ० २९९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित है। इसलिए ब्रह्मपुर लखनपुर-बैराटपट्टन का दूसरा नाम प्रतीत होताहै[1]।

कनिंघम की इस खींचतान[2] से सहमत न होकर फूरर ने पांडुवाला सोत के विस्तृत अवशेषों को ही ब्रह्मपुर के अवशेष मानाहै[3]। यह स्थान मंडावर से उत्तर में पैदल मार्ग से ५० मील की दूरी पर है, जैसा कि चीनी यात्री ने भी बतलायाहै।

पांडुवाला सोत के अवशेष तीन-चार मील के घेरे में वन के अन्दर फैलेहुएहैं। ऐसा प्रतीत होताहै कि हरिद्वार से पांडुवाला सोत तक और वहां से आगे मोरध्वज और कोटद्वार तक हिमालय की तलहटी में अनेक महत्वपूर्ण बस्तियां थीं।

हरिद्वार से पूर्व की ओर छैः मील की दूरी पर मांडल में प्राचीन काल में महत्वपूर्ण स्थान था। अब भी यहां एक प्राचीन मन्दिर है जो २० फीट लम्बे और इतने ही चौड़े चबूतरे पर बनाहै। इसके चारों ओर जलप्रणालियां बनीहैं, जिन पर दक्षिण में कन्या की, पश्चिम में सिंह की और उत्तर में मेष की मुखाकृतियां बनीहैं। पश्चिम की ओर की मुखाकृति को तोड़कर विरूप करदियागयाहै[4]।

यहां अनेक चित्रित शिलाएं, लम्बे तोरण-स्तम्भ और द्वारपट्टिकाएं चारों ओर वन में बिखरीपड़ीहैं[5]। वनप्रदेश मे फैलेहुए अनेक टीले महत्वपूर्ण

१- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० ३००

२- 'कनिंघम का मनमाने ढंग से भारतीय स्थानों के चीनी रूपान्तरों को तोड़ना-मरोड़ना और अपनी मान्यता के अनुकूल लाने के लिए युआन चुआङ् के यात्रा-विवरण के पाठ के उत्तरपश्चिम को उत्तर पूर्व पढ़लेना या पूर्व को पश्चिम पढ़लेना, ठीक वैज्ञानिक मार्ग नहीं कहाजासकता'।—भरतसिंह उपाध्याय--बु०भा० भूगोल-पृ० १०-११

३- फूरर--उपरोक्त, पृ० ४५-४६ ४- फूरर-उपरोक्त, पृ० ४५-४६; पातीराम--पृ० १८३ ५- फूरर--उपरोक्त, पृ० ४५-४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक सामग्री की अबतक सुरक्षा कररहेहैं।

मांडल से ४ मील की दूरी पर पूर्व को ओर स्थित पांडुवाला सोत के अनेक महत्वपूर्ण अवशेषों को उठाकर गुरुकुल कांगड़ी के संग्रहालय में रखागयाहै। मन्दिरों की अनेक प्राचीन मूर्तियां मूर्तिव्यापारी उठा लेगएहैं।

एक अति सुन्दर पंचमुखी शिवलिंग की, जो लाल शिला का बनाहै, और विक्रम की दूसरी शताब्दी की मथुराकला का अति सुन्दर उदाहरण है, वनप्रदेश से लाकर लालढांग के मन्दिर में स्थापना कीगईहै। यहां भी वन में अनेक टीलों के नीचे महत्वपूर्ण सामग्री दबीपड़ीहै। स्रुघ्न, वीरभद्र और मायापुर के समान पांडुवाला की भी, जिसे ब्रह्मपुर मानाजासकताहै, सामरिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण स्थिति थी।

अलमोड़ा में तालेश्वर नामक स्थान पर ब्रह्मपुर के सोम-सूर्य-वंशी पौरवनरेशों के दो ताम्रशासन प्राप्त हुएहैं[1]। पहला शासन विष्णुवर्म्मन के प्रपौत्र, वृषवर्म्मन के पौत्र, अग्निवर्म्मन के पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज द्विज (द्युति) वर्म्मन् के[2] और दूसरा द्युतिवर्म्मन् के पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज विष्णुवर्म्मन् द्वितीय के राज्यकाल का है[3]।

दोनों शासन पर्वताकरराज्य की ब्रह्मपुर नामक राजधानी से, जो

१- मजूमदार तथा पुशलकर--एज आव इ० कन्नौज, पृ० १३३

२- 'विष्णुवर्म्मन प्रपो (पौ) त्रस्य पो (पौ) त्रस्य वृषवर्म्मण (:) श्र्यग्निवर्म्मसुतस्येह शासन (:) द्विज (द्युति)वर्म्मण (:)'

एपि० इंडिका, जि० १३, पृ० ११५

३-'परमभट्टारक महाराजाधिराज श्र्यग्नि (ग्नि) वर्म्मा (।।) तदात्मजः महाराजाधिराज श्री द्युतिवर्म्मा (।।) तन्ननयो (तत्तनयो)... परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री विष्णुवर्म्मा . . .'

एपि० इंडिका, जि० १३, पृ० ११८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि पुरन्दरपुर के समान थी, शेषनाग के अवतार वीरणेश्वर के मन्दिर के पुजारियों को दीगई भूमि के सम्बन्ध में प्रकाशित किएगएथे। श्री गुप्ते ने, जिन्होंने इन शासनों का अध्ययन कियाहै, उन्हें जाली ठहराया है[१]।

शासन जाली होने पर भी, उनमें दीगई वंशावली को सही मानाजासकताहै। शासनों में पौरवों की पांच पीढ़ियां मिलने से उनका राज्यकाल सवा सौ या डेढ़ सौ वर्ष के लगभग मानाजासकताहै।

श्री गुप्ते का अनुमान है कि शासनों पर लगी असली मुद्राएं पांचवीं शताब्दी ईसवी के उत्तरार्द्ध की थीं[२]। और जाली शासनों का निर्माण छटी और आठवीं शताब्दी के बीच किसी समय कियागयाथा[३]। डा० डी. सी. सरकार ने उनका समय छटी शताब्दी ईसवी मानाहै[४]।

ब्रह्मपुरनगर की बाड़ाहाट, पांडुवाला, बढ़ापुर ढ़िकुली और लखनपुर से पहिचान की कल्पनाओं में एक भी पुरातात्विक अन्वेषण या खुदाई पर निर्भर नहीं है।

बाड़ाहाट और बढ़ापुर से ब्रह्मपुर की पहिचान मुख्यत: शब्दसाम्य पर निर्भर है। बढ़ापुर मंडावर से २० मील दूर और बाड़ाहाट लगभग १०० मील दूर है। पहला स्थान मंडावर से पूर्व में और दूसरा उत्तरपश्चिम में स्थित है। केवल पांडुवाला मंडावर के उत्तर में पैदल मार्ग से ५०मील की दूरी पर स्थित है। ढ़िकुली से पहिचान केवल प्राचीन स्थान होने के कारण कीगईहै।

लखनपुर मंडावर से उत्तरपूर्व में ८० मील से अधिक दूर है। लखनपुर और ब्रह्मपुर पृथक् स्थान थे, जैसा कि एक लोकगाथा से, जिसे

१- एपि० इंडिका, जि० १३, पृ० ११०-१२

२- एपि० इंडिका, जि० १३, पृ० ११२ ३- उपरोक्त--पृ० ११३-१४

४- मजूमदार तथा पुशलकर--एज आव इ० कन्नोज--पृ० १३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एटकिनसन और बदरीदत्त पांडे ने भी प्रामाणिक मानाहै, सिद्ध होताहै[1]।

छटी-सातवीं शताब्दी ईसवी के अनुशासनों में अंकित ब्रह्मपुर की पहिचान ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी के अंतिम वर्षों (१०६७ ई०) के[2] कत्यूरीनरेश लखनपालदेव द्वारा बसाएगए लखनपुर से करना संगत नहीं प्रतीत होता।

इसी लखनपालदेव के बैजनाथ-शिलालेख में इस स्थान का नाम वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर आयाहै[3]। उसके पूर्वज ललितशूर, देशट और पद्मट के ताम्राभिलेखों में अंकित कार्तिकेयपुर की पहिचान विद्वानों ने जोशीमठ से कीहै[4]। अस्तु पौरव ताम्रशासनों के ब्रह्मपुर और कार्तिकेयपुर ग्रामक (गंवाड़ा) की[5] पहिचान के लिए खुदाई या अन्य विश्वसनीय प्रमाण अपेक्षित हैं।

महाभारत में कार्तिकेयपुर, ब्रह्मपुर और वीरणेश्वर के नाम नहीं मिलते। केदारखंड और मानसखंड में से, किसी भी ग्रन्थ में, कीर्तिकेयपुर और ब्रह्मपुर का उल्लेख नहीं मिलता। इन दोनों ग्रन्थों में, जहां गढ़वाल-कुमाऊं के अगणित छोटे-छोटे मन्दिर और तीर्थों का विस्तृत गुणगान कियागयाहै, कहीं वीरणेश्वर के नागमन्दिर का उल्लेख तक नहीं है, जिसकी पूजा के लिए ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों ने बीस से अधिक गांव अर्पित किएथे। निश्चय ही इन दोनों जाली ग्रन्थों की रचना उस समय

१- 'आसन वाका, वासन वाका, सिंहासन वाका, वाका ब्रह्म, वाका लखनपुर,' अर्थात् आसन, बासन और सिंहासन उसीके हैं। उसीका ब्रह्मपुर है, उसीका लखनपुर। देखिए, पांडे-कुमाऊं का इतिहास, पृ० १८८ २- राहुल--कुमाऊं--पृ०३७ ३-४- राहुल--उपरोक्त, पृ० ६५

५- 'कार्तिकेयपुरग्रामकस्समज्जाव्यस्ता च ब्र (ब्र)ह्मपुरे' . . . द्युतिवर्म्मा का शासन, पंक्ति २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई जब जनसाधारण कार्तिकेयपुर, ब्रह्मपुर और वीरणेश्वर को सर्वथा भुलाचुकाथा।

राज्य का नाम पर्वताकर गढ़वाल, कुमाऊं के प्राचीन नामों—गिर्य्यवली और कूर्मांचल के समान है। शासनों में प्रयुक्त सारी, शोर, भेल आदि शब्द आज भी उत्तराखण्ड में प्रयुक्त होतेहैं। वीरणेश्वर की पहचान शब्दसाम्य के आधार पर अलमोड़ा के बेरीनाग से होसकतीहै। किन्तु बेरीनाग इतना प्राचीन स्थान नहीं है। उसके निकट दस मील के क्षेत्र के गांवों की नामावली में मुझे कोई गांव ऐसा नहीं मिला जो पौरवशासनों के गांवों के नाम से मेल खाताहो।

ब्रह्मपुर के पौरवनरेश अपने शासनों पर नन्दी, कूर्म और गरुड़ की आकृतियोंवाली मुद्राएं लगातेथे। वे शिव, विष्णु और नागदेवता के उपासक थे। वीरणेश्वर नाग उनका इष्टदेव था।

चीनी यात्री के समय ब्रह्मपुर में यद्यपि पांच बौद्ध मठ थे, किन्तु उनमें अति अल्प भिक्षु रहतेथे। यहां दस से अधिक देवमन्दिर थे। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग सद्भावनापूर्वक रहतेथे[१]।

यात्री ने ब्रह्मपुर के किसी नरेश का उल्लेख नहीं कियाहै। इससे विद्वानों का अनुमान है कि स्रुघ्न के समान ब्रह्मपुर भी, अर्थात् यमुना से लेकर कालीगंगा तक सारा उत्तराखंड हर्ष के अधीन था[२]।

कण्वाश्रम

पांडुवाला से पूर्व की ओर वर्तमान चौकीघाटा के निकट कहीं पर्वत के अंचल में मालिनी के तट पर कण्वाश्रम था। इसका वर्णन आदिपर्व के आधार पर पहले दियाजाचुकाहै[३]। इसके अवशेष अभी तक नहीं मिलेहैं।

१- उ० त्रिपाठी--हिस्ट्री आव कन्नौज, पृ० १६८ २- त्रिपाठी--उपरोक्त, पृ० ११६ ३- देखिए, पृ० १५७-१६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोरध्वज

कोटद्वार से नजीबाबाद जानेवाले मोटरमार्ग पर बेगमकोठी के पास, सड़क की दहिनी ओर मोरध्वज या मनवर तुंअर का दुर्ग था, जिसका अधिकांश अब नष्ट करदियागयाहै[1]।

आज से सौ वर्ष पहले यह दुर्ग पर्याप्त सुरक्षित अवस्था में था। उसकी दीवारें, जो $१३\frac{१}{२}'' \times ८\frac{१}{२}'' \times २\frac{१}{२}''$ आकार की लाल पक्की ईंटों से बनीथीं[2], ८०० फीट लम्बे और ६२५ फीट चौड़े क्षेत्र को घेरे थीं। वे निकट के धरातल से १५ फीट तक ऊंची थीं। दुर्ग का द्वार पूर्व दिशा की ओर था, और तब तक तोरण के अवशेषों से ढकाथा[3]। दुर्ग के बाहर ६० फीट चौड़ी, ३ फीट गहरी खाई थी। उसके बाहर मुख्य प्राकार से लगभग १२० फीट की दूरी पर दूसरी प्राकार थी[4]।

पूर्व की ओर, मध्य में एक विशाल टीला था। इसका घेरा ३०८ फीट था। यह भीतर की ओर से ३५ फीट ऊंचा और मैदान की सतह से ४३ फीट ऊंचा था। इस टीले का बाहरी भाग ईंटों के टुकड़ों और टीले के ऊपर बनाएहुए तोरण आदि के अवशेषों से ढकाथा[5]।

यह टीला, जिसे स्थानीय जनता शिगरी या श्रीगढ़ी बतलातीथी, वास्तव में एक विशाल बौद्धचैत्य था। इसकी वृताकार आकृति और मध्य में ऊंची वृताकार छत्री से भी यही सिद्ध होताथा।

फिर, किसी समय इसके ऊपर सम्भवतः हिन्दुदेवता का मन्दिर बनाथा और वह भी कालान्तर में ध्वस्त होगयाथा[6]। टीले के ऊपर सारे धरातल पर तीन फीट से लेकर आठ फीट की ऊंचाई तक

१- मेरा लेख, मोरध्वजस्तूप की लूट, दोगडा कालेज-पत्रिका, १९६४

२- नीचे की ईंटें जो अब खोदीगईहैं, इससे भी बड़ी, सवा फीट लम्बी, और पौन फीट चौड़ी निकलीहैं।

३-५- फूरर-मौ० ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ३२ ६- फूरर-- उपरोक्त, पृ० ३३

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टूटी ईंटों आदि के ढ़ेर से भी यही विदित होताहै। टीले के चारों ओर भी इसी प्रकार ऊपर से गिरी ईंट-पत्थरों के ढ़ेर तीन फीट से आठ फीट की ऊंचाई तक फैलेथे[1]।

स्थानीय जनता के कथनानुसार सवा सौ या डेढ़ सौ वर्ष पहले तक टीले के ऊपर तोरण, मन्दिर आदि के कुछ अंश पूर्ववत खड़ेथे। पीछे इसके अधिकांश को तोड़कर नजीबाबाद से कोटद्वार जानेवाली सड़क बनाने और पुलों की मरोम्मत करने में प्रयुक्त कियागया[2]।

इस टीले को कनिंघम ने बौद्धस्तूप का अवशेष मानाथा। सम्बत् १९४४ की बसंत में मरखाम ने स्तूप की खुदाई की। इसके इष्टकागृह से मिट्टी की दो वृताकर मूर्तियां, और लगभग दो दरजन मिट्टी की छोटी मुहरें मिलीं, जिन पर एक सुन्दर चैत्य के अन्दर आसन पर बैठे भगवान् बुद्ध की आकृतियां अंकित थीं। उनके नीचे आठवीं शताब्दी ईसवी की लिपि में 'ये धर्मा०...' आदि[3] वाला बहुप्रचलित बौद्धलेख लिखाथा[4]।

यहां मिट्टी की बनी और पकाईहुई एक सहस्त्र से अधिक छोटी-छोटी मूर्तियां भी मिलीथीं जिन पर ध्यानमग्न बुद्ध की आकृतियां अंकित थीं। इन्हें दर्शनार्थियों ने इस पवित्र स्थान पर अर्पित कियाहोगा[5]। इस सामग्री को लखनऊ संग्रहालय में भेजदियागया।

टीले की खुदाई करने पर वह स्तूप सिद्ध हुआ और जिस मार्ग से दर्शनार्थी नर-नारी वहां पहुंचतेथे, वह भी निकलआया। पर जंगले के अवशेष, जैसे सांची और भरहुत में मिलेहैं, वहां नहीं मिले[6]।

टीले के पास एक पुराने कुएं में गिरे अवशेषों में अनेक मृणमूर्तियां,

---

१-२- फूरर--मौ० ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ३२

३- 'ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतोऽवदत्।
अवदच्च यो निरोधो एवं वादी महाश्रमणः॥'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाषाणमूर्तियां और द्वारपट्टिका के भाग प्राप्त हुए[१]।

मोरध्वज दुर्ग और स्तूप में पहले अनेक प्रकार की अगणित चित्रित, गढ़ी और अनगढ़ी शिलाएं थीं। इनमें से अधिकांश का प्रयोग निकट के पत्थरगढ़ के दुर्ग के निर्माण के लिए कियागया[२]। पत्थरगढ़ के दुर्ग पर, जिसे नजीबुद्दौला रुहेले द्वारा निर्मित मानाजाताहै, अगणित सुगढ़ एवं चित्रित भूरी बालुज शिलाएं लगीहैं जिन पर कमलदल अंकित हैं। दुर्ग की दीवारों पर भीतर या बाहर कहीं कुरान की एक भी आयत, अरबी, फारसी, अथवा उर्दू का लेख नहीं मिलता। न कोई ऐसा चिह्न मिलताहै, जिससे इसे मुसलमानी इमारत कहाजासके।

कहाजाताहै कि नजीबाबाद और निकट के हिन्दू मन्दिरों में स्थापित मूर्तियां इसी स्थान से लेजाईगईहैं[३]। अबतक मोरध्वज के स्तूप और दुर्ग के अधिकांश अवशेषों को खोदकर खेत बनचुकेहैं। यहां मिली विशाल ईंटों का वहां बसनेवालों ने अपने मकानों पर प्रयोग कियाहै। केवल एक ऊंचा टीला अबतक बचाहै[४]।

यहां अनेक प्रकार की चित्रित ईंटें और पाषाणमूर्तियां मिलीहैं। एक मूर्ति में एक देवी मोर पर आसीन है। कहाजाताहै कि यह बौद्धों की महामयूरीदेवी है। सम्भव है कि मयूरध्वज के नामकरण के साथ मयूरी या मयूर का कुछ सम्बन्ध हो[५]।

यहां बालुज शिलाओं से निर्मित अनेक अति सुन्दर मूर्तियां प्राप्त हुईहैं, जिनमें से कुछ यक्ष-यक्षणियों की, कुछ ध्यानमग्न तीर्थंकरों की और कुछ हिन्दु-देवी-देवताओं की हैं। यक्षों की मूर्तियां मुख्यतः तालाबों के पास मिलीहैं। आज के समान आठवीं शताब्दी में भी इस प्रदेश में वर्षा कम होतीथी। नदियों का जल सूखजाताथा। मनुष्यों और पशुओं के उपयोग के लिए बरसाती जल का संचय

१-२- फूरर--मौ० ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ३२ ३-५ मेरा लेख उपरोक्त, पृ० ३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कियाजाताथा। अनावृष्टि को रोकने और सुकाल की कामना के लिए यक्ष-यक्षणियों की पूजा का विशेष प्रचार था[१]।

एक लोकगाथा के अनुसार महाभारतकाल में मोरध्वज इस प्रदेश के निकटवर्ती क्षेत्र (उत्तर पंचाल) का शासक था और उसका पुत्र पीतध्वज बिजनौर के आसपास के प्रदेश का प्रबन्ध करताथा[२]। वीरभद्र और पांडुवाला के समान मोरध्वज का दुर्ग उत्तराखंड के किसी शासक का दुर्ग था और दक्षिणी सीमान्त की रक्षा के लिए बनायागयाथा[३]।

स्तूप के चारों ओर कई मीलों तक प्राचीन अवशेषों की प्राप्ति से[४] सिद्ध होताहै कि विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों में और उसके पश्चात् आठवीं-नौवीं शताब्दी तक, सम्भवतः उसके पश्चात् भी मोरध्वज सामरिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर था।

यहां कुछ स्वर्णमुद्राएं भी प्राप्त हुईथीं, किन्तु पानेवालों ने उन्हें छिपादिया। अब केवल एक टीला शेष है। सम्भव है उसके अन्दर कुछ ऐतिहासिक सामग्री मिले।

कोटद्वार

मोरध्वज से लगभग ५-६ मील की दूरी पर कोटद्वार रेलवे स्टेशन के पार खेतों में एक विशाल मन्दिर के अवशेष और उनके साथ मृतिकापात्र भी प्राप्त हुएथे। इस मन्दिर का निर्माण गढ़ीहुई भूरे रंग की बालुजशिलाओं से हुआथा, जिन पर अनेक प्रकार चित्र अंकित थे।

अनेक मूर्तियां मूर्तिविक्रेता उठालेगएहैं। थोड़े-से अवशेष कोटद्वार स्टेशन के पास और कुछ चित्रित शिलाएं आज भी उसी खेत में पड़ीहैं।

१- मेरा लेख उपरोक्त, पृ० ३३ २- बिजनौर-गजेटियर--पृ० २६६

३- पातीराम--गढ़वाल, एनशिएंट ऐंड मौडर्न, पृ० १८२ ४- फूरर--मौ० ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चय ही इस विशाल मन्दिर के आसपास बस्तियां रहीहोंगी। भाबरप्रदेश में अनेक स्थानों पर, विशेषकर नदी-नालों के स्रोतों में बालुज शिलाओं की मूर्तियां, जो सिद्धमूर्तियां कहलातीहैं, मिलतीहैं। ये ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के पश्चात् की हैं[1]।

ढ़िकुली

रामनगर से रानीखेत जानेवाली सड़क पर रामनगर से छै मील और मुरादाबाद से पच्चीस मील की दूरी पर कोसीनदी के तट पर अति प्राचीन स्थान है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि महाभारतकालीन वैराटनगर यही है[2]। कहाजाताहै कि कत्यूरीराज्य से पहले यहां कुरुराजवंश के नरेशों की राजधानी थी, जो प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के साम्राज्य के अधीन थे[3]। स्थानीय परम्परा के अनुसार इस राजवंश का राज्य भाबर से गणाई-चौखुटिया तक फैलाथा[4]। कुछ विद्वान ढ़िकुली की पहिचान पौरवनरेशों की राजधानी ब्रह्मपुर से करतेहैं।

यहां पुरातात्विक महत्व की अनेक वस्तुएं पाईगईहैं। यहां की पुरानी बस्ती की शिलाओं का प्रयोग ग्रामवासियों ने अपने घरों के निर्माण के लिए कियाहै[5]। रामनगर के मकानों और मन्दिरों के लिए तथा निकटवर्ती सड़क और पुलों के निर्माण के लिए भी यहां के अवशेषों को प्रयुक्त कियागयाहै[6]।

कुछ विद्वान ढ़िकुली को गोविषाणराज्य की राजधानी बैराटपट्टन मानतेहैं। इसके निकट मोहन के पास कुआकाचौर में भी प्राचीन ध्वंसावशेष मिलतेहैं[7]। ये सब इस क्षेत्र की प्राचीन समृद्धि के द्योतक हैं।

१- मेरा लेख--गढ़वाल भाबर की प्राचीन विनष्ट संस्कृति, सत्यपथ, जुलाई ५८ २-३- बदरीदत्त पांडे--कुमाऊं का इतिहास, पृ० १८५ ४, ५, ७-राहुल--कुमाऊं, पृ०२७८ ६-बदरीदत्त पांडे-उपरोक्त, पृ०१८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोविषाण (उज्जैन)

गोविषाण का उल्लेख महाभारत में नहीं मिलता। विक्रम की सातवीं शताब्दी में युवान चाङ् ने किउ-पि-श्वंगन अर्थात् गोविषाण को मंडावर से दक्षिणपूर्व में ४०० ली या ६७ मील की दूरी पर बतलायाहै। इस राज्य की राजधानी गोविषाणनगर का घेरा १५ ली या २½ मील था। यह स्थान कुछ ऊंचाई पर था। चारों ओर झाड़ियों, तालाबों और पोखरों के कारण इस स्थान तक पहुंचना कठिन था[१]।

यात्री के उपरोक्त वर्णन के आधार पर कनिंघम ने काशीपुर से एक मील की दूरी पर स्थित उज्जैनगांव के प्राचीन दुर्ग के अवशेषों को गोविषाण के अवशेष मानाहै[२]। इसके निकट द्रोणसागर नामक पवित्र सरोवर है जिसकी तीर्थयात्रा होतीहै[3]। इसके तट पर अनेक नातिप्राचीन सतीमठ हैं। स्थानीय गाथा के अनुसार इसे पांडवों ने अपने गुरु द्रोणाचार्य के स्नान के निमित्त बनायाथा[४]। महाभारत में द्रोणशर्मपद तीर्थ का उल्लेख है, जिसमें स्नान करने की बड़ी प्रशंसा कीगईहै[५]। पर उसकी स्थिति अनिश्चित है।

उज्जैन का दुर्ग ३००० फीट लम्बा और १५०० फीट चौड़ा है। इसका सारा घेरा ९००० फीट अर्थात् २ मील से कम है। युवान चाङ् ने गोविषाण का घेरा लगभग २½ मील बतलायाहै। उसने दुर्ग के निकट स्थित प्राचीन उपनगर को भी, जिसके अवशेष दुर्ग के दक्षिण में विशाल टीले के रूप में पड़ेहैं, गोविषाण के घेरे में गिनाहोगा[६]।

दुर्ग के बाहर कनिंघम ने भी अनेक झाड़ियां, सरोवर और पोखरे

१- उ० कनिंघम--ए० ज्योग्राफी, पृ० ३०० २-३- कनिंघम--उपरोक्त, पृ०३०१ ४- कनिंघम--उपरोक्त, पृ०३०२ ५- अनु०पर्व, २५।२८
६- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० ३०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाएथे। यहां थोड़ी ही गहराई पर जल निकलआने के कारण वनस्पति का बाहुल्य है[१]।

दुर्ग की दीवारें १५″×१०″×२½″ आकार की विशाल ईंटों से बनीहैं, जो उसकी प्राचीनता सूचित करतीहैं। ये दीवारें निकट के खेतों से ३० फीट ऊंची हैं। सारे दुर्ग के ऊपर अब जंगल उगआयाहै। पूर्व को छोड़कर शेष तीन ओर आज भी उथली खाइयां दिखाईदेतीहैं। ध्वंस की सतह ऊंची-नीची है। उत्तरपश्चिम और दक्षिणपश्चिम की ओर दो स्थानों पर पुराने फाटकों के अवशेष प्रतीत होतेहैं, जिनसे होकर दुर्ग पर उगे जंगल में घुससकतेहैं[२]।

यात्री ने लिखा है कि गोविषाणराज्य का घेरा २००० ली या ३३३ मील था। इसकी उत्तरी सीमा पर ब्रह्मपुरराज्य और दक्षिण तथा पूर्व की ओर अहिच्छत्राराज्य था। इससे कनिंघम का अनुमान है कि गोविषाण के अन्तर्गत वर्तमान काशीपुर तथा रामपुर एवं पीलीभीत के जिले थे। पश्चिम की ओर रामगंगा से लेकर पूर्व की ओर वह शारदा या घाघरा तक फैला था। दक्षिण में उसका प्रसार बरेली तक था[3]।

यात्री ने गोविषाण के किसी नरेश का उल्लेख नहीं कियाहै। इससे कनिंघम का अनुमान है कि यह प्रदेश मंडावरराज्य का अंग था[४]।

यात्री ने लिखाहै कि गोविषाण के निवासी सत्यशील, धर्मात्मा और ब्राह्मणधर्म के माननेवाले थे। यहां केवल २ बिहार थे, जिनमें एक सौ भिक्षु रहतेथे[५]। ये सभी हीनयानी थे। यहां ३० से अधिक देवमन्दिर थे। राज्य में विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी सद्भावनापूर्वक रहतेथे[६]।

द्रोणसागर के पश्चिमी तट पर कुछ छोटे-छोटे मन्दिर हैं। दुर्ग के

१-४- कनिंघम--ए० ज्योग्राफी, पृ०३०२ ५- उ० दत्त तथा बाजपेयी--उपरोक्त, पृ० २३६-३७ ६- उ० त्रिपाठी--हिस्ट्री आव कन्नोज, पृ० १६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व में लगभग ६०० फीट की दूरी पर स्थित ज्वालादेवी के आधुनिक मन्दिर की वर्तमान समय में बड़ी प्रतिष्ठा है। इस देवी को उज्जयिनी-देवी भी कहाजाताहै और चैत्रनवरात्र की अष्टमी को यहां मेला लगताहै।

भूतेश्वर, मुक्तेश्वर, नागनाथ और जागेश्वर नाम के छोटे-छोटे शिवालय प्राचीन छोटे-छोटे टीलों के ऊपर बनेहैं। दुर्ग की उत्तरी दीवार के भीतर सबसे ऊंचा टीला है, जो भीमगदा कहलाताहै। सम्भवतः उसे यह नाम बड़े शिवलिंग के कारण मिलाहै[1]।

दुर्ग के भीतर उत्तरपूर्वी कोने से पांच सौ फीट की दूरी पर बत्तीस फीट से अधिक ऊंचा एक दूसरा उल्लेखनीय टीला हैं। जो छै सौ फीट लम्बी और पांच सौ फीट चौड़ी भूमि के मध्य में खड़ा है[2]। कनिंघम के अनुसार यहां कभी एक विशाल चतुर्भुज मन्दिर था। इस चतुर्भुज ध्वंस के भीतर पूर्व की ओर दो छोटे-छोटे मन्दिरों के ध्वंसावशेष हैं[3]।

ज्वालादेवीमन्दिर के पूर्व की ओर ६८ फीट व्यास का एक लगभग गोल टीला है, जो ईंटों की सात से ग्यारह फीट तक ऊंची दीवारों से घिरा है। इसे रामगिरगुसांईं का टीला कहाजाताहै। जागेश्वरमन्दिर के निकट दुर्ग के दक्षिण में २२ फीट ऊंचा एक बड़ा टीला है, जिसके ऊपर कभी २० वर्गफीट के आधारवाला मन्दिर खड़ाथा[4]।

कनिंघम के अनुसार जागेश्वरमहादेव के दक्षिणपश्चिम में खागपुर गांव के निकट का २० फीट ऊंचा तथा २०० फीट व्यासवाला ईंटों का टीला किसी बौद्धस्तूप या विहार का अवशेष है[5]।

इन टीलों के नीचे न जाने अब भी कितनी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री दबीपड़ीहै। दुर्ग और टीलों की अभीतक विधिवत् खुदाई नहीं हुई। खुदाई होने पर उत्तरपांचाल और उत्तराखंड के पिछले ढाई-

१-३- राहुल--कुमाऊं, पृ० २७३ ४- राहुल--कुमाऊं, पृ० २७३-७४
५- राहुल--कुमाऊं, पृ० २७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीन सहस्र वर्ष के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

दुर्ग से मिली दो खंडित ईंटों पर तीसरी शताब्दी ईसवी की ब्राह्मीलिपि में खुदे लेखों से मातृमित्र और पृथिवीमित्र नामक दो नरेशों का पता चलाहै[१]।

शुंगकाल से ही अयोध्यानरेशों के नामांत में मित्र शब्द मिलने लगताहै। अयोध्यानरेशों की नामावली में सूर्यमित्र, संघमित्र, विजय-मित्र, बहसतिमित्र, अयुमित्र, देवमित्र और इन्द्रमित्र आदि नाम मिलतेहैं[२]। पांचाल की प्राचीन मुद्राओं पर भी मित्र शब्द मिलताहै। किन्तु अभीतक यह ज्ञात नहीं होसकाहै कि अयोध्यानरेशों और पांचालनरेशों का आपस में क्या सम्बन्ध था[३]।

कर्निघम ने उत्तरपांचाल के रुद्रगुप्त, ध्रुवमित्र, सूर्यमित्र, फाल्गुनि-मित्र, भानुमित्र, भद्रघोष, भूमिमित्र, अग्निमित्र, जयमित्र, विश्वपाल, इन्द्रमित्र और विष्णुमित्र नरेशों के नाम उनकी मुद्राओं से प्राप्त किएहैं[४]। इनमें पृथिवीमित्र और मातृमित्र के नाम नहीं मिलते। सम्भव है भूमिमित्र का ही दूसरा नाम पृथिवीमित्र रहाहो।

उपरोक्त पांचालनरेशों की मुद्राओं को, लिपि के आधार पर कर्निघम ने अशोक के पश्चात् की और ईसवी सन् से पूर्व की अर्थात् पहली शताब्दी विक्रमी के आरम्भिक वर्षों की मानाहै। इन १२ पांचालनरेशों का राज्यकाल लगभग ३०० वर्ष अर्थात् विक्रम की तीसरी

१- एक ईंट पर...'राज्ञो मातृमित्तस पुत्त...' तथा दूसरी पर '...श्री पृथिवीमित्तस...' लिखा मिलाहै। कच्ची ईंटों पर लेख खोदकर उन्हें पकायागयाथा। देखिए, ओझा—प्राचीन लिपि-माला, पृ० १२१ तथा पायोनियर, इलाहाबाद, दिनांक ६ दिसम्बर, १६०१ में उनके चित्र

२- वन्द्योपाध्याय--प्राचीनमुद्रा, पृ० २३०-३१

३- वन्द्योपाध्याय--उपरोक्त, पृ० १३१

४- कर्निघम--क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ८१-८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी के अन्त तक रहाहोगा, ऐसी सम्भावना है।

लिपि के आधार पर ओझा ने उज्जैन के इष्टिकालेखों को तीसरी शताब्दी ईसवी का, अर्थात् सम्वत् २५७ वि० से ३५७ वि० तक का माना है। पांचालनरेशों की राजधानी अहिच्छत्रा से गोविषाण केवल ६६ मील दूर है। इसलिए पांचाल का अपनी समृद्धि के दिनों में उज्जैन-गोविषाण पर भी अधिकार रहना असम्भव नहीं है। इसीप्रकार पृथिवीमित्र और मातृमित्र का सम्बन्ध पांचाल के मित्र नामवाले नरेशों के वंश से रहना असंभव नहीं है।

वीरभद्र, ब्रह्मपुर, मोरध्वज, कार्तिकेयपुर, ढ़िकुली, गोविषाण और उज्जैन इनमें से एक भी महाभारतकालीन नहीं है। पर इनमें मिलनेवाली विशाल लाल ईंटों के आधार पर इन्हें विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों में बसाहुआ मानाजासकताहै।

महाभारत में उल्लेख न होने पर भी इनकी महत्वपूर्ण भुगोलिक परिस्थिति को देखकर प्रतीत होताहै कि मौर्यकाल में, सम्भवतः भगवान् बुद्ध के जीवनकाल में भी, इन स्थानों पर या इनके आसपास कई महत्वपूर्ण बस्तियां रहीहोंगी।

इन नगरों की समृद्धि में हिमालय के पादप्रदेश से होकर जानेवाले महामार्ग के व्यापार का जितना हाथ था, उतना ही हाथ उन अजपथों के व्यापार का भी था, जो इन नगरों से चलकर हिमालय के पार तिब्बत और मध्यएशिया तक पहुँचतेथे।

अजपथों पर स्वर्णवर्षा

भाबर के नगर मैदानी और पर्वतीय वस्तुओं के विक्रय के केन्द्र थे। उत्तरापथ होकर विदेशों को जानेवाली व्यापारिक सामग्री का निर्माण देश के विभिन्न भागों में रहनेवाले कुशल शिल्पकार करतेथे। अगणित पणि, बणिक्, बणजारे उसे खरीदकर उत्तरापथ के प्रसिद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापारिक केन्द्रों और बन्दरगाहों पर पहुंचातेथे, जहां से विदेशों को जानेवाले सार्थवाह उन्हें खरीदकर लेजातेथे।

बुद्धि के धनी, सत्य में निष्ठावान्, साहस के भण्डार, व्यावहारिक सूझबूझ में पगेहुए, उदार, दानी, धर्म और संस्कृति में रुचि रखनेवाले, नई स्थिति का स्वागत करनेवाले, देश-विदेश की जानकारी के कोष, यवन, शक, पल्हव, रोमक, ऋषिक, हूण, पक्वण आदि विदेशियों के कन्धे से कन्धा भिड़ानेवाले, उनकी भाषा और रीति-नीति के पारखी भारतीय सार्थवाह, महोदधि के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से सीरिया की अंत्ताखीनगरी तक, यवद्वीप औड कटाहद्वीप (जावा और केडा) से चोलमण्डल के सामुद्रिक पतनों और पश्चिम में यवन-बर्बर देशों तक विशाल जल-थल पर छागएथे[1]।

उत्तर में हिमालय के साहसी पुत्र टंकण (तंगण) हिमपात, हिमानी-स्खलन, तथा तीखी शीतल वायु को झेलते, घोर दुर्गम मार्गों से बढ़ते, महोच्च गिरिद्वारों के मस्तक पर पैर रखकर महाहिमालय के पार मरुभूमि और पर्वतीय ढालों के चराईक्षेत्रों में विचरण करनेवाले घुमंत्तू पशु-चारकों के तम्बुओं में पहुंचतेथे। और धुर दक्षिण में कावेरीपट्टनम् और रामेश्वरम् से लेकर धुर उत्तर में साइबेरिया तक सारी धरती को अपने पैरों से नापतेथे।

प्राचीन साहित्य में हिमालय के इन साहसी पुत्रों का बार-बार उल्लेख मिलताहै। महाभारत में, वायु, कल्कि, मारकंडेय आदि पुराणों में, हर्षचरित, कादम्बरी और बृहत्संहिता में, तथा बृहत्कथा के आधार और अनुकरण पर रचेगए संस्कृत और प्राकृत के कथासाहित्य[2] में

१- अग्रवाल--सार्थवाह की भूमिका, पृ० ३

२- देखिए, वियाह पण्णत्ति--शतक ३; सूत्र कृतांग ३, ३, १८; आवश्यक चूर्णि, पृ० १२०; वसुदेवहिंडी, अध्याय ४; आवश्यक निर्युक्ति में अयोग्य शिष्य-प्रकरण; कुवलयमाला; भवभावना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका उल्लेख मिलताहै। बौधायन को तो उनके भोज्यपदार्थ, पशु, विक्रयसामग्री तथा व्यापारिकक्षेत्र तक का पताथा[1]।

हिमालय के धुर उत्तरी एवं घोर दुर्गम छोर के निवासी इन साहसी पर्वतपुत्रों की कीर्ति महोदधि के तट पर स्थित कावेरीपट्टनम् तथा रामेश्वरम् तक पहुंचीथी। दो सहस्र वर्ष पूर्व ही वे इतने प्रसिद्ध होचुकेथे कि सात समुद्र पार के ताल्मी तक को उनके निवासस्थान की सही सूचना उपलब्ध थी।

महाभारत-संग्रहकाल, विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी, तक वे भारत की प्रमुख जातियों में इतना विशिष्ट स्थान प्राप्त करचुकेथे कि इस महाग्रन्थ के सम्पादक युधिष्ठिर के राजसूय में उनकी उपस्थिति दिखलाने की लालसा का संवरण न करसके।

तंगण, जिन्हें प्राकृत-साहित्य में टंकणम्लेच्छ कहागयाहै, तथा उनके पड़ोसी, परतंगण, ज्योहा, खश और कुणिन्द आदि जातियां मेरु और मन्दर पर्वतों की मध्यवर्ती घाटी में बहनेवाली शैलोदानदी के तट पर कीचकवेणु (देवरिंगाल) की आनन्ददायक छाया में रहतेथे[2]।

महाभारत और कालिदास, दोनों के अनुसार मेरु और मन्दर पर्वत गढ़वाल में रुद्रहिमाल के शिखर हैं[3]। केदारखण्ड के अनुसार वहीं कहीं शैलोदानदी है, जिसका शीतल जल छूते ही शरीर को पत्थर (के समान जड़) बनादेताहै[4]। इसी शैलोदा के तीर पर तंगणों की बस्तियां थीं।

बृहत्कथा-कोष ३, २ आदि तथा जैन--प्रा० सा० का इतिहास, पृ०७०

१- 'उत्तर के लोग ऊन का व्यापार करतेहैं, मदिरा पीतेहैं, भेड़-बकरियां बेचतेहैं, अस्त्रशस्त्रों का व्यापार करतेहैं तथा समुद्र तक पहुंचतेहैं, इसलिए वे जातिच्युत होगएहैं।'---बौधायन--२।१।२।२

२- सभापर्व--अ० ४८ ३- उपाध्याय--कालिदास का भारत, भाग १, पृ० ११ ४- केदारखंड--अ० ७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनपर्व से विदित होताहै कि तंगण और उनके पड़ोसी कुणिन्द, खश, परतंगण आदि कनखल से आगे गंगाजी की घाटी होकर बदरिकाश्रम जानेवाले मार्ग पर स्थित राजा सुबाहु के राज्य में रहतेथे[1]।

पुराणों और बृहत्संहिता में पर्वताश्रयी तथा उदीच्यदेशों की सूचियों में तंगणदेश का उल्लेख कश्मीर और खशदेश के साथ मिलताहै[2-3]। अलबरूनी ने ऋषिभुवनकोश के आधार पर तंगण को उत्तर के देशों में गिनाहै[4]। खसदेश गढ़वाल का प्राचीन नाम था। तंगणदेश के निवासी तंगण[5] या तुंगण[6] कहलातेथे। प्राचीन उल्लेखों के आधार पर विद्वानों ने तंगणजाति की मातृभूमि तंगणदेश की पहिचान गढ़वाल में जोशीमठ के निकट के प्रदेश (पैनखंडा) से की है[7]।

आठवीं-नौवीं शताब्दियों के कत्यूरी ताम्रशासनों से विदित होताहै कि गंगाजी की उपरली घाटी का नाम 'टंकणपुर विषय' (जिला)[8] और

१- वनपर्व, १४०।२७-२८

२- 'अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
निराहाराः हंसमार्गाः कुरवस्तंगणाः खसाः'।
--वायुपुराण तथा वामनपु० का पाठ

३- 'कुलूततंगणखसकश्मीराः' --बृहत्संहिता, १०।१२

४- साचू--इंडिया, पृ० ३०३ ५- वायुपु० तथा ब्रह्मांडपु० का पाठ; तथा बृहत्संहिता, १४।२९-३०; १६।६ ६- मारकंडेयपु० का पाठ

७- 'The land of Tangana people probably had its headquarters at Tanganapura near Joshimatha in Garhwal District, U.P.,--एपि० इंडि०, जि० ३१, पृ० २८६; सरकार-स्टडीज इन ज्योग्राफी--पृ० २६ टि०

८- 'टंकणपुरविषये अन्तरागविषये च समुपागतान् सर्वानेव नियोगस्थान्' सुभिक्षराज का ताम्रशासन; डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भागीरथी तथा अलकनन्दा के बीच के निचले द्वाब का नाम 'अन्तराग विषय' (जिला) था[१]।

भागीरथीघाटी का टंकणौरप्रदेश और बदरीनाथ के निकट का टंकणीगांव आज भी प्राचीन टंकणों के स्मारकस्वरूप चलेआतेहैं। पुराणों के अध्ययन के आधार पर परजिटर ने भी तंगणों की स्थिति बदरीनाथ के निकट मानी है[२]।

ताल्मी (Ptolemy VII, 11, 13) के अनुसार उत्तराखण्ड के सीमान्तप्रदेश के निवासी टंगण (तंगण) कहलातेथे, जो गंगाजी की उपरली धारा (भागीरथी) के पूर्वी तट से सरयू (काली) की उपरली शाखाओं तक फैले थे।

महाभारत, कत्यूरी-शासन और ताल्मी के साक्ष्य से तंगणों की भूमि गंगाजी से सरयू तक उसी क्षेत्र में निश्चित होजाने के कारण, जहां आज भी टंगणी और टंकणौर है, और जहां आज भी तंगणों की व्यापारिक प्रथा भोटांतिकों में पूर्ववत् चलीआतीहै, महाभारत के तंगणों को मध्यएशियानिवासी नहीं मानाजासकता।

वर्तमान भोटांतिकों के समान टंकण भी, जिन्हें संस्कृत में तंगण, टंकण[3] और प्राकृत में टंकण कहागयाहै, टंकण (सुहागा) के व्यापारी थे और इसीलिए उन्हें यह नाम मिलाथा।

धातुओं को गलाने, औषधियों तथा एनेमल आदि का निर्माण करने के लिए प्राचीनकाल में सुहागे की बड़ी मांग थी। उन दिनों प्राकृतिक सुहागे की प्राप्ति केवल तिब्बत में होने के कारण[४] तिब्बत का सुहागा भारत होकर एशिया के विभिन्न भागों में तथा मिश्र और

१- एटकिनसन--जि० २, पृ० ३५७ २- J. R. A. S. १९०८, मानचित्र, पृ० ३३२ ३- वृहत्संहिता, १४।१२ ४- वेट-- जि० १, पृ० ५०४

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूरोप तक पहुँचताथा[१] । इसीलिए भारत में[२] तथा भारत से बाहर अनेक देशों में[३] सुहागा-द्योतक शब्द तिब्बती शब्द स्लचल (सुहागा) के रूपान्तर-मात्र हैं[४] ।

टंकण तिब्बत से कच्चा सुहागा लाकर उसे अपनी घाटियों में गरम पानी से धोतेथे । इस प्रकार धोए सुहागे की भारत-भर में तथा भारत से बाहर भारी खपत थी । उनकी घाटियों से सुहागा मजूरों, पशुओं और नावों द्वारा गंगाजी और सिन्धु के मुहानों पर स्थित बन्दरगाहों से यूरोप भेजाजाताथा[५] ।

महाभारत से विदित होताहै कि तंगण (टंकण) युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में पिपीलिका (च्यूंटियों) से निकालागया सुवर्णचूर्ण, सुन्दर काले तथा चन्द्रमा के समान श्वेत चमर, हिमालय का स्वादिष्ट क्षुद्रामधु, उत्तरकुरुदेश से माला बनानेयोग्य रत्न और पवित्र जल तथा उत्तर में कैलास से महाबला ओषधि लाएथे[६] । इसमें सन्देह नहीं

१- वेट--जि० १, पृ० ५०४

२- संस्कृत में टक्, टंग् धातुएं न मिलने से संस्कृत का टंकण (सुहागा) शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का नहीं है । देखिए, हेमचन्द्र जोशी--पृ० ६६ टि०

३- मिलाइए--तिब्बती-स्लचल; कांगड़ी-टंकल; हिमाचली टंकल; अंग्रेजी-टिंकल; प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी. कन्नड़, मलायलाम-टंकरण, तेलगु-टंकणमु; परसियन टंकर; तुर्की-टंखर आदि । देखिए, वेट--जि० १, पृ० ५०४

४- 'It would seem probable that article borax was first consigned to Europe from South India (S. Indian ports) and with it the name 'Tinkal'. वेट, जि० १, पृ० ५०४

५- वेट--जि० १, पृ० ५०६

६- ' पशुपाश्च कुणिन्दाश्च तंगणाः परतंगणाः ।
यद् वे पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि महाभारत-काल के तंगण भी, अपने वंशज वर्तमान भोटांतिकों के समान, उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त सुहागा, नमक, ऊन, ऊनी वस्त्र, खालों आदि का भी व्यापार करतेथे, जिन्हें सम्राट को यज्ञ में भेंट देने योग्य नहीं समझागयाथा।

टंकणों के व्यापार में पिपीलिका सुवर्णचूर्ण सबसे अधिक लाभप्रद और सबसे अधिक प्रसिद्ध वस्तु थी। विक्रमपूर्व आठवीं शती में इसका इस देश में आयात तथा यहां से विदेशों को निर्यात चमड़े के थैलों में भरकर कियाजाताथा[1]। प्राचीनकाल में सारे भारत में तथा १६ वीं शती तक तराई में सुवर्णचूर्ण मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होताथा[2]।

विक्रमपूर्व पांचवीं शती में फारिस के सम्राट दारा प्रथम के नख्श-ए-रुस्तम नामक अभिलेख के अनुसार पश्चिमी भारत से, जिस पर उसका अधिकार था, प्रतिवर्ष ३६० इबोई भार (१८५ हंडरवेट) स्वर्णचूर्ण कर-रूप में उसके पास पहुंचताथा[3]।

पेरिप्लस तथा अन्य साक्ष्यों से पता चलताहै कि भारत के बार्बरिकोन और अन्य बन्दरगाहों से भारी मात्रा में सुवर्णचूर्ण विदेशों को जाताथा[4]। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में मुलतान के एक ही मन्दिर से मुहम्मद-बिन-कासिम के हाथ ४० भार स्वर्णचूर्ण लगाथा[5]।

जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पुंजशो नृपाः।
कृष्णांल्ललामांश्चमराञ्छुक्लांश्चान्याञ्छशिप्रभान्॥
हिमवत्पुष्पजं चैव स्वादु क्षौद्रं तथा बहु।
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्चाप्यपोढं माल्यमंबुभिः॥
उत्तरादपिकैलासादोषधीः सुमहाबलाः।
पर्वतीया वलिं चान्यमाहृत्य प्रणताः स्थिताः॥
अजातशत्रोर्नृपते द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः'।--सभापर्व--४८।३-७

१- रेज डेविड--पृ०४ २- वन्द्योपाध्याय--पृ०३ ३- मुकरजी--पृ०५६
४- शाह--पृ० ११३ ५- हौडीवाला--पृ० ६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत के नगरों में स्वर्णहट्ट (शर्राफा) नगर का सबसे महत्वपूर्ण भाग होताथा[१]। स्वर्णचूर्ण के व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र उज्जयिनी में था, जिसके स्वर्णहट्ट स्वर्णचूर्ण से भरे रहतेथे[२]। इसलिए द्वीप-द्वीपांतरों तक उसकी समृद्धि की धाक फैली थी[३]।

हेरोदात, स्त्राबो तथा प्लिनी आदि यूनानी, रोमक, अरब, तुर्क तथा भारत के प्राचीन लेखकों ने सुनाथा कि यह स्वर्णचूर्ण पिपीलिका (च्यूंटियों) के द्वारा खोदाजाताथा। यूनानी लेखकों के अनुसार ये च्यूंटियां कुत्तों या गीदड़ों के समान बड़ी होतीथीं और खानों के निकट आने का प्रयत्न करनेवालों पर झपटतीथीं[४]।

यद्यपि यह स्वर्णचूर्ण विक्रमपूर्व आठवीं शती से भी बहुत पहले से ही तिब्बत से भारत में आताथा, किन्तु उसे खोदने या प्राप्त करने की विधि शताब्दियों तक रहस्य बनीरही। भारतवासी केवल इतना ही जानसके कि भारत के सभी देशों को पार करने पर किरातों का हैमवर्ष (स्वर्णदेश) आताहै जिसके पर्वतों से यह स्वर्णचूर्ण मिलताहै[५]। सातवीं शती में सम्राट हर्ष के राजकवि बाण केवल इतना पता लगासकेथे कि यह स्वर्णचूर्ण चूहों के द्वारा खोदाजाताथा[६]।

१८६७ में भारतसरकार द्वारा भेजेगए मिलम के भोटांतिक नैनसिंह ने तिब्बत के थोक जालङ् प्रदेश में १६३०० फीट की ऊंचाई पर स्थित सोने की खानों का निरीक्षण किया तो देखा कि तिब्बती खनिक पशमयुक्त खालों का छुवा पहनकर, गहरे गड्ढों में सुवर्णधूल खोदकर उसकी गड्ढे के बाहर ढेरियां लगादेतेहैं, जहां उनके भीषण कुत्ते

१- अग्रवाल--'कादम्बरी-अध्ययन', पृ० ४८ २- 'चमीकरचूर्णवालुका-निकरखचित', कादम्बरी--पृ० १०९ ३- कादम्बरी--पृ० १०९
४- रैप्सन-पृ० ३४६ ५- अग्रवाल--कादम्बरी-अध्ययन, पृ० १३२
६- 'आखुनखरोत्खातबिलवकीर्ण कांचनचूर्णेन'-कादम्बरी--पृ० २६१

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation,Chandigarh

धूल की रक्षा करतेहैं[1] । विद्वानों का मत है कि पिपीलिक सुवर्ण का यही रहस्य है[2]।

अर्थशास्त्र, महाभारत, कादम्बरी, आईन-इ-अकबरी आदि ग्रन्थों और अनेक प्रमाणों से विदित होताहै कि प्राचीनकाल से ही भारत में आनेवाले सुवर्ण का मुख्य स्रोत तिब्बत रहाहै[3] । इसलिए तिब्बत से सुवर्ण लाकर भारत को स्वर्णभूमि बनाने में टंकणों का महत्वपूर्ण हाथ था ।

टंकणों के व्यापार की तीसरी महत्वपूर्ण वस्तु थी रंगोन मूल्यवान तथा बहुमूल्य पाषाण-रत्न । दुर्गम मार्गों पर इन कम भार और अधिक मूल्य की वस्तुओं को ढ़ोना अधिक सरल था । इन्हें छिपाकर लेजाने की अनेक रोचक विधियां प्रचलित थीं । अनुभवहीन किन्तु गांठ के पक्के व्यापारियों के पास इन्हें बेचकर भारी राशि ऐंठी जासकतीथी[4] ।

टंकण तिब्बत और पामीर से लैपिस लजूली, मरगज (संगमसार या अश्मसार[5]), स्फटिक, अफीक, संग अजूबा, संग यशव, संग सुलेमानी आदि लातेथे । टंकणप्रदेश तथा हिमालय के अन्य भागों में मिलनेवाले जिपसम, सेलखड़ी, नीलम, पुखराज, पिरोजा, वैदूर्य, अलावास्टर, स्वर्णमक्षिका आदि[6] अगणित प्रकार के रंगीन पाषाणरत्नों का भी वे व्यापार करतेथे ।

सिन्धुघाटी के नगरों में लैपिस लजूली, अलाबास्टर, जिपसम, वैदूर्य, नीलम, पुखराज और अनेक प्रकार की सेलखड़ियों का प्रयोग होताथा[7] । अति प्राचीनकाल से ही भारत में इन रंगीन पाषाणों की

१-२- साइक--पृ० १६१ ३- वेट--जि० २, पृ० ४१४, ४२७
४- देखिए--टैवर्नियर, २, १०१; उ० हौडीवाला--पृ० १४८-४६
५- अत्रिदेव--पृ० ३७० ६- डबराल--'उपत्यका'--पृ० ७७
७- काला--पृ० १३२, १५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारी मांग थी। महमूद गजनी, अलाउद्दीन, नादिरशाह आदि लुटेरों को भारत के विभिन्न भागों में इतने अपार रंगीन पाषाणरत्न मिलेथे कि उन्हें ढोने के लिए उन्हें लाखों घोड़े-खच्चरों की आवश्यकता पड़ीथी[1]।

विदेशों में इन रत्नों के निर्यात से भारत की भारी आय होती थी[2]। विक्रमपूर्व पन्द्रहवीं शती में भारत से बहुमूल्य रत्न मिश्र और असीरिया पहुंचतेथे[3]। विक्रमपूर्व दसवीं शताब्दी में सिन्ध के बन्दरगाहों से सुमेरिया को अलाबास्टर, सुगन्धित द्रव्य और आभूषण पहुँचतेथे[4]।

पेरिप्लस तथा अन्य स्रोतों से[5] विदित होताहै कि दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत से रोम, यमन, सुमेर और जेरुसलम को लैपिस लजूली तथा अनेक प्रकार के मूल्यवान एवं बहुमूल्य रत्नों का निर्यात होताथा। इसके लिए रोम से अपार धनराशि भारत पहुंचतीथी[6]। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें सभी बहुमूल्य रत्न नहीं होतेथे। अनेक नकली रत्न भी असली रत्नों के नाम पर बिकतेथे[7]।

टंकण तिब्बत और मध्यएशिया से इन रंगीन पाषाणों को नकद मूल्य पर, अथवा अपनी वस्तुओं, विशेषकर मूंगा और अन्य शृंगार सामग्री को बदलकर प्राप्त करतेथे। आज के समान प्राचीनकाल में भी तिब्बत, कूचा और मंगोलिया में मूंगे की मालाओं की भारी मांग थी[8]।

वर्तमान भोटांतिकों के समान टंकण भी तिब्बत से भारत में लैंचा नमक लातेथे। उन्नीसवीं शती के अन्त तक केवल हिमालयप्रदेश में

१- डबराल--हुतात्मा-परिचय, पृ० ११ २- मुकरजी--पृ० ५६
३- मुकरजी--पृ० ६३ ४- राल्फ टर्नर--भाग १, पृ० १३६
५- मुकरजी--पृ० ८७ ६- मुकरजी--पृ० ५६ ७- देखिए, होडीवाला--पृ० ४८-४९ ७- साइक--पृ० ७८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही नहीं, वरन् पंजाब, उत्तरप्रदेश और सारे कामरूपप्रदेश में तिब्बत का लैंचा नमक पहुंचताथा[1] । वे हिमालय का काला नमक भी बेचतेथे ।

वे मानसरोवर, कैलास, सतोपंथ, गोमुख, बदरीनाथ आदि का पवित्र जल मैदानी नगरों में पहुंचातेथे । देवमूर्तियों और नरेशों के अभिषेक के लिए, तथा धार्मिक कृत्यों, यज्ञों, संस्कारों एवं व्रतोत्सवों के अवसर पर ऐसे पवित्र जल का प्रयोग होताथा[2] । रामेश्वरम् में गोमुख के गंगाजल को चढ़ाने का बड़ा माहात्म्य मानाजाताथा[3] । आज भी टंकणों की इस परम्परा को, टंकणों को भूमि टंकणौर, उत्तरकाशी, सीम - मुखीम के निवासी पूर्ववत् निभाकर अपनी आजीविका चलातेहैं[4] ।

टंकणप्रदेश में पिंडार-उपत्यका की रंकु भेड़ें अपनी उत्तम ऊन के लिए प्रसिद्ध थीं[5] । टंकण इन भेड़ों की ऊन के राकंव (रयण) कम्बल बेचने राजगृह तक जातेथे[6] । हिमालयप्रदेश में भारी मात्रा में ऊन और ऊनी वस्त्रों का उत्पादन होताथा । वे हिमालय तथा तिब्बत और मध्यएशिया के बहुमूल्य ऊनी वस्त्रों, धुस्सों, पांडुकंवलों, समूरों और खालों को मैदानी मण्डियों में पहुँचातेथे, जहां से वे भारत-भर में बिकते और विदेशों को भेजेजातेथे ।

यूनान और रोम के धनिकों में भारत के शाल-दुशालों, कढ़ाईवाले ऊनी वस्त्रों तथा कालीनों को खरीदने की होड़ लगीरहतीथी[7] ।

वे गढ़वाल-कुमाऊं तथा नेपाल में उत्पन्न भंगिय अर्थात् भांग के वस्त्रों (भंगेला) का[3] भी व्यापार करतेथे, जिनको जैन साधु बड़े चाव

१- वेट--जि० ६, भाग २, पृ० ४१४, ४२७ २- स्लीमैन--पृ०२५६
३- डबराल--पृ० ६०६ ४- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७०, १३७ ५- जैन--पृ० ४३५ ६- मुकरजी--पृ० ५८
७- मोतीचन्द्र--प्राचीन भारतीय वेशभूषा--पृ० ३१, १४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से खरीदतेथे[१]। जूट के व्यापक प्रचार से पूर्व भांग के थैलों (कोथला) की उत्तरभारत में बड़ी मांग थी[२]।

समूर और खालों का व्यापार बड़ा लाभप्रद था। उदबिलाव की खालें भारत भर में, तिब्बत में और विदेशों में बड़े मूल्य पर बिकतीथीं[३]। साधुओं और ब्रह्मचारियों के लिए तथा आसनादि बनाने, तन्त्र-मन्त्र में प्रयोग करने, रथों, पिटारों आदि को मढ़ने, पुस्तकों, पर जिल्द लगाने आदि के लिए व्याघ्र, चीता, हरिण आदि की खालें भारी संख्या में बिकतीथीं। टंकण चमड़े के कवच भी बेचतेथे।

वे हिमालय के पशुओं[४] की और तिब्बत से चमरगाय की खालें लाकर भी बेचतेथे, जिनकी सारे भारत, अफगानिस्तान, ईरान, बेबीलोन आदि में नदियों को पार करने के लिए मशकें बनतीथीं[५]।

तराई से प्राप्त हाथीदांत बेचने वे दक्षिण तक पहुँचतेथे[६], जहां से वह विदेशों को भेजाजाताथा[७]। घरों और राजप्रासादों की सजावट के लिए वे वनैले और पालतू पशुओं के सींगों और सुखाएगए शिरों का, भूसाभरी खालों का, औषधियां आदि बनाने के लिए हरिणादि की अस्थियों का, तथा जूतों की सजावट के लिए भारी मात्रा में चेलपुओं (तिब्बत के मेंढ़े-मेमनों) के सींगों[८] का विक्रय करतेथे।

कस्तूरी और चमर के व्यापार पर उनका एकाधिकार था। कस्तूरी सोने से भी अधिक मूल्य पर बिकतीथी। औषधि तथा सुगन्धित द्रव्यों के निर्माण के लिए सारे भारत में और विदेशों में, विशेषकर

१- जैन--पृ० १३६ टि० २- एटकिनसन--जि० ५, पृ० ७६०
३- मुकरजी--पृ० ५८; अर्थशास्त्र, पृ० ६६१ ४- देखिए, अर्थशास्त्र, पृ० १६१ ५- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५८
६- मोतीचन्द्र--स्टडीज इन महाभारत, पृ० १२४ ७- मुकरजी--पृ० ६४
८- देखिए, मोतीचन्द्र--प्राचीन भारतीय वेशभूषा--पृ० ४०

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेबीलोन और रोम में बड़े प्रयत्न से खरीदीजातीथी[1]।

चमरगाय, जिसकी पूंछ से चमर बनतेहैं, पालतू और वनैले रूप में केवल तिब्बत में मिलतीहै। चमर की वर्णसंकर सन्तान जोबा की पूंछ से भी, जिसे भोटांतिकप्रदेश में पालतेहैं, चमर बनतेहैं।

मन्दिरों में देवमूर्तियों पर तथा विवाहों में वर-वधू की पालकियों पर डुलाने के लिए चमरों की मांग भारत में सर्वत्र है। देवमूर्तियों और नरेशों पर चंवर डुलाने के लिए चामरग्राहिणी के पद पर सुन्दर वेश्याओं को नियुक्त कियाजाताथा[2]। चमर को सुख-सौभाग्यदाता समझा जाताथा। युद्ध में रथों के ध्वजों पर चमर का चित्र अंकित किया जाताथा[3]। जैनगुरु श्रीकुमारसेन ने तो मयूरपिच्छ त्यागकर चमरपिच्छ ग्रहण करलियाथा[4]।

पशु-पक्षियों को लड़ाना प्राचीनकाल में महत्वपूर्ण मनोविनोद था। टंकण शिकार पकड़ने में कुशल चीतों और बाजों का, तथा चकोर, बटेर, मोनाल और मेंढ़ों का विक्रय करतेथे। अपने विशाल एवं सुदृढ़ सींगों से सांडों को भी पछाड़नेवाले, उनके बड़ुवल मेंढ़े 'सौ युद्धों के विजयी' मानेजातेथे[5]।

मोर के समान, मोनाल भी, जिसे महाभारत में पुंस्कोकिल कहागयाहै, भारत में और भारत से बाहर भी बिकताथा। रोम में प्राप्त एक तश्तरी पर भारतमाता के चित्र के साथ मोनाल, सुग्गा, दो कुत्ते, शेर और चीते के चित्र बने हैं[6]।

सुअर, भालू, और व्याघ्रों पर भी झपटनेवाले, प्राण देकर भी स्वामी की सम्पत्ति की रक्षा करनेवाले, दिनभर सोकर रात को भोंक-भोंक कर धरती-आकाश को कंपादेनेवाले भोटिया कुत्तों की ख्याति

१- मुकरजी--पृ० ५८ २- कालिदास--मेघदूत, पूर्व, ३५ ३- पांडे-चित्र, पृ० १७ ४- जैन--पृ० ३२१ ५- वेट--जि० ६, भाग २, पृ० ५७३ ६- मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० १२५-१२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत से बाहर दूर-दूर तक फैलीथी।

भारत के इन सर्वोत्तम कुत्तों को राजभवनों में भी पालाजाताथा। सम्मानित पुरुषों को भोटिया कुत्ते भेंट में दिएजातेथे। केकयनरेश ने भरत को[1], तथा लवणपर्वत के नरेश सौभूति (सोपाइथ) ने सिकन्दर को ऐसे ही कुत्ते भेंट में दिएहोंगे[2]।

रोमनिवासी अपने कुत्तों की नस्ल सुधारने के लिए भारत-तिब्बती (भोटिया) कुत्तों का आयात करतेथे[3]। हिरोदात ने लिखाहै कि फारिश नरेश ने भारत से मंगाए अपने चार कुत्तों के भोजन के लिए बेबीलोन के चार गांवों की आय निर्धारित कीथी[4]।

फारिश और रोम में इन भारतीय कुत्तों के स्वामी उनका जलूस में गर्व से प्रदर्शन करतेथे[5]। विक्रमपूर्व तीसरी शती के एक पिपिरस लेख के अनुसार जेनोन कवि ने अपने भारतीय कुत्ते ताउरो की मृत्यु पर, जिसने बनैले सुअर से उसकी प्राणरक्षा कीथी, दो शोकगीत बनाएथे[6]।

टंकणों के घोड़े, जो उन्हीं के नाम पर 'टंकण[7]' 'तंगण[8]' (हिन्दी टांघन) कहलातेथे, और जिन्होंने तांगा को यह नाम दियाहै, प्राचीन काल में सवारी और युद्ध दोनों के लिए बड़े प्रशंसनीय समझेजातेथे। भारद्वाजप्रदेश (गढ़वाल) में उत्पन्न होने से ये भोटिया घोड़े 'भारद्वाज अश्व' भी कहलातेथे[9]। हर्ष की सेना में तंगण अश्वों का, 'जिनकी बढ़िया तेज दुल्की से बदन का पानी भी न हिलताथा और जिन पर सवार मजे में बैठारहताथा'[10], बड़ा मान था।

१- रामायण--२।७०।२० २- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८७ ३- मुकरजी--पृ० ६७ ४- मोतीचन्द्र--स्टडीज इन महाभारत, पृ० १०० टि० ५-६- देखिए, मोतीचन्द्र--उपरोक्त, ७- कादम्बरी--पृ० २६१ ८- अग्रवाल--'हर्षचरित-अध्ययन', पृ० १४१ ९- अग्रवाल--उपरोक्त, पृ० १४१ १०- अग्रवाल--उपरोक्त, पृ० १३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्यारहवीं शती में जब उत्तरभारत में बड़े डीलडौल के अरबी घोड़ों का प्रचार बढ़ा तो टंकण अश्वों का विक्रय घटनेलगा, फिर भी मुगलकाल तक उनकी कुछ कदर बनीरही। अकबर की सेना में टांघनों की पृथक् टुकड़ियां थीं[1]। अंग्रेजी राज्यकाल में खच्चरों और मोटर-लारी के व्यापक प्रचार से भोटिया घोड़ों का महत्व और विक्रय बहुत घटगया। अब उत्तरी सीमा पर चीन के साथ के युद्ध में फिर भोटिया घोड़ों को अपनी शक्ति और उपयोगिता प्रदर्शित करने का अवसर मिलेगा।

डेढ़ शताब्दी पहले तक दासप्रथा का व्यापक प्रचार था[2]। राजाओं के अन्तःपुर में किरात सेवकों की बड़ी मांग थी[3]। वे स्वामिभक्त होतेथे। स्थानीय भाषा न समझने के कारण अंतःपुर के रहस्य नहीं खोलसकतेथे और राजदरबारों के षड़यन्त्रों में भाग नहीं लेसकतेथे। इसी उद्देश्य से सुन्दर किरात युवतियों को राजा-रानियों पर चमर डुलाने के लिए नियुक्त करने का इतना प्रचार था कि संस्कृत में चामरग्राहिणी के लिए 'किराती' शब्द ही प्रयुक्त होनेलगाथा[4]।

ब्रिटिशराज्य के आरंभिक वर्षों तक गढ़वाली दास-दासियों के प्रमुख ग्राहक उत्तर में भोटांतिक और दक्षिण में रुहेले थे[5]। टंकण दास-दासियों पर सामग्री लादकर मण्डियों में पहुंचातेथे और वहां सामग्री का तथा उनका विक्रय करदेतेथे[2]।

वे मैदानों से गुड़ और शक्कर खरीदकर हिमालय के विभिन्न भागों और तिब्बत में पहुंचातेथे तथा इन प्रदेशों का स्वादिष्ट क्षुद्रा[3] (मक्खियों का) तथा भ्रामर (भवरों का) शहद मैदानी मण्डियों में बेचतेथे। जहां

१- वेट--जि० ४, पृ० २९२ २- विलियम्स--पृ० १२३ ३- अग्रवाल--'कादम्बरी-अध्ययन', पृ० १०१ ४- शर्मा तथा झा--पृ० ३२६ ५- एटकिनसन--जि० ३, पृ० ५१२ ६- विलियम्स--पृ० ११० ७- सभापर्व--अ० ४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

औषधियों और पौष्टिक पदार्थों के निर्माण के लिए उसकी बड़ी खपत थी[1]।

टंकणप्रदेश में कांचनपर्वत, गन्धमादन से लेकर कैलास तक का क्षेत्र, अद्भुत प्रभावशाली औषधियों के लिए सदा से विख्यात रहाहै[2]। औषधिपर्वत पर, जिसकी पहिचान धौलीघाटी के द्रोणागिरि से कीजातीहै, घायल, मृतप्राय: और मृत व्यक्तियों को भी प्राणदेनेवाली विशल्यकारिणी, संधानकारिणी और मृतसंजीविनी बूटियां होतीहैं[3]।

चरक आदि वैद्य हिमालय में किरातों की सहायता से जड़ी-बूटियां पहचानते और प्राप्त करतेथे[4]। टंकणों के द्वारा हिमालय की जड़ी-बूटियां भारत में घर-घर सुलभ होतीथीं और विदेशों में भी पहुँचती थीं। विक्रमपूर्व सातवीं शती के असुर अवनिपाल के इष्टिका-लेखों से विदित होताहै कि भारत की जड़ी-बूटियां असीरिया तक पहुँचतीथीं[5]।

बौद्धधर्म के प्रचार के साथ भारतीय चिकित्सापद्धति एशिया-माइनर से लेकर चीन-जापान तक और मंगोलिया-कूचा से लेकर सिंहल तक फैलगई। तक्षशिला में आयुर्वेद के महाविद्यालय की स्थापना से पश्चिमी देशों में भारत की जड़ियों की मांग अत्यधिक बढ़गई। तंगण आदि भारतीय व्यापारी जब पश्चिमी देशों की मांग की पूर्ति न करसके तो अशोक को उन देशों में भारतीय जड़ी-बूटियों के उद्यान लगानेपड़ेथे[6]।

यूनान और रोम में भारत की जटामासी का, जो वहां जतनमासी कहलातीथी, तथा कुष्ट, बच, मोथा, गुग्गुल, कस्तूरी आदि का व्यापक प्रयोग होताथा[7]। रोम में भारत की अदरख, मिरच, जड़ी-बूटियां तथा

१- पी--पृ० २४ २- अत्रिदेव--पृ० ७६ ३- रामायण, युद्धकांड--७४।३३ ४- अत्रिदेव--पृ० ४२५ ५- अत्रिदेव--पृ० ४३४ ६- अत्रिदेव--पृ० १३७ ७- मुकरजी--पृ० ५८; अत्रिदेव--पृ० ५६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्त्रादि रंगाने के द्रव्य मुंहमांगे मूल्य पर बिकतेथे[१]। मौर्यकाल में भारत की जड़ी-बूटियां बेबीलोन तक पहुंचतीथीं[२]।

सातवीं शती में मध्यएशिया में कूचा के उइगर तुर्क भारतीय औषधियों के बड़े ग्राहक थे[३]। टंकण व्यापारी कूचा और तिब्बत में नियमितरूप से त्रिफला, मरिच, उत्पल, प्याज, सोंठ, तज, कूट आदि औषधियां पहुँचातेथे[४]। आठवीं शती में संस्कृत के अनेक चिकित्साग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ[५]। अनेक भारतीय वैद्य अरब बुलाएगए और अरब में हिमालय की जड़ी-बूटियों का विक्रय बहुत बढ़गया[६]।

टंकण पाषाणभेद, गुग्गुल, चमरदुग्ध, कस्तूरी, गन्धकपाषाण, भोजपत्र, कपूर, अगरु, ग्रन्थिपर्णिका[७], केशर, त्रिफला, वंशलोचन, (तवासीर), तेजपात, टिम्बर की लकड़ी, धाय के फूल, वायविडंग, चमड़ा और कपड़े रंगने की छालें और मिट्टियां, ग्रेफाइट, काला और श्वेत अभ्रक, स्वर्णमक्षिका, मैनसिल, गेरू, हरताल, शिलाजीत आदि के प्रमुख व्यापारी थे। चिरायता तो उनके नाम पर ही 'किरात' कहलाताथा। यमुनोत्तरी के निकट प्राप्त होनेवाले 'यामुन अंजन' को वैदिककाल से ही बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त होचुकीथी[८]।

गुग्गुल तथा अन्य सुगन्धित जड़ी-बूटियों की देवालयों में धूप देने के लिए बेबीलोन, मिश्र तथा अन्य देशों में भारी मांग थी[९]। भारत के मन्दिरों में धूपदेने, देवता की प्रसन्नता के लिए अपने शिर पर जलाने[१०], सुगन्धितचूर्ण, सुगन्धितलेप तथा धूम्रवर्ती बनाने के लिए उनका व्यापकरूप से प्रयोग होताथा।

१- मुकरजी--पृ० ८७ २- रेज डेविड्स--पृ० ५१ ३- अत्रिदेव--पृ० ५६३-६४ ४- अत्रिदेव--पृ० ५७६ ५- ओझा--पृ० १०१ ६- अत्रिदेव--पृ० २६१ ७- देखिए, कादम्बरी--पृ० २६१ ८- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४४, १३४ ९- मुकरजी--पृ० ५९ १०- अग्रवाल--कादम्बरी-अध्ययन, पृ० २२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गन्धमादन (केदार) के मीठाविष, कालकूट, हालाहल, बत्सनाभ, मेषश्रृंगी आदि विष और संखिया सोने से भी अधिक मूल्य पर बिकतेथे[१]। मौर्यकाल[२] और मुगलकाल[३] में नरेश, सामन्त तथा धनिक विषप्रयोग के भय से सदा शंकित रहतेथे। विषाक्त भोजन, वस्त्र, उबटन, तेल, स्नानजल और विषकन्या आदि के प्रयोग से शत्रु विनाश करने की अगणित रोचक प्रथाएं प्रचलित थीं। विषों का प्रभाव दूर करनेवाली औषधियों के विक्रय से भी टंकणों की प्रचुर आय होतीथी।

देवदारु और उसके तेल का विश्वव्यापी व्यापार था। विक्रमपूर्व सातवीं शती के सम्राट नेबूचदनजर के बिरसनिरमुद प्रासाद के खंडहरों में भारतीय देवदारु की शहतीरें मिलीहैं[४]। मिश्र के सम्राटों के शव देवदारुतैल के लेप से सुरक्षित किएजातेथे। जब सीरिया के सिदार समाप्त होगए तो भारत से देवदारुतैल मिश्र तक जानेलगा।

हिमालय के प्राकृतिक हिम की मैदानी नगरों और राजप्रासादों में बड़ी मांग थी। टंकण और उनके पड़ोसी प्राकृतिक हिम बटोर कर नगरों तक पहुंचातेथे। मुगलों को लाहौर में हिम चम्बा के गद्दियों से[५] और आगरा तथा दिल्ली में उत्तराखण्ड के निवासियों से प्राप्त होताथा[६]।

पुस्तकों और तन्त्र-मन्त्र लिखने के लिए वे भोजपत्र का, तथा कन्घे, हुक्के की नलियां और टोकरियां बनाने के लिए देवरिंगाल का, एवं वनों में उत्पन्न होनेवाली च्यों-गुच्छी का भी व्यापार करतेथे[७]।

जब तिब्बत और मध्यएशिया में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ तो

१- अत्रिदेव--पृ० १३३ २- अर्थशास्त्र--विनयाधिकरण, २१। २३
३- अत्रिदेव--पृ० २८६ ४- मुकरजी--पृ०६० ५- कनिंघम--जि०१४, पृ० १०६ ६- आईन-इ-अकबरी--पृ० ४९; त्रिपाठी--पृ० १३
७- विलियम्स--पृ० ११०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे भारत से अगणित मूर्तियां, देवफलक, रेशम पर बने देवचित्र (थंका)[१] प्राचीनचित्र, मन्दिरों में पूजा की सामग्री और संस्कृत तथा प्राकृत के अगणित हस्तलिखित ग्रन्थों को भारत के मन्दिरों से उठाकर, खरीदकर या मांगकर तिब्बत और मध्यएशिया लेजानेलगे।

दलाई लामा के पोतला-प्रासाद की तथा तिब्बत और मंगोलिया के मठ-मन्दिरों की न जाने कितनी दुर्लभ सामग्री टंकणों के द्वारा वहां पहुंचाईगईहै[२]।

साम्यवादियों के आगमन से पूर्व तिब्बत के मठ-मन्दिरों में भारत के अगणित हस्तलिखित ग्रन्थ बचेथे. और ऐसे अगणित हस्तलिखित ग्रन्थों के पत्रों को उन मठ-मन्दिरों के लामा फाड़कर प्रसादरूप में अपने भक्तों में बांटचुकेथे[३]।

टंकण भारत के सिद्धों की अस्थियां तिब्बत लेजाते और तिब्बत के सिद्धों की अस्थियां (यड्का)[४] भारतीय बौद्धों द्वारा निर्मित चोरतेन में रखने के लिए भारत में लातेथे।

साम्यवादियों के आगमन से पूर्व टंकण-भोटांतिक भारत की मुद्राओं को भारी संख्या में तिब्बत पहुँचातेथे[५]। वे शीतकालीन व्यापारयात्रा में ताम्बे आदि की प्राचीनमुद्राओं को मैदान में बेचने लेजातेथे[६]।

टंकणों की व्यापारपद्धति बड़ी विचित्र थी। वे सुवर्ण, हाथीदांत, और अन्य व्यापारिक वस्तुओं को लेकर दक्षिणापथ के नगरों में कावेरीपट्टनम् तक[७] पहुँचतेथे और दक्षिणापथ की वस्तुओं से उनकी अदला-

---

१- अग्रवाल-माताभूमि, पृ० २६१ २- राहुल--एशिया के दुर्गम भूखंडों में, पृ० ७४ ३- राहुल--मेरी जीवनयात्रा, जि० २, पृ०२८३
४- अग्रवाल--माताभूमि, पृ० ६८ ५- एटकिनसन--जि० १, पृ० २७६
६- वेकेट--पृ० १२ ७- मुकरजी--पृ० ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बदली करतेथे[1]।

एक-दूसरे की भाषा न जानने के कारण वे अपनी 'वस्तुओं की ढ़ेरी लगाकर उन्हें हाथों से ढ़कदेतेथे और उन पर से उसी समय हाथ उठातेथे, जब उन्हें मुहमांगा मूल्य मिलजाताथा[2]। वे सुवर्ण देकर भो दक्षिणापथ की वस्तुएं खरीदतेथे[3]।

कभी-कभी मैदान के साहसी व्यापारी सस्ता सुवर्ण प्राप्त करने के लिए अपनी सामग्री, विशेषकर रंग-बिरंगे सूती कपड़े, गुड़, शक्कर, चावल, सेंधानमक और तेल आदि लेकर टंकणप्रदेश में पहुँचतेथे[4]। वे नदी-तट पर अपनी सामग्री की ढ़ेरियां लगाकर सूखी-गीली लकड़ियां जलाकर धुआं उत्पन्न करतेथे।

धुंआ देखकर टंकण अपने बकरों पर विक्रयसामग्री लादकर घाटी में उतर आतेथे और संकेतों द्वारा अपनी वस्तुओं की मैदानी व्यापारियों की वस्तुओं से अदला-बदली करतेथे[5]।

टंकणों के वंशज भोटांतिक आज भी तिब्बत में अपने व्यापारिक मित्रों के साथ रोचक गमग्या-प्रथा द्वारा व्यापार करतेहैं[6]। अवश्य ही प्राचीनकाल में टंकण तिब्बत और मध्यएशिया में इसी रोचक प्रथा से व्यापार करतेरहेहोंगे।

१- 'उत्तरावहे टंकणा नाम म्लेछा। ते सुवन्नदंतयादीही दक्खिना वहगाइं भण्डाइं गेण्हंति'।

२- 'ते य अवरोधरं भासं न जाणंति, पच्छा पुञ्जे करेति हत्थेण अच्छादेन्ति, जाव इच्छाए पूरेति ताव न अवणेति'--आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ० १२० उ० मोतीचन्द्र--स्टडीज इन महाभारत, पृ०१२४;

३- आवश्यकटीका, १, पृ० ९९-१०० अ, उ० मोतीचन्द्र--स्टडीज इन महाभारत, पृ० १२४ ४- बृहत्कथा--श्लोक-संग्रह, पृ० ४६०-६१, उ० मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० १३८ ५- वसुदेवहिंडी--उ० जैन--प्राकृत-साहित्य का इतिहास, पृ० ३८८

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टंकणदेश पहुंचने से पूर्व मार्ग में खशदेश (गढ़वाल कुमाऊं) आताथा। टंकणदेश से आगे हूणों का देश (तिब्बत में सतलुज की उपत्यका) और उससे आगे चीणों का देश (मध्यतिब्बत) आतेथे[1]।

भारत के मैदान से टंकणदेश और हूणदेश पहुँचने के मार्ग में अनेक विकटपथ आतेथे जो वंशपथ, दरीपथ, मूषिकपथ, अज (मेंढ़) पथ, शंकुपथ, छत्तपथ आदि नामों से पुकारेजातेथे। इनमें से कुछ का उल्लेख विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी में पाणिनि ने भी कियाथा[2]।

इन मार्गों पर चलने का साहस करने से पूर्व पूरी तय्यारी करनी पड़तीथी। अपने साथ भोजनसामग्री, ऊन और चमड़े के वस्त्र, औषधियां, अस्त्र-शस्त्र, भूत-प्रेतों और यक्षों के प्रकोप से बचने के लिए तंत्र-मंत्र, लोहे की कीलें, हथोड़े, हीरे के बर्मे, तुम्बुर (टिम्मर) का चूर्ण, रस्सियां, चमड़े के थैले, बांस आदि अनेक वस्तुएं रखनीपड़तीथीं। अकेले व्यक्ति के लिए इन मार्गों पर चलना असम्भव था।

सबसे पहले भाबर में बांस के घने वन आतेथे, जिन्हें बीच में काटकर, बांस की झाड़ियों से निकलनेवाला मार्ग 'वंशपथ' बनानापड़ताथा। अथवा एक बड़े बांस की सहायता से बांसों की झाड़ियां लांघतेहुए आगे बढ़नापड़ताथा[4]।

भाबर के वन पार करलेने पर पर्वतश्रेणियां आतीथीं, जिनके पथरीले, संकीर्ण 'दरीपथों' पर बड़ी सावधानी से चलनापड़ताथा। इन मार्गों पर निरन्तर चढ़ाई-उतार आतेथे। अति ऊंचे पर्वतों पर चढ़कर मार्ग नीचे नदियों की संकीर्ण घाटियों में उतरताथा। इनमें से कुछ इतने संकीर्ण थे कि उनका 'मूषिकपथ' सार्थक नाम था[5]।

ऊंचे डांडों के संकरे मार्ग, जिन पर केवल मेंढ़े-बकरे ही चढ़

१- देखिए--पृ० १०५ २- जैन--पृ० ३८८ ३- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २३५-३६ ४- मोतीचन्द्र-सार्थवाह, पृ० १३८ ५- महानिर्देश--उ० अग्रवाल--उपरोक्त, पृ० १३५-३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकतेथे, 'मेंढूपथ' या 'अजपथ' कहलातेथे[१]। इन मार्गों के अति संकरे भागों पर दो व्यक्ति या पशु एक साथ नहीं चलसकतेथे। इसलिए मध्य में मुठभेड़ होने पर सार्थ एक-दूसरे के पशुओं और मनुष्यों को नीचे खड्ड में फेंकने का प्रयत्न करतेथे[२]।

इन मार्गों पर प्रतिवर्ष हिमपात या हिमानीस्खलन से अनेक स्थानों पर मार्ग सर्वथा नष्ट होजातेथे। नंगी, सीधी-खड़ी चट्टानों पर बन्दरों के समान हाथ-पैरों से किसी प्रकार रेंगतेहुए चढ़ना पड़ताथा। ऐसे 'शंकुपथ' से नीचे खड्ड में गिरने पर शरीर के टुकड़े-टुकड़े होसकतेथे[३]। इसलिए विक्रयसामग्री को थैलों में रखकर उसे कसकर शरीर से बांधलेना पड़ताथा। चढ़ते समय जब हाथों पर पसीना आता तो उसे सुखाने के लिए हथेली पर तुम्बुर (टिम्मर) का चूर्ण मलनापड़ताथा[४]।

यदि चट्टानें अत्यन्त सीधी-खड़ी और फिसलानेवाली होतीं तो उन पर हीरे के बर्में से छेद करके कीलें ठोकनीपड़तीथीं। और तब उन पर रस्सी फंसातेहुए इसी क्रम से ऊपर चढ़ना तथा नीचे उतरना पड़ताथा[५]। यदि दूसरी ओर सीधा खड़ा भेल होता तो ऐसे 'छत्तपथों' की चट्टानों पर कीलें ठोककर कीलों से बंधी रस्सी पर चमड़े की थैली बांधकर उसमें बैठ, पैराशूट की विधि से नीचे उतरना पड़ताथा[६]।

स्पर्श-मात्र से शरीर को पत्थरवत् जड़ बनादेनेवाली 'शैलादा' नदियों के हिमशीतल जल को पार करने के लिए नदीतट पर उगे देवरिंगालों को झुकाकर उनके सहारे छलांग लगाकर नदी पार करनी

१- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४४, १३४ २- मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० १३८ ३-४ मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० १३२ ५- मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० १४० ६- मोतीचन्द्र--सार्थवाह, पृ० १४०; छदन्तजातक, जातक भा० ४, पृ० १३४-३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़तीथी[१] ।

भारत से तिब्बत तथा मध्यएशिया जानेवाले मार्ग हिमालय के किसी न किसी गिरिद्वार से होकर वहां पहुँचतेहैं । टंकणप्रदेश से तिब्बत पहुँचने का सबसे प्राचीन और सबसे अधिक प्रचलित मार्ग अलकनन्दा, विष्णुगंगा और सरस्वती के तट से होकर देवताल पहुँचताहै और माणाद्वार (१८६५०') होकर तिब्बत में उतरताहै ।

इस गिरिद्वार से शीतकाल में तिब्बत के क्रौंच तथा धार्तराष्ट्र नामक पांडुवर्ण के हंस[२] भारत में चलेआतेहैं, इसलिए संस्कृत-साहित्य में इसे क्रौंचद्वार और हंसद्वार भी कहागयाहै[३] ।

टंकणपुर (जोशीमठ)[४] में, जहां से यह भीषण मार्ग आरम्भ होताहै, मार्ग के संकटों से रक्षा करने के लिए अनेक देवी-देवताओं की स्थापना कीगईथी । इस मार्ग पर बदरीनाथ तक प्रत्येक पड़ाव पर देवी-देवताओं और कुवेर, घंटाकर्ण आदि यक्षों को पधरायागयाथा । जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्धि आगे चलकर विशालयक्ष[५] की पुरी विशाला (बदरीनाथ) को मिली । महाशिला के प्राकृतिक पुल से पार जाने पर माणागांव में, जहां से माणाद्वार की विकट चढ़ाई आरम्भ होतीहै, मार्गों के रक्षक मणिभद्रयक्ष की स्थापना कीगईथी ।

प्राचीनकाल में संकटपूर्ण मार्गों पर रक्षा के लिए यक्षपूजा का इतना प्रचार था कि 'यक्ष' शब्द का अर्थ ही पूजा होगयाथा[६] । किन्नर-किरातों के उपास्य मणिभद्र की पूजा प्राचीनकाल में भारत में व्यापक रूप से चलपड़ीथी । विक्रमपूर्व तीसरी शती से उसका उल्लेख साहित्य में भी होनेलगा[७] । वाग्भट्ट ने तो रोगों की शान्ति के लिए भी उसकी

७- भवभावना, उ० जैन--पृ० ५१३; मोतीचन्द्र-सार्थवाह, पृ० १३२
२- कादम्बरी--पृ० २६५ ३- मेघदूत-पूर्व, ५७ ४- कत्यूरी-अभिलेख, उ० डबराल--पृ० ५०१ ५- सभापर्व १०।१६ ६- शर्मा तथा झा--पृ० ६१६ ७- देखिए, दत्त तथा वाजपेयी--पृ० १६-१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूजा का विधान लिखाहै ।

उत्तरापथ से तिब्बत और मध्यएशिया जाने के लिए जो चार-पांच मार्ग फूटतेथे, उनमें माणामार्ग का महत्व मुख्यत: उसकी भूगोलिक स्थिति पर निर्भर था। यह मार्ग मायापुर-हरिद्वार से बदरीनाथ-केदारनाथ जानेवाले तीर्थयात्रा-मार्ग पर गंगाजी की घाटी से होकर जाताथा। धार्मिक स्थानों से होकर जानेवाले इस मार्ग पर चोर-डाकुओं का भय न था। जबकि पश्चिम में उदुम्बर (पठानकोट) तथा साकल (स्यालकोट) से होकर जानेवाले मार्गों पर आक्रमणकारियों और लुटेरों का भय सदा बनारहताथा[1] ।

इस मार्ग पर तीर्थयात्रा की तथा स्वर्ण, रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुओं के व्यापार की सुविधा के कारण धर्म, अर्थ, दोनों की प्राप्ति सुलभ थी। स्थाण्वीश्वर, मायापुर, ब्रह्मपुर, अहिच्छत्रा, कान्यकुब्ज, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, प्रयाग, काशी, अयोध्या, उज्जयिनी, विदिशा आदि प्राचीन राजधानियों और नगरों को तथा भृगुकच्छ आदि बन्दरगाहों को स्वर्ण के भण्डार तिब्बत से मिलानेवाला यही सबसे सीधा और छोटा मार्ग था।

हिमालय के गिरिद्वारों तक पहुँचने के लिए पिछली अनेक सहस्राब्दियों में अपने क्षुद्र पशुओं के साथ निरन्तर रेंककर साहसी टंकण-भोटांतिकों ने पर्वतपृष्ठ पर अपने पगचिह्नों से जिन मार्गों का निर्माण कियाथा, उन्हीं पर सहस्रों वर्षों से बौद्धभिक्षु, धर्मोपदेशक, मुमुक्षु तीर्थयात्री, व्यापारी और कभी-कभी लुटेरे तथा विजेता प्रयाण करतेरहेहैं।

स्वर्ण, सुहागा और ऊन आदि के भण्डार तिब्बत को अन्न और गुड़ के भण्डार भारत से मिलानेवाले तथा साधनहीन, अकिंचन पठारवासियों के लिए सुखदायक जलवायु और साधनसम्पन्न मैदानी प्रदेश का द्वार खोलनेवाले इन महत्वपूर्ण गिरिद्वारों ने अपने पदतल

१- ईलियट एंड डौसन--अरब ज्यौग्राफर्स, पृ० ६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में बसे भोटांतिकों को भी महत्वपूर्ण बनादियाहै।

इन गिरिद्वारों का व्यापार, प्रव्रजन, प्रवसन, लूट और आक्रमण की दृष्टि से महत्व आंककर कत्यूरीसम्राटों को अपनी राजधानी टंकणों की भूमि में बसानीपड़ीथी तथा बदरीनाथ के व्यवस्थापकों को भोटांतिकों को अपने चार थोकों में स्थान देनापड़ाथा। प्रकृति निर्मित मार्गों पर आज इतिहास पुनः बड़े रोचक ढंग से अपनी पुनरावृत्ति कररहाहै[1]। जोशीमठ का छोटे-से कत्यूरीराज्य ने एक सहस्र वर्ष पूर्व जो महत्व आंकाथा, आज उससे कई गुना अधिक महत्व उसका सारा भारतीय गणराज्य आंकरहाहै।

उन्नीसवीं शती तक इन मार्गों के अनेक भाग ऐसे विकट थे कि भोटांतिकों को सदा एक-दो मोटे बांस अपने साथ लेजानेपड़तेथे। वे टूटे मार्गों पर अपने मेंढ़े-बकरों को बांस पर बांध, कन्धे पर उठाकर ढ़ोतेथे[2]। मार्गों के हिम में डूबने से अपने को बचाने के लिए वे बांसों को शरीर पर बांधलेतेथे[3]।

बीसवीं शताब्दी में, विशेषकर पिछले पांच वर्षों में, युद्धजन्य परिस्थिति के कारण इन मार्गों में पर्याप्त सुधार हुआहै। इनके कुछ भागों पर मोटर-लारियां और कुछ पर घोड़े-खच्चर चलनेलगेहैं। फिर भी इनके अन्तिम विकट भाग आज भी अजपथ, मेंढ़पथ बनेहैं।

राजनीतिक उलटफेर के साथ टंकणों के व्यापार ने अनेक उलटफेर देखेहैं। विक्रमपूर्व तीसरी शती से विक्रम की तीसरी शती तक वे कुणिन्दनरेशों की प्रजा में गिनेजातेथे[4]।

मौर्यसाम्राज्य की सुव्यवस्था से टंकणों की विक्रयवस्तुएं भारी

१- 'No where does history repeat itself so monotonously, yet so interestingly, as in these mountain gates.'--सेम्पल--पृ० ५४५ २- शेरिंग--पृ० १३३
३- शेरिंग--पृ० ३२ ४- वनपर्व--१४०।२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मात्रा में कपिशा तथा फारिश होकर यूनान और रोम तक पहुंचनेलगीं। अशोक की धर्मविजय ने पश्चिम के डाकुओं के हृदय में पथिकों की सेवा-सुरक्षा का भाव भरकर मार्ग निरापद करदिएथे।

प्रथम शती में, जब कुणिन्दों ने कुशाणों की अधीनता स्वीकार करली[1] तो टंकणों के व्यापार को भारी प्रोत्साहन मिला। भारत से तिब्बत और मध्यएशिया जानेवाले मार्गों पर डाकुओं के उत्पात घटगए। टंकणों की विक्रयसामग्री का तथा उनके उपास्य यक्षों की पूजा का उत्तर-पश्चिमी और निकट के पश्चिमी देशों में व्यापक प्रचार हुआ।

चौथी शती में कुणिन्दों के उत्तराधिकारी कर्तृपुरनरेशों के शासन में टंकणों के व्यापार को प्रचुर प्रोत्साहन मिला। उनकी विक्रयवस्तुओं, स्वर्ण, रत्न, औषधि, कस्तूरी, गुग्गुल, चमर, पवित्र जल आदि द्रव्यों की गुप्तसाम्राज्य के स्वर्णयुग में भारी मांग थी।

टंकणों के व्यापार से उत्तराखण्ड को उस युग में जो समृद्धि प्राप्त हुईथी, उसके स्मारक मन्दाकिनीघाटी के अगणित ध्वंसावशेष, आदिबदरी, सिमली, गोपेश्वर, कालीमठ, नारायणकोटि (भेत) केदारनाथ, तुंगनाथ, जोशीमठ, पांडुकेश्वर, तपोवन और बाराहाट (उत्तरकाशी) के भव्य मन्दिरों की अद्भुत कलापूर्ण मूर्तियां हैं[2]।

महमूदगजनवी की लूटमार से उत्तरभारत में जो घोर अराजकता फैली उससे उत्तरापथ का व्यापार सर्वथा नष्ट होगया। एक के पश्चात् दूसरे नरेशों की पराजय, राजवंशों का विनाश, राजधानियों, समृद्धिशाली नगरों और मन्दिरों के विध्वंस से केन्द्रीय तथा स्थानीय शासन समाप्त होगया। सर्वत्र आततायी तत्व प्रबल होउठे। उत्तरापथ की विभिन्न शाखाओं के व्यापार पर निर्भर नगरों का पतन आरम्भ होगया। एक शताब्दी पश्चात् पृथ्वीराज के अन्त के साथ हिन्दुओं की संस्कृति और समृद्धि दोनों का सदा के लिए अन्त होगया।

१- देखिए, परजिटर--पृ० ५४ २- डबराल--उ०यात्रा-दर्शन--अ०याय १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाबरप्रदेश में काल्पनिक आक्रान्ता सय्यद सालार मसूद की लूटमार की गाथाएं नहीं मिलतीं[१]। पर दिल्ली के अतिनिकट होने से इस प्रदेश का मुसलमान शासकों की लूटमार से बचना असंभव था।

सम्बत् १२७१ में नासुरुद्दीन महमूद ने हरिद्वार के पास गंगाजी को पारकरके पर्वतों के पदतल से होकर रहाब (रामगंगा) तक के प्रदेश को उजाड़डाला[२]। पर भाबर के स्थानीय शासक हाथ पर हाथ रखे अपनी स्वतंत्रता खोनेवाले नहीं थे। तंकलाबाली (मिठांवाली या कलालघाटी) में घोर युद्ध हुआ जिसमें मुसलिम सेनापति इज्ज-उद्दीन दरमशी मारागया[३]। इस विरोध से सुलतान इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने लौटते समय कटेहर-निवासियों को ऐसा कठोर दंड दिया कि वे कभी भूल न सके[४]।

तेरहवीं शताब्दी विक्रमी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमी तक का भाबर का इतिहास लूटमार, अग्निकांड, निर्मम हत्याकांड और पाशविक अत्याचारों की पुनरावृत्तियों का इतिहास है।

इन सात शताब्दियों के इतिहास में जहां हम आक्रांता शासकों को अत्याचार की पराकाष्ठाकरते देखतेहैं, वहां हम भाबरनिवासियों को पिछले अत्याचारों से तनिक भी न घबराकर निरन्तर अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्षकरते पातेहैं। इस दीर्घकालीन संघर्ष में भाबर का वैभव समाप्त होगया, उसके नगर नष्ट होगए और दुर्ग, प्रासाद तथा मन्दिर सब खंडहर बनगए या सदा के लिए लुप्त होगए।

१- बिजनौर--गजेटियर, पृ० १६१ २-४- बिजनौर--गजेटियर, पृ० १६२; ईलियट तथा डौसन--जि० २, पृ० ३५३

——

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विनष्ट रंगमंच

भाबर के नगरों के समान, उत्तराखण्ड के मध्यवर्ती भाग में भी प्राचीनकाल में कुछ छोटे-छोटे नगर थे जिन्हें जनपदों की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। इनमें दसवीं शताब्दी विक्रमी से पहले की राजधानियों—कुलिन्दनगर, कर्त्रिपुर और बाराहाट—के अवशेष अब नहीं मिलते।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में स्थापित चांदपुरगढ़ी और देवलगढ़ के अवशेष अबतक बचेहैं। श्रीनगर के दुर्ग, प्रासाद और नगर बिरहीगंगा की बाढ़ में बहगए। उनकी केवल कुछ शिलाएं और दूसरे अवशेष ही यत्रतत्र मिलतेहैं।

पूर्व की ओर कत्यूरीवंश के उत्तराधिकारी राजवंशों की राजधानियों के अवशेष आजतक मिलतेहैं। इनमें बैजनाथ, द्वाराहाट, लखनपुर, चम्पावत, डींडीहाट, सीराकोट, उदयपुर (पिथौरागढ़), बगरीहाट (लखनपुरकोट), माणिकोट-गंगोलीहाट मुख्य हैं। इनकी स्थापना विक्रम की ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में या उसके पश्चात् हुईथी।

कुलिन्दनगर

महाभारत के अनुसार उत्तराखण्ड कुलिन्दराज्य के अन्तर्गत था। पांडव कनखल से आगे उशीरध्वज, मैनाक और कालशैल नामक पर्वतों को लांघकर[1] गंगाजी की घाटी से होकर कुलिन्दराज सुबाहु की राजधानी में पहुँचेथे[2]। यह क्षेत्र हिमालय के अतिनिकट था[3]। बहुत-सी कन्दराओं

१- वनपर्व, १३९।१ २- वनपर्व, १४०।२४-२६ ३- वनपर्व, १४०।२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से युक्त इस पर्वतीय प्रदेश में रथों के द्वारा यात्रा नहीं होसकतीथी[१]।

कुलिन्दराज सुबाहु के विशाल राज्य में अगणित हाथी-घोड़े थे। यहां किरात, तंगण और कुलिन्द जातियों की सैकड़ों टोलियां बसीथीं। देवताओं से सेवित यह देश महाहिमालय के पदतल में था। यहां अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएं दिखाईदेतीथीं[२]।

किरातनरेश सुबाहु के राज्य में मोटे-तकड़े तुषार और दरद जातियों के लोग भी रहतेथे। धनधान्य से युक्त और प्रचुर रत्नों से सम्पन्न कुलिन्दराज्य के प्रान्तों से आगे दुर्गम हिमालयप्रदेश था[३]।

अपने सेवकों और द्रोपदी की शृंगारसामग्री को कुलिन्दराज के पास छोड़कर पांडव गन्धमादन-बदरिकाश्रम की ओर बढ़ेथे[४]। लौटते समय वे पुनः उस नगर में पहुंचे और सुबाहु द्वारा दिएहुए रथों और सारथियों को लेकर उस पर्वत पर पहुँचे जो यमुना का उद्गम है[५]।

१- 'शैलेऽस्मिन् राक्षसाकीर्णे दुर्गेषु विषमेषु च।
यद्यशक्यो रथैर्गन्तुं शैलोऽयं बहुकन्दरः॥
पद्भिरेव गमिस्यामो मा राजन्! विमना भव'॥-वनपर्व, १४०।१५

२- 'एवं सम्भाषमाणास्ते सुबाहुविषयं महत्।
ददृशुर्मुदिता राजन्! प्रभूतगजबाजिमत॥
किराततंगणाकीर्णं कुलिन्दशतसंकुलम्।
हिमवत्यमरेर्जुष्टं बह्वाश्चर्यसमाकुलम्'॥---वनपर्व, १४०।२४-२५

३- 'किरातराज्ञो विषयं सुबाहोः।
पीनांस्तुषारान् दरदांश्च सर्वान्
देशान् कुलिन्दस्य च भूमिरत्नान्।
अतीत्य दुर्गं हिमवत्प्रदेशं
पुरं सुबाहोर्ददृशुर्नृवीराः'---वनपर्व, १७७।११-१२

४- वनपर्व, १४०।२७-२९ ५- वनपर्व, १४५।३१-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कनखल से आगे गंगातट से होकर बदरिकाश्रम की ओर जानेवाले मार्ग पर, कुछ पर्वतश्रेणियां लांघने के पश्चात् राणीहाट-श्रीनगर ही ऐसा क्षेत्र है, जहां कुलिन्द-राजधानी होने की सम्भावना होसकतीहै। यहां गंगाजी के दोनों तटों पर पर्याप्त चौरस भूमि है, और अनेक मार्ग आकर मिलतेहैं। केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार यहां कोलासुर की राजधानी थी[1]। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में अजयपाल ने भी इस क्षेत्र को अपनी राजधानी के लिए चुनाथा।

इस पर्वतीयप्रदेश में घोड़े या बैलों वाले रथों के पहुंचने की कल्पना तब ही सम्भव है, जब उस युग में भी आज के मोटरमार्गों के समान चौड़े और उत्तम मार्ग रहेहों। यदि उस युग में ऐसी सड़कों का होना असम्भव मानकर कुलिन्द-राजधानी को मैदान में ऋषिकेश के आसपास मानें तो कनखल से आगे पर्वतश्रेणियों वाले विकट मार्ग का सारा वर्णन तथा रथों सहित यमुनोत्तरी पहुँचने की गाथा, सभी को क्षेपक माननापड़ेगा।

महाभारत में कनखल से कुलिन्दराजधानी तक पहुंचने से पहले के यात्रावर्णन में कहीं रथों के प्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता और न कुलिन्दनरेश से रथों को लेकर यमुनोत्तरी की ओर जाने में कहीं उनके प्रयोग का वर्णन मिलताहै।

महाभारत के उपरोक्त वर्णन के आधार पर, तथा श्रीनगर के पास सुमाड़ीगांव में एक सहस्र कुणिन्दमुद्राएं मिलने से[2] राणीहाट में कुलिन्द-राजधानी होने की सम्भावना है।

कनखल से बदरिकाश्रम जानेवाला प्राचीन मार्ग गंगाजी के दहिने तट पर श्रीनगर के पास राणीहाट पहुँचताथा। श्रीनगर की अपेक्षा राणीहाट राजधानी के अधिक उपयुक्त है। उत्तराखण्ड में हाट शब्द

१- केदारखंड, १७६।१९ २- रतूड़ी--गढ़वाल का इतिहास, पृ० २४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रयोग राजधानी के अर्थ में होताहै[1]। राणीहाट का अर्थ हुआ राणी की राजधानी। यदि राणीहाट शब्द पुराणीहाट का लघुरूप हो तो उसका अर्थ हुआ पुरानी राजधानी।

राणीहाट के विस्तृत ध्वंसावशेषों को खोदकर खेत बनादिएगएहैं। दसवीं शताब्दी के आसपास के बने कुछ छोटे-छोटे भग्नप्राय: मन्दिर और पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी का एक विशाल मन्दिर आज भी उसके प्राचीन महत्व के साक्षी हैं। बड़े मन्दिर के अन्दर संग्रहीत अनेक प्रतिमाएं, विशेषकर अतिसुन्दर हर-गौरी, महिषमर्दिनी और वक्रतुंड गणेश की प्रतिमाएं उत्तरगुप्तकाल की विदित होतीहैं।

यहां खेतों और मकानों की दीवारों पर लगीहुई अनेक गढ़ीहुई और चित्रित शिलाएं, मन्दिरों के खंडहरों के पास और वृक्षों के चरणों में पड़ीहुई खंडित प्रतिमाओं के अवशेष, बड़े मन्दिर से गंगातट की ओर उतरनेवाले मार्ग पर लुढ़कीहुई चित्रित शिलाएं, आमलक, स्तंभ और तोरणों के टूटे-फूटे अंश, तथा खेतों में और आमों की झुरमुटों के पास यत्रतत्र, बचेहुए छोटे-बड़े टीले आज भी उसे अपनी वैभव-गाथा सुनाने के लिए अटकेहैं, जो उन्हें सुननाचाहताहै।

निश्चय ही, श्रीनगर में पंवार-राजधानी की स्थापना से पूर्व राणीहाट महत्वपूर्ण स्थान था। यहां के विशाल माहेश्वरमन्दिर में, परिक्रमा में स्थापित, तथा निकट के खेतों में बने अनेक स्मार्तमन्दिरों में बदरी-केदार जानेवाले सभी तीर्थयात्री पहुँचतेथे।

कनखल, गंगाद्वार, वीरभद्र, ऋषिकेश और देवप्रयाग से आगे यहीं अनेक विशाल और भव्य मन्दिर मिलतेथे। निरन्तर मीलों तक विकट मार्ग के पश्चात् यहां की चौरस भूमि में यात्री शान्ति की सांस लेते और माहेश्वरमन्दिर में सान्ध्यआरती का भव्य दृष्य देखतेथे।

जनगाथा के अनुसार राणीहाट के मेले में देवचेलियों का क्रयविक्रय

१- यथा बाराहाट, द्वाराहाट, गंगोलीहाट, डींडीहाट, बगरीहाट आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होताथा[१]। चीनी यात्री युवान चाङ् ने हर्ष के राज्य के उत्तर में रानियों द्वारा शासित सुवर्णगोत्रदेश का उल्लेख कियाहै, जहां उत्तम सोना उत्पन्न होताथा[२]। पुराणों और बृहत्संहिता में भी[३] इस देश का स्त्रीराज्य के नाम से उल्लेख मिलताहै।

राणीहाट का अर्थ राणी की राजधानी मानकर निकटवर्ती प्रदेश को सुवर्णगोत्र या स्त्रीराज्य मानने की कल्पना होसकतीहै। यात्री के अनुसार सुवर्णगोत्र ब्रह्मपुर (गढ़वाल-कुमाऊं) के उत्तर में था[४]। अस्तु उसकी पहिचान उत्तरपश्चिमी तिब्बत से करना ही अधिक संगत है।

उपलब्ध अवशेषों के आधार पर राणीहाट को कुलिन्दराजधानी मानाजासकताहै। सोलहवीं शताब्दी में जब अजयपाल ने इसके ठीक सामने गंगाजी के पार श्रीनगर में अपनी राजधानी की स्थापना करली तो इसे जनता ने पुराणीहाट (प्राचीन राजधानी) कहना आरम्भ किया होगा जिसका लघुरूप राणीहाट होगया।

महाभारत में कुलिन्दनरेश के उल्लेख से और तीसरी शताब्दी विक्रमी तक की कुणिन्दमुद्राएं मिलने से[५] विदित होताहै कि उत्तराखण्ड का शासन पांच-छै शताब्दियों तक कुलिन्दनरेशों द्वारा होतारहा। कुलिन्दजनपद के पश्चिमी भाग की राजधानी स्रुघ्न थी[६]। यदि उपरोक्त कल्पना साधार है तो पूर्वी भाग की राजधानी कुणिन्दनगर, वर्तमान राणीहाट में थी। विद्वानों का अनुमान है कि कुणिन्दों का गणराज्य ऐसा गणराज्य था, जिसमें अध्यक्ष का पद नरेश को प्राप्त था[७]।

यहां कब राजधानी की स्थापना हुई और कब तथा क्यों यहां

---

१. डबराल--उ० यात्रा दर्शन, पृ० ६५२ २- वाटर्स--जि० १, पृ० ३३०

३- बृहत्संहिता, १४।२२; १६।६ ४- वाटर्स--जि० १, पृ० ३३०

५- मजूमदार तथा अल्तेकर--वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २९

६- कनिंघम--क्वाइन्स आव ए० इं०, पृ० ७१

७- जायसवाल--हिन्दूराज्यतन्त्र, खंड १, पृ० ११० टि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से राजधानी उठगई, इन प्रश्नों का समाधान राणीहाट और निकटवर्ती क्षेत्र के विधिपूर्वक पुरातात्विक अध्ययन से ही सम्भव होसकेगा।

कर्त्रिपुर जनपद

समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में, गुप्तसाम्राज्य के प्रत्यन्त (सीमावर्ती) देशों में कामरूप तथा नेपाल के पश्चात् कर्त्रिपुर का उल्लेख है[१], जिसे विद्वानों ने गढ़वाल-कुमाऊं और रुहेलखण्ड में फैला जनपद माना है[२]। इससे विदित होताहै कि सं० ४१७ वि० से पूर्व किसी समय कुलिन्द जनपद का स्थान कर्त्रिपुरराज्य ने लेलिया।

विद्वानों का अनुमान है कि विक्रम की तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यौधेय, आर्जुनायन और कुलिन्दगणों के संघ ने कुशाणों को पराजित करके पूर्वी पंजाब में उनकी सत्ता समाप्त करदीथी[3]। इस विजय के उपलक्ष में उन्होंने अपनी मुद्राओं पर 'यौधेयगणस्य जयः' के साथ 'द्वि' और 'त्रि' शब्द भी अंकित कराएथे[४]। इनमें द्वि आर्जुनायनगण का और त्रि कुलिन्दगण का द्योतक मानेजातेहैं[५]।

सम्भवतः कुशाणयुद्ध के समय ऐसी स्थिति उत्पन्न होगई जिसका लाभ उठाकर यामुनप्रदेश में शीलवर्म्मन या सेनवर्म्मन ने अश्वमेधयज्ञ करके सैंहपुर के यादवराज्य की स्थापना की।[६]। और गंगाजी के पार गढ़वाल-कुमाऊं में उस राज्य की स्थापना हुई जिसे प्रयाग-प्रशस्ति में कर्त्रिपुर कहागयाहै।

महाभारत में कर्त्रिपुर का उल्लेख नहीं मिलता। विक्रमपूर्व पांचवीं

१- 'कामरूपनेपालकर्तृपुरादि प्रत्यन्त नृपतिर्भिः......' उ० डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५४६ २- भ० उपाध्याय, प्रा० भा० का इतिहास, पृ० ३२७ ३- मजूमदार तथा अल्तेकर--वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २७ ४- मजूमदार तथा अल्तेकर--उपरोक्त, पृ० २९ ५- मजूमदार तथा अल्तेकर--उपरोक्त, पृ० ३० ६- देखिए, पृ० २७२

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी में पाणिनि ने (४।२।६५) कर्त्रि नामक नगर का उल्लेख कियाहै। डा० अग्रवाल का अनुमान है कि सम्भवत: यह उस नगर का प्राचीन नाम है जो कालान्तर में कत्यूरी (कर्त्रिपुर) कहलाया[१]।

कार्तिकेयपुर (नगर)

ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों के जाली ताम्रशासनों में, जिनका समय विक्रम की छटी-सातवीं शताब्दी है, कार्तिकेयपुर और उसमें अरिष्टाश्रम तथा निम्बसारी का उल्लेख है[२]। नौवीं शताब्दी विक्रमी के ललितशूर के ताम्रशासनों में कार्तिकेयपुर[३] का तथा तेरहवीं शताब्दी विक्रमी के क्राचल्लदेव के अभिलेख में कीर्तिपुर का[४] उल्लेख सम्भवतः एक ही नगर या क्षेत्र के लिएहुआहै[५]।

ग्यारहवीं शताब्दी विक्रमी के लखनपालदेव के शिलालेख में अलमोड़ा में बैजनाथ का वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर के नाम से उल्लेख है[६]।

लखनपालदेव के पूर्वज ललितशूर और पद्मट के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर के साथ अन्तराग और टंकणपुर विषय, टंकणपुर, बदरिकाश्रमीय तपोवन, बदरिकाश्रम, योशिका, गरुड़ाश्रम, पलसारि, विष्णुगंगा आदि का उल्लेख मिलने और अन्य प्रमाणों से विद्वानों की धारणा है कि कत्यूरीनरेशों की आदिराजधानी कार्तिकेयपुर (कत्यूर) जोशीमठ में थी[७]। पीछे जब अनेकमल्ल और क्राचल्लदेव-जैसे प्रबल शत्रु के प्रहार से उनको जोशीमठ छोड़कर बैजनाथ में अपनी राजधानी बनानीपड़ी तो उन्होंने उसे वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर नाम देदिया[८]।

राजधानी के लिए बैजनाथ जोशीमठ की अपेक्षा अधिक उपयुक्त

१- अग्रवाल--पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८६ २- एपि० इंडिका जि० १३, पृ० ११५ ३- उ० डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५०६
४-५- राहुल--कुमाऊं, पृ० ६४ ६- राहुल--कुमाऊं पृ० ६७
७-८-राहुल--कुमाऊं--पृ० ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान है। बैजनाथ के विस्तृत ध्वसावशेषों, वहां के भव्य मन्दिरों तथा सुन्दर पाषाणमूर्तियों को देखने से अनुमान लगताहै कि संभवत: प्रथम कार्तिकेयपुर के समय ही द्वितीय कार्तिकेयपुर का निर्माण भी आरम्भ होगयाथा[1]।

इसमें सन्देह नहीं कि जिस जनपद को महाभारत में कुलिन्द कहागयाहै, उसीका प्रयाग-प्रशस्ति में कर्त्रिपुर, पौरव-शासनों, बृहत्संहिता और चीनी यात्री के यात्रावर्णन में ब्रह्मपुर तथा कत्यूरी-अभिलेखों में कार्तिकेयपुर के नाम से उल्लेख है।

यदि पाणिनिकालीन कत्रि कर्त्रिपुर, कीर्तिपुर, कार्तिकेयपुर का पूर्व रूप है तो निश्चय ही इस क्षेत्र पर अधिकार करलेने पर अज्ञातवंशी नरेश कत्यूरी कहलाए। कत्यूरीनरेशों के आरम्भिक अभिलेखों में कहीं उनके जातिवंश का उल्लेख नहीं मिलता। कत्यूरी शब्द का अर्थ हुआ कत्यूर के स्वामी। संभवत: कुलिन्दवंशज ही कत्रिपुर में राजधानी बनालेने पर कत्यूरी कहलानेलगे।

इस जनपद की राजधानी कार्तिकेयपुर से सम्बन्धित एक प्राचीन अनुश्रुति का राजशेखर ने उल्लेख कियाहै। 'हिमालय के जिस कार्तिकेयनगर में शत्रुद्वारा घेरदिएजाने से शर्मगुप्तनरेश ने साहसहीन होकर ध्रुवस्वामिनीदेवी खसाधिपति को सौंपकर अपनी मुक्ति प्राप्त कीथी, उसी कार्तिकेयनगर की नारियों के समूह तुम्हारी कीर्ति के गीत गातेहैं और तुम्हारी प्रशंसा में किन्नरों के गीतों से पर्वतों की विशाल गुफाएं गूजतीहैं[2]'।

१- राहुल--कुमाऊं, पृ० ६५

२- दत्वा रुद्धगति: खशाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीम्

यस्मात्खंडितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृप:

तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणक्वणत्किन्नरे,

गीयन्ते तव कार्तिकेयनगरस्त्रीणां गणै: कीर्त्तय: ।। --काव्यमीमांसा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह अनुश्रुति उत्तराखण्ड के इतिहास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। समुद्रगुप्त के प्रचण्ड शासन से आतंकित होकर कर्त्रिपुरनरेश ने उसकी अधीनता स्वीकार करलीथी। उसकी मृत्यु के पश्चात् इस प्रदेश के नरेश ने जब गुप्तसाम्राज्य का प्रभुत्व मानना अस्वीकार करदिया तो समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी रामगुप्त (शर्मगुप्त) को कर्त्रिपुर पर आक्रमण करनापड़ा।

सम्भवतः अपने दिग्विजयी पिता का अनुकरण करने की लालसा से युवा रामगुप्त स्वयं इस युद्ध का संचालन करने सपत्नीक गयाथा। बीहड़ पर्वतीयप्रदेश के इस युद्ध में वह पत्नीसहित घेरलियागया। और खशनरेश की शर्त के अनुसार अपनी पत्नी उसे देकर छुटकारा पाने को प्रस्तुत होगया।

तब ध्रुवदेवी का वेष धारण करके उसके भ्राता चन्द्रगुप्त ने अपने साथ स्त्रीवेषधारी अनेक सैनिक लेकर अपने भ्राता की पत्नी ध्रुवदेवी की कामना करनेवाले खश (शक) नरेश का शत्रुनगर में ही बध करडाला[१-२]।

उस कार्तिकेयनगर की, जहां सम्वत् ४३२ वि० में यह घटनाहुई, पहिचान, छटी-सातवीं शताब्दी के पौरव-अभिलेखों और नौवीं शताब्दी के कत्यूरी - अभिलेखों में वर्णित कार्तिकेयपुर से करना सर्वथा संगत है।

रुद्धगतिः शब्द का प्रयोग सूचित करताहै कि यह घटना ऐसे स्थान पर हुईथी जहां से पीछे हटने या आगे बढ़ने का मार्ग शत्रु ने रोक दियाथा। गढ़वाल-कुमाऊं का प्राचीन साहित्य में खशदेश नाम

१- 'अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपति-मशातयत्'--हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास

२- 'शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन व्यापादितः'---शंकरार्य द्वारा उपरोक्त की टीका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलताहै[१] । अनुश्रुति में खसाधिपति शब्द का प्रयोग सिद्ध करताहै कि उपरोक्त घटना उत्तराखंड में हुईथी ।

डा० भांडारकर ने, सम्भवतः उपरोक्त अभिलेखों के कार्तिकेयपुर की ओर ध्यान न देकर कार्तिकेयनगर को विष्णुपद या हरिद्वार के निकट बतलायाहै[२] । संभव है यह घटना कर्तिपुरराज्य की राजधानी में न होकर हरिद्वार से आगे और श्रीनगर से पहले हुईहो । तथा खसाधिपति ने दोनों ओर के घाटों को रोककर आक्रांता और उसकी सेना को भूखों मरने के लिए विवश करदियाहो ।

किन्तु कार्तिकेयपुर (जोशीमठ) में भी इस घटना का होना असंभव नहीं है । नातिदूर बदरीनाथ के पास चरणपादुका तीर्थ है[३], जिसका उल्लेख कालिदास ने भी कियाहै[४] ।

कार्तिकेयपुर माणा (प्राचीन क्रौंच) द्वार और नीतीद्वार के मुख पर बसा, राजधानी की अपेक्षा सैनिक छावनी के लिए अति महत्वपूर्ण स्थान है । अनुश्रुति के अनुसार नृसिंहदेवता के आदेश से, तथा अभिलेखों के अनुसार अनेकमल्ल और क्राचल्लदेव-जैसे आक्रान्ताओं से पराजित होकर कत्यूरीनरेशों को अपनी राजधानी जोशीमठ से हटाकर बैजनाथ में बनानीपड़ीथी ।

सात आठ सौ वर्ष पूर्व भीषण हिमानीस्खलन या भूचाल के कारण अगणित अति विशाल शिलाओं ने पर्वतशिखरों से टूटकर जोशीमठ और आसपास के सारे क्षेत्र को ढकदियाथा, जिसके चिह्न आज भी दिखाई

१- द्रोणपर्व, १२१।४२ ४- मालवीय क० वाल्यूम (१९३२)

२- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५४८

४- तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्द्धेन्दुमौलेः ।
शश्वत् सिद्धै रुपचितवलिं भक्तिनम्रः परीयाः ।।
यस्मिन्दृष्टे करुणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः ।
संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ।।--मेघदूत, पूर्व, ५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देतेहैं। कत्यूरीनरेशों के पलायन में इस प्राकृतिक दुर्घटना का भी महत्वपूर्ण योग रहाहोगा।

जोशीमठ के प्राचीन स्मारक अब केवल वासुदेवमन्दिर और नृसिंहमन्दिर ही बचसकेहैं। वासुदेवमन्दिर की परिक्रमा में स्थापित अनेक प्रतिमाएं सम्भवतः पर्वतपात से नष्ट मन्दिरों से उठाकर वहां रखीगईहैं। इस मन्दिर की विशाल वासुदेवमूर्ति, अन्य छोटी मूर्तियां और द्वार पर पीतल की गरुड़मूर्ति कला और प्राचीनता दोनों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

सड़क बनाते समय जोशीमठ से नीचे विष्णुप्रयाग के पास, विशाल मन्दिर, भवनादि के अवशेष और मूर्तियां मिलीहैं, जिनसे विदित होताहै कि सम्भवतः भीषण पर्वतपात से बचने के लिए वहां नगर बसाथा।

काली से लेकर सतलुज तक फैले प्रदेश पर शासन करनेवाले कत्यूरीनरेशों के उपयुक्त प्रासाद और दुर्ग के अवशेष सम्भवतः शिलाओं और मोरेन से दबेपड़ेहैं। सात मील दूर, धौलीतट पर, तपावन के खेतों में, महत्वपूर्ण बस्ती के अवशेष, गढ़ीहुई एवं चित्रित शिलाएं आमलक, स्तम्भ-अंश आदि के अवशेष बिखरेपड़ेहैं। वहां गुप्तकालीन तीन मन्दिर और एक दसवीं शताब्दी का मन्दिर अबतक बचेहैं[1]।

काली से सतलुज तक तथा जन्सकर श्रेणी से रुहेलखण्ड तक फैले विशाल साम्राज्य के प्रबन्ध के लिए जोशीमठ-जैसा स्थान उपयुक्त नहीं है। सम्भवतः केन्द्र में श्रीनगर या बाराहाट के पास दूसरी राजधानी रहीहोगी। यहां राजधानी रखने का कारण यही होसकताहै कि उक्त राजवंश का आरम्भिक अभ्युदय इसी स्थान से हुआथा[2]।

सम्वत् ४३२ से उत्तराखंड पर गुप्तनरेशों का अधिकार होगया। और स्कन्दगुप्त के राज्यकाल, लगभग सम्वत् ५२५ वि० तक बनारहा। सम्भवतः पुरुगुप्त के राज्यकाल में उत्तराखण्ड स्वतन्त्र होगया जैसा कि

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५०६ २-राहुल--गढ़वाल, पृ० ४६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मपुर के अभिलेखों से विदित होताहै। सम्वत् ६७५ वि० के आसपास उत्तराखण्ड पर पौरवराजवंश के स्थान पर एक माहेश्वरवंश का अधिकार होगया जिसने अपनी राजधानी बाराहाट में स्थापित की।

बाराहाट

ऋषिकेश से गंगोत्तरी जानेवाले मार्ग में लगभग १०० मील की दूरी पर गंगाजी के दहिने तट के विस्तृत चौरस बगड़ पर बाराहाट अत्यन्त प्राचीन स्थान है। यहां गंगाजी ने उत्तरवाहिनी बनकर इस भूमि को विशेष पावनता प्रदान करदीहै। यहां वरुण और असी नदियां आकर मिलतीहैं। इसे उत्तर की वाराणसी या उत्तरकाशी भी कहाजाताहै।

नातिप्राचीन केदारखंडग्रन्थ में इसे उत्तरकाशी कहकर इसकी पावनता की भूरि-भूरि प्रशंसा कीगईहै[1]। उत्तर की इस काशी में उन समस्त तीर्थों की स्थिति मानीजातीहै, जो काशी में बतलाएजातेहैं[2]। जब वाराणसी यवनों से आक्रांत होजाएगी तो शिवजी और अन्य देवतागण उत्तरकाशी का ही आश्रय लेंगे[3]।

यहां शिवजी ने परशुराम को वह परशु दियाथा जिससे उन्होंने कई बार क्षत्रिय-उत्पाटन कियाथा[4]। यहां देवासुर-संग्राम में जो शक्ति फेंकीगईथी, वह आज भी वहां दिखाईदेतीहै[5]।

बारा बाराणसी का लघुरूप प्रतीत होताहै। बाराहाट का अर्थ हुआ बारा या बाराणसी नामक राजधानी[6]। अलकनन्दा और टोंस-यमुना के द्वाब में बाराहाट की स्थिति सामरिक, प्रशासकीय और आर्थिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है।

१- केदारखंड, ६३।१०-११ २- केदारखंड, ६३।१६-५२; ६३।५२
३- केदारखंड, ६३।७९-८० ४- केदारखंड, ६४।६६ ५- केदारखंड, ६३-५२ ६- इसीप्रकार द्वाराहाट का अर्थ है द्वारा या द्वारिका नामक राजधानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राणीहाट के समान यह स्थान भी राजधानी के लिए सर्वथा उपयुक्त है। ऋषिकेश से तिब्बत जानेवाले मार्ग में यह स्थान जेलूखगा गिरिद्वार का प्रहरा है। पश्चिम और पूर्व से यहां मार्ग आकर मिलतेहैं। इसलिए प्राचीनकाल से ही इस स्थान पर छोटे बड़े राज्यों की राजधानी रहीहै। और आज भी यहां जिले का मुख्यालय है।

बाराहाट में विश्वनाथमन्दिर के बाहर २६ फीट ऊंचे त्रिशूल पर राजागुह के अभिलेख से, जिसे लिपि के आधार पर छटी-सातवीं शताब्दी का मानाजाताहै[1], विदित होताहै कि यहां गणेश्वर नाम से विख्यात नरेश ने अतिउच्च शिवमन्दिर का निर्माण कियाथा[2]। उसके स्वर्गवास के पश्चात् उसके पुत्र राजागुह ने इस शिवमन्दिर के आगे त्रिशूल की स्थापना कीथी[3]।

गणेश्वर और गुह नामवाले बाराहाट के इन शैवधर्मावलम्बी नरेशों के सम्बन्ध में अबतक कोई अन्य सूचना प्राप्त नहीं हुईहै। सिंहपुर के यादवनरेशों के समान इन नरेशों के लिए केवल क्षितिप और राज शब्दों का प्रयोग मिलताहै। इससे विदित होताहै कि वे स्थानीय नरेश थे। उनका अधिकार सम्भवत: अलकनन्दा-यमुना के द्वावप्रदेश तक ही सीमित था।

बाराहाट और गोपेश्वर के त्रिशूलों में अश्चर्यजनक समानता है। दोनों के डंडों के लेख की लिपि समकालीन है। गोपेश्वर के त्रिशूल के डंडे का एक प्राचीनतम अभिलेख अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ। दोनों

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ३४८

२- 'आसीद्यः क्षितिपो गणेश्वर इति प्रख्यातकीर्तिन्नरैः
चक्रे येन भवस्य वेश्म हिमवच्छृंगोच्छ्रितं दीप्तिमत्'।

३- 'नाम्ना श्रीगुह इत्युदारचरितः सद्धर्म्मधुर्य्यस्सतां
शक्तिं शत्रुमनोरथप्रमथनीं शम्भोश्चकाराग्रतः'। --डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ०५२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिशूलों का निर्माता राजागुह ही प्रतीत होताहै।

एटकिनसन ने लिखाहै[१] कि स्थानीय परम्परा के अनुसार इस त्रिशूल को किसी तिब्बती (भोट) नरेश ने स्थापित कियाथा। राहुल ने भी इसकी पुष्टि की है[२]।

यह कथन सर्वथा असत्य है। त्रिशूल के अभिलेख की ट्रेल द्वारा तय्यार प्रतिलिपि अधूरी और त्रुटिपूर्ण है। उसके आधार पर डा० मिल का अनुवाद अधूरा और अशुद्ध है[३]। इस अशुद्ध अनुवाद के आधार पर एटकिनसन के अनुमान सर्वथा भ्रांतिपूर्ण और अग्राह्य हैं।

त्रिशूल के अभिलेख में स्पष्ट शब्दों में कहागयाहै कि भगवान् शंकर के सन्मुख, शत्रुओं के मनोरथों का मथनकरनेवाली इस शक्ति की स्थापना, सज्जनों की धार्मिकवृत्ति का पालनकरनेवाले उदारचरित श्रीगुह के द्वारा हुईथी[४]। इस लेख से केदारखण्डग्रन्थ की इस कल्पना का भी खंडन होजाताहै कि वहां शक्ति देवासुरसंग्राम में फेंकीगईथी[५]।

उत्तराखण्ड और उत्तरकाशी पर तिब्बत के अधिकार की कल्पना पर भी, जिसकी राहुल[६] तथा अन्य व्यक्तियों और चीनियों द्वारा बार-बार दुहाईदीजातीहै, यहां विचार करलेना आवश्यक है।

बाराहाट के त्रिशूलअभिलेख में शक्ति को शत्रुप्रमथनी कहागयाहै। इससे विदित होताहै कि शिवमन्दिर-निर्माता राजागणेश्वर का स्वर्गवास होजाने पर किसी शत्रु ने उसके राज्य को आत्मसात् करनाचाहा। गणेश्वर के पुत्र राजागुह ने उसे मारभगाकर उक्त मन्दिर के सन्मुख इस शक्ति की स्थापना की और अपना विजय-सूचक अभिलेख उस पर अंकित किया।

१- एटकिनसन--जि० २, पृ० ५१५ २- राहुल--गढ़वाल, पृ० ११२
३- शुद्ध प्रतिलिपि आगे प्रकाशित कीगईहै। ४- देखिए, पृ०२७७ टि०२
५- केदारखंड--६३।५२ ६- राहुल-गढ़वाल, पृ०६८-७०; ११२; ३४६;
राहुल-कुमाऊं, पृ०३५-३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एटकिनसन द्वारा उल्लिखित परम्परा का यदि कोई आधार है तो वह केवल इतना ही होसकताहै कि राजागणेश्वर के स्वर्गवास होने पर पश्चिमी तिब्बत, गूगे के, किसी शासक ने भागीरथीघाटी में लूटमार मचानीचाही। किन्तु उसे राजागुह ने बुरी तरह पराजित करके हिमालय के पार खदेड़दिया। अभिलेख की अन्तिम पंक्ति में राजागुह के लिए अरिमथन विशेषण का प्रयोग भी यही सिद्ध करताहै[1]।

इस अभिलेख के समय, छटी-सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक पश्चिमी तिब्बत में कोई ऐसा प्रबल शासक न था, जो हिमालय के इस ओर साम्राज्यविस्तार करसकता। किसी तिब्बती शासक द्वारा शिवमन्दिर के बाहर त्रिशूल स्थापित करने की कल्पना भी संगत नहीं लगती।

सातवीं शताब्दी विक्रमी में यह प्रदेश स्रुघ्नजनपद के अन्तर्गत था, जिसकी उत्तरी सीमा चीनीयात्री के अनुसार हिमाच्छादित महापर्वत तक फैलीथी[2]। इसलिए कम से कम हर्ष के राज्यकाल में—सम्बत् ६६३ से सम्बत् ७०५ तक बाराहाट-उत्तरकाशी पर तिब्बत के अधिकार की कल्पना नहीं होसकती।

राहुल ने लिखाहै—'तिब्बत में स्रोङ-चन्-स्गम्-पो (सम्बत् ६८६-७०६ वि०) ने एक नए साम्राज्य की स्थापना कीथी जो पश्चिम में प्रायः गिलगित, उत्तर में तरिम् तथा ह्वाङ्हो की उपत्यकाओं, पूर्व में चीन के कुछ भीतर तथा दक्षिण में सारे हिमालय पर फैलाथा। करीब दो शताब्दियों तक इस राज्य के प्रभाव में आसाम से गिलगित तक सारा हिमालय रहा[3]। यहां के निवासियों की भाषा पर तिब्बती भाषा का और मुखों पर मंगोली मुखमुद्रा की छाप इन्हीं दो शताब्दियों में चिरस्थायी रूप से पड़ी[4]।'

१- 'तावत्कीर्तिः सुकीतश्चिरमरिमथनस्यास्तु राज्ञः स्थिरेयं' उ० डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ३४८ २- कनिंघम--ए० ज्यौग्राफी, पृ० १६२ ३-४- राहुल--गढ़वाल, पृ० ६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त कथन की पुष्टि भारतीय स्रोतों से नहीं होती[१]। सम्बत् ६६२ से ७०५ वि० तक उत्तराखण्ड के दोनों भाग, स्त्रुघ्न और ब्रह्मपुर, हर्ष के अधीन थे। इसलिए स्रोङ्-चन्-स्गम्-पो के राज्यकाल में उत्तराखण्ड पर तिब्बत के अधिकार की कल्पना नहीं होसकती।

चीन के सम्राट के साथ हर्ष के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे[२]। उसकी मृत्यु के पश्चात् अर्जुन के राज्यकाल में चीन के राजदूत द्वारा तिब्बत और नेपाल की सेनाओं को लेकर तिरहुत पर छापामारने की घटना का जो अतिरंजित वर्णन चीनी स्रोतों से मिलताहै, उसे इतिहासकार सर्वथा काल्पनिक मानतेहैं[३]। ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध होसके कि तिब्बती और नेपाली सेना तिरहुत से आगे बढ़कर मध्यदेश को जीततीहुई उत्तराखण्ड तक पहुँचीथी।

हिमालय की ढालों पर मंगोलमुखमुद्रा मिलने का वास्तविक कारण यह है कि पिछली कई शताब्दियों से साधनहीन, अकिंचन तिब्बत के पशुचारकों की टोलियां हिमालय के इस ओर आकर यहां के किरातों के मध्य बसतीरहीहैं और आज भी बसतीजारहीहैं।

शताब्दियों से भारत की शरण में आबसनेवाले तिब्बती पशुचारकों के इस शान्तिपूर्ण प्रसार को विजय नहीं कहाजासकता। उत्तराखण्ड में आबसनेवाले तिब्बती पशुचारकों की संख्या अति अल्प है। नेलङ्, जाडङ् और बागुरी के जाड वहां एक-दो शताब्दी पूर्व बुशहर से

१- 'We have no reference in Indian sources to any military compaign of Tibetans in India or to their exercising political suzerainty in any part of the country.'—मजूमदार तथा पुशलकर--एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४४५ २- त्रिपाठी--हिस्ट्री आव कन्नौज, पृ० १८८ ३- वैद्य--मेडिएवल इंडिया, जि० १, पृ० ३३४-३५ तथा त्रिपाठी--उपरोक्त, पृ० १९० टि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबरू हैं। लद्दाख और सिकिम के समान उत्तराखण्ड में तिब्बती रीतिनीतियों के अनुयायी नहीं मिलते।

उत्तरकाशी में परशुराममन्दिर के पास एक छोटे मन्दिर में लगभग सवा तीन फीट ऊंची भगवान् बुद्ध की पीतल की मूर्ति वहां दत्तात्रेय के नाम से पूजीजातीहै[1]। इस मूर्ति के पादपीठ पर तिब्बती लिपि में 'ल्ह-ब्चन्-नगरजङ्-थुब्पा' अर्थात् देव-भट्टारक नागराज के मुनि लिखाहै[2]। इससे राहुल का अनुमान है कि ग्यारहवीं शताब्दी में पश्चिमीतिब्बत, गूगे (शङ्-शुङ्) के नरेश नागराज का इस क्षेत्र पर अधिकार होगयाथा। और उन्होंने अपने राज्यान्तर्गत इस स्थान पर एक अच्छा बौद्धविहार बनायाथा[3]।

उत्तरकाशी पर तिब्बत के अधिकार की पुष्टि के लिए वहां इस मूर्ति का पायाजाना-मात्र पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं। भारत की बनी अनेक मूर्तियां तिब्बत में और संसारभर के देशों में मिलतीहैं। केवल उन्हीं के आधार पर उन देशों में भारत के अधिकार की कल्पना नहीं होसकती। न मूर्ति के पादपीठ के लेख में कहीं ऐसे अधिकार का उल्लेख है। यह मूर्ति तिब्बत से सम्भवतः यहां उसी प्रकार लाईगईहै, जिस प्रकार नाति दूर बागौरी में तिब्बत से कुछ पुनीतसामग्री लाकर चोरतेन में स्थापित कीगईहै।

राहुल ने लिखाहै कि मूर्ति के प्रभामंडल के दमकते पीतल को कोई सोना समझकर काटलेगया[4]। यह असम्भव नहीं कि गूगे के किसी मन्दिर से कोई सोने के लोभ में इस मूर्ति को उठालायाहो।

एटकिनसन[4], राहुल[5] तथा पातीराम[6] ने ब्रह्मपुर की पहिचान बाराहाट या उत्तरकाशी से कीहै। चीनी यात्री के अनुसार ब्रह्मपुर

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ६४९ २- राहुल--मेरी जीवनयात्रा, भाग २, पृ० ६५६ ३- राहुल--उपरोक्त, पृ०६५७ ४- एटकिनसन--जि०२, पृ० ५१२ ५- राहुल--गढ़वाल, पृ० ५७ ६- पातेराम--पृ०१७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंडावर से उत्तर की ओर ५० मील की दूरी पर था। उसका जलवायु कुछ शीतल था, वहां उत्तम सुवर्ण उत्पन्न होताथा[1] और उसके उत्तर में सुवर्णगोत्र था। यदि यात्री का तात्पर्य मंडावर से ५० मील की दूरी पर उत्तर की ओर ब्रह्मपुरराज्य की सीमा आरम्भ होने से रहाहो, तो बाराहाट पर भी ब्रह्मपुर सम्बन्धी उपरोक्त बातें घटित होजातीहैं।

ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों के अभिलेखों में अनन्त (शेषनाग) के अवतार वीरणेश्वर का उल्लेख है, जो पौरवनरेशों का इष्टदेव था। बाराहाट से कुछ ही दूरी पर सीम-मुखीम में शेषनाग का मन्दिर है, जिसे गोरखा-अभिलेख में शेष कहागयाहै[2]। प्रति वर्ष सहस्रों व्यक्ति आज भी उसकी तीर्थयात्रा करतेहैं।

आदिबदरी-चाँदपुरगढ़ी

कर्णप्रयाग से १० मील दूर, आदिबदरी से १ मील पहले एक छोटे-से टीले पर पंवारनरेशों की मूल राजधानी चांदपुरगढ़ी के अवशेष हैं। गढ़ीहुई एवं चित्रित विशाल शिलाओं से निमित दुर्ग या प्रासाद की उपरली मंजिल टूटकर गिरने से निचली मंजिल भी मलवे से ढ़कगईहै[3]।

टीले के पास के गांवों में, बन में, तथा आदिबदरी के खेतों में प्राचीन बस्तियों के अवशेष हैं। आदिबदरी में तथा नातिदूर सिमली के मन्दिरों में से कुछ सातवीं शताब्दी विक्रमी के हैं[4]। चांदपुरगढ़ी में पाएगए एक श्लोक में, जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है, सम्वत् ६४५ में वहां कनकपाल द्वारा राजधानी बनाने का उल्लेख है[5]।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में (१५०० ई०) कुमाऊंनरेश

१- उ० पातेराम--पृ० १७६ २- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ६११
३- डबराल--उपरोक्त, पृ० ५२६ ४- डबराल--उपरोक्त, पृ० ५३६
५- रतूड़ी--गढ़वाल का इतिहास, पृ० १२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीर्तिचन्द के आक्रमण से अजयपाल का चांदपुरगढ़ी से भागकर देवलगढ़ में राजधानी बनाना गढ़वाल[1] और कुमाऊं[2] दोनों के इतिहासों से सिद्ध होताहै। अस्तु चांदपुरगढ़ी में राजधानी का अस्तित्व इस आक्रमण से पूर्व अवश्य माननापड़ेगा।

आदिबदरी पिंडार की एक उत्तरवाहिनी शाखा के तट पर बसाहै।

केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार पिंडारनदी की उपरलीघाटी में ब्रह्मपुत्रेश्वर नामक महाद्भुत शिवलिंग है[3]। उत्तर की ओर थोड़ी दूरी पर शिवजी के शिर पर निवास करनेवाले सारे नागों के मूलपुरुष अनन्तनाग का स्थान है[4]। वहीं पवित्र कावेरीनदी है, जिसमें पितरों का श्राद्ध-तर्पण करने से पितरों की अनन्तकाल तक तृप्ति होतीहै[5]।

इसी घाटी में ब्रह्मसर नामक दुर्लभ तीर्थ है। वहां महान् पुण्य-दायक ब्रह्मेश्वर नामक शिव का स्थान है[6]। वहां अति सुन्दर स्वर्णवर्ण वाला तथा मणिधारण करनेवाला धनंजय नाग रहताहै[7]। अस्तु आदिबदरी के आसपास भी ब्रह्मपुर का होना संभव सकताहै।

लखनपुर–पाटन

आदिबदरी से दक्षिणपूर्व में गणाई से २ मील पहले लखनपुर-पाटन के अवशेष मिलतेहैं, जिसे कत्यूरीनरेश लखनपालदेव ने बसायाथा। इस स्थान को भी ब्रह्मपुर बतलायाजाताहै। यदि लखनपाल से पहले भी

१- रतूड़ी--उपरोक्त, पृ० ३६४-६५ २- पांडे, कुमाऊं का इतिहास, पृ०२५२ ३- केदारखंड, ७६।४०-४१ ४-केदारखंड, ७६।४६-४७
५- केदारखंड, ७६।६०-६३
६- अन्यद्ब्रह्मसरो नाम तीर्थसर्वत्रदुर्लभम्।
तत्र ब्रह्मेश्वरो नाम शिवोऽस्ति परपुण्यदं।। केदारखंड, ८१।४५
७- तत्र धनंजयोनाम नागः परमसुन्दरः।
स्वर्णवर्णो रत्नयुक्तो नित्यं वसति सर्प्पपः।। केदारखंड, ८१।६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां राजधानी रहीहो और यदि अभिलेखों का वीरणेश्वर, बेरीनाग या वीणेश्वर (विनसर) है और गोमतीसारी गोमतीतट का कोई गांव है तो लखनपुर में भी ब्रह्मपुर के लिए भी छानबीन होसकतीहै।

साथ ही यह न भूलनाचाहिए कि पांडुवालासोत के अवशेषों के पास भी कुब्जाम्रक से उत्तर की ओर गंगातट पर जहां अनन्त के अवतार लक्ष्मण ने तपस्या कीथी, शेषनाग का स्थान है[1]। अभिलेखों का ब्रह्मेश्वर भी, जिसका संबंध ब्रह्मपुरराज्य से मानाजासकताहै, नातिदूर गंगाद्वार के ब्रह्मकुण्ड के पास रहाहोगा। यहां अभिलेखों की पितृगंगा और पश्चिमद्रोणी भी हो सकतीहै।

ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों के अभिलेखों में परमभट्टारक महाराजाधिराज विरुद[2] का प्रयोग चाहे उनके साम्राज्य के विपुलविस्तार का द्योतक न हो, कम से कम उनकी स्वतन्त्रता को अवश्य सिद्ध करताहै।

बृहत्संहिता में ब्रह्मपुरजनपद[3] के उल्लेख के अतिरिक्त त्रैगर्त—कांगड़ा-शिमलाप्रदेश—के पश्चात् पौरवजनपद का उल्लेख[4] तथा उसी ग्रन्थ में अम्बर (औदुम्बर) मालव और मद्र के साथ पुनः पौरवजनपद का उल्लेख[5] छटी-सातवीं शताब्दी में इस जनपद के महत्व को प्रमाणित करतेहैं।

बैधनाथ—कार्तिकेयपुर

गोमती के दोनों तटों पर बैजनाथ से गरुड़ तक की घाटी अत्यन्त रम्य और पर्याप्त चौरस उपत्यका है। कार्तिकेयपुर (जोशीमठ) की अपेक्षा बैजनाथ राजधानी के लिए अधिक उपयुक्त स्थान है। इसलिए कत्यूरीनरेशों ने संभवत: बैजनाथ में अपने राज्य के पश्चिमी भाग के

१- केदारखंड, १२३।५० २- द्युतिवर्म्मा का अभिलेख, एपि० इंडिका, जि० १३, पृ० ११५ ३- बृहत्संहिता--१४।३०

४- 'त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारता बाटधानयोधेयाः' --बृहत्संहिता, १६।२२

५- 'अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदंडपिंगलकाः'--बृहत्संहिता, १४।२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासन के लिए मुख्यालय बनालियाथा । अपने साम्राज्य के ह्रास के दिनों में उन्हें बैजनाथ को ही अपनी राजधानी बनानापड़ा । लखनपालदेव (सम्बत् ११५४ वि०) के एक अभिलेख में इसे वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर कहागयाहै [१]।

उत्तराखण्ड की राजधानियों में वैद्यनाथ ही ऐसा स्थान है, जहां प्राचीन ऐतिहासिक अवशेषों का अब भी अध्ययन होसकताहै । नगर गोमती के दोनों तटों पर बसाथा । बाएं तट के नगर का स्थान अब कुछ गांवों ने लेलियाहै । पूर्व की ओर गोमती के मोड़ पर मन्दिरों के लिए सुरस्थित स्थान था । यहां आज भी बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी या उसके पश्चात् के बने अनेक मन्दिर खड़े हैं । मुख्यमन्दिर का अब निचला अंश ही बचसकाहै । मन्दिर के बाहर अष्टभुजादेवी की सुन्दर पाषाण मूर्ति है ।

तेलीहाट में रनिवास था । कहतेहैं कि यहां राजा के चौपड़ खेलने का चबूतरा भी है । उसके पार शेलीहाट था । अपनी समृद्धि के दिनों में वैद्यनाथनगर का विस्तार सम्भवतः गरुड़ तक चलागयाथा [२] ।

२९ मूर्तियों और कुछ शिलालेखों को एकत्रित करके संग्रहालय में रखागयाहै । प्राचीन रणचुला दुर्ग में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री दबीपड़ीहै [३] । वैद्यनाथनगर के अनेक महत्वपूर्ण अवशेष नष्ट करदिए गएहैं । बैजनाथ और निकट के गांवों के मकानों पर गढ़ीहुई एवं चित्रित शिलाएं लगीहैं तथा यत्र-तत्र मन्दिर-आमलक बिखरेहैं ।

उत्तराखण्ड की अन्य नातिप्राचीन राजधानियों का वर्णन यथास्थान होगा । उत्तराखण्ड के इन रंगमंचों का, जिन पर पर्वतीय जनता के भाग्यनिर्णय का अभिनय होताथा, विधिपूर्वक अध्ययन अपेक्षित है ।

२-राहुल--कुमाऊं, पृ० ६५ २- राहुल--कुमाऊं, पृ० २३५

३- राहुल--कुमाऊं, पृ० ६६ ४- वाल्टन--अलमोड़ा-गजेटियर, पृ०२१४

—०—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तल्लीन कलाकार

उत्तराखण्ड को यथार्थ में देवभूमि बनाने का श्रेय उन अज्ञात कलाकारों को है जिन्होंने उत्तराखण्ड में सर्वत्र—नदीतटों, टीलों, गिरिशिखरों, गिरिद्वारों, तप्तकुंडों, सरोवरों, वृक्षों के चरणों और छोटे-बड़े देवालयों में स्थापित अगणित देवविग्रहों के निर्माण में अपना जीवन तल्लीन करदियाथा।

जहां छोटे-बड़े विजेताओं ने अपनी विजयगाथा को त्रिशूलों और शिलाओं पर अंकित करके तबतक के लिए सुरक्षित करदिया जबतक भगवान् भाष्कर अपनी तरुण किरणों से रात्रि के अन्धकार को दूरकरके प्रातःकाल नक्षत्रों की चित्रावली को हटाकर गगनपटल पर अपना बिम्बरूपी तिलक लगातेरहेंगे[1]; जहां कंकड़-पत्थरों से आच्छादित दो-चार पर्वतीय खेतों का दान करनेवालों ने हंसयुक्त विमानों में बैठकर सुरलोक में पहुंचने और वहां साठ सहस्र वर्ष तक अपना अड्डा जमाए रखने का अधिकार ताम्रपत्रों पर खुदवाडाला[2]; वहां साधारण शिलाओं

१- 'प्रातः प्रातर्म्मयूखैरुरुभिरविरलं शार्वरं ध्वान्तमन्ध-
न्नालुंचंश्चारुतारानिकरपरिकरोदारशारोदरत्वं,
स्वं बिम्बं चन्द्रविम्बारतलतिलकं यावदर्कों विधत्ते,
तावत्कीर्तिः सुकीतश्चिरमरिमथनस्यास्तु राज्ञः स्थिरेयं'।
—बाराहाट अभिलेख, उ०डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ०५२०-२१

२- 'भूमेर् दाता याति लोके सुराणां हंसैर् युक्तं यानमारुह्य दिव्यम्। षष्टिम्वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः'।—ललितशूर का शासन, उ० डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को दिव्यशक्ति से सम्पन्न एवं निरन्तर भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने में समर्थ देवमूर्तियों में परिवर्तित करदेनेवाले कलाकारों ने अपना नाम, अपना स्थान, अपना अस्तित्व कुछ भी प्रगट न होनेदिया। देवविग्रह का निर्माण करलेने पर वे उसी में विलीन होगए।

भाबरप्रदेश में मिलनेवाली लालपत्थर की कुछ प्राचीन मूर्तियों और यत्र-तत्र नए मन्दिरों में मिलनेवाली संगमरमर एवं कालीशिलाओं की थोड़ी-सी मूर्तियों को छोड़कर शेष भूरे रंग की बालुजशिलाओं, नीली अथवा हरी झांईवाली शिलाओं तथा जिपसम-सेलखड़ी से बनी अगणित मूर्तियों का निर्माण इसी प्रदेश में हुआथा[1]।

इनके लिए आवश्यक शिलाएं उत्तराखंड में अनेक स्थानों पर मिलतीहैं तथा निकट के मैदानीप्रदेश में कहीं नहीं मिलतीं। प्राचीनकाल में मार्गों और भारवहन के साधनों के अभाव में सरलता से टूटने योग्य शिलाओं से बनी अगणित मूर्तियों को दूर से लाकर उत्तराखण्ड में स्थापित करना सम्भव न था। लाखामण्डल, केदारनाथ, जोशीमठ, बैजनाथ, बागेश्वर आदि स्थानों में मिलनेवाली पांच फीट ऊंची मूर्तियों का निर्माण निश्चय ही निकटप्रदेश में हुआहोगा।

विक्रम की दूसरी शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक निर्मित मूर्तियों में से अधिकांश निश्चित शास्त्रीयपद्धति के अनुसार बनी मिलतीहैं। विभिन्न मन्दिरों में स्थापित केशव, हृषीकेश, त्रिविक्रम, पुरुषोत्तम, शेषशायी और शाश्वत मूर्तियों, आलिंगनमुद्रा में हर-गौरी तथा भैरव की मूर्तियों, लक्ष्मी, सरस्वती और महिषमर्दिनी एवं वक्रतुंड गणेश और गरुड़ की मूर्तियों में मिलनेवाली आश्चर्यजनक समानता से विदित होताहै कि इस प्रदेश में मूर्तिकारों की शिक्षा-दीक्षा की परम्परा शताब्दियों तक चलतीरही[2]।

लाखामंडल, गंगाद्वार, बाराहाट, राणीहाट-श्रीनगर, आदिबदरी,

१-डबराल--उपरोक्त पृ०५५८-६० २-डबराल--उपरोक्त, पृ०५५६-५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोशीमठ, बैजनाथ और बागेश्वर मूर्तिकारों के प्रमुख केन्द्र थे। जहां समस्त स्मार्त देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण होताथा। आज भी उत्तराखण्ड में लगभग दो सहस्र उत्तम मूर्तियां मिलतीहैं। हुसैनखां टुकड़िया[1], रुहेलों[2] और गुजरों ने सहस्रों मूर्तियों को तोड़फोड़ दिया। सहस्रों मूर्तियां मूर्तिव्यापारी उठालेगए[3]। सैकड़ों मन्दिर मूर्तिहीन खड़ेहैं[4]।

उत्तराखण्ड के अनेक प्राचीन मन्दिर आज रिक्त पड़ेहैं और परित्यक्त होकर धरती की ओर झांकरहेहैं। अनेक नवीन और प्राचीन मन्दिरों में उनसे अधिक प्राचीन मूर्तियां स्थापित कीगईहैं। अनेक प्राचीन मन्दिरों की मूर्तियां, पुजारी की असावधानी, भूचाल या हृदय-हीन मूर्तिभंजकों के प्रहार से नष्ट होजाने के कारण, उनमें नवीन मूर्तियों की स्थापना कीगईहै। केवल थोड़े-से मन्दिर ही ऐसे हैं, जिनमें मन्दिर और मूर्तियां समकालीन हैं।

इन अगणित मूर्तियों के निर्माण से पूर्व कलाकारों ने न जाने कितनी त्रुटिपूर्णमूर्तियां बनाईहोंगी। जिन्हें प्राचीन परम्परा के अनुसार उन्होंने गंगाशरण कियाहोगा। अब भी जो बचसकीहैं, वे उत्तराखण्ड के कलाकारों के आश्चर्यजनक कौशल को व्यक्त करतीहैं। जिन भावभंगिमाओं को कागज पर भी अंकित करना कठिन है उन्हें उन्होंने पाषाण पर अंकित करदियाहै[5]।

विष्णु और हर-गौरी की जो मूर्तियां शताब्दियों से प्रतिवर्ष सहस्रों नर-नारियों को भावमग्न करके अपने चरणों पर लुटातीआरहीहैं, उनका निर्माण करते समय ये कलाकार कितने अधिक भावमग्न हुएहोंगे।

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४७६ २- राहुल--गढ़वाल--पृ० ५६५
३-डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ०५६७ ४-डबराल--उपरोक्त, पृ०५६४
५- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४४१

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सावधानी से शिला का चयन करलेने पर उन्होंने कितनी उत्सुकता, श्रद्धा और भक्ति से किसी शुभदिन पर, पूरे विधि-विधान से मंगलपाठ और मनौती मानकर शिला पर गेरू से वांच्छित रेखाचित्र खींचेहोंगे ! और फिर कितनी तन्मयता से सांस रोककर, छेनी के प्रत्येक प्रहार के समय पूरी सावधानी रखतेहुए उन्होंने धीरे-धीरे देवविग्रह का निर्माण कियाहोगा !

जब उनके जीवन की सबसे बड़ी साध, इष्टमूर्ति की रचना, निर्विघ्न पूर्ण होगई तो मानो उन्होंने अपना प्राण ही मूर्ति में प्रविष्ट करके उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करडाली ! अपने अस्तित्व का अन्य कोई प्रमाण रखने की उनमें कभी कोई लालसा उत्पन्न न हुई ।

मानव और देवी-देवताओं के अंग-प्रत्यंगों के स्वाभाविक अनुपात का उन्हें समुचित बोध था। हर-गौरी मूर्तियों में गौरी के पतले गालों, नुकीले हनु और अर्द्ध निमीलित नेत्रों की रचना देखकर पतालगताहै कि उनकी कला में सौन्दर्यभावना कितनी सुसंस्कृत थी । मानवी के रूप में अंकित गौरी के वर्तुलस्तन को अंगुली के कोर से छूतेहुए ध्यानमग्न शिव दर्शक को भी ध्यानमग्न करदेतेहैं ।

विभिन्न देवविग्रहों के लिए उचित शिला की छांट और उसके द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक देवविग्रहों के निर्माण में वे पूर्ण कुशल थे । उन्होंने एक सहस्र या अधिक वर्ष पूर्व स्वनिर्मित मूर्तियों पर जो वज्रलेप या कल्पक लगायाथा, वह शताब्दियों के अभिषेकजल से, बलिदान की रुधिरधाराओं से, उपचारों के लेप से और धूपादि के धुएं से तनिक भी नहीं बिगड़ा है ।

विक्रम की छटी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक बने अधिकांश मन्दिर शास्त्रीय विधि के अनुसार निर्मित मिलतेहैं । उनके लिए स्थान-चयन बड़ी सावधानी से कियागयाथा । वे प्रायः जलाशय के पास, ऊंचे टीले पर, मार्गों के केन्द्र में या अन्यत्र रमणीक स्थानों पर बनाएगएहैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राय: सभी मन्दिर उन स्थानों पर बनेहैं, जहां पहलेसे किसी न किसी देवता का स्थान मानाजाताथा। जीर्ण देवालयों के स्थान पर नए देवालय पिछले ध्वंस के ऊपर या उसीके पास बनाएगएहैं।

सारे उत्तराखण्ड में, वास्तव में सारे हिमालयप्रदेश में कश्मीर से नेपाल तक सभी प्राचीन मन्दिर कटी शिलाओं से बने मिलतेहैं। इनमें मुख्यत: भूरी या मटमैली बालुजशिलाओं अथवा ग्रेनाइट का प्रयोग हुआहै[1]। केदारनाथ और श्रीनगर के मन्दिरों पर तथा चांदपुरगढ़ी के दुर्ग पर अतिविशाल शिलाएं किसी विशेषप्रकार के यन्त्र की सहायता से ही वहां लगसकीहोंगी[3]।

शिलाओं को भीतर से लोहे की कीलों या सब्बलों के द्वारा जोड़ाजाताथा। जोशीमठ में तीन वर्ष पूर्व सड़क बनाते समय एक प्राचीन मन्दिर से ६ फीट लम्बी सौ से अधिक सब्बलें प्राप्तहुईथीं। पत्थरों के बीच में चूने का प्रयोग भी कियाजाताथा[3]। दीवार बनजाने पर भीतर और बाहर से ऐसी घुटाई कीजातीथी जिससे शिलाखण्ड एक दूसरे से भलीप्रकार जुड़े प्रतीत होतेहैं[4]।

प्राचीन मन्दिरों में लकड़ी का प्रयोग नहीं मिलता। उनकी द्वारपट्टिकाएं भी शिलाओं से बनीहैं। मन्दिरों में या तो लकड़ी के किवाड़ हैं ही नहीं और यदि हैं तो वे पीछे लगाएगएहैं[५]।

प्राचीन मन्दिरों में से छोटे मन्दिरों पर नागरशिखर और बड़े मन्दिरों पर कत्यूरीशिखर मिलताहै। तपोवन में एक छोटा मन्दिर चपटे शिखर वाला भी है[६]। नए मन्दिरों में से अनेक पर विश्वनाथशिखर मिलताहै, जिसे कुछ लोग मुगलशैली के शिखर भी कहतेहैं।

नागर या आर्यशिखर का निर्माण गर्भगृह की चपटी छत से आरंभ होताहै। चारों कोनों से दीवारें गोलाकार एवं संकीर्ण होतीहुई ऊपर

१-२- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५२६ ३-५- डबराल--उपरोक्त, पृ० ५२७ ६- डबराल--उपरोक्त, पृ० ५३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाकर एक बिन्दु पर मिलतीहैं। इसके ऊपर एक गोल शिला होतीहै जिसकी परिधि को अनेक वृत्तों में बांटकर चक्र के समान सजायाजाताहै। शिखर का निचला भाग आमलक और अन्तिम भाग कलश कहलाताहै[1]।

नागरशिखरवाले मन्दिर प्रायः १२-१५ फीट से अधिक ऊंचे नहीं हैं। कत्यूरीशिखरवाले मन्दिर २० फीट से ३० फीट तक ऊंचे मिलतेहैं। उनकी दीवारें सीधी ऊपर उठकर जब शिखर की ओर ढ़लतीहैं तो उन्हें अधिक नहीं झुकनापड़ता। उनके ऊपर छोटी चपटी पाषाण-छत लगतीहै। इस छत के ऊपर विशाल वृत्ताकार पाषाण-आमलक रखकर उसे ऊपर से चपटी आयातकार पटालशिलाओं की या लकड़ी की वेष्ठिनी से ढक देतेहैं। काष्ठवेष्ठिनी के नीचे लकड़ी या पाषाण की छोटी-छोटी तीलियां आमलक तक लगातेहैं जो सजावट के अतिरिक्त शिखरवेष्ठिनी को थामे रखतीहैं[2]।

उत्तराखण्ड के अधिकांश प्राचीन मन्दिरों पर नागरशिखर मिलताहै। अनेक स्थानों में, जहां मन्दिरपुंज हैं, छोटे मन्दिरों पर नागरशिखर मिलताहै और प्रधान बड़े मन्दिर पर कत्यूरी शिखर। लाखामण्डल, देवप्रयाग, धराली, गंगोत्तरी, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ, राणीहाट, देवलगढ़, विनसर, बैजनाथ, बागेश्वर आदि में कत्यूरीशिखर वाले विशाल मन्दिर मिलतेहैं।

आरम्भिक गुप्तकाल के हिन्दूमन्दिर, जो सांची, भूमरा, तिगवां आदि में मिलेहैं, बिना शिखरवाले हैं। उनकी छत का पटाव सपाट पत्थर रखकर कियागयाहै। तपोवन में धौलीगंगा के बांए तट पर छोटा मन्दिर इसीप्रकार का है और आरम्भिक गुप्तकाल का मानाजा-सकताहै।

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५३० २- डबराल--उपरोक्त, पृ० ५४२-४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागरशिखर वाले कतिपय मन्दिर गुप्तकालीन मन्दिरों से रोचक समानता रखतेहैं और गुप्तकाल के प्रतीत होतेहैं।

१- गुप्तयुग में पहिलीबार हिन्दुमन्दिरों के लिए पत्थर का प्रयोग कियागया। गुप्तकाल के मन्दिर पत्थर के मन्दिरों के प्राचीनतम उदाहरण हैं[1]। उनसे पूर्व मन्दिर मुख्यतः काष्ट के बनतेथे।

२- गुप्तकाल में मन्दिरों की स्थापना एक ऊंचे चबूतरे पर कीजाती थी, उन पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियां बनीहोतीथीं[2]।

३- प्रारम्भिक मन्दिरों की छतें चपटी होतीथीं, किन्तु पीछे मन्दिरों के शिखर बननेलगे[3]।

४- मन्दिर की बाहरी और भीतरी दीवारें सादी होतीथीं[4]।

५- गर्भगृह में प्रवेश के लिए एक ही द्वार होताथा, जिसके द्वारस्तम्भ अलंकृत होतेथे। द्वारपाल के स्थान पर गंगा-यमुना की मूर्तियां बनाईजातीथीं[5]।

६- गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणामार्ग बनायाजाताथा जो छत से ढका रहताथा। छोटे मंदिरों के आगे छोटा-सा गोपुर (बरामदा) बनारहताथा। सांची, सारण तथा बोधगया में इसीप्रकार के मन्दिर हैं। इनमें वर्गाकार गर्भगृह और एक छोटा-सा गोपुर है। बोधगयामन्दिर में आमलकयुक्त शिखर है, जो पांचवीं शताब्दी ईसवी का मानाजाता है[6]।

७- मन्दिर के स्तम्भों पर अनेक प्रकार के बेलबूटे खोदेजातेथे। उनके ऊपर एक वर्गाकार प्रस्तर रहताथा, जिसपर आधे बैठे पीठ से पीठ

१- मजूमदार तथा अल्तेकर--वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० ४१९

२- बासुदेव उपाध्याय--गुप्त० सा० का इ० भाग २, पृ० २६५

३- कनिंघम--आ०स०रि० खंड १०, पृ० ६०   ४- मजूमदार तथा अल्तेकर--उपरोक्त, पृ० ४१९   ५- वा० उपाध्याय--उपरोक्त, पृ० २६५-६६   ६- वा० उपाध्याय--उपरोक्त, पृ० २६६-६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलाए चार सिंहों की मूर्तियां बनाईजातीथीं। उन्हीं स्तम्भों पर छत टिकी रहतीथी[1]।

८- आरम्भिक गुप्तकाल के मन्दिरों में उपरोक्त ६ और ७ लक्षण नहीं मिलते। वे प्रायः १० फीट × १० फीट आकार के होतेथे। उनमें मूर्ति के लिए तो स्थान होताथा, पर अधिक दर्शनार्थी एक साथ मन्दिर के अन्दर नहीं जासकतेथे[2]।

९- मन्दिरों के द्वारपट्टों पर अलंकरण के रूप में व्याल और कीर्तिमुख का प्रयोग गुप्तकाल के तक्षण-कलाकारों को सबसे अधिक प्रिय था[3]। सारनाथ में मिले स्तम्भों पर लम्बी-लम्बी मूछोंवाले कीर्तिमुखों के मुख से माला निकलती दिखाईगईहैं[4]।

१०- गुप्तकाल के कुछ मन्दिरों में एक सिंह हाथी पर आक्रमण करते दिखलायागयाहै, जिसका अर्थ विद्वानों ने अन्धकार या अज्ञान के ऊपर ज्ञान की विजय माना है[5]।

गुप्तकालीन मन्दिरों की उपरोक्त विशेषताएं भारत के मन्दिरों के निर्माणकाल का निर्णय करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन विशेषताओं का विकास पहले मध्यदेश के मन्दिरों में हुआ। धीरे-धीरे सारे उत्तर भारत के मन्दिरों में इन्हें अपनायागया। जिन मन्दिरों में उपरोक्त विशेषताएं मिलतीहैं वे गुप्तकाल के या उसके परवर्ती होसकतेहैं, पूर्ववर्ती नहीं।

आदिबदरी

चौखटिया-कर्णप्रयाग मार्ग पर, कर्णप्रयाग से १४ मील पहले, पंवार-राजधानी चांदपुरगढ़ी के पास, आदिबदरी में, १४ मन्दिरों का एक

१- कनिंघम--आ०स०रि० खंड १०, पृ० ३० २- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ०४१९ ३- रूपम्--जनवरी, १९२४ ४- वा०उपाध्याय--उपरोक्त, पृ० २९४-९५ ५- वा० उपाध्याय--उपरोक्त, पृ० २९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुंज ८४ फीट लंबे और ४२ फीट चौड़े क्षेत्र में बनाहै। सड़क के नीचे एक नया मंदिर और है। यहां पिंडार की सहायक, जिसके तट पर मंदिर हैं, उत्तरवाहिनी है। बदरीनाथ जाने के प्राचीनमार्ग में सबसे पहले मिलनेवाले बदरीनाथ का मंदिर होने के कारण इसे आदिबदरी नाम मिलाहोगा[१]।

इन मंदिरों का निर्माण स्पष्टत: दो युगों में हुआहै। इनमें ७ अधिक प्राचीन हैं, और परवर्तीगुप्तयुग के प्रतीत होतेहैं। इन मंदिरों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दियाजाताहै। इनकी संख्या सड़क के ऊपर दहिने हाथ के अंतिम मंदिर से आरम्भ कीगईहै।

दूसरा मन्दिर—नागरशैली का शिखर और पाषाण-निर्मित वर्तुलाकार आमलक, कटी-शिलाओं की दीवारें। आकार १२'×४$\frac{१}{२}$'×४$\frac{१}{२}$' सीढ़ियों के ऊपर कटि। ऊपरले द्वारपट्ट पर मध्य में गणेश, दोनों पार्श्व में नीचे की ओर एक हाथ में कुंभ और दूसरे हाथ में कमल या अन्य वस्तु लिए गंगा और यमुना। दोनों की जूड़ा विभिन्न प्रकार की। निचली द्वारपट्टिका पर सिंह का मुख खोलकर दांत देखनेवाला भरत।

चौथा मन्दिर—नागरशिखर और आमलक, कटी शिलाओं से निर्माण। खुला सभामण्डप। बरामदा ६'×६', खुले सभामण्डप सहित मन्दिर १५'×६'×६'। चढ़ने के लिए पांच सीढ़ियां। शीर्ष द्वारपट्ट पर आरम्भ, मध्य और अन्त में आसन पर स्थित जपमुद्रा में ३ पुरुष, पहले और दूसरे पुरुष के बीच में छोटे आकार में चित्रित बैठेहुए तीन पुरुष। दूसरे और तीसरे के बीच में उसी प्रकार बैठेहुए आसनस्थ दो पुरुष तथा एक नारी का केवल शिर, तथा दोनों पार्श्वपट्टों पर नृत्य करते, ढोल बजातेहुए, दो गन्धर्व। उनके बीच में दोनों ओर एक-एक द्वार-रक्षक। निचले द्वारपट्ट पर दोनों ओर ध्यानस्थित व्यक्ति। मध्य में दोनों ओर मूंछवाले कीर्तिमुख (सिंहमुख)। मन्दिर के अन्दर देवासन

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के निचले पट्ट पर ध्यानस्थित व्यक्ति का चित्र ।

पांचवां मन्दिर—(जो भूमिसात होने की तैयारी कररहाहै)। नागर शिखर और आमलक। कटी शिलाओं से निर्मित, आकार १५'×६'×६'। शीर्षद्वार पर उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान आसन पर स्थित, हाथ में मुग्दर लिए तीन पुरुष, पहले और दूसरे के बीच पूर्ववत् आसनबद्ध पुरुष, दूसरे और तीसरे के बीच में पूर्ववत् २ पुरुष और एक नारी का शिर। दांया पार्श्वपट्ट लुप्त, नीचे द्वारपट्ट पर उसी क्रम से आसनबद्ध-पुरुष ।मन्दिर में देवासन के निचले पट्ट पर ध्यानस्थित पुरुष। मन्दिर से बाहर जल निकालने के लिए कमण्डलमुखी पतनाले ।

छटा मन्दिर—नागरशिखर और आमलक। कटी शिलाओं द्वारा निर्मित। चढ़ने के लिए ५ सीढ़ी। खुला सभामण्डप, बरामदा केवल २ फीट चौड़ा। आकार और द्वारपट्टिकाओं के चित्र उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान। निचले द्वारपट्ट पर द्वारपाल और किन्नरी के स्थान पर एक ओर परिव्राजिका नारी। दूसरी ओर परिव्राजक पुरुष, जिसके हाथ में कमण्डलु है। देवासन के नीचे हाथ जोड़ेहुए गन्धर्व। देवासन पर अत्यंत मनोहर हर-गौरी मूर्ति, जिसमें ध्यानमग्न शिव-गौरी के वर्तुलाकार स्तन को स्पर्श किएहैं। गौरी का पतला नुकीला हनुवाला मुख और अर्द्धनिमीलित नेत्र। इस मूर्ति को निरन्तर देखतेरहने पर भी तृप्ति नहीं होती। व्याघ्रमुख पतनाला, इसके नीचे ध्यानस्थ पुरुष ।

सातवां मन्दिर—नागरशिखर और आमलक। कटी शिलाओं से निर्मित। उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान। शीर्षद्वारपट्ट पर प्रथम और द्वितीय व्यक्तियों के तथा द्वितीय और तृतीय व्यक्तियों के मध्य नृत्य करतीहुई चार-चार किन्नरियां। दायां-बायां पार्श्वपट्ट, उपरोक्त चौथे मन्दिर के समान। देवासन के नीचे ध्यानस्थ पुरुष।

बदरीनाथ मन्दिर—प्रधान मन्दिर—इसका सभामण्डप पीछे जोड़ा गया प्रतीत होताहै। कटी शिलाओं से निर्मित। कला में उपरोक्त छोटे

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दिरों से घटकर। शीर्षद्वारपट्ट पर वक्रतुंड गणेश, गर्भमन्दिर के शीर्षद्वारपट्ट पर गणेश, पार्श्वपट्टों पर पार्षद, परिव्राजिता नारी और परिव्राजक पुरुष। निचले द्वारपट्ट पर कीर्तिमुखादि। गर्भमन्दिर के भूपुर को ऊपर उठाएहुए दो चतुर्मुख गन्धर्व। यह मन्दिर उपरोक्त अन्य छोटे मन्दिरों से कुछ अर्वाचीन है।

चौदहवां मन्दिर—जिसका आमलक गिरचुकाहै। नागर शिखर, आमलक-रहित, कटी शिलाओं से निर्मित। १२'×६'×६' शीर्ष द्वारपट्ट पर गणेश, निचले द्वारपट्ट पर दो नर्तकियां और कीर्तिमुख, पुन: दो नर्तकियां और कीर्तिमुख, पुन: दो नर्तकियां।

उपरोक्त बदरीनाथमन्दिर को छोड़कर शेष छै मन्दिरों की रचना पूर्वगुप्तकाल (संम्वत् ३७६ से ६०७ वि०) के भूमरामन्दिर की रचना के समान है। भूमरामन्दिर के द्वारस्तम्भ के दहिनी ओर मकरवाहिनी गंगा और बांई ओर कूर्मवाहिनी यमुना अंकित हैं। दोनों प्रतिमाओं के समीप एक नारी और एक पुरुष परिचारक के रूप में खड़ेहैं। गंगा-यमुना की मूर्तियों के शिर की ओर प्रभामंडल पर गन्धर्व बनेहैं। दोनों द्वारपट्टिकाएं समानरूप से अलंकृत हैं। अनेक प्रकार के वाद्य, भेरी, झाल आदि लिएहुए नर्तकगण, कमल और कीर्तिमुख बनेहैं[१]।

भूमरामन्दिर शिखरहीन चपटीछत वाला है। आदिबदरी के उपरोक्त मन्दिरों पर नागरशिखर मिलताहै। जिसका आरम्भ परवर्तीगुप्तयुग (६०८ वि० से ६६२ वि०) के देवगढ़मन्दिर से मानाजाताहै। आदिबदरी के उपरोक्त मन्दिरों की कला अधिक विकसित नहीं है। इसलिए वे विक्रम की सातवीं शताब्दी के होसकतेहैं।

अल्मोड़ा

त्रिपुरामन्दिर में सपार्षद विष्णु की कालीशिला पर बनी अति

१- वा० उपाध्याय--गुप्त० सा० का इतिहास भाग २, पृ० २६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अति भव्य मूर्ति नौवीं-दसवीं शताब्दी की है जिसे हृदयहीन आततायियों ने भग्न करदियाहै[1] ।

ऊखीमठ

केदारनाथ-मार्ग पर मन्दाकिनीघाटी में अनेक प्राचीन मन्दिरों और प्रासादों के ध्वंस बिखरेपड़ेहैं । ऊखीमठ के शिवालय में शिव, पार्वती, मान्धाता, अनिरुद्ध और ऊषा की धातुमूर्तियां हैं । नवदुर्गा की पाषाण-मूर्तियां इनकी अपेक्षा अधिक कलापूर्ण और अधिक प्राचीन हैं ।

बूटरहित द्विभुज दो सूर्यमूर्तियां, मुखलिंग और नटराज की मूर्तियां अधिक कलापूर्ण हैं । पुरुषप्रमाण दाढ़ीवाले किसी सामन्त की, इतनी ही बड़ी, दाढ़ीवाले किसी शैवाचार्य की तथा राजकुमार और राजकुमारी की मूर्तियां[2] ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होसकतीहैं । ऊषीमठ को बाणासुर की राजधानी बतलायाजाताहै ।

कटारमल

अलमोड़ा जिले के कटारमलगांव में गांव से बाहर के मन्दिरपुंज में कत्यूरीशिखरवाला विशाल मन्दिर बूटधारी सूर्य की प्रतिमा के कारण विशेष प्रसिद्ध है । मन्दिर के द्वार पर पुरुषप्रमाण धातमूर्ति है जो किसी राजा या महन्त की होसकतीहै[3] । यहां बूटधारी सूर्य की तीन मूर्तियों के अतिरिक्त विष्णु, शिव, गणेश आदि देवी-देवताओं की अनेक खंडित मूर्तियां हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से कटारमल के सूर्यमन्दिर का बड़ा महत्व है । बूटधारी सूर्यप्रतिमा शकों की देन है । उत्तराखण्ड में ऐसी अनेक मूर्तियां मिलने और अन्य प्रमाणों से विद्वानों का अनुमान है कि विक्रम की

१- राहुल--कुमाऊं, पृ० ३३२ २- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४४४

३- राहुल-- कुमाऊं, पृ० ३३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरम्भिक शताब्दियों में उत्तराखण्ड पर शकनरेशों का अधिकार था। कत्यूरीनरेशों को भी कुछ विद्वान शक मानतेहैं[१]।

इस मन्दिर का निर्माण कत्यूरीसाम्राज्य के उत्कर्षयुग में आठवीं-नौवीं शताब्दी में हुआथा। उन दिनों इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मन्दिर में 'वलि-चरु-भोग' के लिए कई गांव लगेरहेहोंगे। नृत्य-गान के लिए नियुक्त देवदासियों के वंशज, नायक, आज भी इस गांव में रहतेहैं[२]।

कालीमठ

केदारनाथ-मार्ग पर नारायणकोटि से १½ मील पर कालीनदी के बाएं तट पर हर-गौरी, सरस्वती और लक्ष्मी के मन्दिर हैं। चबूतरे के ऊपर काली का यन्त्र बनाहै। मन्दिर के बाहर कई खंडित मूर्तियां और प्राचीन त्रिमुख तथा चतुर्मुखलिंग हैं।

कालीमठ में ४०"×२४" की हर-गौरी की अति सुन्दर मूर्ति है। 'मैं इसे अतिशयोक्ति नहीं समझता, यदि कहूं कि आज सारे भारत में इतनी सुन्दर अखंड हर-गौरी की मूर्ति कहीं भी नहीं है। इसकी कोमल वंकिम रेखाओं में वही सौंदर्य भराथा, जो कि अजन्ता के चित्रों में दिखाईपड़ताहै। वल्कि पत्थर में ऐसा तन्वंग उत्कीर्णकरना सम्भव होसकताहै, इस पर आंखें विश्वास नहीं कररहीथीं। ललितासनस्थ हर के वामांक में अनुपम सौन्दर्य की राशि की मूर्ति बनकर भूधर-सुता विराजमान हैं। शिव चतुर्भुज हैं, किन्तु गौरी साधारण मानवी की तरह द्विभुज[३]'।

नीचे गणेश, मयूरारूढ कार्तिकेय की और कलाप्रेमी भक्त की, सम्भवतः रुद्रसूनु की मूर्ति है, जिसने इस सुन्दरमूर्ति के निर्माण का व्ययवहन कियाथा[४]।

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ६५ २- राहुल--कुमाऊं, पृ० ३३३

३-४- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की लिपि में २०″×१०″ आकार का बीस पंक्तियोंवाला संस्कृत-शिलालेख है, जिसमें रुद्र और उसके पुत्र (रुद्रसूनु) का उल्लेख है[1]।

ग्यारहवीं शताब्दी विक्रमी में कत्यूरीनरेशों के हाथ से केदारखण्ड का अधिकांश निकलजाने पर केदार-उपत्यका के स्थानीय सामन्तों के उत्कर्ष का अवसर आयाथा।

केदारभूमि के इन्हीं स्थानीय नरेशों को पराजित करके सम्बत् १२४८ में अशोकचल्ल ने कत्यूरी-राजधानी जोशीमठ से केवल ३१ मील दूर गोपेश्वर में 'स्वविक्रमजित जगत के प्रभुओं का सम्मेलन करके' 'परास्तहुए शत्रु को ऊपर उठाना पुण्यकर्म' समझाथा[1]।

सोलहवीं शताब्दी विक्रमी में पंवारवंश के अभ्युदय से पूर्व इन स्थानीय नरेशों ने शैव, शाक्त एवं वैष्णव धर्माचार्यों के सहयोग से मन्दाकिनीघाटी में अनेक मठ-मन्दिरों की स्थापना कीथी, जिनके अवशेषों से आज भी यह घाटी ढ़कीहै।

इन स्थानीय नरेशों और धर्माचार्यों के सम्बन्ध में अभीतक कुछ छानबीन नहीं हुईहै। उनके द्वारा निर्मित मठ-मन्दिरों के अवशेष आज भी उनकी गाथा जानने की प्रेरणा देतेहैं।

मन्दाकिनी-उपत्यका के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध इन व्यक्तियों को प्रत्येक छोटी-बड़ी नदी के संगम पर, तट पर, छोटे-बड़े टीलों और पहाड़ी ढालों पर, सरोवरों के तटों पर और बड़े वृक्षों की छाया में, सर्वत्र, मानवेतर शक्तियों का अस्तित्व दिखाईदिया। वे श्रद्धा, भक्ति और समृद्धि से सम्पन्न थे। उन्हें धार्मिक भावना और सुरुचि का वरदान प्राप्त था। उन्हें शास्त्रीय विधि से मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण में दक्ष पण्डितों और कलाकारों का सहयोग उपलब्ध था।

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४४१ २- गोपेश्वर--अभिलेख, उ०डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने प्रासाद, भोजनागार, क्रीडागृह और विक्रयशालाओं के निर्माण की उपेक्षा करके सारी उपत्यका को मन्दिरों, पूजास्थानों और बावड़ियों से भरदिया। दिखावे की अपेक्षा उनकी दृष्टि स्थायी और कलापूर्ण निर्माण की ओर थी। भूचाल और आततायियों के प्रहार से यद्यपि उनकी अधिकांश कृतियां नष्ट होगई हैं, फिर भी जो शेष हैं, वे उनके कौशल और उपत्यका के प्राचीन वैभव की अमर स्मारक हैं।

केदारनाथ

केदारनाथ का मन्दिर उत्तराखण्ड के मन्दिरों में सबसे अधिक भव्य और विशाल होने के अतिरिक्त सबसे अधिक प्रभावोत्पादक दृश्यावली के मध्य में स्थित है। वर्तमान मन्दिर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के आसपास का होसकताहै। जिसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा। मन्दिर में ग्रेनाइटशिला केदारशिला के रूप में पूजीजातीहै। सभामण्डप में आठ पुरुषप्रमाण मूर्तियां हैं, जिनमें से पांच अधिक प्राचीन और विशेष कलापूर्ण हैं। बाहर छोटे-छोटे देवालों में अनेक भग्न मूर्तियां हैं[1]।

केदारनाथमन्दिर की दीवारों पर दो-तीन अभिलेख हैं[2]। जिनके प्रकाशन से उत्तराखण्ड के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

कोटद्वार

कोटद्वार में कौड़ियाकैम्प के पास एक विशाल मन्दिर के अवशेष और मृतिकापात्र मिलेथे। यहां की खुदाई में एक नेपाली को अनेक अति सुन्दर मूर्तियां तथा ऐसी शिलाएं प्राप्तहुईथीं जिन पर सिंहों की मुखाकृतियोंवाले कीर्तिमुख, घंटों की श्रृंखला, आभूषणों से लदी नृत्य

१-२- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करती नारियां, नानाप्रकार के वाद्य बजातेहुए व्यक्ति, यक्ष, किन्नर और गन्धर्व चित्रित थे। इन मूर्तियों को कोई उठालेगया[१]।

तीन-चार वर्ष पूर्व मैंने इस स्थान पर अनेक चित्रित शिलाएं देखीथीं। खुदाई करने पर सम्भव है अब भी कुछ वस्तुएं मिलें।

गोपेश्वर

केदारनाथ के पश्चात् गोपेश्वर का शिवमन्दिर ही उत्तराखण्ड का सबसे प्राचीन और विशाल मन्दिर मानाजाताहै। तेरहवीं शताब्दी विक्रमी के दो नेपाली विजेताओं के अभिलेखों से विदित होताहै कि वर्तमान मन्दिर उनके आक्रमण से पहले का, सम्भवत: दसवीं शताब्दी विक्रमी के आसपास बनाहोगा। उसके आंगन में स्थित त्रिशूल बाड़ाहाट के त्रिशूल का समकालीन है। दोनों त्रिशूल सम्भवत: एक ही व्यक्ति गुहनरेश द्वारा स्थापित हैं।

निकट के ध्वस्त मन्दिरों से एकत्रित यहां की बूटधारी सूर्यप्रतिमा तथा शिश्नस्वरूप चतुर्मुख शिवलिंग, शकों द्वारा प्रचलित शिवपूजा और लकुलीश शैवों के प्रभाव की सूचक हैं। अनेक भग्न मूर्तियां सूचित करतीहैं कि मूर्तिभंजकों ने इस मन्दिर को भी लूटाथा।

जागेश्वर

अलमोड़ा से सोलह मील उत्तर की ओर पिथौरागढ़-मार्ग पर अपने सुन्दर मन्दिरपुंज के लिए प्रसिद्ध है। जागेश्वर, मृत्युंजय और दंडेश्वर यहां के प्रधान मन्दिर हैं[२]। इनके अतिरिक्त भांडेश्वर, गडारेश्वर, केदार, वैजनाथ, भैरवनाथ, चक्रवाकेश्वर, नीलकंठ, बालेश्वर, विभेश्वर, बागीश्वर, पातालभुवनेश्वर आदि बीस-इक्कीस छोटे-बड़े मन्दिर हैं[३]।

१- सत्यपथ, २ अगस्त, ६५   २- राहुल--कुमाऊं, पृ० २३२-३३

३- 'देवता देखण जागेश्वर। गंगा नाणी बागेश्वर'॥—लोकोक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां राजा दीपचन्द और त्रिमलचन्द की चन्दन की मूर्तियां हैं। यहां सम्बत् ११६० ई० का माधवसेन का अभिलेख और लक्ष्मीचन्द के दानपत्र हैं। उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध मन्दिरों में से केवल यही मुसलमानों के प्रहार से बचारहसका।

जोशीमठ

ग्रेनाइट शिलाओं से बने वासुदेवमन्दिर में वासुदेव की पुरुषप्रमाण अखंड मूर्ति उत्तराखण्ड के मूर्तिकारों के अद्भुत कौशल की सूचक है। मूर्ति एक सहस्र वर्ष से अधिक प्राचीन है। परिक्रमा में नवदुर्गा की तथा अन्य देवताओं की, विशेषकर हर-गौरी की अति सुन्दर मूर्तियां हैं। नरसिंहमन्दिर में शालिग्रामशिला की छोटी-सी नरसिंहमूर्ति है। मन्दिर के बाहर पीतल की बनी गरुड़ की अति सुन्दर मूर्ति है।

तड़ासर

लैंसडौन से पूर्व की ओर देवदारु के वन में तड़ासर या तारकेश्वर का मन्दिर है। पहले इसके पास कुछ छोटे-छोटे मन्दिर रहेहोंगे। भग्न प्रतिमाओं के ढेर में मुझे लगभग तीन फीट ऊंची अति सुन्दर विष्णुमूर्ति के टुकड़े मिलेहैं। मूर्ति उत्तरगुप्तकाल की प्रतीत होतीहै। अनेक मूर्तियों के टुकड़े एक गड्ढे में दबेपड़ेहैं। जीर्णोद्धार करते समय मन्दिर की प्राचीनता को सर्वथा मिटादियागयाहै।

तपोवन

जोशीमठ से सात मील दूर धौलीगंगा के तट पर गुप्तकाल के तीन शाक्त मन्दिर हैं, जिनमें से एक चपटी छतवाला सबसे प्राचीन है। दुर्गा और लक्ष्मी की दो फीट ऊंची अति भव्य मूर्तियां उठाकर बालेश्वरमन्दिर में रखीगईहैं। सरस्वती की मूर्ति को उठाकर मारछों ने तिमरसैंण के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दिर में स्थापित कियाहै[1]।

थोड़ी दूर पर कत्यूरीकाल के बड़े मन्दिर में महिषमर्दिनी, हर-गौरी वक्रतुंड-गणेश, नवग्रह और अष्टमात्रिकाओं की दुर्लभ मूर्तियां हैं। मन्दिर के द्वारपट्ट के ऊपर आदिनाथ की अत्यन्त भव्य मूर्ति लगीहै[2]।

सड़क के पास विशाल शिलाओं से बने किसी मन्दिर, दुर्ग या आश्रम की दीवारों के अवशेष हैं। पास के खेतों में चित्रित शिलाएं, मन्दिरों के स्तम्भ, आमलक, कलस आदि के अवशेष सूचित करतेहैं कि कभी यह महत्वपूर्ण स्थान था।

जोशीमठ की अपेक्षा कम शीत, तप्त जलधारा, चौरस भूमि, हिमानीस्खलन से सुरक्षा एवं धौलीतट की रमणीक दृश्यावली के कारण सम्भव है किसी कत्युरीनरेश ने यहां राजधानी बनाईहो।

जोशीमठ या तपोवन में काली से सतलुज तक फैले साम्राज्य की राजधानी बनाने की सनक तभी होसकतीहै, जब उस साम्राज्य में पश्चिमी तिब्बत का भी कुछ भाग रहाहो।

देवप्रयाग

अलकनन्दा और भागीरथी के संगम पर अत्यन्त प्राचीन स्थान है। रघुनाथ के विशाल मन्दिर में कालीशिला की बनी रघुनाथजी की पुरुषप्रमाण मूर्ति है। मन्दिर के बाहर शिला पर गुप्तब्राह्मी के अनेक लेख[3] इस स्थान की तथा बदरी-केदार-यात्रा की प्राचीनता सिद्ध करते हैं। सीढ़ियों पर और मन्दिर के घंटों पर भी ऐतिहासिक लेख हैं[4]।

देवल

पौड़ी से केवल पांच मील की दूरी पर देवल (देवालय) गांव के

१-२- मेरा लेख--कर्मभूमि, दिनांक १ जनवरी, ५७

३-४- मेरा लेख--गढ़वाल के अभिलेख, दोगडा कालेज-पत्रिका, १९६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दिरपुंज के अनेक छोटे मन्दिर नष्ट होचुकेहैं। प्रधानमन्दिर, जो पन्द्रहवीं शताब्दी विक्रमी के आसपास बनाहोगा, और जिसका एक-दो बार जीर्णोद्धार हुआहै, अबतक सुरक्षित है।

मन्दिर में, मन्दिर के बाहर और परिक्रमा के मन्दिरों में अनेक अति सुन्दर मूर्तियां हैं जो ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक की होसकतीहैं। वे यहां उन दिनों भी मन्दिरों का होना सूचित करतीहैं।

हर-गौरी, महिषमर्दिनी और वक्रतुंड गणेश की मूर्तियां अति सुन्दर और सुरक्षित हैं। प्रधान मन्दिर में, जिसका सम्बन्ध अब सीता, राम और लक्ष्मण से जोड़ाजाताहै, पुरानी मूर्तियां हटाकर अपेक्षाकृत नई मूर्तियों की स्थापना कीगईहै।

यहां भग्नमूर्तियां न मिलने से विदित होताहै कि रुहेला और अन्य मुसलमान आक्रान्ता, मुख्य यात्रा-मार्ग से दूर, इस क्षेत्र में नहीं पहुँचेथे।

बदरीनाथ

बदरीनाथ का वर्तमान मन्दिर कटी शिलाओं से बना लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। पिछले मन्दिर समय-समय पर भूचाल और हिमानीपात से नष्ट होतेरहे। मन्दिर में पौने चार फीट ऊंची काली शिला की द्विभुज विष्णुमूर्ति है जिसके शिर का अग्रभाग टूटजाने से ललाट, नेत्र, नाक, मुंह और हनु लुप्त होगएहैं। एक बांह का भी कुछ भाग खंडित है। मूर्ति का शृंगार करके उसे अखंड दिखलाया जाताहै[1]।

कुछ व्यक्ति बदरीनाथ को बौद्धतीर्थ और इस मूर्ति को बुद्धमूर्ति बतलातेहैं। बदरीनाथ में कभी बौद्धतीर्थ रहाहो, इसके प्रमाण किसी ग्रन्थ में नहीं मिलते। दूसरी ओर महाभारतकाल से आजतक वैष्णव

१- राहुल--गढ़वाल--पृ० २४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थ के रूप में बदरीनाथ की तीर्थयात्रा की अविच्छिन्न परम्परा मिलतीहै[1]।

विष्णु की द्विभुजमूर्तियों का उल्लेख बराहमिहिर ने कियाहै[2]। बदरीनाथ की मूर्ति के नीचे देवासन अगणित शालिग्रामों से जटित है। जोशीमठ की नरसिंहमूर्ति भी शालिग्रामशिला से बनीहै। बदरीनाथ के मन्दिर का समय-समय पर जीर्णोद्धार होतारहा। किन्तु भग्न होने पर भी मूर्ति को और उसके देवासन को नहीं बदलागया। इस मूर्ति में कोई ऐसी विशेषता नहीं है जिससे इसका बुद्धमूर्ति होना सिद्ध होसके। शालिग्रामों से जटित देवासन बुद्धमूर्ति का नहीं होसकता।

बागेश्वर (व्याघ्रेश्वर)

गोमती और सरयू के संगम पर हरी-भरी पर्वतश्रेणियों से घिरे रमणीक स्थान पर बागेश्वर बसाहै। यहां अनेक छोटे-बड़े मन्दिर हैं। कत्यूरीनरेश भूदेव ने व्याघ्रेश्वर के मन्दिर को अनेक गांव चढ़ाएथे। वर्तमान मन्दिर का निर्माण राजा लक्ष्मीचन्द ने सम्बत् १५०७ में कियाथा[3]।

असाधारण शिल्पकौशल वाला मुखलिंग, जो कभी मन्दिर का अधिष्टाता था, अब आंगन में पड़ाहै। हर-गौरी, गणेश, लकुलीश शिवलिंग आदि अनेक खंडित मूर्तियां जहां-तहां पड़ीहैं। यहां दो हाथ ऊंची एक पद्मासनस्थ अधजली मूर्ति को बुद्धमूर्ति मानाजाताहै[4]।

बालेश्वर

तपोवन से जोशीमठ की ओर आते समय धौलीतट पर बालेश्वर मन्दिर में शिवलिंग के अतिरिक्त उत्तरगुप्तकाल की बनी, हर-गौरी

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५३० २- बृहत्संहिता--पृ० २५६-६०

३- राहुल--कुमाऊं, पृ० २३४ ४- राहुल--गढ़वाल, पृ० ३३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और महालक्ष्मी की अति सुन्दर मूर्तियां हैं[१]। दूसरा बालेश्वर मन्दिर चम्पावत में है। बालेश्वर के मन्दिर को कत्यूरीनरेश देशट ने भूमि प्रदान कीथी। नेपाली आक्रांता क्राचल्लदेव ने देशट के ताम्रपत्र पर अपना लेख अंकित करके उस दान की पुनः पुष्टि कीथी।

बिनसर

दूधातोली की पूर्वीशाखा पर देवदारु के वन में विशाल शिवमंदिर है, जिसमें गणेश, हर-गौरी और महिषमर्दिनी की सुन्दर मूर्तियां हैं। परिक्रमा में एक भव्य मुखलिंग है। अलमोड़ा से १३ मील उत्तरपूर्व में दूसरा बिनसरमंदिर है। यहां राजा कल्याणचन्द (सं० १७८७ १८०४ वि०) ने वीणेश्वरमंदिर बनवायाथा[२]।

सल्ड महादेव

रामगंगा से उत्तर की ओर गढ़वाल और कुमाऊं के सीमांत पर स्थित सल्डमहादेव के प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार करके उसकी प्राचीनता नष्ट करदीगईहै। यहां तांबे की कुछ पुरानी मुद्राएं मिलीहैं।

सिमली

कर्णप्रयाग से ४ मील दूर आदिबदरी-मार्ग पर उत्तरगुप्तकाल के मंदिरों का पुंज है जिसमें हर-गौरी, वक्रतुंड गणेश और महिषमर्दिनी की अतिसुन्दर मूर्तियां हैं। यहां एक मंदिर में अति दुर्लभ सात्वतमूर्ति है, जिसमें मध्यवर्ती विष्णुमुख की एक ओर बराह की और दूसरी ओर नरसिंह की मुखाकृति बनीहैं। ऐसी दुर्लभ मूर्ति उत्तराखंड में दूसरी

१- मेरा लेख--कर्मभूमि, दिनांक १ जनवरी, ४७

२- राहुल--कुमाऊं, पृ० २३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है[१]। अन्यत्र भी ऐसी मूर्ति किसी बिरले ही संग्रहालय में मिलेगी। मन्दिर के ऊपर हस्ती पर झपटतेहुए सिंह की प्रतिमा है।

स्यालदे पोखर

द्वाराहाट में, जिसे कत्यूरीनरेशों ने उत्तराखण्ड की द्वारिका बनाने का प्रयत्न कियाथा, आज अधिकांश मन्दिर उजड़ी अवस्था में हैं। मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किएजाने से वे अपनी प्रतिष्ठा खोचुकेहैं। अधिकांश का उपयोग अब घास-भूसा रखने के लिए होताहै[२]। अनेक मन्दिरों की कटीहुई तथा चित्रित शिलाएं आज खेतों की मींडों की शरण में पड़ीहैं[३]।

स्यालदे पोखर के पास प्राचीन शिवमन्दिर की शिलाओं पर देवी-देवताओं, मानवों और हस्तियों के अति सुन्दर चित्रों की अनेक पंक्तियां खुदीहैं। यह कलापूर्ण मन्दिर भी, जिस पर वर्षों तक अनेक कलाकारों ने तल्लीन होकर प्रत्येक शिला को चित्रित कियाहोगा, आज ध्वस्त होचुकाहै। इसकी चित्रित शिलाएं चारों ओर बिखरीपड़ी हैं[४]।

इसके गोपुर का कुछ भाग अब भी खड़ा है। मुख्य मन्दिर केवल ७ फीट × ७ फीट आकार का है। दीवार पर, बाहर की ओर, तीन फीट की ऊंचाई पर सुन्दर चित्रावलियों की पंक्तियां आरम्भ होतीहैं। कोमल पाषाण पर बनीहुई ये चित्रावलियां शताब्दियों तक वर्षा में रहने के कारण अब बहुत धुंधली पड़गईहैं, फिर भी इनकी सुरक्षा वांछनीय है। मंदिर की अनेक शिलाओं को पड़ोस के मकानों पर लगा दियागयाहै[५]। द्वाराहाट के प्रमुख मन्दिरों का निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में हुआथा, जैसा कि वहां के एक अभिलेख से विदित होताहै[६]।

१- मेरा लेख--कर्मभूमि, दिनांक ३० अप्रैल, ४७

२-३- वाल्टन--अलमोड़ा--गजेटियर, पृ० २३५ ४-५-वाल्टन--उपरोक्त, पृ० २३६ ६- वाल्टन--उपरोक्त, पृ० २३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां कटी शिलाओं से बनी समाधियों को, जिन्हें ट्रेल ने मुगलों की समाधियां मानाथा, अब नष्ट करदियागयाहै।

उत्तराखण्ड के सांस्कृतिक इतिहास के लिए उसके मंदिरों और उपलब्ध मूर्तियों का अध्ययन आवश्यक है। कुछ मंदिर और मूर्तियां ऐतिहासिक समस्याएं सुलझाने में सहायक होसकतीहैं। कुमाऊं में अनेक मूर्तियों के पादपीठ पर या मंदिर की दीवारों पर लेख मिलेहैं।

उत्तराखण्ड की प्राचीनतम मूर्तियां लकुलीश शिवलिंग हैं, जिन पर लिंग को रेखाओं द्वारा शिश्नरूप देने का प्रयत्न देखाजाताहै। कुषाण-नरेश हुविष्क की मुद्राओं पर भी लगुड़धारी शिव की मूर्तियां मिलतीहैं, जिन्हें लकुलीश सम्प्रदाय की मानाजाताहै[1]। उत्तराखण्ड के ऐसे शिवलिंग विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी से लेकर सातवीं-आठवीं शताब्दी तक के होसकतेहैं।

बूटधारी सूर्य की मूर्तियां, कश्मीर के मार्तण्डमन्दिर से लेकर कुमाऊं के कटारमल तक मिलतीहैं। जोशीमठ, श्रीनगर, गोपेश्वर, कटारमल, बेलार, पवांई (गंगोली), रकम (कालीकुमाऊं), नैनो (चौगरखा) तथा जागेश्वर की सूर्यमूर्तियां और मन्दिर विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों में इस प्रदेश में सूर्यपूजा और शकप्रभुत्व की पुष्टि करतेहैं।

सातवीं शताब्दी विक्रमी से हर-गौरी, महिषमर्दिनी, वक्रतुंड गणेश, कार्तिकेय, दुर्गा आदि की माहेश्वरमूर्तियां मिलनेलगतीहैं। उसी युग में विष्णु के बराह और नरसिंह विग्रहों की तथा बराह, विष्णु और नरसिंह के त्रिमुखों से युक्त सात्वत मूर्तियों का निर्माण हुआ, जिनमें से कुछ के साथ लक्ष्मी भी बनीहोतीहै।

सीता-राम, मुरलीधर, राधेश्याम आदि की अधिकांश वैष्णवमूर्तियां, विशेषकर, जिनमें बड़ी-बड़ी आंखें, फुलाए गाल और स्थूल आकार

१- ब० उपाध्याय--शंकराचार्य, पृ० २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलतेहैं, बहुत पीछे की बनीहैं। उनमें वह कौशल नहीं मिलता जो पिछली मूर्तियों में मिलताहै[१]। ऐसी मूर्तियां बाहर से लाईगईहैं।

उत्तराखण्ड का सर्वोत्तम माहेश्वर और वैष्णव मूर्तियां उत्तरगुप्त-काल की या उससे पीछे बारहवीं शताब्दी विक्रमी तक की हैं। महमूद के आक्रमणों से, तथा उसके पश्चात् मुसलिमशासन में उत्तरभारत के अनेक मूर्तिकारों को उत्तराखण्ड, राजस्थान और दक्षिण के हिन्दुनरेशों का आश्रय ग्रहण करनापड़ाथा।

शाक्त, शैव, भागवत, सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों के प्रचारकों ने, शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बक, वल्लभ आदि आचार्यों और वैरागियों ने उत्तराखण्ड के तीर्थों को विशेष मान्यता प्रदान की। इसलिए विक्रम की अठारहवीं शताब्दी तक उत्तराखण्ड में नए मन्दिरों के निर्माण की परम्परा चलतीरही।

कुषाणकालीन मूर्तियों का प्रभामण्डल सादा रहताथा। प्रभामंडल को कमल, पत्र, पुष्प, लता, गन्धर्व आदि से अलंकृत करने की प्रथा गुप्तकाल से आरम्भ हुई[२]। नारियों के वर्तुलस्तनों और ऊर्द्ध भाग को नग्न दिखाने की परम्परा कुषाणयुग से आरम्भ होगईथी। गुप्तकाल में विष्णु आदि की मूर्तियों में शिर पर किरीट-मुकुट, कानों में कुंडल, हाथों में कंकण, गले में हार और केयूर, वनमाला तथा कभी-कभी उत्तरीय, या श्रीवत्सयुक्त वक्षस्थल और अधोवस्त्र दिखाएजानेलगे[३]।

देवी-देवताओं के हाथों में निश्चित क्रम से उनके आयुध दिखाए जानेलगे। मूर्ति के चरणों के आसपास अनेक लघुमूर्तियां एक-दूसरे के ऊपर खड़ी करके तथा प्रभामंडल में अन्य देवताओं की लघुमूर्तियां बनाकर सजायाजानेलगा[४]। देवविग्रह के चरणों के पास उनके वाहनों

१- डबराल--उ० यात्रा-दर्शन, पृ० ५६० २- वा० उपाध्याय--गु०सा० का इतिहास, जि० २, पृ० २७० ३- वा० उपाध्याय--उपरोक्त, पृ० २७२ ४- वा० उपाध्याय--उपरोक्त, पृ० २७३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को अंकित करने की प्रथा चलपड़ी ।

अति पतले अधोवस्त्र, करधनी और केशों को जाली-जैसे वस्त्र से ढ़का दिखाने की परम्परा भी इस युग में चली । बुद्धमूर्तियों के शिर पर बुदबुदाकर केश दिखाने की प्रथा थी ।

उत्तराखण्ड की जिन मूर्तियों में गुप्तकालीन मूर्तिकला के लक्षण मिलतेहैं, उनका निर्माण मुख्यत: भूरी बालुजशिलाओं या नीली अथवा हरी झांई वाली शिलाओं से हुआहै । भूरी बालुज शिलाओं की मूर्तियों में से अनेक काले वज्रलेप के कारण कालीशिला से निर्मित प्रतीत होतीहैं ।

महिषमर्दिनी और गरुड़ की कुछ विशाल मूर्तियां मिट्टी के साथ बाबड़, राल आदि मिलाकर बनाईगईहैं । इनके पतले अंग भीतर से तारद्वारा जुड़ेहैं । बाहर से काला वज्रलेप लगाहोने के कारण ये भी कालीशिला से बनी प्रतीत होतीहैं । मन्दिरों और मकानों की शीर्षपट्टिका के ऊपर लगी अनेक गणेशमूर्तियां वास्तव में मिट्टी की बनीहैं ।

नरेशों और धार्मिक आचार्यों की पीतल की बनी मूर्तियां, जो चौदहवीं शताब्दी या पश्चात् की बनीहैं, अधिक सुन्दर नहीं हैं । पीतल की कुछ देवमूर्तियां दक्षिण से आईहैं । कुछ छोटी मूर्तियां चांदी और सोने से बनी भी मिलतीहैं । काष्ट की बनी देवमूर्तियां अब दुर्लभ हैं ।

—:०:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध मुद्राएं

ऐतिहासिक समस्याओं को सुलझाने के लिए मुद्राओं का बड़ा महत्व है। अन्यत्र अनेक नरेशों के नाम, शिलालेख या अन्य विवरणों के अभाव में केवल उनकी मुद्राओं के द्वारा ही ज्ञात होसकेहैं।

उत्तराखण्ड में प्राचीन मुद्राएं बहुत कम मिलीहैं। परम प्रतापी कत्यूरीनरेशों की, जिनका राज्य शारदा से सतलुज तक, और हिमालय से भाबर-तराई तक फैलाथा, जिनके अनेक अभिलेख प्राप्तहुएहैं, तथा जिनके द्वारा निर्मित अनेक मन्दिर आज भी खड़ेहैं, एक भी मुद्रा नहीं मिलीहै।

तिब्बती, रुहेले और गोरखे लुटेरे समय-समय पर उत्तराखण्ड के मन्दिर, प्रासाद और धनी-निर्धन सभी को लूटतेरहे। मारछे व्यापारी सोने-चांदी की मुद्राओं को तिब्बत में और तांबे की मुद्राओं को मैदानी नगरों में बेचकर इतिहास को लुप्त करतेरहे। स्वर्णकारों ने छोटे-बड़े सभी नरेशों को पिघलाकर हथौड़ी से उनका शिरोच्छेदन करदिया!

उत्तराखण्ड के मन्दिरों में सारे भारत की मुद्राएं प्राप्त होसकतीथीं। लूट से जो मुद्राएं बचसकीं पुजारियों ने उनके आभूषण बनाडाले। तांबे की मुद्राएं दो शताब्दी पहले ही जिज्ञासु या विक्रेता खरीद लेगए। श्रीनगर आदि राजधानियों के विध्वंस भी मुद्रालोप में सहायक हुए। यदि किसी को भवनादि निर्माण के समय कहीं प्राचीन मुद्रा मिलती भी है, तो वह राजभय से उसे पिघलाकर नष्ट करदेताहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रतूड़ी ने गढ़वाल के इतिहास में उत्तराखण्ड के शासकों की केवल छै मुद्राओं के चित्र प्रकाशित किएहैं। उत्तराखण्ड के दक्षिणी भागों में, स्रुघ्न, मांडलपुर, देहरादून, हरिद्वार और मोरध्वज आदि में प्राचीन मुद्राएं मिलीहैं। बचपन में मैंने अजयपाल की चांदी की मुद्रा भी देखीथी।

प्राचीनकाल में उत्तराखण्ड में सुवर्णचूर्ण का मुद्रा के रूप में प्रयोग होताथा। भोटांतिक तिब्बत से स्वर्णचूर्ण लाकर लाल कपड़े की थैलियों में उसकी निश्चित् मात्रा रखकर बेचतेथे। उन्नीसवीं शताब्दी तक इन थैलियों का हिमालय की तराई में मुद्रारूप में प्रयोग होताथा[1]।

विक्रमपूर्व सातवीं शताब्दी से विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी तक भारत में मुख्यत: आहत (पंच मार्कड) मुद्राओं का प्रचलन था[2]। निश्चित तोल के सोने-चांदी के चौकोर टुकड़ों को चिह्नित करके मुद्रारूप में प्रयुक्त कियाजाताथा। ऐसी आहतमुद्राएं उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग की राजधानी स्रुघ्न में प्राप्तहुईहैं[3]। किन्तु वह ज्ञात नहीं होसका कि उनके प्रवर्तक कौन थे।

विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी से भारत में पुराण और कार्षापण नामक मुद्राओं का प्रचलन आरम्भ हुआ[4]। स्रुघ्न, मांडलपुर, गंगाद्वार में और अन्यत्र उत्तराखण्ड में जो मुद्राएं प्राप्तहुईहैं, उनमें पुराण और कार्षापण थे या नहीं, यह अज्ञात है।

महाभारत में उत्तराखण्ड पर कुलिन्दवंश के अधिकार का उल्लेख मिलताहै। जिसकी पश्चिमी शाखा की राजधानी स्रुघ्न थी[5] और पूर्वी शाखा की राजधानी गंगाद्वार से बदरिकाश्रम जानेवाले मार्ग पर,

१- वन्द्योपाध्याय--प्राचीन मुद्रा, पृ० ३ २- वन्द्योपाध्याय---उपरोक्त, पृ० १०-१२ ३- कनिंघम--क्वाइन्स आव ए० इंडिया, पृ० १६२ ४-वन्द्योपाध्याय--उपरोक्त, पृ० १८ ५- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० १६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ पर्वतश्रेणियां पार करने के पश्चात्[1] गंगातट पर, सम्भवत: राणीहाट में थी।

कुलिन्दवंश की ऐतिहासिकता, उनकी कुणिन्दमुद्राओं द्वारा, जिनका हम आगे वर्णन करेंगे, सिद्ध होतीहै।

विक्रमपूर्व चौथी शताब्दी में कुलिन्दवंश की एक नई शाखा ने मगध पर अधिकार करलिया[2]। विक्रमपूर्व चौथी शताब्दी से विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी तक उत्तरभारत पर नन्द, मौर्य और शुंगवंशों का अधिकार रहा। इन तीनों वंशों के प्रभावक्षेत्र में उत्तराखण्ड भी था, जैसाकि कालसी में अशोक के अभिलेखों और स्रुघ्न पर शुंगवंश के अधिकार से विदित होताहै।

फिर भी अभी तक उत्तराखण्ड में इन राजवंशों की मुद्राएं नहीं मिलीहैं। और न पश्चिमी पंजाब के दिमित्र (देमित्रियस) तथा मलिन्द (मिनेन्दर) सम्राटों की मुद्राएं मिलीहैं, जिन्होंने एक बार उत्तरभारत को रौंदडालाथा[3]।

विक्रमपूर्व पांचवीं शताब्दी से विक्रम की पहली शताब्दी तक उत्तरपश्चिमी भारत पर जिन अनेक वर्वर जातियों ने अधिकार जमायाथा, उनमें से केवल शक और कुशाणजातियों का सम्बन्ध उत्तराखण्ड के इतिहास से है।

अष्टाध्यायी से विदित होताहै कि पाणिनि से पहले भी उत्तरभारत में शकजाति का प्रवेश होचुकाथा[4]। अस्तु शकजाति की पूर्ववर्ती टोलियां कुशाणजाति के आक्रमण से शताब्दियों पहले उत्तरपश्चिमी भारत में फैलचुकीथीं। उत्तराखण्ड के कत्यूरीनरेशों को भी विद्वान शकवंशज मानतेहैं। अभी तक उत्तराखण्ड में शकनरेशों की मुद्राएं नहीं मिलीहैं।

१- वनपर्व, १३९।१; १४०।२४-२६ २- रैप्सन--कैं० हि० आव इंडिया, जि० १, पृ० २८० ३- महाभाष्य--३।२।११३ ४- अग्रवाल--पा० का० भारतवर्ष, पृ० ८२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रम की पहली शताब्दी में उत्तरपश्चिमी भारत पर कुशाणवंश का अधिकार होगया। कनिष्क ने, जिसका राज्यारम्भ सम्वत् १३५ वि० से मानाजाताहै, अपने साम्राज्य का विस्तार पश्चिमी तुर्किस्तान और ईरान से लेकर पाटलिपुत्र तक पहुँचादिया। कश्मीर, हिमालय प्रदेश तथा तिब्बत के दक्षिणी सीमान्त तक उसका साम्राज्य फैलाथा। शकसम्बत्, जिसको भारत-सरकार ने अपनालिया है, कनिष्क द्वारा प्रचारित मानाजाताहै।

कनिष्क की सोने और तांबे की बहुत-सी मुद्राएं मिलतीहैं। उसकी मुद्राओं पर यूनानी और प्राचीन पारस्य भाषाओं का प्रयोग हुआहै[१]। दोनों भाषाएं यूनानी अक्षरों में लिखीगईहैं। उसकी मुद्राओं पर दूसरी ओर बहुत-से यूनानी, बौद्ध तथा जरथुस्त्रीय देवताओं की आकृतियां अंकित हैं[२]। मुद्राओं पर विभिन्न जातियों के देवताओं का ऐसा अपूर्व समावेश पहले कभी नहीं देखागयाथा।

कुशाणकाल में उत्तराखण्ड के व्यापार और भाबर के नगरों की समृद्धि का चरम उत्कर्ष हुआ, जैसाकि वीरभद्र, मायापुर, मोरध्वज, उज्जैन आदि के विस्तृत विध्वंसों की उन विशाल लाल ईंटों से सिद्ध होताहै, जो कुशाणकाल की मानीजातीहैं।

कुशाणवंशी सम्राट वासुदेव के पश्चात्, जिसकी मृत्यु या राज्यच्युति वि० सम्बत् २३३ के आसपास हुई[3], कुशाणसाम्राज्य का वेग से पतन आरम्भ हुआ। कनिष्क से लेकर वासुदेव के राज्यकाल के पूर्वार्द्ध तक उत्तराखण्ड पर कुशाणप्रभुत्व मानाजासकताहै।

कुशाणनरेश, वासुदेव के समय तक भारतीय प्रथाओं और देवी-देवताओं को अपनाचुकेथे। वे हिन्दुनामों का प्रयोग करनेलगेथे और अपनी मुद्राओं पर भी ब्राह्मीलेख लिखनेलगेथे। पर उनके अत्याचारों

१-२- वन्द्योपाध्याय--प्रा० मुद्रा, पृ० ११३ ३- भ०श० उपाध्याय--प्रा०भा०का इतिहास, पृ० २२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से[1] तंग आकर उत्तरपश्चिमी भारत के गणराज्यों ने, जिनकी स्वतन्त्रता का उन्होंने अपहरण कियाथा, संगठित होकर उत्तरभारत के बड़े भाग से उसकी सत्ता समाप्त करदी।

कनिष्क तृतीय (सम्वत् २२७ वि०—२६७ वि०) तथा वासुदेव द्वितीय (२६७ वि०—२९७ वि०) की मुद्राएं सतलुज के पूर्व में न मिलने से विदित होताहै कि विक्रम की तीसरी शताब्दी के आरम्भ में ही कुशाणप्रभुत्व पूर्वीपंजाब से उठगयाथा[2]।

कुशाणसत्ता को समाप्त करने का प्रमुख श्रेय योधेयगण और उसके पड़ोसी अर्जुनायनगण और कुलिन्द (कुणिन्द) गण को है[3]। योधेयगण ने पुनः अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपलक्ष में अपनी मुद्राओं पर ब्राह्मी में 'योधेयगणस्य जयः' लेख अंकित किया और उन पर देवसेनापति कार्तिकेय की प्रतिमा मुद्रित की[4]।

सहारनपुर, देहरादून, दिल्ली, रोहतक, लुधियाना और कांगड़ा में योधेयगण की ऐसी मुद्राएं बड़ी संख्या में प्राप्त हुईहैं[5]। लुधियाना के पास मिली उनकी एक मृतिकामुहर पर 'योधेयानां जयमंत्रधराणाम्' लेख प्राप्त हुआहै[6]।

योधेयजाति का विस्तार सतलुज-यमुना के द्वाब से लेकर उत्तरपूर्वी राजपूताना तक था। आगरा-जयपुर क्षेत्र में अर्जुनायनजाति बसीथी। उत्तर के पर्वतीयप्रदेश में व्यास के मूलस्रोतों से कालीगंगा तक, वर्तमान कांगड़ा, हिमाचलप्रदेश और उत्तराखण्ड में कुणिन्दजाति फैलीथी।

कुशाणसाम्राज्य पर विजयपाने के उपलक्ष में योधेयजाति ने जिन मुद्राओं को प्रचारित कियाथा उनमें से कुछ पर योधेयगणस्य जयः के

१- जायसवाल--अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ६८-८८ २- मजूमदार तथा अल्तेकर--वा०गु०एज, पृ० २७ ३- मजूमदार तथा अल्तेकर-पृ० २६ ४- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ० २८ ५- मजूमदार--तथा अल्तेकर--पृ० २७ ६- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ० २८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् मिलनेवाले द्वि और त्रि शब्दों को विद्वान अर्जुनायन और कुणिन्दगण का सूचक मानतेहैं[१]।

मेरे द्वारा संग्रहीत प्राचीन मुद्राओं में से एक पर एक ओर एक सैनिक जांघिया पहने, सन्मुख मुख किए खड़ा है। उसका बांया हाथ कटि पर है। दहिने हाथ पर सम्भवत: गदा है। दहिने हाथ के नीचे ब्राह्मी में 'कु' 'द्वि' या 'यो' बनाहै। दूसरी ओर षडानन कार्तिकेय बायें हाथ को कमर पर लगाए, दहिना हाथ आगे की ओर बढ़ाए खड़ाहै। बाएं हाथ के नीचे चबूतरे पर बोधिवृक्ष अंकित है।

पश्चिमी उत्तरप्रदेश और पूर्वीपंजाब से कुशाणसत्ता समाप्त करने में योधेयगण को सबसे अधिक सहायता कुणिन्दगण से प्राप्त हुईथी[२]। प्राप्त मुद्राओं से विदित होताहै कि विक्रम की पहली शताब्दी के अन्त तक योधेयजाति के समान कुणिन्दजाति की भी स्वतन्त्र सत्ता बनीथी।

विक्रम संबत् १२७ के आसपास प्रतापी कनिष्क की दिग्विजय के समय उसे भी कुशाणआधिपत्य स्वीकार करनापड़ा[3]। किन्तु एक शताब्दी के पश्चात् उसने पुनः अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करली[४]।

महात्मन् और भागवत की उपाधिवाले कुणिन्दनरेश छत्रेश्वर की मुद्राएं, जिन्हें लिपि के आधार पर विद्वानों ने विक्रम सम्बत् २५७ के आसपास का ठहरायाहै[५], आकार-प्रकार और शैली में उन योधेयमुद्राओं से पूरा-पूरा मेल खातीहैं जिन पर कुशाण-विजय के उपलक्ष में कार्तिकेय की छवि अंकित है[६]।

इस असाधारण समानता से इस अनुमान की पुष्टि होतीहै कि कुणिन्द और योधेय समकालीन थे, और उन्होंने विक्रम की तीसरी

१- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ० २९-३० २-३- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ० २८ ४- मजूमदार तथा अल्तेकर-- पृ० २९ ५- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ० २८ ६- मजूमदार तथा अल्तेकर-- पृ० २८-२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी के मध्य में एक-दूसरे के सहयोग से अपनी स्वतंत्रताप्राप्ति के लिए संघर्ष कियाथा[१]।

विक्रम संवत् ३०७ के पश्चात् कुणिन्दमुद्राएं नहीं मिलतीं। समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में कुणिन्दगण का उल्लेख नहीं है। इससे विद्वानों की कल्पना है कि यह गण योधेयगण में मिलकर लुप्त होगया[२]। किन्तु यह अनुमान निराधार है।

गढ़वाल[३] और अलमोड़ा में कुणिन्दमुद्राएं मिलने से पूर्व विद्वान कुणिन्दराज्य का विस्तार व्यास और सतलुज के स्रोतों तक, वर्तमान कांगड़ा और हिमाचलप्रदेश में मानतेथे। किन्तु अब विद्वानों की धारणा है कि अपने चरम उत्कर्ष के दिनों में कुणिन्दराज्य का विस्तार हिमालय की निचली ढालों पर नेपाल तक पहुँचाथा[४]।

हिमालय के कुलूत, उदुम्बर और कुणिन्दगण ब्राह्मी और खरोष्ठी के सीमान्तक्षेत्र में स्थित होने के कारण अपनी मुद्राओं पर दोनों लिपियों का प्रयोग करतेथे[५]। विक्रम की आरम्भिक शताब्दियों की कुणिन्द-मुद्राओं पर, जो अपेक्षाकृत नवीन हैं, केवल ब्रह्मीलेख मिलताहै[६]।

इन मुद्राओं में से कुछ पर जो कि तांबे को हैं, एक ओर मृग को घास खिलातीहुई नारी, एक चौकोर स्तूप और एक चक्र अंकित हैं। दूसरी ओर सुमेरुपर्वत, बोधिवृक्ष, स्वस्तिक और नन्दिपाद बनेहैं[७]। इन तांबे की कुणिन्दमुद्राओं का लेख अस्पष्ट है।

चांदी की कुणिन्दमुद्राओं पर उपरोक्त चित्रांकन के साथ एक ओर ब्राह्मी में 'अमोघभूतिस महरजस राञ कुणिन्दस' तथा दूसरी ओर खरोष्टी में 'रंञ कुणिन्दस अमोघभूतिस महरजस' लेख मिलतेहैं। इनका

१-२- मजूमदार तथा अल्तेकर--पृ० २९ २- रतूड़ी--ग० का इतिहास, पृ० २४० ३- परजिटर--मारकंडेयपुराण--पृ० ३१६

५- रैप्सन--कै० हि० आव इंडिया, जि० १, पृ० ४७६

६-७- वन्द्योपाध्याय--प्राचीन मुद्रा, पृ० १४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ है—कुणिन्दों के नरेश महाराजा अमोघभूति की मुद्रा[१]।

वन्द्योपाध्याय का अनुमान है कि जिन दिनों ये मुद्राएं प्रचलित कीगईं उन दिनों, कुछ समय के लिए, अमोघभूति कुणिन्दजाति का अधिपति बनगयाथा[२]। डा० जायसवाल अमोघभूति शब्द को विशेषण मानकर उसका अर्थ अमोघविभूतिवाला करतेहैं। उनका अनुमान है कि मुद्राओं पर ईसापूर्व १५० से १०० ई० तक—२५० वर्ष की लम्बी अवधि तक मिलनेवाला शब्द अमोघभूति किसी व्यक्तिविशेष का नाम नहीं होसकता[3]।

कुणिन्दजाति की प्राचीनतम मुद्राओं पर बौद्धचिह्नों के साथ केवल कुणिन्द लिखा मिलताहै[४]। उनकी परवर्ती मुद्राओं पर शिव के त्रिशूल और परशु तो मिलतेहैं पर जातिनाम नहीं मिलता[५]।

मुद्राओं से कुणिन्दजाति के अमोघभूति, छत्रेश्वर, शिवदत्त और शिवपालित इन चार नरेशों के नाम प्राप्त हुएहैं।

छत्रेश्वर की केवल तांबे की मुद्राएं मिलीहैं[६]। उनमें एक ओर हाथों में परशु और त्रिशूल लिए खड़े शिव का चित्र है, जिसके बांए कन्धे से व्याघ्रचर्म लटकरहाहै। तथा ब्राह्मीलिपि में भगवतो छत्रेश्वर महात्मन' लेख है। दूसरी ओर मध्य में मृग, सींगों के बीच चिन्ह, दहिनी ओर नीचे नाग, वृत्त, तारा और बांयीं ओर पात्र, चैत्य आदि चिह्न बने हैं[७]।

अल्मोड़ा से प्राप्त कुणिन्दमुद्राएं मिश्रधातु की बनी हैं और अन्य भारतीय मुद्राओं की अपेक्षा भारी हैं[८]। इन पर ब्राह्मी अक्षरों में

२- वन्द्योपाध्याय---प्राचीन मुद्रा, पृ० १४२ ३- जायसवाल--हिन्दू राज्यतन्त्र, जि० १, पृ० ११०-११ ४-५- कनिंघम--क्वाइन्स आव ए० इंडिया, पृ० १६२ ६- वन्द्योपाध्याय--प्रा० मुद्रा--पृ० १४३ ७- कनिंघम--उपरोक्त, पृ० ७२ ७- वन्द्योपाध्याय--उपरोक्त, पृ० १३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'भगवतो शिवदत्त महात्मन' और 'भगवतो शिवपालित महात्मन' अंकित है।

जायसवाल का अनुमान है कि कुणिन्दराज्य ऐसा गणराज्य था, जिसका अध्यक्ष राजा (राज्ञ) कहलाताथा[1]। विक्रम सम्बत् ३०७ के पश्चात् कुणिन्दमुद्राएं न मिलने से, तथा प्रयागप्रशस्ति में कुणिन्दप्रदेश के स्थान पर कीर्तिपुर का उल्लेख मिलने से इस अनुमान की पुष्टि होतीहै कि कुशाणउत्पाटन के पश्चात् उत्तराखण्ड में कुणिन्दगणराज्य के स्थान पर कीर्तिपुरराज्य की उसी प्रकार स्थापना होगईथी, जिस प्रकार यमुनाघाटी में शीलवर्म्मन् या सेनवर्म्मन् द्वारा यादवराज्य की स्थापना इसी युग में हुईथी।

गुप्त-उत्कर्ष से पूर्व उज्जैन-गोविषाण के इष्टिका लेखों से जिन दो नरेशों, मातृमित्र और पृथिवीमित्र, के नाम प्राप्त हुएहैं[2], उनकी मुद्राएं नहीं मिलती।

समुद्रगुप्त ने अश्वमेध के अवसर पर अधीनस्थ नरेशों में अपनी अश्वमेध-प्रकार मुद्राएं बांटीथीं। कीर्तिपुरनरेश को जो मुद्राएं मिली होंगी, वे लुप्त होगईहैं।

सम्बत् ४३२ वि० में कार्तिकेयपुर में ध्रुवदेवी का वेश धारणकरके चन्द्रगुप्त द्वितीय ने खशनरेश का वध करदिया। उस दिन से उत्तराखण्ड पर गुप्तअधिकार होगया। मन्दसौर-अभिलेख में स्पष्ट शब्दों में उत्तराखंड पर कुमारगुप्त के अधिकार की चर्चा है।

उत्तराखंड में अनेक गुप्तकालीन मूर्तियां और मन्दिर, यहां के वैष्णव मन्दिरों के द्वार पर देवप्रयाग, आदिबदरी, जोशीमठ, बदरीनाथ आदि में अति सुन्दर गरुड़मूर्तियां, गरुड़ध्वजधारी गुप्तनरेशों द्वारा गंगा, यमुना और गरुड़ की मूर्तियों को सर्वोपरि स्थान देना आदि उत्तराखण्ड

१- जायसवाल- हिन्दू राज्यतन्त्र, जि० १, पृ० ११०-११
२- ओझा--प्रा०भा० लिपिमाला--पृ० १५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर गुप्तअधिकार के स्मारक हैं।

भरसार-निधि में समुद्रगुप्त की धनुर्धारी-प्रकार की तीन मुद्राएं मिलीथीं[1]। किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि उक्त स्थान गढ़वाल का भरसार है, या अन्यत्र स्थित है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त की; जिसने ध्रुवदेवी के वेश में खशाधिपति का वध करके उत्तराखण्ड पर अधिकार कियाथा, ताम्बे की छत्रधारी-प्रकार की मुद्राओं पर मानवमुख तथा हाथवाले गरुड़ की आकृति मिलतीहै। उसका शेष शरीर पक्षी का है, पंख फैलेहुएहैं और वह सन्मुख देख रहाहै। उसके दोनों हाथों में भुजबंध हैं[2]। उत्तराखण्ड के प्रमुख वैष्णव मन्दिरों के द्वार पर ऐसी ही आकृतिवाले गरुड़ की मूर्तियां मिलती हैं। इनमें गरुड़ एक घुटना टेककर हाथ जोड़े खड़ा है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त की तांबे की छोटी-बड़ी दो प्रकार की मुद्राएं मिलतीहैं, जो अन्य मुद्राओं की अपेक्षा छोटे आकार की किन्तु अधिक तोल की हैं। ये क्रमशः १८ से २५ ग्रेन तक तथा ४४ से ५४ ग्रेन तक की मिलतीहैं। देखने में ये भद्दी और बेडौल हैं। इनका व्यास .५" से .६५" तक मिलताहै।

इनमें से अर्द्ध चित्र-प्रकार की मुद्राओं पर पुरोभाग में राजा का अर्द्धचित्र, पूर्णचित्र या चक्र मिलताहै। पृष्ट भाग में वेदी पर खड़ा या बिना वेदी के गरुड़ होताहै जो मुंह में सर्प लिए है। मुद्रा विन्दुविभूषित वर्तुल होतीहै[3]।

कुमारगुप्त की ताम्बे की मुद्राओं पर भी गरुड़ मिलताहै[4]।

अलमोड़ा और गढ़वाल के सीमान्त पर स्थित सल्डमहादेव के मंदिर का जीर्णोद्धार करते समय तांबे की दो मुद्राएं प्राप्त हुईहैं। ये मुद्राएं

१- अल्तेकर- गुप्तकालीन मुद्राएं, पृ० ३८ २- अल्तेकर--उपरोक्त, पृ० १०८-९ ३- अल्तेकर--उपरोक्त, पृ० ११०-११ ४- अल्तेकर- उपरोक्त, पृ० १६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भद्दी और बेडोल हैं। इन पर संभवतः ब्राह्मी में या अन्य किसी लिपि में लेख है, जो धोने के लिए अम्ल में डालने से कुछ अस्पष्ट होगयाहै।

बड़ी मुद्रा की तोल १७.७८ ग्राम, मोटाई .५ से० मी० तथा व्यास १.८ से०मी० है। छोटी मुद्रा की तोल ११.३७ ग्राम, मोटाई .३ से० मी० तथा व्यास १.७ से० मी० है। बड़ी मुद्रा पर मुंह खोलेहुए विशाल सर्प सारी परिधि पर फैलाहै। उसके शिर पर गरुड़ झपटरहाहै। सर्प द्वारा चारों ओर से घिरा होने पर भी गरुड़ ने अपने प्रहार से सर्प को ऐसा आतंकित करदियाहै कि वह फण फैलाए मृत्यु की बाट देखरहाहै। दूसरी ओर मोटे अक्षरों में कोई लेख है। छोटी मुद्रा के लेख और चित्र इतने स्पष्ट नही हैं।

यदि ये मुद्राएं द्वितीय चन्द्रगुप्त की हैं, तो सम्भवतः ये किसी ऐसी घटना की स्मारक हैं, जिसमें शत्रु ने उसे चारों ओर से घेर लियाथा। फिर भी अपने साहस और पराक्रम से उसने शत्रु के शिर पर प्रहार करके उसका वध करडाला। सम्भव है चन्द्रगुप्त ने कार्तिकेय नगर में शत्रु वध करने के पश्चात् बड़ी मुद्रा को प्रचारित कियाहो।

स्कन्दगुप्त अपने जूनागढ़-अभिलेख में नरपतिभुजगों के अभिमान-दर्पयुक्त फणों को गरुड़ की प्रतिकृति से विषहीन करने की घोषणा करताहै[1]।

संभवतः पुरुगुप्त के दुर्बल शासन में, या उससे पहले ही, स्कन्दगुप्त के समय, जब गुप्तराज्यलक्ष्मी विचलितहुई, तो उत्तराखण्ड स्वतन्त्र होगया। पुरुगुप्त के राज्यकाल में पश्चिम में सैंहपुर के यादवों को और पूर्व में ब्रह्मपुर के पौरवों को उत्कर्ष का अवसर प्राप्तहुआ। ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों की मुद्राएं अभीतक नहीं मिलीहैं।

१- 'नरपतिभुजगानां मानदर्प्पोत्फणानां प्रतिकृति गरुड़ा (ज्ञां) निर्विषी (.) चावकर्त्ता'--रा०ब० पांडे, पृ०६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बत् ६६० वि० से पहले ही हर्ष का स्रुघ्न और ब्रह्मपुर दोनों पर अधिकार होगयाथा। उत्तराखण्ड में स्रुघ्न को छोड़कर अन्यत्र हर्ष की मुद्राएं नहीं मिलीहैं।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कन्नौजनरेश अर्जुन के मानमर्दन से उत्पन्न परिस्थिति का लाभ उठाकर उत्तराखण्ड पुन: स्वतन्त्र होगया। बाराहाट के शिवमन्दिर और त्रिशूल के निर्माता गणेश्वर और गुह की मुद्राएं अभी तक प्राप्त नहीं हुईहैं।

यशोवर्मन्, देवपाल, भोजपरमार तथा विग्रहराज आदि ने अपने अभिलेखों में उत्तराखण्ड पर अपने अधिकार की घोषणा कीहै। पर उनकी मुद्राएं इस क्षेत्र में अबतक नहीं मिलीहैं।

आठवीं शताब्दी विक्रमी से उत्तराखण्ड पर कत्यूरीनरेशों का अधिकार होगया। उनका साम्राज्य, उत्कर्ष के दिनों में, काली से सतलुज तक तथा हिमालय से रुहेलखण्ड, सहारनपुर, अम्बाला तक फैलाथा। किन्तु उनकी भी मुद्राएं नहीं मिलतीं।

अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव नामक दो नेपाली विजेताओं की भी, जो गोपेश्वर के त्रिशूल और बालेश्वर के ताम्रपत्र पर अपनी विजयगाथा अंकित करगएहैं, मुद्राएं अबतक नहीं मिलीहैं।

कत्यूरीसाम्राज्य के ह्रास के दिनों में मन्दाकिनी-उपत्यका तथा अन्यत्र के स्थानीय राजवंशों और उनके भड़ों के अभ्युदय का युग आरम्भ हुआ। लगभग दो शताब्दियों तक उत्तराखण्ड छोटी-छोटी ठकुराइयों में बंटारहा। इन ठकुराइयों की, जिनके स्वामी गढ़पति कहलातेथे, मुद्राएं अब नहीं मिलतीं।

अजयपाल ने सम्वत् १५६१ के आसपास श्रीनगर को अपनी राजधानी बनाया। उसने गढ़वाल के गढ़पतियों को जीतकर सारे गढ़वाल पर अधिकार करलिया। अपनी वीरता के कारण उसने बड़ी ख्याति प्राप्त कीथी। सम्भवत: उसीको 'बिघ्नी विजयपाल' भी कहाजाताथा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बचपन में मैंने चांदी की एक गोल तथा मोटी मुद्रा देखीथी। इसे धोकर उस नारी को पिलायाजाताथा, जिसे प्रसव के समय बड़ी पीड़ा होतीथी। इस मुद्रा को अजयपाल की मुद्रा बतलातेथे।

पंवारनरेशों में केवल फतेहशाह की चांदी की अष्टभुज मुद्राएं प्राप्तहोतीहैं। उन पर दोनों ओर गुप्तनरेशों की मुद्राओं के समान संस्कृत छन्द में निम्न लेख मिलताहै[1] :—

मेदिनीशाहसूनो श्रीफतेहशाहऽवनीपते।
बदरीनाथ कृपया मुद्राजयति राजते। १७५७

कुमाऊं के चन्दनरेशों की मुद्राएं भी मुझे न मिलसकीं।

संवत् १८६० में गोरखा आक्रान्ताओं ने उत्तराखण्ड पर अधिकार करके श्रीनगर में तीन माशे की चांदी की मुद्रा प्रचारित की। इस पर एक ओर फारसी लिपि में 'आलमशाह बादशाह गाजी' और दूसरी ओर भी फारसी लिपि में 'महाराज जुद्ध विक्रम गीरवाण जरब श्रीनगर' लिखाहै। यह मुद्रा पूरी वृताकार न होकर अंडाकार है।

गोरखाराज्यकाल में इसी आकार-प्रकार की एक दूसरी मुद्रा प्रचलित थी। इस पर फारसी लिपि में एक ओर 'शाहआलमगीर बादशाह गाजी' और दूसरी ओर 'जरब जहानाबाद शाह दारुल खिलाफा' लिखाहै। मुगलसाम्राज्य की इस मुद्रा का प्रचार, जो उपरोक्त गोरखामुद्रा के समान तिमासी कहलातीथी, सूचित करताहै कि उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमी में गढ़वाल-कुमाऊंमें मुगलमुद्राओं का भी प्रचलन था।

उत्तराखण्ड में नेपाल-सरकार की ताम्बे की दो और मुद्राएं भी यत्र-तत्र मिलतीहैं। इनमें एक पर एक ओर श्री श्रीवीरविक्रमदेव और दूसरी ओर नेपाल सर्कार १६६२ लिखारहताहै। तथा दूसरी पर श्री श्री श्री सुरेन्द्रविक्रमशाहदेव १७८८ और श्री श्री श्री नेपाल सर्कार लिखा होताहै।

१- रतूड़ी--गढ़वाल का इतिहास--पृ० २४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गढ़वाल में मिलनेवाली दो अन्य मुद्राओं के चित्र प्रकाशित करके रतूड़ी ने लिखा है :—

(१) यह सिक्का चार आने भर है। इस पर तिब्बती लेख है, जो पढ़ा नहीं जाता। अनुमान है कि यह उस तिब्बती राजा का है, जिसकी राजधानी जाडगंगा के किनारे गढ़तांग में तिब्बत के मार्ग में थी। राजा अजयपाल ने उसे पराजित कर उसके राज्य को अपने राज्य में मिलालियाथा[1]।

(२) यह मोनाशाही तिमाशी है। इसका लेख पढ़ा नहीं जाता। सम्भवतः इसे गढ़वाल के किसी गढ़पति ने प्रचारित कियाथा[2]।

मैंने इन मुद्राओं के चित्र भारतीय मुद्रा-परिषद् बनारस के पास तथा अन्य कई विशेषज्ञों के पास भेजेथे। किन्तु मूल मुद्राओं के अभाव में कोई उनकी पहिचान अबतक नहीं करसका। अब मैं पुनः उनके चित्रों और अपने संग्रह की मुद्राओं को विशेषज्ञों के पास भेजरहाहूं। उनसे प्राप्त उत्तर परिशिष्ट में प्रकाशित कियाजाएगा।

जबतक लेख नहीं पढ़ेजाते तबतक उपरोक्त सारी पहचान अनिश्चित समझनी चाहिए। पृ० ३२० पर जिस भरसार का उल्लेख हुआहै, वह बनारस के पास है।

१- रतूड़ी गढ़वाल का इतिहास, पृ० २३६ २- रतूड़ी--उपरोक्त, पृ० २४०

—:o:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशित अभिलेख

कालसी, अशोक के शिलालेख[1]

लिपि—ब्राह्मी, भाषा—पाली, तिथि—विक्रमपूर्व २१९—१७५

(शिला की पूर्वी सतह पर)

प्रथम अभिलेख

१- 'इयं धंमलिपि देवानंपियेना पियदसिना लेखिता। हिदा नो किछि जिवे आलभितु पजोहितविये

२- नो पि चा समाजे कटविये। बहुका हि दोसा समाजसा देवानंपिये पियदसी लाजा दखति। अथ पि चा एकतिया समाजा साधुमता देवानंपियसा पियदसिसा लाजिने

३- पुले महानससि देवानंपियसा पियदसिसा लाजिने अनुदिवसं बहुनि पातसाहसानि अलंभियिसु सुपठाये। से इदानि यदा इयं धमंलिपि लेखिता तदा तिनि येवापानानि अलभियंति

४- दुवे मजूला एके मिगे। से पि चू मिगे नो धुवे। एतानि पि चु तिनि पानानि नो अलाभयिसंति।'

भावानुवाद—

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने लिखवायाहै। इस स्थान पर न किसी जीव का वध कियाजाए न उसकी वलि दीजाए। यहां समाज-उत्सव न मनायाजाए। क्योंकि देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी

१- हुल्स--कौरपस इन्सक्रिप्सनम् इंडिकारम्, जि० १, पृ० २७-४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को समाज-उत्सव में अनेक दोष दिखाईदेतेहैं। किन्तु कुछ ऐसे समाज-उत्सव भी हैं जिन्हें देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा उत्तम समझताहै।

पहले देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के रसोईघर में नित्य सहस्रों जीव मारेजातेथे। परन्तु जबसे यह धर्मलेख लिखवायागयाहै, तबसे तीन ही जीव मारेजातेहैं—दो मोर और एक हरिण। यह हरिण भी सदा नहीं माराजाता। भविष्य में ये तीन जीव भी नहीं मारेजाएंगे।

द्वितीय अभिलेख

४- 'सवता विजितसि देवानंपियसा पियदसिसा लाजिने ये अंता अथा चोडा पडिया सातियपुतो केललपुतो तंबपंनि

५- अंतियोगे नाम योनलाजा ये चा अंने तसा अंतियोगसा सामंता लाजानो सवता देवानंपियसा पियदसिसा लाजिने दुवे चिकिसका कटा मनुसचिकिसा चा पसुचिकिसा चा ओसधीनि मनुसोपगानि चा पसोपगानि चा अतता नथि

६- सवता हालापिता चा लोपापिता चा। एव मेवा मुलानि चा फलानि चा अतता नथि सवता हालापिता चा लोपापिता चा। मगेसु लुखानि लोपितानि उदुपानानानि चा खानापितानि पटिभोगाये पसुमुनिसानं।'

भावानुवाद–

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीतेहुए राज्य में सर्वत्र तथा (उसके राज्य की) सीमापर स्थित चोल, पांड्य, सातियपुत्र और केरल पुत्र के राज्यों में ताम्रपर्णी (श्रीलंका) तक, एवं यवनराज अंतियोक तथा उसके पड़ोसी नरेशों के देशों में सर्वत्र देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा ने दो प्रकार की चिकित्साओं का प्रबन्ध कियाहै—मनुष्यों की चिकित्सा का और पशुओं की चिकित्सा का।

जहां मनुष्यों के उपयोग की और पशुओं के उपयोग की ओषधियां नही मिलतीहैं, वहां वे सर्वत्र भिजवाई और लगवाईगईहैं। इसीप्रकार जहां मूल और फल नहीं थे, वहां वे सर्वत्र भिजवाएगए और लगवाए गएहैं। मनुष्यों और पशुओं के उपयोग के लिए मार्गों पर वृक्ष लगवाएगएहैं और कुएं खुदवाएगएहैं।

तृतीय अभिलेख

६- 'देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा।

७- दुवाडसवसाभिसितेन मे इयं आनपयिते। सवता विजितसि मम युता लजूके पादेसिके पंचसु पंचसु वसेसु अनुसंयानं निखमंतु एताये वा अठाये इमाय धंमनुसथिया यथा अंनाये पि कंमाये। साधु

८- मातापितिसु सुसुसा मितसंयुतनातिक्यानं चा बंभनसमनानं चा साधु दाने पानानं अनालंभे साधु अपवियाता अपभंडता साधु। पलिसा पि चा युतानि गननसि अनपयिसंति हेतुवता चा वियंजनते चा।'

भावानुवाद—

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा--अपने अभिषेक से बारहवें वर्ष में मैंने यह आज्ञा दी। मेरे राज्य में सर्वत्र युक्त, राजुक और प्रादेशिक (कर्मचारी) प्रति पांचवें वर्ष इस धर्मशिक्षा के लिए तथा दूसरे कार्यों के लिए दौरे पर जावें।

माता-पिता की सेवा करना प्रशंसनीय है। मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दानदेना प्रशंसनीय है। जीवहिंसा न करना उचित है। मितव्ययता तथा अल्पसंग्रह प्रशंसनीय है।

(महामात्रों की) परिषद् भी इसीप्रकार का आदेश युक्तों को देगी कि वे नियमानुसार युक्तिसंगत रूप में अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ अभिलेख

९- 'अतिकंतं अंतलं बहुनि वससतानि वधिते वा पानालंभे विहिसा चा भुतानं नातिना असंपटिपति समनबंभनानं असंपटिपति। से अजा देवानंपियसा पियदसिने लाजिने धंमचलेनना भेलिघोसे अहो धंमघोसे विमनदसना

१०- हथिनि अगिकंधानि अंनानि चा दिव्यानि लुपानि दसयितु जनस। आदिसा बहुहि बसतेहि ना हुतपुलुवे तादिसे अजा वढ़िते देवानंपियसा पियदसिने लाजिने धंमनुसथिये अनालंभे पानानं अविहिसा भूतानं नातिनं

११- संपटपति बंभनसमनानं संपटिपति माता-पितिसु सुससा। एसे चा अंने चा बहुविधे धंमचलने बधिते। वधियिसति चेवा देवानंपिये पियदसि लाज इमं धंमचलनं। पुता च कं नताले वा पनातिक्या चा देवानंपियसा पियदसिने लाजिने

१२- पवढयिसंति चेव धंमचलनं इमं आवकपं धंमसि सीलसि चा चिठितु धंमं अनुसासिसंति। एसे हि सेठे कंमं अं धंमानुसासनं। धंमचलने पि चा नो होति असिलसा। से इमसा अथसा वधि अहिनि चा साधु। एताये अथाये इयं लिखिते

१३- इमसा अथसा वधि युजंतु हिनि च मा आलोचयिसु। दुवाडसवशाभिसितेना देवानंपियेना पियदशिना लाजिना लेखिता।'

भावानुवाद—

बहुत समय बीतगया, सैकड़ों वर्षों तक प्राणियों की वलि, जीवों की हिंसा, सम्बन्धियों से दुर्व्यवहार तथा श्रमण एवं ब्राह्मणों के प्रति आदर का अभाव बढ़ता ही गया।

किन्तु आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी का शब्द (युद्ध के स्थान पर) धर्म की घोषणा बनगयाहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे जनता को दिव्य रथों, हाथियों एवं अग्निस्कन्धों (प्रकाश) आदि कई अन्य प्रकार के दिव्यरूपों के दर्शन होनेलगेहैं।

जैसा कि सैंकडों वर्षों से पहले कभी नहीं हुआथा, वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मोपदेश से पशुहत्या की समाप्ति जीवों के प्रति अहिंसा, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों का सत्कार, माता-पिता की सुश्रूषा, ऐसे तथा अन्य अनेक प्रकार के धर्माचरणों का प्रचार बढ़ाहै।

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा इसको इसीप्रकार बढ़ातारहेगा। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पूत, नाती तथा पड़नाती भी इस धर्माचरण को सृष्टि के अन्त तक बढ़ातेरहेंगे। तथा धर्म और शील का पालन करहुए धर्म का उपदेश करेंगे।

यह धर्म का प्रचार सर्वोत्तम कार्य है। शीलरहित व्यक्ति के लिए धर्माचरण असम्भव है। इसकी रक्षा और वृद्धि करना प्रशंसनीय कार्य है।

इसीलिए यह (अभिलेख) लिखायागयाहै कि (मेरे उत्तराधिकारी) इसकी वृद्धि में लगेरहें और इस की अवनति न देखें (न होने दें)। द्वादश वर्ष से अभिषिक्त देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस (अभिलेख) को लिखवाया।

पाँचवाँ अभिलेख

१३- 'देवानंपिये पियदसि लाजा अहा। कयाने दुकले। ए आदिकले कयानसा से दुकलं कलेति। से ममया बहु कयाने कटे। ता ममा पुता चा नताले चा

१४- पलं चा तेहि ये अपतिये मे अवाकपं तया अनुवटिसंति से सुकटं कछंति। ए चु हेता देसं पि हापसियति से दुकटं कछति। पापे हि नामा सुपदालये। से अतिकंतं अंतलं नो हुतपुलुव धंममहामता नामा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेदसवसाभिसितेना ममया धंममहामाता कटा। ते सवपासंडेसु वियापटा

१५- धंमाधिथानाये चा धंमवढिया हिदसुखाये वा धंमयुतसा येनकंबोजगधालानं ए वा पि अंने अपलंता। भटमयेसु बंभनिभेसु अनथेसु बुधेसु हिदसुखाये धंमयुताये अपलिबोधाये वियपटा ते। बंधनबधसा पटिविधानाये अपलिबोधाये मोखाये चा एयं अनुबधा पजाव ति वा

१६- कटाभिकाले ति वा महालके ति वा वियापटाते। हिदा बाहिलेसु चा नगलेसु सवेसु ओलोधनेसु भातिनं च ने भगिनिना ए वा पि अंने नातिक्ये सवता वियापटा। ए इयं धंमनिसिते ति वा दानसुयुते ति वा सवता विजितसि ममा धंमयुतसि वियपटाते धंममहामता। एताये अठाये

१७- इयं धंमलिपि लेखिता चिलथितिक्या होतु तथा च मे पजा अनुवततु।'

भवानुवाद-

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कहा---भले कार्य करना कठिन है। जो व्यक्ति भले कार्य आरम्भ करताहै वह कठिन कार्य करताहै। मैंने बहुत-से भले कार्य किएहैं। अस्तु यदि मेरे पूत, नाती और उनके पश्चात् मेरे वंशज कल्पांत तक उनका अनुशरण करेंगे तो वे पुण्य करेंगे। जो इसके अंशमात्र की भी अवहेलना करेंगे वे पाप करेंगे। पाप को निश्चय ही नष्ट करदेना चाहिए।

पहले धर्म के महामात्र नहीं होतेथे। अपने अभिषेक के तेरहवें वर्ष में मेरे द्वारा धर्म के महामात्र नियुक्त किएगए। वे धर्म की रक्षा और वृद्धि के लिए तथा धार्मिक मनुष्यों की भलाई एवं सुख के लिए सभी मतावलंबियों के बीच नियुक्त किएगएहैं। वे यवनों, कम्बोजों, गंधारनिवासियों तथा अन्य लोगों में भी, जो अपरांत के निवासी हैं, नियुक्त किएगएहैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे छोटे-बड़े कर्मचारियों, ब्राह्मणों, श्रेष्ठ पुरुषों, अनाथों तथा वृद्धों के हित-सुख के लिए तथा धार्मिक व्यक्तियों की रक्षा के लिए एवं ऐहिकबन्धनों से मुक्ति के लिए नियुक्त किएगएहैं।

उनका कर्त्तव्य राजकीय अनुदानों को देखना तथा अकारण बन्धन में पड़ेहुए भारग्रस्त दुखी या वृद्धों को छुटकारादेना है। इसीलिए वे सर्वत्र नियुक्त हैं---मेरे अन्तःपुरों में, मेरे भाइयों, बहनों तथा अन्य सम्बन्धियों के यहां, चाहे वे पाटलिपुत्र में रहतेहों या बाहर के नगरों में।

मेरे राज्य में प्रत्येक स्थान पर वे (धर्ममहामात्र) उन लोगों के सम्पर्क में हैं, जो धर्मवान् हैं, धर्म की प्रतिष्ठा करतेहैं और दानदाता हैं।

इसीलिए यह धर्मलिपि लिखादीगई कि यह चिरस्थायी हो और मेरी प्रजा इस मार्ग का अनुवर्तन करे।

छटा अभिलेख

१७- 'देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा। अतिकंतं अंतलं नो हुतपुलुवे सवं कलं अठकंमे वा पटिवेदना वा। से ममया हेवं कटे। सवं कालं अदमानसा मे

१८- ओलोधनसि गभागालसि वचसि विनितसि उयानसि सवता पटिवेदका अठं जनसा...वेदेतु मे। सवता चा जनसा अठं कछामि हकं। यंपि चा किछि मुखते आनपयामि हकं दापकं वा सावकं वा ये वा पुना महामतेहि

१९- अतियायिके आलोपिते होति तायेठाये विवादे निझति वा संतं पलिसाये अनंतलियेनापटि...विये मे सवता सवं कालं। हेवं आनपयिते ममया। नथि हि मे दोसे उठानसा अठसंतिलनाये चा। कटवियमुते हि मे सवलोकहिते। तसा चा पुना एसे मुले उठाने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०- अठसंतिखनाये चा। कटवियमुते हि मे सवलोकहितेना यं च किछि पलकमामि हकं किति भुतानं अननियं येहं हिद च कानि सुखायामि पलत चा स्वगं आलाधयितु। से एतायेठाये इयं धंमलिपि लेखिता चिलठितिक्या होतु तथा च मे पुतदाले पलकमातु सवलोकहिताये।

२१- दुकूले चु इयं अनता अगेना पलकमेना।'

भावानुवाद-

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा बोला। बहुत समय बीत गया। पहले किसी भी समय, किसी भी कार्य में संलग्न (राजा को) विवरण देने की सुविधा न थी।

अत: मैंने ऐसा किया कि प्रत्येक समय और स्थान पर—चाहे मैं भोजन करताहोऊं, या अन्त:पुर में, एकान्तगृह में, गोचरभूमि में, घोड़े की पीठ पर या क्रीडोद्यान में होऊं,—सूचनावाहक (प्रत्येक समय) मुझसे प्रजासम्बन्धी सूचना निवेदन करसकतेहैं। क्योंकि मैं प्रत्येक समय प्रजा का ही कार्य करताहूं।

और जो-कुछ मौखिकदान की या घोषणा करने की मैं आज्ञा देताहूं, तथा विशेष आवश्यकता पड़ने पर महामात्र लोग जो घोषित करतेहैं, यदि उसके सम्बन्ध में परिषद् में कोई विरोध या विवाद उपस्थित हो तो उसकी सूचना मुझे किसी भी समय और किसी भी स्थान पर दीजासकतीहै। ऐसी मेरी आज्ञा है।

सभी का हित करना मेरा सर्वोच्च कर्तव्य है। उसका मूलमंत्र यह है कि जुटकर प्रयत्न कियाजाए और कार्य की पूर्ति कीजाए।

सबकी भलाई से बढ़कर दूसरा कार्य नहीं है। जो भी सीमित उद्योग मैं करताहूं वह प्राणियों से उऋण होने के लिए करताहूं, जिससे वे इस लोक में सुखी बनें और परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी हेतु यह धर्मलेख लिखवायाहै कि यह चिरकाल तक रहे। मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इसका पालन करतेहुए जनता के हित के लिए उद्योग करें।

बिना पूरा-पूरा प्रयत्न किए इसमें सफलता नहीं मिलसकती।

सातवाँ अभिलेख

२१- 'देवानंपिये पियदसि लाजा सवता इछति सबपासंड वसेवु। सवे हि ते समयं भावसुधि चा इछंति। जने चु उचावचाछंदे उचावुचलागे। ते सवं एकदेसं पि कछंति। विपुले पि चु दाने असा नथि

२२- सयमे भावसुधि किटनाता दिढभतिता चा निचे बाढं।'

भावानुवाद–

देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा चाहताहै कि सभी धर्मावलम्बियों को सर्वत्र वसने की सुविधा हो। क्योंकि वे सब ही इन्द्रियनिग्रह और भाव की शुद्धि चाहतेहैं।

मनुष्यों की विभिन्न रुचि और आकांक्षाएं होतीहैं। उनमें से कुछ (अपना कर्तव्य) पूरा निभातेहैं। कुछ अल्पमात्र ही निभासकतेहैं।

जिनके पास दान के लिए अधिक धन नहीं है वे भी यदि सदा संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़भक्ति रखें तो (उनका भी) कल्याण (होसकताहै)।

आठवाँ अभिलेख

२२- 'अतिकंतं अंतलं देवानंपिया विहालयातं नाम निखमिसु। हिदा मिगविया अंनानि चा हेदिसाना अभिलामानि हुसु। देवानं पिये पियदसि लाजा दसवसाभिसिते संतं निखमिथा संबोधि।

२३- तेनता धंमयाता। हेता इयं होति समनबंभनानं दसने चा दाने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

च बुधानं दसने च हिलनं पटिविधाने चा जानपदसा दसने धंमनुसथि चा धंमपलिपुछा चा ततोपया। एसे भुये लाति होति देवानंपियस। पियदसिसा लाजिने भागे अंने।'

भावानुवाद—

बहुत समय बीतगया। देवताओं के प्यारे (नरेश) विहार के लिए यात्रा करतेथे। उसमें आखेट और अन्य प्रकार के आमोद-प्रमोद होतेथे।

दस वर्ष पूर्व अभिषिक्त देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा सम्बोधि (यात्रा) के लिए निकला।

इसीलिए यह धर्मयात्रा कीगई। इसमें ब्राह्मणों और भिक्षुओं के दर्शन होतेहैं तथा उनको दान दियाजाताहै। इसमें वृद्धों के दर्शन होतेहैं, तथा उनको सुवर्णदान दियाजाताहै।

जनपदवासियों से मिलने, उनको धर्मोपदेश देने तथा धर्मसम्बन्धी पूछताछ करने का समय मिलताहै।

देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा इन आनन्दमय धर्मयात्राओं को अपना अहोभाग्य समझताहै।

नवाँ अभिलेख

२४- 'देवानंपिये पियदसि लाजा आहा। जने उचावुचं मंगलं कलेति आबाधसि अवाहसि विवाहसि पजोपदाने पवाससि एताये अंनाये चा यदिसाये जने बहु मंगलं कलेति। हेतु च अबकजनियो बहु चा वहुविधं चा खुदा चा निलथिया चा मंगलं कलंति।

२५- स कटविचेव खो मंगले। अपफले चु खो एसे। इयं चु खो महाफले चे धंममगले। हेता इयं दासभटकसि सम्यापटिपति गुलुना अपचिति पानानं संयमे समनवंभनानं दाने एसे अंने चा हेडिसे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धंममगले नामा। से वतविये पितिना पि पुतेन पि भातिनापि सुवामिकेन पि मितसंथुतेना अव पटिवेसियेना पि

२६- इयं साधु इयं कटविये मगले आव तसा अथसा निवुतिया इमं कछामि ति। एहि इतले मगले संसयिक्ये से। सिया व तं अठं निवटेया सिया पुना नो। हिदलोकिके चेव से। इयं पुना धंममगले अकालिक्ये। हंचे पि तं अठंनो निटेति हिद अठं पलत अनंतं पुना पवसति। हंचे पुन तं अठं निवतेति हिदा ततो उभयेस

२७- लधे होति हिद चा से अठे पलत चा अनंतं पुना पसवति तेना धंममगलेना।'

भावानुवाद-

देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा बोला। मनुष्य अनेक प्रकार के मंगलकार्य करताहै। रोग में, निमंत्रण में, बिवाह में, पुत्र होने पर, बाहर जाते समय और इसीप्रकार के अन्य अवसरों पर मंगलकार्य किएजातेहैं।

इन अवसरों पर माताएं अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करतीहैं। मंगलकार्य तो अवश्य करनेचाहिए! परन्तु ये अल्पफल देनेवाले होतेहैं।

किन्तु धर्मसम्बन्धी मंगलकार्य महाफल देनेवाले होतेहैं। क्योंकि इन (धर्मसम्बन्धी मंगलकार्यों) में दासों और सेवकों के साथ सद्व्यवहार कियाजाताहै। गुरुजनों की पूजा कीजातीहै। प्राणियों के प्रति संयम (अहिंसा) का व्यवहार कियाजाताहै। भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान दियाजाताहै। ये और ऐसे ही अन्य कार्य धर्ममंगल कहलातेहैं।

पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र तथा परिचित व्यक्तियों को यही उपदेश देनाचाहिए—'धर्ममंगल श्रेष्ठ मंगल है। यह धर्ममंगल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवनभर करनाचाहिए। ऐसा मैं (अवश्य) करूंगा'।

इससे भिन्न दूसरे प्रकार के सभी मंगलाचरण संशयपूर्ण होतेहैं। उनसे कार्य की सिद्धि हो या न हो। वे केवल इसी लोक के लिए होतेहैं।

किन्तु धर्ममंगल सदा के लिए उपादेय है। यदि उससे इस लोक में कार्य की सिद्धि न हो तो भी उससे परलोक में अनन्त फल की प्राप्ति होतीहै। यदि उससे इस लोक में भी उद्देश्य की सिद्धि होजाए तो उससे दोनों लाभ प्राप्त होजातेहैं—अर्थात् इस लोक में कार्यसिद्धि और परलोक में अनन्त पुण्यप्राप्ति।

दसवां अभिलेख

२७- 'देवानंपिये पियदषा लजा यषो वा किति वा नो महथावा मनति अनता यं पि यसो वा किति वा इछति तदत्वाये अयतिये चा जने धंमसुसुषा सुसुषातु मेति धंमवतं वा अनुविधियंति ति। धतकाये देवानंपिये पियदषि

२८- लाजा यषो वा किति वा इछ। अं चा किछि लकमिति देवनंपिये पियदषि लजा त षव पालंतिक्याये वा किति सकले अपपलाषवे षियाति ति। एषे चु पलिसवे ए अपुने। दुकले चु खो एषे खुदकेन वा वगेना उषुटेन वा अनत अगेना पलकमेना षवं पलितिदितु। हेत चु खो

२९- उषटेन वा दुकले।'

भावानुवाद-

देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति को विशेष महत्व नहीं देता। वह केवल इतना ही यश या कीर्ति चाहताहै कि लोग वर्तमान में और भविष्य में भी (उसके) धर्मवाक्यों को सुनें और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मव्रत का अनुकरण करें। केवल इसी हेतु देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति की इच्छा करताहै।

जो-कुछ उद्योग देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा करताहै, वह सब परलोक के लिए ही है जिससे सब लोग अधोगति से बचजाएं। यह अधोगति ही पाप है।

किन्तु बिना प्रबल उद्योग के, बिना सब-कुछ त्याग किए छोटे या बड़े किसी भी व्यक्ति के लिए यह कार्य करना बड़ा कठिन है। निश्चय ही सम्पन्न लोगों के लिए ऐसा करना बड़ा दुष्कर है।

ग्यारहवाँ अभिलेख

२९- 'देवानंपिये पियदषि लाजा हेवं हा। नथि हेडिषे दाने अदिष धमंदाने। धमंषविभगे। धमंषबंधे। तत एषे दाषभटकषि। षम्या-पटिपति मातापितिषु षुषुषा। मितषं, थुतनातिक्यानं समनाबंभनाना दाने

३०- पानानं अमालभे। एषे वतविये पितिमा पि पुतेन पि भातिना पि षवामिकयेन पि मितशंथुताना अवा पटिवेषियेना इयं षाधु इयं कटविये। शे तथा कलंत हिदलोकिक्ये च कं आलधे होति पलत चा अनत पुना पशवति तेना धंमदानेना।'

भावानुवाद—

देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा इस प्रकार बोला। धर्मदान (धर्मोपदेश) के समान कोई दान नहीं है। धर्म से परिचय या सम्बन्ध करने के समान कोई परिचय या सम्बन्ध नहीं है।

इसलिए दासों और सेवकों के साथ उचित व्यवहार करना, माता-पिता की सेवा करना, मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान देना तथा जीवहिंसा न करना उचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'यह श्रेष्ठ है। ऐसा करनाचाहिए'—ऐसा उपदेश पिता को, पुत्र को, भ्राता को, स्वामी को, मित्र को, परिचित को और पड़ोसी को भी देनाचाहिए। ऐसा करनेवाला इस लोक को सुधारताहै। और इस धर्मदान से परलोक में भी अनन्त पुण्य को प्राप्त करताहै।

बारहवाँ अभिलेख

३०- 'देवानापिये पियदषि

३१- लाजा षावापाषंडानि पवजितानि गहथानि वा पुजेति दानेन विवधये च पुजाये। नो चु तथा दाने वा पुजा वा देवानंपिये मनति अथा कित शालावढि शियाति शवपाशडान। शालावढि ना बहुविधा। तश चु इनं मुले अ वचगुति किति ति अतपशड वा पुजा वा पलपाशंडगलहा व नो शया

३२- अपकलनशि लहका वा शिया तगितशि पकलनशि। पुजेतविय चु पलपाशडा तेन तेन अकालन। हेव कलत अतपाशडा बढं बढियति पलपाशड पि वा अपकलेति। तदा अनथ कलत अतपाशड च छनति पलपाशड पि वा अपकलेति। ये हि केछ अतपाशड पुनाति

३३- पलपाषड वा गलहति। षवे अतपाषंड भतिया वा किति। अतिपाषंड दिपयेम षे च पुना तथा कलंतं। बाढतले उपहंति अत-पाषंडषि। षमवाये वु षाधु किति। अंनमनषा धंमं। षुनेषु चा षुषुषेय चाति। हेव हि देवानंपियषा इछा किति

३४- सवपाषंड। बहषुता चा कयानागा च हुवेयुति। ए च तत तत पषंना तेहि वतविये। देवानापिये नो तथा दानं वा पुजा वा मंनति। अथ किति षालावढि शिया षवपाषंडति। बहुका चा एतायाठाचे वियापटा धंममहामाता इथिधियखमहामाता वचभुमिक्या अने वा निक्याया

३५- इयं च एतिषा फले। यं अतपाषंडवढि चा होति धंमष चा दिपना।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद—

देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी राजा सभी धर्मों के अनुयायियों को, सन्यासियों को और गृहस्थियों को दान से तथा अनेक प्रकार के सत्कार से पूजताहै। परन्तु देवताओं का प्यारा दान और पूजा से भी अधिक महत्व सभी धर्मावलंबियों की तात्विक उन्नति को देताहै।

यह तात्विक उन्नति अनेक प्रकार की है। पर इसका मूल वाणी का संयम है। क्योंकि इससे अकारण अपने धर्म की स्तुति और पराए धर्म की निन्दा नहीं होती।

ऐसा किसी विशेष अवसर पर ही कियाजासकताहै। पर ऐसे अवसर पर भी दूसरे धर्मवालों के मतों का आदर करनाचाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने पंथ की उन्नति और दूसरे के पंथ का उपकार करताहै। इससे विपरीत करने से अपने पंथ की हानि होतीहै और दूसरों के पंथ की भी।

यदि कोई अपने पंथ पर श्रद्धा रखने के कारण या अपने पंथ की उन्नति की अभिलाषा से अपने धर्मवालों को पूजताहै और दूसरे धर्मवालों का अपकार करताहै तो ऐसा करने से वह अपने ही पंथ का घोर अपकार करताहै।

अतः प्रेमव्यवहार ही उत्तम है। क्योंकि इससे अन्य धर्मावलम्बी भी दूसरों के धर्म को सुनसकतेहैं। देवताओं के प्यारे (राजा) की ऐसी इच्छा है कि सभी धर्मों के अनुयायी बहुश्रुत और पवित्रजीवनवाले बनें।

प्रत्येक धर्म के अनुयायियों से कहनाचाहिए—'देवताओं का प्यारा (राजा) सब धर्मवालों की तात्विक उन्नति तथा व्यापक दृष्टिकोण के समान किसी दान या पूजा को नहीं मानता।'

सभी के लिए अनेक महामात्र, स्त्री-अध्यक्ष महामात्र, व्रजभूमिक, तथा दूसरे अधिकारीवर्ग नियुक्त किएगएहैं। इसका लक्ष्य है—अपने-अपने पंथ की वृद्धि और धर्म की उन्नति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेरहवाँ अभिलेख

३५- अठवषा भिषितषा देवानंपियष पियदषिने लाजिने कलिग्या विजिता। दियढमिते पानषतषहशे ये तफा अपबुढे शतषहषमिते तत हते बहुतावतके वा मटे। ततो पछा अधुना लधष कलिग्येषु तिव्रे धंमवाये

३६- धमंकामता धंमानुषथि चा देवानंपियषा। षे अथि अनुषये देवानंपियषा विजिनितु कलिग्यानि। अविजितं हि विजिनमने। ए तता वध वा मलने वा अपवहे वा जनषा। षे बाढ वेदनियमुते गुलुमुते चा देवानंपियषा। इयं पि चु ततो गलुमतले देवानंपियषा

३७- य तता वषति बाभना व षमना अने वा पाशंड गिहिथा वा येशु विहिता एष अगभुतिषुषुषा माता पितिषषुषा गलुषुषा मितपंथुत षहायनातिकेशु दाशभटकषि षम्यापटिपति दिढभतित तेषं। तता होति उपघाते वा वधे वा अभिलतानं वा। विनिखमने

३८- येषं वा पि षुविहितानं षिनेहे अविपहिने ए तानं मितशंथुत-षहायनातिक्य वियषनं पापुनात तता षे पि तानमेवा उपघाते होति। पटिभागे चा एष षवमनुषानं गुलुमते चा देवानंपियषा। नथि चा षे जनपदे यता नथि इमे निकाया आनता योनेषु

३९- बंह्मने चा षमने चा नथि। चा कुवापि जनपदषि यता नथि मनुषान एकतलषि पि पाषडपि नोनाम पषादे। षे अवतके जने तदा कलिंगेषु लधेषु हते चा मटे चा अपबुढे चा ततो षते भागे वा षहषभागे वा अज गुलुमते वा देवानंपियषा।

(शिला की दक्षिणी सतह पर)

१- ... ...

२- ... ...

३- ... नेयु इछ ...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४- षत्रभु......षयम षमचलियं मदव ति। इयं वु मु......
५- देवानं पियेषा ये धंमविजये। षे च पुना लघे देवानंपि......च
६- षवेषु च अतेषु अषषु षि योजनषतेषु अत अतियोगे नाम योन
ला (जा) पलं चातेना
७- अंतियोगेना चतालि। लजाने तुलमये नाम अंतकिने नाम मका ना-
८- म अलिक्यषुदले नाम निचं चोडपंडिया अवं तंबपंनिया हेवमेवा।
हेवमेवा
९- हिदा लाजविशवषि योनकंबोजेषु नाभकनाभपंतिषु भोजपितिनि क्येषु
१०- अधपालदेषु षवता देवानंपियषा धंमानुषथि अनुवंतंति। यत पि दुता
११- देवानंपियसा नो यंति ते पि सुतु देवानं पिनंय धंमवुतं विधनं
१२- धंमानुसथि धंमं अनुविधियं अ अनुविधियिसंअ चा। ये से लधे
१३- एतकेना होति सवता विजये पितिलसे से। गधा सा होति पिति
पिति धमंविजय
१४- षि। लहुका वु खो सा पिति। पालंतिक्यमेवे महफला मंनंति
देवनंपिये।
१५- एताये चा अठाये इयं धंमंलिपि लिखिता किति पुता पपोता में असु
१६- नवं विजय म विजयतविय मनिषु षयकषि नो विजयषि खंति चा
ल। ह—
१७- दंडता चा लोचेतु तमेव चा विजयं मनतु ये धंमविजये। षे
हिदलोकिक्य पललो
१८- किये। षवा च क निलति होतु उयामलति। षा हि हियलोकिक
पललोकिक्या।'

भावानुवाद—

आठ वर्ष से अभिषिक्त देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने कलिंग को विजय किया। इसमें डेढ़ लाख मनुष्य पकड़ेगए। एक लाख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मारेगए और इससे भी अधिक नष्ट होगए।

उसके पश्चात् अब जीतेहुए कलिंगदेश में देवताओं के प्यारे राजा के द्वारा धर्म का सम्यक् पालन, धर्मकार्य तथा धर्मोपदेश किया जाताहै।

देवताओं के प्यारे को कलिंग जीतने का परिताप है। जब एक अविजित राज्य को जीताजाताहै तब युद्ध में मनुष्यों का वध, मृत्यु और बंधन होताहै। यह पीड़ाजनक है। अतः देवताओं का प्यारा इसे अत्यन्त दुःखद एवं संतापदायक समझताहै।

पर इससे भी अधिक पीड़ाजनक बात यह है कि वहां (विजित देश में) ऐसे ब्राह्मण, श्रमण, अन्य पंथवाले या गृहस्थ रहतेहैं, जिन पर बड़ों और वृद्धों की, माता-पिता की, गुरुजनों की, तथा मित्रों, परिचितों, सहायकों, सम्बन्धियों, दासों एवं सेवकों के प्रति सद्व्यवहार और श्रद्धा का उत्तरदायित्व रहताहै।

उनका युद्ध में नाश होताहै, या उन्हें क्षति पहुंचतीहै। अथवा उन्हें अपने प्रिय लोगों से पृथक् होनापड़ताहै। साधारण जीवन बितानेवाले सज्जनों के प्यारे मित्र, परिचित, सहायक तथा सम्बन्धी कष्ट में पड़तेहैं। यह दुख भी उन सज्जनों को क्लेश पहुंचाताहै। उन भद्रपुरुषों के भाग्य का यह प्रतिघात देवताओं के प्यारे के लिए बड़े संताप का विषय है।

यवनों के अतिरिक्त ऐसा कोई अन्य जनपद नहीं है, जहां ब्राह्मण और श्रमण न रहतेहों। इन जनपदों में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां के निवासियों का किसी न किसी धर्म में अनुराग न हो।

कलिंग में जितने मनुष्य मारेगए, नष्टहुए या पकड़ेगए उनका सौवां या सहस्रवां भाग भी अब देवताओं के प्यारे के लिए असह्य है।

... समस्त प्राणियों को . . . . संयम, निस्वार्थ भावना (तथा) दया की कामना करताहै। . . . . किन्तु यह . . . धर्मविजय . . .

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवताओं के प्यारे के द्वारा धर्मविजय सब विजयों से मुख्य समझीजातीहै। यह विजय देवताओं के प्यारे के द्वारा यहां प्राप्त कीगईहै तथा सीमावर्ती राज्यों में छै सौ योजन पर्यन्त भी (प्राप्त की गईहै) जहां अंतियोक नामक यवन राजा है। और उस अंतियोक के राज्य से आगे भी जो चार शासक—तुरमंय, अंतिकिन, मग तथा अलिक सुन्दर हैं, उनके राज्यों में भी (प्राप्त कीगईहै)।

उसी प्रकार नीचे चोड़, पांड्य तथा ताम्रपर्णी तक में। और इसी भांति राजाओं के शासनांतर्गत यवन, कंबोज, नाभक, नाभपंति भोज, पितिनिक, आंध्र तथा पुलिंद लोगों में सर्वत्र देवताओं के प्यारे की धर्मसम्बन्धी शिक्षाओं का पालन होताहै।

जहां देवताओं के प्यारे के दूत नहीं जाते वहां के लोग भी देवताओं के प्यारे के धर्मप्रवचनों, नियमों, और आज्ञाओं को सुनकर धर्म का पालन करतेहैं और करतेरहेंगे।

इसप्रकार सर्वत्र जो धर्मविजय प्राप्त होतीहै, वह प्रेमभाव को उत्पन्न करनेवाली है। धर्मविजय द्वारा वह प्रेमभाव मुझे प्राप्त हुआहै। वह प्रेम देखने में साधारण होसकताहै परन्तु देवताओं के प्यारे की धारणा है कि वह निश्चय ही परलोक में महान् फलदायक है।

इसीलिए यह धर्मलिपि लिखाईगईहै कि मेरे पुत्र और प्रपौत्र किसी दूसरी नवीन विजय को प्राप्त करने का प्रयत्न न करें। यदि वे किसी विजय की कामना करें तो वह क्षमा या लघुदंड होनाचाहिए।

उन्हें समझनाचाहिए कि जो धर्मविजय है, वही वास्तविक विजय है वह इहलोक में तथा परलोक में लाभकारी है। धर्म की प्रीति ही शासन की वास्तविक प्रीति है। वह इहलोक और परलोक दोनों में हितकर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौदहवाँ अभिलेख

१९- 'इयं धंमलिपि देवानंपियेना पियदशिना लजिना लिखापिता अथि येवा सुखि—

२०- तेना अथि माझमेना अथि वियटेना। नोहि सबता सवे घटिते। महालके हि वि—

२१- जिते वहु च लिखिते लेखापेशामि चेव निक्यं। अथि चा हेता पुन पुना लपि—

२२- ते तष तषा अथष। मधुलियाये येन जने तथा पटिपजेया। षे षाया अत किछि अ—

२३- समति लिखिते दिषा वा षंखेये कालनं वा अलोचयितु लिपिक लपलाधेन वा।'

भावानुवाद-

यह धर्मलेख देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने लिखवायाहै। कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यमरूप में, और कहीं विस्तार से, क्योंकि सब स्थानों पर सभी (धर्मलिपियों) की आवश्यकता नहीं है।

मैंने बहुत-सी भूमि जीतीहै। बहुत-से लेख लिखवायेहैं। भविष्य में भी मैं बहुत-से लेख लिखवाऊंगा।

इस विषय की मधुरता के कारण बहुत-सी बातें बार-बार लिखीगईहैं। जिससे लोग उनका प्रयोग करें।

यदि कहीं कुछ अधूरा लिखागयाहो, तो ऐसा स्थानविशेष के कारण अथवा लेख खोदनेवाले की असावधानी के कारण समझाजावे।

बरहुत, धनभूति का तोरण-अभिलेख[1]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--प्राकृत, तिथि--विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी

१- 'सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस

१- हुल्श--इं० ऐं० जि० १४, पृ० १३८, उ० रा० व० पांडे--पृ० ४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२- पौतेण गोतिपुतस आगरजुस पूतेण
३- वाछिपुतेन धनभुतिन कारितं तोरनां
४- सिला कं मं तो च उपंण'

भावानुवाद-

इस तोरण और उससे संलग्न भित्ति का निर्माण स्रुघ्नराज्य[1] के नरेश गार्गीपुत्र विश्वदेव के पौत्र, कौत्सीपुत्र अग्रराज्य[2] के आत्मज वात्सीतनय धनभूति द्वारा कियागया ।

उज्जैन (काशीपुर), 'मित्र' नरेशों को इष्टिकालेख[3]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत से प्रभावित प्राकृत, तिथि--तीसरी श० वि०

१- ईंट--'राञो मातृमित्तस पुत्त' . . .
२- ईंट--'तस्य राज्ञो श्रीपृथिविमित्तस' . . .

भावानुवाद-

राजा मातृमित्र के पुत्र...
. . . उस राजा श्रीपृथिवीमित्र का . . . .

जगतराम, शीलवर्म्मन् का इष्टिकालेख[4]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि--तीसरी शताब्दी वि०

'युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपते ।
इष्टकावार्षगण्यस्य नृपतेश्शीलवर्मणः ।।'

१-२- कनिंघम और मित्र का अनुवाद
३- ओझा--प्राचीन भारतीय लिपिमाला, पृ० १५१
४- एनशिएंट इंडिया, जि० १, प्लेट ५९ ए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद–

वार्षगण्य के प्रधान युगशैल नामक देश के महीपति युगेश्वर राजा शीलवर्मन् के (चौथे)[१] अश्वमेध (के मंडप की) ईंट।

प्रयाग, समुद्रगुप्त का स्तंभशिलालेख[२]

लिपि—ब्राह्मी, भाषा—संस्कृत, तिथि--४०७ वि०

२२- 'समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्तृपुरादिप्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जुन - सनकानीक-काक - खरपरिकादिभिश्च सर्व्वकर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-

२३- परितोषितप्रचंडशासनस्य ..'

भावानुवाद–

जिसके प्रचंड शासन को समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमांतप्रदेशों के नरेश और मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खर्परिक आदि सब जातियां, सब प्रकार के कर देकर, आज्ञा मानकर, और प्रणाम करने के लिए आकर सन्तुष्ट करतेथे . . . ।

देवप्रयाग, यात्री-नामावली[३]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि-- दूसरी शताब्दी से पांचवीं शताब्दी

१- 'मानपर्वत	५- हिरण्य
२- मातृदत्तः	६- कटुकत्तम(भ)
३- मात्रि (तृ) चेटस्य	७- यज्ञ
४- ईश्वरदासः	८- श्री गुहवर्म्माः

१- रामचन्द्रन--ए० इंडिया, जि० ६, पृ० १४१

२- फ्लीट--उ० रा०व० पांडे--पृ० ७५

३- डा० छावड़ा--एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३०, पृ० १३३-३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९- गुहवम(र्म) आदित्यव(र्म्म)
१०- आदित्य
११- गुहीश्वरदत्त:
१२- (श्रीमद् गु) हेश्वरदत्त (स) य
१३- श्रीरुद्रवर्म (म) ण:
१४- स्कन्ददत्त:
१५- स्कन्ददत्त:
१६- रुद्रवृद्धि:
१७- अढिष्ठाण
१८- चतुर्व्य (्र) ह:
१९- भद्रवल:'

भावानुवाद—

उपरोक्त नामवाले व्यक्ति देवप्रयागतीर्थ में, और संभवत: इससे होकर आगे उत्तराखण्ड के तीर्थों में पहुंचेथे।

मन्दसौर, वन्धुवर्म्मन् का शिलालेख[1]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि--४९३ वि० से ५३० वि०

१३- 'चतु (स्समुद्रान्त) विलोल मेखलां
सुमेरु-कैलास-वृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं,
कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति' ॥

भावानुवाद-

चारों समुद्र, उस पृथिवी की, जिस पर कुमारगुप्त शासन करताहै, चंचल मेखला के समान हैं। सुमेरु और कैलास उसके तुंगस्तन हैं। और वन में वृक्षों से भरतेहुए पुष्पों के रूप में उसकी हंसी बिखरतीहै।

लाखामंडल, ईश्वरा का शिलालेख[2]

लिपि—ब्राह्मी, भाषा—संस्कृत, तिथि—छटी-सातवीं शताब्दी वि०

'सर्गस्थितिलयहेतोर्विश्वस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रणाम्।
मूर्तित्रयं प्रदधते संसारभिदे नमो विभवे ॥१॥

१- फ्लीट--उ० रा० व० पांडे--पृ० ८७ २- एफ० ई० हौल--
J. R. A. S. of B. & I. जि० २०, पृ० ४५४-५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद–

वार्षगण्य के प्रधान युगशैल नामक देश के महीपति युगेश्वर राजा शीलवर्मन् के (चौथे)[१] अश्वमेध (के मंडप की) ईंट।

प्रयाग, समुद्रगुप्त का स्तंभशिलालेख[२]

लिपि—ब्राह्मी, भाषा—संस्कृत, तिथि--४०७ वि०

२२- 'समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्तृपुरादिप्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जुन - सनकानीक-काक - खरपरिकादिभिश्च सर्व्वकर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-

२३- परितोषितप्रचंडशासनस्य ..'

भावानुवाद–

जिसके प्रचंड शासन को समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमांतप्रदेशों के नरेश और मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खर्परिक आदि सब जातियां, सब प्रकार के कर देकर, आज्ञा मानकर, और प्रणाम करने के लिए आकर सन्तुष्ट करतेथे . . .।

देवप्रयाग, यात्री-नामावली[३]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि-- दूसरी शताब्दी से पांचवीं शताब्दी

१- 'मानपर्वत	५- हिरण्य
२- मातृदत्तः	६- कटुकत्तम(भ)
३- मात्रि (तृ) चेटस्य	७- यज्ञ
४- ईश्वरदासः	८- श्री गुहवर्म्माः

१- रामचन्द्रन--ए० इंडिया, जि० ६, पृ० १४१

२- फ्लीट--उ० रा०व० पांडे--पृ० ७५

३- डा० छाबड़ा--एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३०, पृ० १३३-३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९- गुहवर्(र्म) आदित्यव(र्म्म)	१५- स्कन्ददत्तः
१०- आदित्य	१६- रुद्रवृद्धिः
११- गुहीश्वरदत्तः	१७- अधिष्ठाण
१२- (श्रीमद् गु) हेश्वरदत्त (स) य	१८- चतुर्व्य ( ) हः
१३- श्रीरुद्रवर्(म) णः	१९- भद्रवलः'
१४- स्कन्ददत्तः	

भावानुवाद—

उपरोक्त नामवाले व्यक्ति देवप्रयागतीर्थ में, और संभवतः इससे होकर आगे उत्तराखण्ड के तीर्थों में पहुंचेथे।

मन्दसौर, बन्धुवर्म्मन् का शिलालेख[1]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि--४९३ वि० से ५३० वि०

१३- 'चतु (स्समुद्रान्त) विलोल मेखलां
सुमेरु-कैलास-बृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं,
कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति' ॥

भावानुवाद-

चारों समुद्र, उस पृथिवी की, जिस पर कुमारगुप्त शासन करताहै, चंचल मेखला के समान हैं। सुमेरु और कैलास उसके तुंगस्तन हैं। और वन में वृक्षों से झरतेहुए पुष्पों के रूप में उसकी हंसी बिखरतीहै।

लाखामंडल, ईश्वरा का शिलालेख[2]

लिपि—ब्राह्मी, भाषा—संस्कृत, तिथि—छटी-सातवीं शताब्दी वि०

'सर्गस्थितिलयहेतोर्विश्वस्य ब्रह्मविष्णुरुद्राणाम्।
मूर्तित्रयं प्रदधते संसारभिदे नमो विभवे ॥१॥

१- फ्लीट--उ० रा० व० पांडे--पृ० ८७ २- एफ० ई० हौल--
J. R. A. S. of B. & I. जि० २०, पृ० ४५४-५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदुवंशसुतां राज्ञां सैंहपुरं राज्यमायुगाद्दधताम् ।
श्रीसेनवर्म्मनामा राजर्षिः प्रक्रमेणासीत् ॥२॥
तनयस्तस्य श्रीमान्नृपतिरभूदार्यवर्मनामैव ।
आर्यव्रततां प्रथमं ख्यापितवांस्तदनुयंश्चरितैः ॥३॥
श्रीदेववर्मनामादत्ताभयविभवविजयविध्वंसः ।
भीतार्थिकुलारिभ्यो बभूव तस्यात्मजो नृपतिः ॥४॥
सूनुरभूत्तस्य महान्भूपालः श्रीप्रदीप्तवर्मेति ।
दर्पान्धशत्रुपृतनापतङ्गपटलीप्रदीप्ताग्निः ॥५॥
श्रीईश्वरवर्मेति सुतस्तस्याभुत् भूपतिः प्रदानेन ।
ऐश्वर्यं यः कृतवान्भव इव निचयेन नार्थानाम् ॥६॥
श्रीवृद्धिवर्मसंज्ञस्तस्य बभूवात्मज प्रवृद्धश्रीः ।
चन्द्र इव तापाहारी नयनानां नन्दनो राजा ॥७॥
स्वभुजार्जित सौ (शौ) र्यं यशादानवतामुपरि दृष्टसामर्थ्यः ।
श्रीसिंहवर्मनामा तत्तनयो राजसिंहोऽभुत् ॥८॥
तस्य सुतोऽभुदाशापूरणकर्त्ता जनस्य तापच्छित् ।
श्रीजलनामा नृपतिः कलियुगदावाग्निजलवर्षः ॥९॥
श्रीयज्ञवर्मनामा तदङ्गजोऽभून्महीपतिर्येन ।
यज्ञाज्यधूमजलदैर्नित्यकेका कृताः शिखिनः ॥१०॥
पुत्रस्तस्य बभूव श्रीमान्राजर्षिरचलवर्मेति ।
कृतयुगचरितेष्वचलो यश्च स्थैर्यादिगुणसाम्यात् ॥११॥
यः समरे वङ्खलाख्यामन्वर्थवतीं दधाररणरौद्रः ।
अपरापगणितसंगरकरिरदनाग्राङ्कितोरस्कः ॥१२॥
तस्यदिवाकरवर्मा श्रीमांस्तनयो बभूव नृपतीशः ।
यस्य दिवाकरताभूत्परतेजोभिभवधर्मेण ॥१३॥
वारणविषाणसंकटसंगरबलचारिणः स्मृता यस्य ।
अकरोदरीनशस्त्रान्सपदि महा वङ्खलभटाख्या ॥१४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तस्यकनीयान्भ्राता श्रीभास्कर इत्यभून्नृपतिपालः ।
रिपुवङ्कलाभिधानं योऽवहदाजौ विजयमन्त्रम् ।।१६।।
स्वभुजार्जितपरराज्यद्रविणसदादानकर्मणः पाणेः ।
यस्यासीद्विमुखोऽसी रिपुपृष्ठक्षणनसंस्थितिषु ।।१६।।
येनाभिरूह्य पद्भ्यां पतत्रिगम्यानि शैलदुर्गाणि ।
आक्रम्य युद्धशौण्डा हस्तिकरं दापिताः क्षितिपाः ।।१७।।
तस्य गुणार्जितदेवीशब्दा श्रीकपिलवर्धनसुताभूत् ।
राज्ञी प्राणेशा श्रीजयावलीत्येकपत्नीव ।।१८।।
तस्यास्तनया साध्वी सावित्रीवेश्वरेति नाम्नासीत् ।
जालन्धरनृपसूनोर्जाया श्रीचन्द्रगुप्तस्य ।।१९।।
भर्तरि गतवति नाकं करिणः स्कन्धाद्भवास्पदमिदं सा ।
तत्पुण्यायाकारयदाचार्यानुगतमास्थानम् ।।२०।।
यावन्महीमहीधर जलनिधयो यावदिन्दुरविताराः ।
तावदिदमस्तु कीर्तिस्थानं श्रीचन्द्रगुप्तस्य ।।२१।।
भट्टक्षेमशिवात्मज भट्टस्कन्दादवाप्तशुभजन्मा ।
भट्टवसुदेव एनां प्रशस्तिमकरोदयोध्येशः ।।२२।।
अश्मनीश्वरणागेन नागदत्तस्य सूनुना ।
आलेखि सूत्रधारेण रौदीतकनिवासिना ।।२३।।

भावानुवाद—

विश्व के सर्ग, स्थिति और लय के हेतु जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के नाम से अपने तीन स्वरूप बनाताहै, उस विश्वेश्वर भव को नमस्कार है ।

कलियुग के आरम्भ से ही यदुवंश में उत्पन्न नरेश सैंहपुर में राज्य करतेथे । उनमें एक सेनवर्म्मन् नामक राजर्षि हुआ । उसका पुत्र श्रीमान् राजा आर्यवर्म्मन् हुआ जो अपने चरित्र के कारण श्रेष्ठ आचारवाले व्यक्तियों में अग्रगण्य था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका पुत्र देववर्म्मन् हुआ जो भयभीत को अभय, दरिद्र को वैभव, अपने कुल को विजय तथा शत्रुओं को विध्वंस प्रदान करनेवाला था।

उसका पुत्र राजा प्रदीप्तिवर्म्मन् हुआ जिसके क्रोध की प्रज्वलित अग्नि में अभिमानी शत्रु शलभों के समान भस्म होतेथे।

उसका पुत्र राजा ईश्वरवर्म्मन् हुआ जो भव के समान अकिंचनों को ऐश्वर्य प्रदान करताथा। अपार लक्ष्मी से युक्त उसका पुत्र श्री बृद्धिवर्म्मन् हुआ जो नेत्रों को चन्द्रमा के समान सुखकारी था।

उसका पुत्र राजाओं में सिंह के समान सिंहवर्म्मन् हुआ। जिसने अपनी भुजाओं से शौर्यवान् और दानशील का यश प्राप्तकिया।

उसका पुत्र जलवर्म्मन् हुआ जो अपने जनों के ताप को दूर करने वाला, उनकी आशा पूर्ण करनेवाला तथा कलिरूपी दावाग्नि को जलवर्षा के समान शान्त करनेवाला था।

उसका पुत्र राजा यज्ञवर्म्मन् हुआ, जिसके यज्ञ के धुएं से उत्पन्न बादलों को वास्तविक बादल समझकर मोर ध्वनि करनेलगतेथे।

उसका पुत्र राजर्षि अचलवर्म्मन् हुआ जो अपने सतयुगी आचरण की दृढ़ता में तथा धीरतादि गुणों में अचल था। वह युद्ध में अत्यन्त प्रचंड तथा रणहस्तियों से भी भिड़नेवाला होने के कारण 'घंघल' नाम से प्रसिद्ध था।

उसका पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी राजा दिवाकरवर्म्मन् हुआ जो शत्रुओं के अगणित रणहस्तियों के समूह का मर्दन करके 'महाघंघल भड़' कहलाया।

उसका छोटा भ्राता राजा भाष्करवर्म्मन् हुआ जो सदा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करताथा और 'रिपुघंघल' कहलाताथा।

उसने अपनी भुजाओं से नया राज्य प्राप्त कियाथा, और शत्रुओं का राज्य नष्ट कियाथा। उसके हाथ सदा दान देने और शत्रुओं पर प्रहार करने में लगेरहतेथे। घोर दुर्गम पर्वतों पर पैरों से चढ़कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने दुर्गों पर आक्रमण करके नरेशों को पराजित कियाथा। उसके गुणों से उसे कपिलवर्द्धन की पुत्री रानी जयावली पत्नीरूप में प्राप्त हुईथी।

उसकी पुत्री सावित्री के समान (पतिव्रता) ईश्वरा नाम वाली जलन्धरनरेश के पुत्र चन्द्रगुप्त की पत्नी थी। जब हस्ती की पीठ पर (चढ़ते समय) उसके पति का स्वर्गवास होगया तो उसकी सद्गति के लिए ईश्वरा ने भव के इस धर्मस्थान का निर्माण करवाया।

जबतक धरती पर पर्वत और समुद्र रहें, जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहें, तबतक श्री चन्द्रगुप्त का यह कीर्तिस्थान रहे।

अयोध्या के स्वामी क्षेमशिव भट्ट के पौत्र, स्कन्दभट्ट के पुत्र, वसुदेव भट्ट द्वारा यह प्रशस्ति लिखीगई और रोहतक निवासी नागदत्त के पुत्र ईश्वरनाग द्वारा उत्कीर्ण कीगई।

तालेश्वर, द्विजवर्म्मन् का वृपताप-शासन[1]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--अशुद्ध संस्कृत, मूल--शासन की तिथि[2] छटी श० वि० के आरम्भिक वर्ष

१- विष्णुवर्म्मा प्रपो (पौ) त्रस्य पो (पौ) त्र स्य वृषवर्म्मण (:)

२- अ्यग्निवर्म्म[3] सुतस्येह शासन (ं) द्विजवर्म्मण(:)[4]

३- ... नुग्रहात्थीय साधु संरक्षणाय च

४- सोमवंशोद्भवो राजा जयत्यमित विक्रम (:)

१- स्वस्ति (॥) पुरन्दरपुरप्रतिमाद्-व (ब्र) ह्मपुरात् सकल जगन्मूलोर्व्वी-चक्र -महाभार-वहन-(गुण-वमन-फण-सहस्रानन्त) - मूर्त्ते र्भगवद्- व (ी) र (णेश्वर-स्वामिन-श्चरण)

१- गुप्ते--एपि० इंडिका जि० १३, पृ० ११५-१७ २- गुप्ते--उपरोक्त, पृ० ११२ ३- श्री+अग्निवर्म्म ४- पाठान्तर द्वेषवर्म्मण या देववर्म्मणः या गजवर्म्मणः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२- कमलानुध्यात: सोमदिवाकरान्वयो गो व्रा (ब्रा) ह्मण-हितैषी श्रीपुरूरव: प्रभृत्यविच्छिद्यमान-मौ (पौ)रव-राज-वङ्शोग्निरिव वैपत्त-कक्ष-दहनो (भ)

३- श्र्यग्निवर्म्मा (।) तस्य पुत्रस्तत्पाद-प्रसादादवाप्त-राज्य-महिमा द्यु तिमदहित, पत्तद्यु तिहरो विवस्वानिव द्वितीय: परम भट्टारक-महाराजा-धिर (ा) ज-श्री-

४- द्यु तिवर्म्मा कुशली पर्व्वताकर-राज्ये (ऽ) स्मद-वंश्यान्महाराज-विशेषान्प्रतिमान्य-दण्डोपरिके-प्रमातार-प्रतिहार-कुमारामात्य पीलुपत्यश्व-पति- (-)

५- जयनपति-गज्जपति-सूपकारपति-तगर (नगर) पति-विषयपति-भोगिक-भागिक दाण्डवासिक-कटुक-प्रभृत्यनुजीवि-वर्ग्गं सर्व्व-विषय-प्रधाना-दींश्च-

६- प्रतिवासि-कुटुम्बि (बि) नः कुशलं पृष्ट्वा समाज्ञापयति-विदितमिदमस्तु वो देवद्रोण्यधिकृत-महासत्त्रपति त्रातैकाकिस्वामिना नय-विनय श्रु त-वृत्त-

७- सम्पन्नेन परिव्राड् व (ब्र)ह्मचारि-गौग्गुलिक-परिषत्सहितेन राजदौवारिकाग्निस्वामि-कारङ्गिक-वोट (कोट)ा धिकरणिकामात्य-भद्रविष्णु पुरस्सरेण च

८- देवनिकायेन विज्ञापितं सुरासुरजगदवन्द्यानन्त मूर्त्ति-वीरणेश्वरस्मा (स्वा) मि-नाथपादानां व(ब)लि-चरुकसत्त्र-प्रवर्त्त न-दधिक्षीर-घृत-

९- स्नपन-गन्ध-धूप-प्रदीप - पुष्प (पुष्प)ा र्च्चन - प्रकर-सन्मार्ज्ज-नोपलेपन-कृषि-कर्म्मानुष्ठान खण्ड-स्फुठितावचटित-पतित-संस्कारार्थं परहि-तानुष्ठान-

१०- चरितव्रतैयु स्मत्पूर्व्वजैर्म्महाराजभिरन्यैश्चावनिपतिभिस्तथानेक-धर्म्म-प्रसव-हेतुभूतैर्द त्तिदायकै: स्वश्रे यसे भूमि-पल्लिका-ग्राम-

११- कर्म्मान्त-विषयास्ताम्रपट्ट-पट-वृषताप-पत्रै: (पत्रकैरभि०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिलिख्याग्रहारा: प्रतिपादितकास्तानि च शासनान्या दीप्तकेन दग्धानि

१२- कालेन च गच्छता लुब्धाः (ब्धाः) कलिदोषग्रहा-विष्टाः केचिदसत् पुरुषा लेख्यैर्व्विनाक्षेपं कुर्युरिति तदर्हन्ति भट्टारक-पादाः शासना—

१३- नुमति-दानेन यथा भुज्यमान-स्थान-परिमाण-नामान्याभिलेख-यितुमिति यतो मया देव-भक्त्या-पूर्व्व-राजर्षीणां यशो (ऽ) र्थं-

१४- मात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये वृषताप शासनमिदं दत्तम् (।।) यत्र पशु-कुलावदार-कर्म्मान्त-कोणकलिका गङ्गा-ग्रामे गुणेश्वरा

१५ वलदीपकः क्क्रय(क्रय)-करण-भूमि-भाग-सहितश्चोर-कटको जम्वु (म्बु)-शालिका-पटलयन्तर-पर्व्वतक-भाविलान करवीर-कोष्टा-

१६- गद्दीचरण ग्रामो (मे) महासालो वुरासिका दन्तवनिकां ज्योराणायां चोरपानीयं भग्नानूपमो ड्भायां पुटवनकः

१७- कर्क्कटस्थूणा-वञ्जाल्युत्तरगङ्गा कपिलगर्त्ता कोटरवञ्जः शिवमुषीच्यापुरी-दाडिमिका शिंशपिका दक्षिण (·) पा (र्) श्वे

१८- शरथा-विषयस्ता-पल्ली करवीर-गर्त्ता कोल्लपुरी भेलमस्तकः कर्क्कोटायां खण्डाक-पल्लिका मम्मदत्तो राज्यकतोली

१९- श्रृगाल खोल्लका भूतपल्लिका गोग्गपल्लिका वारुणाश्रमः प्रभीलापल्लिका देवदास-तोली नारायण-देवकुलक मा (ला)

२०- स्वानकः श्रीभाचर्प्पटो (ऽ) नङ्गाल-गत्तोत्तर-वासो व्र (ब्र)ह्मपुरे कार्त्तिकेयपुर-ग्रामकस्समज्जाव्यस्ता च भूस्त्र्यम्वपुरे सुवर्णकार-पल्लिका(द)-

२१- गुरणा (दुरणा) वृद्धपल्लिका चन्द्रपल्लिका वि (बि) ल्वके जयभटपल्लिका वचाकरणं-ग्रामो दीप-पुर्यां वृद्धतरी पल्लिका क्क्रोड-शूण्यां वद्ध्र्कि-पल्लिकोष्ट्राल—

२२- मकः (कोष्ट्रालमकः) कटकभृष्टो डिण्डिक-पल्लिका चतुश्शालो-रोहागल-पल्लिका-शोरायां वाहिरण्य पल्लिका चन्दुलाक पल्लिका-भट्टिपल्लिका—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२३- कार्तिकेयपुरे अतिवलाक पल्लिका विशाखिल पल्लिका अरिष्टाश्रमः अवलीनकः सकिन्नरायां कोट्टतले पल्लिवाटकस्तुङ्गुल-कर्म्मान्तः

२४- पितृगङ्गातटे शीर्षारण्यः कण्ठारपार्श्वः राजपुत्रकोद्दाल-कर्व्वटको व (ब)हुग्रामसहित उत्तरपथः पश्चिम द्रोण्यां उदुम्व(म्ब) रवासः

२५- गोहट्टवाटकः पुष्पदन्तिका-वासन्ती-वनकः करवीरिका- खोह्णा-वनको मल्लवस्तुको मल्लिका-शिवक-कराभ-शालिका दण्डवासि वतो—

२६- गोलथालकश्चेति-तद्युष्माभिरमीषांप्रक्षेप-प्रतिषेधौ न करणीयौ न चोपद्रवः कुटुम्वि(म्बि)नां कारुकाणाञ्च कर्त्तव्यो (॥) यत्कुर्वात्प पंचमहापातक· (संयु)

२७- क्तः स्यादिति । दूतकः सान्धिविग्रहिकः प्रमातार सूर्यदत्तः लिखितं दिविरपति विष्णुदासे (न)

२८- उत्कीर्ण्णान्यक्षराणि सौवर्णिकानन्तेनेतिक ।

—राज्य सं ५ पौष दि० ३०[1]

भावानुवाद—

यह शासन विष्णुवर्म्मन् के प्रपौत्र, वृषवर्म्मन् के पौत्र, श्रीअग्निवर्मन् के पुत्र द्विजवर्म्मन्[2] का है । . . . . पर अनुग्रह करनेवाले साधुओं के रक्षक सोमवंशी अमितविक्रम नरेश की जय हो ।

स्वस्ति । धरती पर इन्द्र की नगरी के समान ब्रह्मपुर से ।

सोम-सूर्य-वंश में उत्पन्न, श्रीपुरुरवा आदि पौरवनरेशों का वंशज, गौ तथा ब्राह्मणों का हितैषी, शत्रुओं को शुष्क तृणवत् दग्धकरने में अग्नि के समान समर्थ श्रीअग्निवर्म्मन् नृपति था । जो समस्त भूमण्डल

१- श्रीगुप्ते की धारणा है कि इन अभिलेखों की मुहर जाली हैं । एपि० इंडिका जि० १३, पृ० ११०-१२ २- पाठान्तर--द्वेषवर्म्मन् देववर्म्मन्, गजवर्म्मन् --गुप्ते-उपरोक्त, पृ० ११५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के भार को वहन करनेवाले सहस्र फणों से युक्त अपरिमित गुणपूर्ण, अनन्त की मूर्ति भगवान वीरणेश्वरस्वामी के चरण-कमलों में लीन था।

उसका पुत्र, उसकी कृपा से राज्यमहिमा को प्राप्त करनेवाला, द्वितीय दिवाकर के समान अपने शत्रुओं की द्युति का अपहरण करनेवाला, परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीद्युतिवर्म्मन् अपने पर्वताकर राज्य में कुशल से है और अपने वंश के भूतपूर्व मान्यनरेशों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करताहै।

तथा अपने दंडधर, प्रमातार, प्रतिहार, कुमारामात्य तथा हस्तिशाला, अश्वशाला, आयुधशाला, विक्रयशाला, पाकशाला, नगर तथा जिलों के अध्यक्षों, भूस्वामियों और भूमि भोगनेवालों, पुलिस के अधिकारियों तथा गुप्तचर (कटुक) आदि सेवकों, सारे प्रान्तों के अध्यक्षों एवं पड़ोसी गृहस्थियों की कुशल पूछकर आदेश देताहै।

आप लोगों को यह विदित होनाचाहिए कि नीतिशास्त्र, विनय, शास्त्रज्ञान, तथा उत्तम चरित्र से सम्पन्न, देवपूजाविभाग के अध्यक्ष, देवपालकियों की उत्सवयात्रा के प्रधान, श्रीमान् त्रात ने परिव्राजकों, ब्रह्मचारियों और गौग्गुलिकों की परिषद्, मन्दिरों के कर्मचारियों, राजद्वार के रक्षकों, यज्ञशाला के कर्मचारियों, कपालियों, देवदासियों के निरीक्षक तथा आमात्य भद्रविष्णु को लेकर मुझसे प्रार्थना कीहै कि--

'समस्त देवता, असुर और संसार के वन्दनीय, अनन्तदेव के अवतार भगवान् वीरणेश्वर के चरणों में वलि, चरु और सत्र चालू रखने के लिए, दधि, क्षीर तथा घृत से अभिषेक के लिए, गन्ध, धूप, दीप, पुष्पार्चन, सम्मर्जन एवं लेपन के लिए, मन्दिरभूमि को जोतने तथा टूट फूट की मरोम्मत के हेतु, परहित में संलग्न, उत्तम चरित्र का व्रत धारण करनेवाले आपके पूर्वज महाराजाओं ने, अन्य नरेशों ने तथा अनेक धर्मकार्य करनेवाले व्यक्तियों ने अपने कल्याण के लिए जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमि अग्रहार में दीथी उसका विस्तार, पल्ली, गांव, सम्बन्धित उद्योग आदि का उल्लेख जिन ताम्रपट्ट, वस्त्र और वृषताप (मिश्रधातु) पत्रों पर कियाथा वे शासन (लेख) अग्नि में भस्म होगएहैं।

समय बीतजाने पर कलिदोष से ग्रस्त लोभी दुष्ट पुरुष लेख का अभाव होने के कारण अग्रहारभूमि पर अधिकार करने का प्रयत्न करेंगे। अस्तु परमभट्टारक से निवेदन है कि वर्तमान अग्रहारभूमि का स्थान, परिमाण और नामादि युक्त शासन प्रदान करने की कृपा करें।

अस्तु मैंने देवभक्ति से प्रेरित होकर, पिछले राजर्षियों के यश की रक्षा तथा अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिए निम्न भूमि के अग्रहार के सम्बन्ध में यह वृषतापशासन प्रदान कियाहै।

खरक के गांव कोणकलिकागंगा में गुणेश्वरा वलदीपक नामक क्षेत्र, खेती करनेयोग्य बंजर भूमि सहित चोरकटक, जामुन और साल की झुरमुटों से घिरे पर्वतक, भाविलान और करवीरकोष्टागांत्र, गक्षीकरणगांव में महासाल, बुरासिका-दन्तवनिका नामक खेत, ज्योराग्णागांव में घोरपानीय नामक खेत, भग्नानूपमोड्ढभा क्षेत्र में पुटबनक, कर्कटस्थूणा, बञ्जालि, उत्तरगंगा, कपिलगर्ता, कोटरबञ्ज, शिवमुखी, दाडिमिका और शिशपिका नामक पल्लियां, शरथजिले में करवीरगर्त्ता, कोल्लपुरी और भेलमस्तक (भेल के ऊपर) पल्लियां, कर्कोटा में खंडाकपल्ली, मम्मदत्त, राज्यकतोली, शृगाल-खोह्णक, भूतपल्लिका, गोग्गपल्लिका, वारुणाश्रम, प्रभीलापल्लिका, देवदासतोली, नारायणदेव, कुलकमालाखानक, श्रीभाचर्प्पट तथा अनगालगर्ता, कर्कोटा में उत्तरवास, ब्रह्मपुरजिले में कार्तिकेयपुर नामक गंवाड़ा और समज्जाव्यस्ता नामक खेत, त्रयम्बपुर में सुवर्णकारपल्लिका, दुण्णा, वृद्धपल्लिका और चन्द्रपल्लिका, विल्वक में जयभट्टपल्लिका तथा बचाकरणगांव, दीपपुरी में वृद्धतरीपल्लिका, क्रोडशूर्पी में वर्द्धकि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पल्लिका, उष्ट्रालमक, कटकभृष्टी, डिंडिक, चतुश्शाल, अरोहागल नामक पल्लियां, शोरा में बाहिरण्य, चन्दुलाक और भट्टि नामक पल्लिकाएं, कार्तिकेयपुर में अतिवलाक, विशाखिल पल्लियां तथा निकटवर्ती अरिष्टाश्रम, सकिन्नरा में दुर्ग के नीचे वाटकपल्ली, जिसमें तुंगुलव्यवसाय (?). है, पितृगङ्गा के तट पर शीर्षारण्य, कंठारपार्श्व, राजपुत्र ओद्दाल के नाम पर बसा बाजार, (कर्वटक), उत्तरपथ और निकट के गंवाड़े, पश्चिमी द्रोणी (दून) में उदुम्बरवास, गोहट्टबाटक, पुष्पदन्तिका, वासन्तीबनक, करवीरिका, खोल्लाबनक, मल्लवस्तुक, मल्लिका, शिवक, कराभशालिका तथा दडबासिवत् का गोलथालक।

आपलोग इसमें कोई प्रक्षेप या प्रतिषेध न करें। जो गृहस्थी और सेवक उपरोक्त भूमि में कृषि करतेहैं, उनको किसीप्रकार का कष्ट न दें। जो ऐसा करेगा उसे पंच महापातक लगेंगे।

दूतक—सान्धिविग्रहिक प्रमातार सूर्यदत्त

लेखक—दिविरपति विष्णुदास

उत्कीर्णकर्त्ता—सुवर्णकार अनन्त

राज्यसम्वत् ५, पौष, दिन ३०

तालेश्वर, विष्णुवर्म्मन् का ताम्रशासन[1]

लिपि—ब्राह्मी, भाषा—अशुद्ध संस्कृत, मूलशासन की तिथि[2] —छठी शताब्दी वि० के प्रारम्भिक वर्ष

१- स्वस्ति (॥) पुरोत्तमाद् व (ब्र) ह्मपुरात् सकलभुवन -भव-भङ्ग-विभाग-कारिणो (ऽ) नन्त-मूर्त्तेरनाद्या - वेद्याचिन्त्यात्यद्भुतोद्भुत -प्रभूत -प्रभाबाति-शयस्य-

१- गुप्ते--एपि० इंडिका, जि० १३, पृ० ११८-२०

२- श्रीगुप्ते की धारणा है कि शासन की मुहर जाली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२- फणातल-विपुल-विकट-स्फटा-पटल - निकट · प्ररूढ़ - मणिगण - किरणारुणित-पाताल-तलस्य (-) धरणि-धरण-योग्य-धारणा-

३- धार (रिणो) भुजगराजरूपस्स्य (स्य) भगवद्वीरणेश्वर स्वामि-नश्चरण-कमलानुध्यात: सोमदिवाकर - प्राङ्शु - वङ्श - वेश्म - प्रदीप: सर्व्वप्रजानुग्र(।)

४- याभ्युदितप्रभाव: परमभट्टारक-महाराजाधिराज श्र्यग्नि (ग्नि) वर्म्मा (।) तद्दात्मजस्तत्पाद्-प्रसादादवाप्त-प्राज्य-राज्य: क्षपित-महापक्ष-विपक्ष

५- कक्ष - द्यु तिर्म्महाराजाधिराज श्रीद्यु तिवर्म्मा (।।) तन्ननयो (तत्तनयो) नय-विनय-शौर्य- धैर्य - स्थैर्य-गाम्भीर्यौदार्य-गुण-गणाधिष्ठित-मूर्ति श्चक्क्रधर (:)

६- इव प्रजानामार्तिहर: परमपितृभक्त: परमभट्टारक-महाराजाधिराज श्रीविष्णुवर्म्मा समुपचित-कुशल-व (ब)ल-वीर्य: पर्व्वताकर-

७- राज्ये समुत्पत्स्यमानास्मद् वङ्शालङ्कारान्देवा-कारान् राजलक्ष्मी f (वं) वराजमान- (लक्ष्मी विराजमान) मूर्त्तीन्महाराजविशेषान्प्रतिमान्य दण्डोपरिक-प्रमातार-

८- प्रतिहार-कुमारामात्य-पीलुपत्यश्वपति-प्रभृत्यनुजीवि-वर्ग्गमत्यांश्च भोगिक-भागिक-करिक-कुलचारिक-प्रधानादि-कुटुम्वि (म्बि) न:

९- समाज्ञापयति (।।) विदितमस्तु वस्त्रात-मारि-पतिशर्म्म गौग्गुलिक-परिषत्प्रमुखेन-देवनिकायेन सांधिकरणेन विज्ञापिता: स्म:—

१०- सर्व्वस्थानेष्वु दत्ति-दायक-साधु-प्रतिपादित-प्राग् भुज्यमाना-विच्छिन्न-भोगीन भुवां कालेनगच्छता केचिदसत्पुरुषा: कलि-दोष-

११- लोभ-ग्रहाविष्ठा आक्षेपं कुर्यु रित्यर्हन्ति भट्टारकपादा: पुण्ययशो (ऽ) भिवृद्धये तन्नाम-समारोपणानुस्मरण-स्थिरकरण-

१२- मधिकृत्य ताम्रपट्ट-दानेन प्रसादं कर्त्तु मिति यतोस्माभिर्भक्ति-भावित-हृदयैरनुमोदना-शासनं भुवामर्थे महासत्रो-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१३- पचयाय .तियादितं यत (त्र) स्तम्भसङ्कटिकायां वज्रस्थलक्षेत्र-कुल्य-वापं तत्पूर्व्वेण हुडुक्क-सूनाक्षेत्रं तत्समीपे मालवक-क्षेत्रं-

१४- खारिवापं समधिकं सजङ्गलम् साधुतुङ्गकग्राम-तले क्षेत्राष्ट (क्षेत्रमष्ट-) द्रोण - वापं पाटलिकारामके चम्पक-तोली देवक्रयकरर्ण-काश्च-

१५- गोमतिसायाँ व (ब्र) ह्मे श्वर-देवकुल-समीपे पट्टवायक दत्ति-र्म्मध्यमारक-क्षेत्र-चतुर्द्दशा-द्रोण-वापं-सेम्मक-क्षेत्रं चतुर्द्दश द्रोण-वापम्-

१६- कपिलेश्वर-नामधेय-क्षेत्रकुल्यवापं लवणोदके नन्दिकेरक-क्षेत्र-षड्द्रोणवापं भोगिक गेल्लणरणाक (गेल्लण अरणक) भ्रातृ-दत्ते क्षेत्रसूने द्वे —

१७- खारिवापं गभीरपल्लिकायां डडुवक-जङ्गल-कुल्य-वापं देवक्रय-तोली-पञ्चद्रोणवापं मध्यमपुरक-परस्ताद्-रजकस्थलक्षेत्र-षड-द्रोण

१८- वापं देवक्रयानूपक्षेत्र-खारि-वाप-त्त्रय-मधिकं वासोदकं जङ्गलम तदुपरि खट्टलिका—तुलाकण्ठकयत्त-समीपे नरकक्षेत्रम्

१९- भृष्टिका क्षेत्त्रमष्ठद्रोणवापम् तत्प्रापि-क्षेत्र-करणंकम् नदीतटे भृष्टक-क्षेत्त्रं पञ्चद्रोणवापंम्-पूर्व्वेण वीजकरणी वड्र-क्षेत्त्राष्ट-द्रोण

२०- वापम् पर्व्वतार-क्षेत्र-खारी-वापंम् सकुल्यम् तत्समीपे जङ्गल-खोल्लिका-खट्टलिकाक्षेत्त्रं सजङ्गलं नवद्रोण-वापम्-देवक्रय-क्षेत्त्राष्ट-द्रोण-वापम्

२१- स्कम्भारतोली-निश्चिता-देव्या (व्य) धस्तात् केदारकुल्यवापम् देव्खल-ग्रामके केदार-द्वि-द्रोण वापिका शुण्ठीनावानूपे सेम्मक-क्षेत्त्रम्

२२- मधुफल-मूलक-क्षेत्त्रम् खट्टलिका-क्षेत्त्रञ्ज छिद्र-गर्त्तायाम् नागिल क्षेत्त्रकुल्य-वापम् सजङ्गलम् अन्ध्रलकरर्णकास्त्रयः जरोलक-केदा-

२३- रम् सेम्महिका-क्षेत्रम् व्यासोष्ठिनी-जङ्गलम् तत्प्रापि डडुवकं पर्व्वते च भोगिक-बराहदत्त-प्रत्यया भूमयो व (ब)हव्यः कार्तिकेयपुरे

२४- निम्बसायाँ व (ब) लाध्यत्त ल चन्द्र-सकाशाद् दिविरपति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धनदत्तेनोपक्रीतम् समूल-समात्रकमद्द पञ्चभिः सुवर्णैः श्वेतो (ता)-
त्स्त्र-पञ्चद्रोण-

२५- वापम् दूर्व्वाषण्डके च—अनेनैव दिविरपतिनोपक्रीतं कायस्थ-
गणक-सकाशात्समूल-समात्रकमष्टाभिः सुवर्णैः वेतस-

२६- कुल्यवाप-नामधेयं सौ (सो) दक - जङ्गलमावसथ - स्याग्रतो
देवकुलिकायां वामन-स्वामि-पादानां निवेदनक-निमित्तमेवमाज्ञापिते

२७- क्रिष्णहयोभि (कृष्णाहयो हि) जायन्ते य आक्षेपं कुर्यात्स
पञ्चमहापातक-संयुक्तः स्यादुक्तञ्च भगवता व्यासेन...

विन्ध्याटवि ष्वतोयातु शुष्क-कोटर-वासिनः

२८- दूतकः प्रमातार - वराहदत्त लिखितमिदं दिविरपति धनदत्तेन
उक्ती (क्की) र्णञ्च सौवर्णिकानन्तेन--रा सं २० मार्ग्ग दि ५

भावानुवाद—

स्वस्ति। नगरों में श्रेष्ठ ब्रह्मपुर से।

उज्ज्वल सोम-सूर्य-वंश के प्रदीप, प्रजानुरागी, परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीअग्निवर्म्मन् हुए जो समस्त भुवनों के विभागकर्त्ता अनन्त (शेषनाग) की मूर्ति, अनाद्य, अवेद्य, अचिंत्य, अद्भुत एवं धरातल पर प्रभूत प्रभाव वाले, मणिगण की किरणों से उज्ज्वल विशाल, विकट फणयुक्त, धरती को धारण करने में तत्पर, नागदेवता की आकृतिवाले भगवान् वीरणेश्वर के चरणकमलों का ध्यान करतेथे।

उनके पुत्र, उनके चरणों के प्रसाद से राज्य प्राप्तकरनेवाले, विपक्षियों की द्युति के अपहरणकर्त्ता महाराजाधिराज द्युतिवर्म्मन् हुए। उनके पुत्र नीति, विनय, शौर्य, धैर्य, स्थिरता, गम्भीरता, उदारता आदि गुणों से पूर्ण, चक्रधर के समान प्रजा के कष्ट हरनेवाले,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमपितृभक्त, परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीविष्णुवर्म्मन् कुशल हैं।

तथा अपने वलवीर्यसम्पन्न पर्वताकरराज्य में, वंश के अलंकार-स्वरूप, राज्यलक्ष्मी से संयुक्त अपने पूर्वजनरेशों की वन्दना करके दण्डधर, प्रमातार, प्रतिहार, कुमारामात्य, हस्तिशाला, अश्वशाला आदि के अध्यक्ष, सेवकों, आमात्यों, भोगिक, भागिक, करिक, कुलचारिक, प्रांतादि के अध्यक्षों सहित राजपरिवार के समस्त अंगों को आदेश देतेहैं कि :--

आप लोगों को विदित होनाचाहिए कि गौग्गुलिको की परिषद् , मन्दिरों के कर्मचारियों के प्रधान, त्रात मारिपतिशर्म्मन् ने अन्य अधिकारियों के समक्ष हमसे प्रार्थना कीहै कि :--

जो भूमि उदार दाताओं ने प्रदान कीहै और जिसका हम चिरकाल से अविच्छिन्न भोग कररहेहैं, उस भूमि के सम्बन्ध में परमभट्टारक अपने पुण्ययश की वृद्धि के लिए ताम्रपट्ट प्रदान करें जिससे कलियुगजन्य लोभ से प्रेरित होकर कोई दुष्ट व्यक्ति उस पर अधिकार न करे।

अस्तु हमने भक्तिभावपूर्ण हृदय से महासत्र का कार्य चालू रखने हेतु उल्लिखित भूमि के सम्बन्ध में शासन देने का अनुमोदन कियाहै।

स्तंभसंकटिका में एक कुल्य बीजवाला वज्रस्थल खेत, उसके पूर्व में हुड्डकसूना खेत, एक खारी से कुछ अधिक बीजवाला मालवक खेत, साधुतुंगग्राम के नीचे जंगल सहित आठ द्रोण बीजवाला खेत, पाटलिका-रामक में चम्पकतोली और देवक्यकर्णिका नामक खेत, गोमतीसारी नामक गांव में ब्रह्मेश्वर देवकुल[1] के पास पट्टुवाओं द्वारा दियागया मध्यमारक खेत, चौदह द्रोण बीजवाला सेम्मक खेत, एक कुल्या बीज वाला कपिलेश्वर खेत, लवणोदक गांव में छै द्रोण बीजवाला नन्दिकेरक

१- देवकुल--मन्दिर, मन्दिरपुंज या ऐसा स्थान, जहां पितरों की मूर्तियां रखीजातीथीं। मथुरा के पास कुशाणनरेशों का देवकुल मिलाहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेत, भूस्वामी गेल्लणक के भ्राता द्वारा दिएगए खारी बीज वाले दो खेत, गभीरपंल्लिका में डडुवकजंगल, एक कुल्य बीजवाला देवक्यतोली, पांच द्रोण बीजवाला मध्यमपुरक खेत, निकट का छै द्रोण बीजवाला रजकस्थल खेत, देवक्यरौली के पास एक खारी तीन द्रोण बीजवाला खेत, उससे आगे रौली और जंगल, उसके ऊपर खट्टलिका, तुलाकंठकयक्ष के (देवालय के) पास नरकक्षेत्र और आठ द्रोणवाला अष्टिका क्षेत्र, कर्णक खेत, नदीतट पर पांच द्रोण बीजवाला भृष्टकक्षेत्र, उससे पूर्व की ओर बीजकरण, आठ द्रोणवाला बड् खेत, एक खारी बीजवाला पर्वतार खेत, उसकी कूल, उसके पास का खोह्लिकाजंगल, नौ द्रोण बीजवाला जंगल सहित खट्टलिकाक्षेत्र, आठ द्रोण बीजवाला देवक्य खेत, स्कंभारतोली, निश्चितादेवी के नीचे सींचाईवाले देवखलगांव में दो द्रोण बीजवाली केदारभूमि (सेरा), शुंठीनावानूपगांव में सेम्मक मधुपल, मूलक और खट्टलिका खेत, छिद्रगर्ता में एक कुल्य बीजवाला जंगल सहित नागिल, अन्धलकर्णका, जरोलक सेरा, सेम्महिका खेत, व्यासोष्ठिनी जंगल, आगे डडुवक पर्वत पर भूस्वामी बराहदत्त के अनेक खेत, पांच द्रोणवाला खेत जो कार्तिकेयपुर के अन्तर्गत निम्बसारी में वलाध्यक्ष लवचन्द्र से धनदत्त दिविरपति ने ४½ सुवर्णमुद्राओं में समूल, समात्रक (वृक्ष और घर आदि सहित) खरीदा है, दूर्वाशण्डक गांव में जंगल और रौली सहित एक कुल्य बीजवाला वेतस खेत, जिसे इसी दिवरपति ने ८ स्वर्णमुद्राओं में कायस्थ नन्नक से समूल, समात्रक खरीदकर वामनस्वामि के मन्दिर के लिए अर्पित कियाहै।

जो इसमें आक्षेप करेगा उस पर पंचपातक लगेंगे। भगवान् व्यास ने कहाहै (जो ऐसा करताहै उसे) विंध्याटवी में सूखे वृक्ष के कोटर में (सर्प बनकर) बसनापड़ताहै ।

दूतक--प्रमातार बराहदत्त। लिखा दिविरपति धनदत्त ने। उत्कीर्ण किया स्वर्णकार अनन्त ने। रा० सं० २०, मार्ग०, दि० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाराहाट, श्रीगुह का त्रिशूलाभिलेख[1]

लिपि—उत्तरी ब्राह्मी, भाषा—संस्कृत, तिथि—छठी-सातवीं शताब्दी

१. 'ओं । आसीद्यः क्षितिपो गणेश्वर इति प्रख्यात कीर्तिन्नरैः,
चक्रे येन भवस्य वेश्म हिमवच्छृङ्गोच्छ्रतं दीप्तिमत्,
कृत्वाणुर्व्वनजाधिपस्वकृपणैः सामात्यभाग्यश्रियं,
स्मृत्वाशक्रसुहृत्वमुत्सुकमना यातः सुमेर्वालयं ॥

२. पुत्रस्तस्य महाभुजोविपुलदृक् पीनोन्नतोरस्थलः
रूपत्यागनयैरनंगधनदव्यासानतीत्योद्गतः,
नाम्मा श्रीगुह इत्युदारचरितः सद्धर्म्मधुर्यस्सतां
शक्ति शक्तिमनोरथप्रमथनीं शम्भोश्चकाराग्रतः ॥

३. प्रातः प्रातर्म्मयूखैरुरुभिरविरलं शार्वरं ध्मान्तमन्ध-
न्नालुंचंश्चारुतारानिकरपरिकरोदारशारोदरत्वं
स्वं बिम्बं चित्रबिम्बाम्बरतलतिलकं यावदर्को विधत्ते,
तावत्कीर्तिः सुकीतश्चिरमरिमथनस्यास्तु राज्ञः स्थिरेयं । ठ ।'

भावानुवाद—

प्रख्यात कीर्ति वाले गणेश्वर नामक नरेश ने हिमालय के शिखर के समान अतिउच्च और दिव्य शिवमन्दिर का निर्माण किया । मंत्रियों सहित अपनी राज्यलक्ष्मी को अणु-तुल्य समझकर उसने प्रियजनों को सौंप दिया । और स्वयं इन्द्र की मित्रता की स्मृति से उत्सुक होकर सुमेरुमन्दिर (कैलास) को चलागया ।

उसका पुत्र श्रीगुह महाबलशाली, विशाल-नेत्र और दृढ़वक्षस्थल वाला था । वह सौन्दर्य में अनंग से, दान में कुबेर से और नीत्ति या शास्त्रज्ञान में वेदव्यास से बढ़चढ़कर था । वह धार्मिक व्यक्तियों में

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ३४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्रणी और अति उदार चरितवाला था। उसीने भगवान् शंकर के आगे शत्रुओं के मनोरथ को विफल करनेवाली इस शक्ति की स्थापना कीहै।

जबतक भगवान् सूर्य प्रातःकाल अपनी तरुण किरणों से गाढान्धकार को नष्ट करके गगनफलक से नक्षत्रों की चित्रचर्या को मिटाकर अपना बिम्बरूपी तिलक लगातेरहेंगे तबतक शत्रुओं का मथन करनेवाले राजा गुह की यह कीर्ति सुस्थिर रहे।

मन्दसौर, यशोधर्मदेव का स्तम्भलेख[1]

लिपि--उत्तरी ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि--५८२-५९२ वि०

५. 'आलौहित्योपकण्ठात्तलवन गह (नो) पत्यकादामहेन्द्रा
दागङ्गाश्लिष्ट सानोस्तुहिनशिखरिण ऽ पश्चिमादापयोधेः (।)
सामन्तैर्यस्य बाहु द्रविण हृत म (दैः): पादयोरानमद्भि
श्चूडारत्नाङ्शु राजि व्यतिकर शबला भूमि भागा क्रियन्ते ।।'

भावानुवाद—

उस यशोधर्मदेव ने इस स्तम्भ की स्थापना की, जिसके चरणों में, पूर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) की उपत्यका से लेकर पश्चिम में पश्चिम समुद्र (अरबसागर) तक तथा उत्तर में गंगाजी द्वारा प्रक्षालित हिमालय के शिखर (गन्धमादन) से लेकर दक्षिण में महेन्द्र (तिरुनिवेलि जिले में स्थित महेन्द्रगिरि[2]) तक विस्तृत सारे भूखण्ड के पराजित नरेश उसकी अधीनता स्वीकार करके रत्नों से सुशोभित अपना मस्तक नम्रतापूर्वक झुकातेथे।

१- फ्लीट--उ० रा० ब० पांडे-- पृ० १३७

२- सरकार--ज्यो० आव ए० ऐंड मे० इंडिया, पृ० १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोधपुर, बाउक का शिलालेख[1]

लिपि—उत्तरी ब्राह्मी, भाषा—संस्कृत, तिथि—७०७ वि०

१२. 'ततः श्रीशीलुकाज्जातः श्रीमान्भोटो वरः सुतः ।
येन राज्यसुखं भु'त्वा (भुङ्क्त्वा) भागीर (थ्यां) कृता गतिः ।
बभूव सत्ववान्तस्माद् भिल्लादित्यस्तपोम-
तिः ।
१३.
यूना राज्यं कृतं येन पुनः पुत्राय दत्तव (ा) न् ।
गङ्गाद्वारं ततो गत्वा वर्षाण्यष्टादश स्थितः ।
अन्ते चानशनं कृत्वा स्वर्गलोकं समागतः ॥'

भावानुवाद-

प्रतीहारनरेश श्रीशीलुक का पुत्र श्रीमान् भोटो हुआ, जिसने सुखपूर्वक राज्यभोग के पश्चात् भागीरथी में (या भागीरथी के तट पर) शरीर त्याग किया।

उसका पुत्र तपस्वी भिल्लादित्य बुढ़ापे में पुत्र को राज्य सौंपकर गंगाद्वार (हरिद्वार) में सोलहवर्ष तक तपस्या करतारहा। अन्त में निराहार रहकर स्वर्गलोक चलागया।

खालिमपुर, धर्मपालदेव का ताम्रशासन[2]

लिपि—मागध नागरी, भाषा—संस्कृत, तिथि—नौवीं शताब्दी वि०

२१. 'भोजैर्मत्स्यैः समद्रैः कुरुयदुयवनावन्ति गान्धारकीरैः-
भूपैर्व्यालोलमौलि प्रणति परिणतैः

१- मुन्शी देवीप्रसाद--उ० रा० व० पांडे--पृ० १६०
२- केलहौर्न--उ० रा० व० पांडे--पृ० २२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२२. साधु संगीर्यमाणः ।

हृष्यत्पञ्चालवृद्धोद्धृत कनकमयस्वाभिषेकोद्कुम्भो

दत्तः श्रीकन्यकुब्ज (ब्ज) स्सललितचलितभ्रूलतालक्ष्म येन' ।।

भावानुवाद

धर्मपालदेव (८२७-८६७ वि०) ने जब महेन्द्र को पराजित कर चक्रायुध को क़न्नौज का राज्य दिया तो उसके इंगितमात्र से भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गान्धार, कीर (कांगड़ा) के नरेशों ने दरबार में उपस्थित होकर उसे प्रणाम किया और शिर हिलाकर उसके कार्य की प्रशंसा की। पंचाल के वृद्धों ने प्रसन्न होकर उसके अभिषेक के लिए स्वर्णकलस उठाया।

मुंगेर–देवपाल का ताम्रशासन[1]

लिपि--मागध नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--संबत् ८६७-९०७ वि०

१०- 'केदारे विधिनोपयुक्त पयसां गङ्गासमेताम्बुधौ
गोकर्णादिषु चाप्यनु

११- ष्ठितवतां तीर्थेषु धर्म्म्याः क्रियाः
भृत्यानां सुखमेव यस्य सकलानुद्धृत्य दुष्टानिमान्
लोकान् सा

१२- धयतो नुषङ्गजनिता सिद्धिः परत्राप्यभूत ।।

२२- आगङ्गागममहितात्

२३- सपत्नशून्या-
मासेतोः प्रथित दशास्यकेतु कीर्तेः
उर्व्वीमावरुणनिके (त) नाच्च सिन्धो
रालक्ष्मीकुलभवनाच्च यो

२४- बुभोज ।'

१- अक्षयकुमार मैत्रेय--गौड़-लेख-माला, प्रथम स्तवक, पृ० ३६-३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद

दिग्विजय में प्रवृत उस नरेश धर्मपाल (८२७-८६७ वि०) के भृत्यवर्ग ने केदारतीर्थ में यथाविधि स्नान-तर्पणादि सम्पन्न किए, तथा गंगासागर और गोकर्णादि (मैसूर के उत्तरी कन्नड़जिले में) तीर्थों में धर्मकार्यों का अनुष्ठान किया। इसप्रकार उस नरेश के दुष्टदलन और शिष्टपालन सम्बन्धी कार्यों की सिद्धि के साथ भृत्यवर्ग को पारलौकिक सिद्धि प्राप्तहुईथी।

देवपालनरेश (८६७-९०७ वि०) ने गंगाजी के स्रोतप्रदेश से लेकर समुद्र पर, जहां रामचन्द्रजी की कीर्ति का चिह्न (सेतुवन्ध रामेश्वर) है, वरुण के भवन, पश्चिमी सागर (अरबसागर) से लेकर लक्ष्मी के भवन, पूर्वीसागर (बंगाल की खाड़ी) तक सारी धरती पर एकच्छत्र शासन कियाथा।

मंगलवारि (दीनाजपुर), गरुड़स्तंभलेख[1]

लिपि--मागध नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--सं० ९१० वि० के लगभग

४- 'आरेवाजनकान्मतङ्गजमदस्तिम्यच्छिलासंहते-
रागौरीपितुरीश्वरेन्दुकिरणैः पुष्यतसितिम्नो गिरेः।
मार्त्तण्डास्तमयोदयारुणजलादावारि रा--
शि द्वयात्
५-
नीत्या यस्य भुवं चकार करदां श्रीदेवपालो नृपः॥'

भावानुवाद

श्रीदेवपाल नृपति (८६७-९०७ वि०) ने मत्तगजों के मद से अभिषिक्त शिलाओं की शृंखलावाले नर्मदा के पिता विन्ध्यपर्वत से

१- अ० मैत्रेय--गौड़-लेख-माला, प्र०स्त० १, पृ० ६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकर शंकर के भालचन्द्र की किरणों से श्वेत बने गौरी के पिता हिमालयपर्वत पर्यन्त तथा सूर्य के उदय और अस्त के समय अरुण बननेवाले दोनों पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच की समग्र भूमि पर अधिकार करके कर वसूल कियाथा।

पांडुकेश्वर, ललितशूर का ताम्रशासन (१)[1]

लिपि--कुटिला, भाषा-संस्कृत, तिथि--९१० वि०[2]

'स्वस्ति।

१- श्रीमन्कार्तिकेयपुरात् सकलामरदितितनुजमनुज-विभुभक्तिभाव-भरभारानमितोत्तमाङ्ग-सङ्गि-विकट - मुकुटकिरीट-विटंक - कोटि-कोटिशोऽनेक ना-

२- ना-नायक-प्रदीपद्वीपदीधितिपानमद-रक्तचरणकमलामल-विपुल-वहल-किरण केशरासारसारिताशेष-विशेषमोषि-घनतमस्तेजसस् स्वधुनीधौत-जटाजू

३- टस्य भगवतो धूर्ज्जटेः प्रसादात् निजभुजोपार्ज्जितोर्ज्जित्य-निर्ज्जित-रिपु -तिमिर-लब्धो-दयप्रकाश-दया-दाक्षिण्यसत्य-सत्व-शीलशौच-शौर्यौदार्य-गाम्भीर्य-मर्यादार्य-वृताश्चर्य

४- -कार्यवर्यादि-गुण-गणालंकृत-शरीरः महासुकृतिसन्तानवीजावतारः कृतयुगागम-भूपाल-ललितकीर्तिः नन्दाभगवतीचरण-कमलकमलासनाथमूर्तिः श्रीनिम्बरस् तस्य तनय

५- स् तत्पादानुध्यातो राज्ञीमहादेवी श्री नाशूदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः शितकृपाणधारोत्कृत्तमत्तेभकुम्भा-कृष्टोत्कृष्टमुक्तावलीयशः-पताका

६- च्छायचन्द्रिकापहसिततारागणः परमभट्टारक - महाराजाधिराज-

१- एटकिनसन--उ० राहुल-गढ़वाल, पृ० ७५-७७

२- मजूमदार तथा पुसलकर--एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमेश्वरश्रीमद् इष्टगणदेवस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीवेगदेवी तस्याम् उत्पन्न: परसमा

७- हेश्वर: परमब्रह्मण्य: कलिकलंक - पंकातंक - मग्नधरण्युद्धार-धारितधोरेय-वरवराहचरित: महजमतिविभवविभूति-स्थगितारातिचक्रप्रताप-दहन: (,) अति वैभवसंभारारम्भ-सं

८- भृतभीमभृकुटि-कुटिलकेसरिसटाभीताराती भकलभभर: अरुणारुण-कृपाणवाण-गुण-प्राणगण-हठाकृष्टोत्कृष्टसलील - जयलक्ष्मी- प्रथम-समा-लिंगनावलो

९- कनवलद्य-सखेद-सुरसुन्दरी विधूतकर स्खलद्वलय - कुसुम- प्रकर-प्रकीर्णावतंस-सम्बर्द्धितकीर्तिबीज: पृथुरिव दोर्दण्डसाधित-धनुर्मण्डलवला-वष्टम्भवश

१०- -वशीकृत-गोपालनानिश्चलीकृताधराधरेन्द्र: परमभट्टारक-महा-राजाधिराजपरमेश्वर-श्रीमल्-ललितशूरदेव(:) कुशली...(।)...
अस्मिन्नेव श्रीमत्कार्तिकेयपुर-विषये समु

११- पागतान् सर्व्वानेव नियोगस्थान् राज-राजानक-राजपुत्रा - सृष्ट (राजा) मात्य-सामन्त-महासामन्त-ठक्कुर-महामनुष्य-महाकर्तृ - कृतिक-महाप्रतीहार-महादण्डनायक-महाराजा-प्रमातर-श

१२- रभङ्ग-कुमारामात्य-ोपरिक - दुस्साध्यसाधनिक - दशापराधिक-चौरोद्धरणिक-शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक - विनियुक्तक-पट्टाकोपचारिक-ाशेधभंगाधिकृत हस्त्य-श्वो-ष्ट्र

१३- बल व्यापृतक-दूतप्रेषणिक-दण्डिक - दण्डपाशिक - गमागमि-शाङ्गिक-ाभित्वरमाणक-राजस्थानीय-विषयपति-भोगपति - नरपत्य-श्वपति-खण्डरक्ष्य-प्रतिशूरि

१४- क-स्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल-घट्टपाल-क्षेत्रपाल - प्रान्तपाल-किशोर-बडवा-गो-म-हिष्यधिकृत-भट्ट-महत्तम- ाभीर-वणिक्-श्रेष्ठिपुरोगान् अष्टादशप्रकृ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५- त्यधिष्ठा-नीयान् खश-किरात-द्रविड-कलिंग-गौड़-हूणो-ड्र मेदा-न्ध्र-चाण्डालपर्यन्तान् सर्वसम्वासान् समस्तजनपदान् भट-चट-सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्म

१६- त्पादपद्मोपजीविन: प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति (—) अस्तु वस् सम्विदितम् उपरिनिर्दिष्ट विषये गोरुन्नासायां प्रति-बद्ध-खषियाक-परिभुज्यमानपल्लिका

१७- तथा पणिभुतिकायां प्रतिबद्ध गुग्गुल-परिभुज्यमान-पल्लिकाद्वयं एते मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पत्न-विघट्टिता

१८- श्वत्थपत्रवच्चलत्-तरंग-जीवलोकमवलोक्य जलबुद्बुदाकारमसारं वायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलताञ्चालक्षयि त्वापरलोकनि:श्रेयसार्थं-संसारार्ण-वोत्तरणार्थञ्च

१९- पुण्येहनि उत्तरायणसङ्क्रान्तौ गन्धपुष्पधूपदीपोपलेपननैवेद्य-वलिचरुनृत्यगेयवाद्यसत्रादि-प्रवर्तनाय खण्ड-स्फुटित-संस्करणाय अभिन-वकर्म्मकरणा

२०- य च भृत्यपदमूलभरणाय च गोरुन्नासायां महादेवी श्रीसामदेव्या स्वयं कारापितभगवते श्रीनारायणभट्टारकाय शासनदानेन प्रतिपादिता: प्रकृतिपरिहार-युक्ता:

२१- प्रचाटभटाप्रवेशा: अकिञ्चित्प्रग्राह्या: अनाच्छेद्या आचन्द्रार्क्कक्षिति स्थितिसमकालिक: विषयाद् उद्धृतपिण्डास्थसीमागोचरपर्यन्तस् सवृक्षारामो ह्रद-प्रस्रवनोपे

२२- त: देवब्राह्मणभुक्तभुज्यमानवर्जित: यतस् सुखं पारंपर्येण परि-भुञ्जतश् चास्योपरिनिर्द्दिष्टैर् अन्यतरैर् व्वा धरणविधारण-परिपन्थनादि-कोष-द्रवो मनागपि न कर्त्त

२३- व्यो नान्यथा द्रुहतो महान् द्रोहस् स्याद् (।) इति प्रवर्द्धमान्-विजयराज्य-सम्वत्सर एकविंशतिमे २१ माघवदि (।) दूतकोत्र महा-दानाक्षपटलाधिकृत श्रीपीजक: । लि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२४- खितमिदं महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीमद् आर्यटवतुना(।)
टंकोत्कीर्णा श्रीगङ्गभद्रेण ।

बहुभिर् वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः (।)
यस्य यस्य यदा भुमिस् त
२५- स्य तस्य तदा फलं ।
सर्व्वान् एतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः (।)
सामान्योऽयं धर्म्मसेतुर् नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः (।।)
स्वदत्ताम् परदत्ताम् वा यो ह
२६- रेत बसुन्धरां ।
षष्ठिम्वर्षसहस्राणि श्वविष्ट्या जायते कृमि (ः।।)
भूमेर् दाता याति लोके सुराणां हंसैर् युक्तं यानम् आरुह्य दिव्यं (।)
लौहे कुम्भे तैलपूर्णे सुतप्ते भूमेर्
२७- हर्त्ता पच्यते कालदूतैः (।।)
षष्टिम्वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः (।)
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।
गाम् एकाञ् च सुवर्णञ्च भूमेर् अप्येकमंगुलम् (।)
हृत्वा नर
२८- कम् आयाति यावद् आहूतिसंप्लवं ।
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर् दानानि धर्म्मार्थ-यशस्कराणि (।)
निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत ।
अस्मत्कुल
२९- क्रममिदं समुदाहरद्भिर् अन्यैश्च दानम इदम् अभ्यनुमोदनीयम् (।)
लक्ष्म्यास्तडित्-सलिलबुद्बुदचञ्चलाया दानं फलं परयशःपरिपालनञ्च ।
इति कमल-दलोद्
३०- विन्दु-लोल-मिदम् अनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च ।
सकलम् इदम् उदाहृतञ्च बुद्ध्वा नहि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(राजमुद्रा में नन्दी के साथ लेख है—)
श्रीनिम्बरस्तू तत्पादानुध्यात:
श्रीमद्इष्टगणदेव: तत्पादानुध्या (त:)
श्रीमल्ललितशूरदेव: क्षितीश: ।

भावानुवाद—[1]

स्वस्ति । श्रीमत् कार्तिकेयपुर से...भगवान् धूर्जटि की कृपा से निजभुजा द्वारा उपार्जित—नन्दा भगवती के चरणकमल के कमल की शोभा से सनाथमूर्ति श्रीनिंवर (थे), उनके तनय...रानी वेगदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर (परमशैव) परमब्रह्मण्य (परमब्राह्मणभक्त) परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर (महाप्रभु) श्रीमान् इष्टगणदेव (थे)। उनके, पुत्र रानी महादेवी वेगदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर (परमशैव) परमब्रह्मण्य...पृथुसमान...परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ललितशूरदेव कुशलपूर्वक (हैं और वह) इसी श्रीमत् कार्तिकेयपुर के बीच आए सभी आज्ञानुवर्त्तियों—राजा, राजानक, राजपुत्र, आसृष्ट, राजामात्य, सामन्त, महासामन्त, ठक्कुर, महामनुष्य, महाकर्त्ता, कृतिक, महाप्रतीहार, महादण्डनायक, महाराजप्रमातार, शरभंग, कुमारामात्य, उपरिक, दुस्साध्यसाधनिक, दशापराधिक, चौरोद्धरणिक, शौल्किक, गौल्मिक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकापचारिक, आशेधभंगाधिकृत, हस्ति-अश्व-उष्ट्र-सेना-व्यापृतक, दूतप्रेषणिक, दण्डिक, दण्डपाशिक, गमागमी, शार्ङ्गिक, अभित्वरमाणक, राजस्थानीय, विषयपति, भोगपति, नरपति, अश्वपति, खंड (वन)-रक्ष, प्रतिशूरिक-स्थानाधिकृत, वर्त्मपाल, कोट्टपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, किशोर-वडवा-अधिकारी, गाय-भैंस-अधिकारी, भट्ट, महत्तम, आभीर, वणिक्, श्रेष्ठी आदि प्रजाओं के अठारह अधिष्ठाताओं को, खश, किरात, द्रविड़, ओड्र (ओडिया), मेद, आंध्र, चंडाल तक सभी

१- राहुल-गढ़वाल, पृ० ७७-७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संवासों को, समस्तजनपदों को, भट, चट, सेवक आदि उक्त-अनुक्त, हमारे चरणकमल के दूसरे आश्रितों को, प्रतिवासी ब्राह्मणों आदि को यथायोग्य मानते, संबोधित करते आज्ञा देतेहैं—'तुमको ज्ञात हो, कि उपरोक्त (कार्तिकेयपुर) विषय (जिले) में गोरुन्नासा से संबंधित, खशियों द्वारा उपभोग कीजाती पल्लिका (गांव) तथा परिणभूतिका से सम्बन्धित गुग्गुलों द्वारा उपभोग की जाती दो—पल्लिकाओं, इन (तीनों) को मैंने माता-पिता तथा अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिए संसार को पीपल के पत्ते के समान चलायमान देखकर .... और संसार-समुद्र से उतरने के लिए पुण्यदिन उत्तरायण (मकर) संक्रान्ति को गंध, पुष्प, धूप, दीप, उपलेपन, नैवेद्य, वलि, चरु, नृत्य, गीत, वाद्य, सत्र आदि के चलाने के लिए टूटे-फूटे की मरम्मत तथा नई इमारत के बनाने के लिए और भृत्यों, चरणाश्रितों को पोसने के लिए, गोरुन्नासा में महादेवी श्रीसामदेवी द्वारा बनवाये श्रीनारायण भगवान् के लिए (इस ताम्र-) शासन द्वारा प्रदान किया।

(उक्त संपत्ति पर) न प्रजा का अधिकार न प्रचाट-भट (सिपाही-सैनिक) के प्रवेश योग्य, न कुछ भी लेने योग्य, न छीनने योग्य है (।)

प्रवर्धमान विजयराज्य संवत्सर २१, माघवदि ३ (।) यहां (इस ताम्रपत्र के लिए राजा द्वारा प्रेषित) दूतक महादान (दानविभाग) के अक्षपटल-अधिकारी श्रीपीजक (हैं।) इस (ताम्रशासन) को लिखा संधिविग्रह (विदेशमन्त्री) के अक्षपटल (अभिलेख-विभाग) के अधिकारी श्रीमान् आर्यटपतु ने (और) खोदा श्रीगंगभद्र ने ....'

इस ताम्रशासन की गोल तथा नंदी-लांछित मुद्रा की तीन पंक्तियों में लिखाहै :—

'श्रीनिंवर, उनके पदानुचर
श्रीमान् इष्टगणदेव, उनके पदानुचर
श्रीमान् ललितशूरदेव क्षितीश।'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पांडुकेश्वर, ललितशूर का ताम्रशासन (२)[1]

लिपि--कुटिला, भाषा-संस्कृत, तिथि--९११ वि०[2]

'स्वस्ति ।

श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् सकलामर-दिति-तनुज-मनुज-विभु-भक्ति-भाव-भरोन्नमितोत्तमांग-संगि-विकट - मुकुट-किरीटविटंक - कोटिकोटिशोऽनेक-नानानायक-प्रदीपद्वीप-दीधिति-पानमदरक्त-चरण-कमलामल-विपुलवहल-किरण-केशरासारसरिताशेष-विशेष-मोषि-घनतमस्तेजसस् स्वधुर्नीधौत-जटाजूटस्य भगवतो धूर्ज्जटेः प्रसादान् निजभुजोपार्जितौर्जित्यनिर्जित रिपु-तिमिर-लब्धोदय-प्रकाश-दयादाक्षिण्यादि शीलशौच-शौर्यौ - दार्य-गाम्भीर्य-मर्यादार्यवृताश्चर्य-कार्यवर्थादिगुण-गणालंकृतशरीरः महासुकृति-सन्तान-वीजावतारःकृतयुगागम - भूपाललित-कीर्तिः नन्दा-भगवतीचरण-कमलकमला-सनाथमूर्त्तिः श्रीनिम्बरस् , तस्य तनयस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी श्रीमहादेवी श्रीनाशूदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परम-ब्रह्मण्यः शितकृपाणधारोत्कृत्तोत्खात-मत्तेभ-कुम्भाकृष्टोत्कृष्ट-मुक्तावली-यशःपताकाच्छाय-चन्द्रिका-पहसित तारागणः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमद् इष्टगणदेवस् , तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी श्रीमहादेवी श्रीवेगदेवी तस्याम् उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः कलिकलंक-पंकातंक-धरण्युद्धारधारित-धौरेय-वर-वराहचरितः सहज मति-विभवविभु-विभूति-स्थगिताराति-चक्र-प्रताप-दहनः अतिवैभव-सम्भारारम्भ-संभृत-भीम-भृकुटि-कुटिल-केसरि-सटा-भीत-भीताराति-कलभभरः अरुणा-रुणकृपाण-वाणगुण - प्राण-गण-हटाद्-आकृष्ठोत्कृष्ट - सलील-जयलक्ष्मी प्रथम-समालिंगनावलोकन-वलक्ष्य-सखेद-सुरसुन्दरी - विधूत - करस्खलद्-वलय-कुसुम-प्रकर-प्रकीर्णावतंस-संवर्द्धित कीर्त्तिबीजः पृथुरिव दोर्दण्ड-साधित-धनुर्मण्डलावष्टम्भवश-वशीकृत-गोपालना-निश्चलीकृतधराधरेन्द्रः

१- एटकिनसन--उ० राहुल-गढ़वाल, पृ० ७९-८०

२- मजूमदार तथा पुसलकर--एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमल् ललितशूरदेव: कुशली

श्रीमत्कीर्त्तिपुर-विषये समुपागतान् सर्वान् एव नियोगस्थान् राज-राजन्यक-राजपुत्र-राजामात्य-सामन्त - महासामन्त - ठक्कुर-महामनुष्य-महाकर्त्ता-कृतिक-महाप्रतीहार-महादण्डनायक - महाराजप्रमातार-शरभंग-कुमारामात्य-ोपरिक-दुसाध्यसाधनिक द्शापराधिक-चौरोद्धरणिक-शौल्मिक गौल्मिक-तदायुक्तक-विनियुक्त-पट्टकापचारिक - सेधभंगाधिकृत-हस्त्यश्वो-ष्ट्र-बलाधिकृत-दूतप्रेषणिक-दाण्डिक-दण्डपाशिक-गमागमिक-शाङ्गिका-भित्वरमाणक-राजस्थानीय-विषयपति-भोगपति -नरपत्य-श्वपति-खण्डरत्न-प्रतिशूरिकस्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल- घट्टपाल - क्षेत्रपाल-प्रान्तपाल-किशोर-वडवा-गौ-महिष्यधिकृत- भट्ट-महत्तम-(1) भीर-वणिक् - श्रेष्ठि पुरोगान् साष्टादश-प्रकृत्यधिष्ठानीयान् खस-किरात-द्रविड़-कलिंगौड्र-गौड-हूणोड्र-द्रमिडा-मेदा-न्ध्र-चाण्डाल-पर्यन्तान् सर्वसंवासान् समस्तजपदान भट-चाट-सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्त्तितान् अकीर्त्तितान् अस्मत्पादपद्मोप-जीविन: प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति—

अस्तु व: संविदितं उपरि-नर्दिष्ट-विषये-पलसारि-प्रतिवद्ध देन्द्र[1]वाक परिभुज्यमानक-स्थानं मयां मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवन-विघट्टिताश्वत्थपत्र-चंचलतरंग-जीवलोकम् अवलोक्य जलबुद्बुदाकरम् असारं संसारं च दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलतां च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोकनि:श्रेयसोर्थं संसारार्णवतारणार्थं पुण्येहनि विषुवत्संक्रान्तौ गन्धपुष्प-धूपोपलेपन-वलि-चरु-नृत्य-गीत-गेय वाद्य- सत्रादि - प्रवर्तनाय खण्डस्फुटित-संस्करणाय च गरुड़ाश्रमे भट्टश्रीपुरुषेण प्रतिष्ठापित: भगवत: श्रीनारायणभट्टारकस्य शासनदानेन प्रतिपादितं प्रकृतिपरिहार-युक्तम् आचट-भट-प्रवेशम् अकिञ्चित्प्रग्राह्यम् अनाच्छेद्यम् अचान्द्रार्क-क्षिति - स्थितिममकालिकविषयाद् उद्धृतपिण्डं स्वसीमागोचरपर्यन्तं

१- वेद्र (रतूड़ी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सवृक्षारामोद्भेद-लक्षणोपेतं देव-ब्राह्मण-भुक्त-भुज्यमान-वर्जितं यतः सुखं पारंपर्येण परिभुञ्जतश्चास्योपरिनिर्दिष्टैर् अन्यतरैर्वा धरणविधारण-परिपन्थनादिकोपद्रवो मनागपि न कर्त्तव्यो न्यथा-ज्ञाहानौ महान् द्रोहः स्याद् इति निवेश (?) तस्य देवस्य वदरिकाश्रमीय-तपोवन-प्रतिवद्ध ब्रह्मचारिणा यत्किञ्चित्प्राथ्यं तत् कर्त्तव्यं तत्सर्वं ब्रह्मचारिभिः करणीयम् ।

प्रवर्द्धमान्-विजयराज्य-सम्वत्सरे द्वाविंशतिमे सम्वत् २२ कार्त्तिक सुदी १५। दूतकोऽत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीबीजकः महासन्धिविग्रहाक्ष-पटलाधिकृत श्रीमदार्य्यट-वचनात् टंकोत्कीर्णा श्रीगङ्गभद्रेण ।

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस् तस्य तस्य तदा फलम् ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वविष्टा जायते कृमिः ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गं तिष्ठति भूमिदः ॥
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तानेव नरकं वसेत् ।
गामेकां च सुवर्णञ्च भूमेरप्येकमंगुलम् ।
हर्त्ता नरकमाप्नोति यावदाहूति - संप्लवं ।

इति कमल-दलांबु-विन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च ।
सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः ॥

भावानुवाद

स्वस्ति । श्रीमत् कार्तिकेयपुर से... । परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर ललितशूरदेव कुशल हैं। तथा इस कार्तिकेयपुर प्रांत के अधीन आएहुए समस्त आज्ञानुवर्तियों को... यथायोग्य मानते, संबोधित करते आज्ञा देतेहैं ।

आपको सबको विदित है कि उपरोक्त प्रांत में मैंने माता, पिता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा अपने पुण्ययश की वृद्धि के लिए, जीवन को वायु से उड़ते पीपल के पत्ते के समान, जल की तरंग के समान जानकर तथा संसार को जलबुद्बुद् के समान असार देखकर, परलोक में निःश्रेयस के लिए, संसार-समुद्र से पार उतरने के हेतु, विषुवत्संक्रान्ति के पुण्यदिवस पर उपरोक्त प्रान्त के अन्तर्गत पलसारिगांव में देन्द्रवाक द्वारा भोगी जातीहुई भूमि को मैंने गरुड़ाश्रम में भट्टश्रीपुरुष द्वारा स्थापित भगवान् श्रीनारायण के मन्दिर में गन्ध, पुष्प, धूप, लेपन, वलि, चरु, नृत्य, गीत, गेय, वाद्य, सत्र आदि चालू रखने, तथा टूट-फूट की मरोम्मत करने हेतु इस ताम्रशासन द्वारा प्रदान करदियाहै।

उक्त सम्पत्ति पर न प्रजा का अधिकार, न प्रचाट-भट (सिपाही-सैनिक) के प्रवेश योग्य, न कुछ भी लेने योग्य, न छीनने योग्य है।

उस देव के वदरिकाश्रमीय तपोवन से सम्बन्धित ब्रह्मचारियों को वे जो आज्ञा दें, ब्रह्मचारियों को उसका पालन करनाचाहिए।

प्रवर्द्धमान् विजयराज्य संवत्सर २२, कार्तिकसुदी १२, दूतक-महादानाक्ष पटलाधिकृत श्रीमान् आर्यट के कथनानुसार गंगभद्र ने उत्कीर्ण किया।

बागेश्वर, भूदेव का शिलालेख

लिपि--कुटिला. भाषा-संस्कृत, तिथि--९१६ वि०[1]

भावानुवाद[2]

ललितशूर के पुत्र भूदेव ने अपने सिंहासनारोहण के चौथे वर्ष के दान का बागेश्वर के मन्दिर में एक शिलालेख लगवायाथा, जो कितने ही साल हुए, लुप्त होगया। अटकिनसन ने उसका जो अंग्रेजी अनुवाद अपने ग्रन्थ में छापाहै, उसका भाषांतर निम्नप्रकार है—[1]

१- मजूमदार तथा पुसलकर-एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १२३

२- राहुल-गढ़वाल, पृ० ८१-८२

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'नमः स्वस्ति । इस सुन्दर मन्दिर के दक्षिण-भाग में विद्वद्रचित राजवंशावली उत्कीर्ण है ।

'जन्तुजालध्वंसक रम्य ग्राम में पवुपड़िदल के निनूननुति नामक द्वार पर अवस्थित परदेव को नमस्कार ।

'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मसंतन[1] देव नामक राजा हुए । उनकी पतिपरायणा पत्नी रानी सज्यनरादेवी से उत्पन्न पुत्र परमसम्मानित, श्रद्धाभाजन, अति-विभव-संपन्न, परमभट्टारक महा-राजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ... हुए । वे परमेश्वर (शिव) के पूजार्थ अनवरत वृत्ति-प्रदाता, जयकुलभुक्तिकी ओर जानेवाले कई सार्वजनिक मार्गों के निर्माता, अंबलिपालिका के व्याघ्रेश्वरदेव के पूजार्थ गंध-पुष्प-धूप-दीप-अनुलोपन-द्रव्यों के दाता और युद्धों में त्राता थे। उन्होंने अपने पिता (वसंतनदेव) द्वारा वैष्णवों को प्रदत्त शरणेश्वर ग्राम और पुष्पादि द्रव्य उन्हीं देव (व्याघ्रेश्वर) को प्रदान किया, (तथा) सार्वजनिक मार्गों के किनारे गृह (पांथशालाएं) बनवाए । उनकी कीर्ति यावत् चन्द्र-दिवाकर अचल रहेगी ।

'उनके पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर खर्पर-देव हुए । उनके पुत्र उनकी पतिपरायणा पत्नी ... से उत्पन्न वित्त-विद्या-मान-समन्वित तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् अधिधज हुए । उनके पुत्र उनकी पतिप्रिया रानी लद्धादेवी से उत्पन्न कर्म-धन-मान-बुद्धि-सम्पन्न त्रिभुवनराजदेव हुए । उन्होंने उन देव (व्याघ्रेश्वर) को जयकुलभुक्तिकागांव में दो द्रोण[2] का नय नामक उर्वरखेत प्रदान किया, तथा उन्हीं देव (व्याघ्रेश्वर)-की पूजा के लिए, उसमें गंधादि द्रव्यों के उत्पादन करने की आज्ञा दी । यह भी विदित हो कि उन (त्रिभुवनराज) के परममित्र किरात-पुत्र ने उक्त देव तथा गंबियपिंड देवता के लिए ढाई द्रोण भूमि दान दी ।

१- वसंतन 　　२- डेढ़ एकड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिधज के दूसरे पुत्र ने भरके[१] देवता को एक द्रोण भूमि दी तथा दो ... (द्रोण) भूमि के दान का संवत् ११ में शिलालेख करवाया। उसने व्याघ्रेश्वरदेव को एक द्रोण और चंडालमुंडादेवी को १४ ... (खंड) भूमि प्रदान की और व्याघ्रेश्वरदेव के सम्मान में एक प्याऊ स्थापित किया। यह सब भूमिखंड व्याघ्रेश्वरदेव की पूजा के लिए दान किएगए।

'दूसरे भी दाक्षिण्य-सत्य-सत्व-शील-शौच-शौर्य - औदार्य - गांभीर्य-मर्यादा, आर्यवृत्त-आदि-गुणगणालंकृत, सुदर्शन-नन्दन-अमरावति-नाथ चरणकमल-पूजार्थ-धृत-शरीर निंवर्त नामक राजा हुए, जो अपने अनेक स्वच्छ सुन्दुर वृहद् रत्नों, कृष्णसर्प क्रीड़ित-उज्ज्वल-केसरपुष्पों द्वारा अन्य-भास्वर-द्रव्य-निष्प्रभकारक गंगा-परिशुद्ध जल से उज्ज्वल जटा-युक्त-शिरवाले कोटिवरद धूर्जटिके प्रसाद से स्वकरधृत-धनुष के बल द्वारा सदा (रण में) विजेता गौरांग, सुवर्णवर्ण, सकल-स्वशत्रु-गण-पराजेता, सर्व-सुरासुरनर-बुधजन-पूजा में सदा बद्धादर और विनम्र थे। यज्ञानुष्ठानों से उद्भूत उनका यश सर्वत्र गायाजाताथा!

'तिन (निंवर्त) के पुत्र उनकी पतिपरायण अग्र-महिषी नाशूदेवी से उत्पन्न तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ... इष्टगणदेव हुए। तिनके पुत्र पतिव्रता स्वपत्नी धरा (वेंग) देवी में उत्पन्न तत्पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् ललितशूरदेव हुए। तिनके पुत्र पतिभक्ता स्वपत्नी लग्गादेवी से उत्पन्न परमभट्टारक परमेश्वर श्रीमान् भूदेवदेव हैं। वह परमब्राह्मणभक्त, बुद्धश्रवण (०मण)—शत्रु, सत्यप्रिय, सुन्दर, विद्वान्, सदा धर्मानुष्ठानतत्पर हैं। उनके पास कलि नहीं फटक सकता। वह सुवर्णवर्ण तथा उनके नेत्र नील-सरोज सम सुन्दर तथा चपल हैं। उनके सुवर्णवर्ण-चरणों में प्रणत राजसमूह के मुकुटों की मणियों के शब्दों से बहुधा

१- भटकू (?)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके श्रवण पीड़ित रहते हैं। उनके महान् शस्त्र ने अन्धकार को ध्वस्त करदिया। उन्होंने अपने कृपापात्र अनुचरों को वृत्ति प्रदान की। . . .

पांडुकेश्वर, पद्मटदेव का ताम्रशासन[1]

लिपि--कुटिला, भाषा--संस्कृत, तिथि--दसवीं शताब्दी नि०

स्वस्ति।

श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् समस्तसुरासुर-मुकुट-कोटि-सन्निविष्टविकट-माणिक्य-किरण-विच्छुरित- नखमयूखोत्खाततिमिरपटलप्रभाव - दर्शिताशय-शमशक्ति-महीयसो भगवतश्चन्द्रशेखरस्यं चरणकमल-रजःपवित्रीकृत-निज-निज-तनुभुजार्जितोर्ज्जिता नेकरिपुचक्र - प्रतिष्ठित-प्रताप - भास्कर-भासित-भुवनाभोग-विभव - पावक शिखावली-विलीन-सकल-कलिकलंक-समुद्भूतोदार-तपोवदात देहः शक्तित्रय-प्रभाव-संबृंहितहितहेतिर् दानदम-सत्यशौर्यशौटीर्य- धैर्यक्षमाद्यपरिमित-गुणगुणाकलित-सगर-दिलीप-मांधातृ-धुन्धुमार-भगीरथ-प्रभृति-कृतयुग-भूपाल-चरितमागरस् त्रैलोक्यानन्दजननो नन्दादेवी-चरणकमललचर्मातः समधिगताभिमतवरप्रसाद-द्योतित-निखिल-भुवनादित्यः श्रीसलोणादित्यः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञीमहादेवी सिंघवली[2] देवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यो परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमदिच्छटदेवः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीसिन्धुदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यो दीनानाथकृपणातुर - शरणागतवत्सलः प्राच्योदीच्यप्रतीच्यदाक्षिणात्य-द्विजवर-मुख्यानाम् अनवरत-हेमदान-(मृना)-र्द्दितकरः समस्तारातिचक्र-प्रमर्दनः कलिकलुषमातंगसूदनः कृतयुगधर्मावतारः परमभट्टारक-महाराजाधिराजपरमेश्वर-श्रीमद्देशटदेवः तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी

१- एटकिनसन--उ० राहुल-गढ़वाल, पृ० ८३-८४ २- सिंह (र.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीपद्मल्लदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमत्पद्मटदेवः कुशली ।

टंकणपुर विषये समुपागतान् सर्वानेव नियोगस्थान् राज-राजन्यक-राजपुत्र-राजामात्य-सामन्तमहासामन्त- महाकर्ता - कृतिक-महादण्डनायक-महाप्रतिहार-महासामन्ताधिपति-महाराजप्रमातार - शरभंग - कुमारामात्य-ोपरिक-दुःसाध्यसाधनिक-दोषापराधि-क-चौरोद्धरणिक- शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक-विनियुक्तक-पट्टकापचारिक-सौधभं गाधिकृत-हस्त्य-श्व- ोष्ट्र-बलव्यापृतक-दूतप्रे षणिक-दाण्डिक-दण्डपाशिक-विषयव्यावृतक-गमागमिक खाड्गिक त्वरमाणक-राजस्थानीय-विषयपति-भोगपति-काण्डपति नरपत्य-श्वपति-खण्डरक्षास्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल-घट्टपाल - क्षेत्रपाल-प्रान्त-पाल-ठक्कुर- महामनुष्य-किशोर-वडवा-गो-महिष्य - धिकृत-भट्ट-महत्तम-ाभीर-वणिक्-श्रे ष्ठि पुरोगान् अष्टादशप्रकृत्यधिष्ठानीयान् खश-किरात-द्रविड़-कलिंग-गौड़-हूणान्ध्रभेदान्[1] आचाण्डाल-पर्यन्तान् सर्वसमावासान्[2] समस्तजनपदान् भटचाटसेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान् अकीर्तितान् अस्मत्पादोपजीविनः पल्लिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हम् मानयति बोधयति समाज्ञापयति —

अस्तुः वः संविदितम् उपरिसंसूचितविषयप्रतिबद्ध द्रुमतीप्रतिबद्ध दीर्घादित्य[3] बुद्धाचल-यिदादित्य-गुणादित्यानां परिभुज्यमाना पल्लिका च नम्र (?) तथा तस्मिन्नेव द्रुमत्यां पंगरस्य पंचदशभागश् तथा ग्रोशि प्रतिबद्ध' ओगलावृत्तिर् अपरभूमिकर्मान्त-स्थलिकास्मिन्नेव ग्रोशि-प्रतिबद्धा गङ्गापश्चिमकूलसंक्रमसंन्निकृष्टा खणोदुपरिडलिका परिछिन्नापरं च तस्मिन्नेव द्रुमत्यां काकस्थलीग्रामे पारेवतवृत्ततलिमभागे भूमिः तदीय-देशाचारमानेन द्रोणिकवाधा[4] एतद्द्रोणद्वयवापा भूर्नन्दकेन मूल्येन गृहीत्वा बदरिकाश्रम-भट्टारकाय प्रतिपादिता ।

१- हूणान्ध्र०   २- सर्वसंवासान्   ३- तीर्थादित्य (र.)
४- द्रोण = पौन एकड़ = १६ नाली = ३२ सेर (?)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मया च सर्वा एता पल्लि पल्लिकावृत्तिकर्मान्तादिभूमि-सहिता उत्तरायण-संक्रान्तौ मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवनविघटिताश्वत्थपत्र-चंचलतरंगजीवलोकम् अवलोक्य जलबुद्बुदाकारम् असारं चायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचंचलताञ्च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोक-निःश्रेयसार्थं संसारार्णवतारणार्थञ्च बलि-सत्र-नैवेद्य-प्रदीप-गन्ध-धूप-पुष्प-गेय-वाद्य-नृत्यपूजाप्रवर्तनाय खण्डस्फुटितपुनः-संस्काराय च भगवते वदरिकाश्रमाय प्रतिपादिता पुष्पपट्टनिवेशं कृत्वा प्रकृति-परिहारयुक्तं अचाटभटप्रवेश्यं अकिंचित्प्रग्राह्यं अनाछेद्यं आचन्द्रार्कक्षितिस्थिति-सम-कालिका विषयाद् उद्धृतपिण्डांश्च आसीमागोचरपर्यन्तां सवृक्षारामोद्भिद्-प्रस्रवणोपेतं राजभोग्य-सकल-प्रत्यय-समेतं देवब्राह्मण-भुक्तभुज्यमान-वर्जितं (।) यतः सुखं परिभुंजतोपरिनिर्दिष्टैरन्यतरैर् वा स्वल्पमपि धारणविधारण-परिपन्थनादिकोपद्रवो न कैश्चित् करणीयः अतोन्यथास्य व्यतिक्रमे महान् द्रोहः स्याद् ।

इति प्रवर्द्धमान-विजयराज्य-संवत्सरे पंचविंशतितमे संवत् २५ माघ वदि, १३ । दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीभट्ट धणः लिखितमिदं महासंधिविग्रहाक्षपटलाधिकृतश्रीनारायणदत्तेनोत्कीर्णमिदं श्रीनन्दभद्रेण ।

भो राजानः प्रार्थयत्येष रामो भूयोभूयः प्रार्थनीया नरेन्द्राः (।)
सामान्योयं धर्मसेतुर नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।।

भावानुवाद—

स्वस्ति । श्रीमत्कार्तिकेयपुर से । . . . भगवान् चन्द्रशेखर के चरणकमल की धूल से पवित्र . . . अपरिमित गुणों से युक्त . . . सगर, दिलीप, मान्धातृ, धुन्धुमार, भगीरथ आदि सतयुग के भूपालों के समान . . . नन्दादेवी के चरणकमल की लक्ष्मी से युक्त . . . निखिल भुवनों में आदित्य के समान श्री सलोणादित्य नरेश थे ।

उनके पुत्र, उनके चरणों में लीन, महादेवी सिंधवलीदेवी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गर्भ से उत्पन्न परममाहेश्वर, परमब्राह्मणभक्त, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमद् इच्छटदेव हुए।

उनके पुत्र, उनके चरणों में लीन, महादेवी श्रीसिन्धुदेवी के गर्भ से उत्पन्न परममाहेश्वर, परमब्राह्मणभक्त, दीन, अनाथ, कृपण, आतुर और शरणागत के रक्षक, पूर्व, उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण के श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नित्य स्वर्णदान देनेवाले, समस्त कष्टों को दूर करनेवाले, कलिकलुषरूपी हाथी को नष्ट करनेवाले, सतयुग के धर्म के अवतार, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् देशटदेव हुए।

उनके पुत्र, उनके चरणों में लीन, महादेवी श्रीपद्मल्लदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर परमब्राह्मणभक्त, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमत् पद्मटदेव कुशल हैं। तथा टंकणपुर प्रांत में आएहुए समस्त राजकर्मचारियों को . . . तथा खश, किरात, द्रविड़, कलिंग, गौड़, हूण आदि चांडाल पर्यन्त . . . सबको यथायोग्य मानतेहुए, सम्बोधित करतेहुए आदेश देतेहैं।

आपको विदित होनाचाहिए कि ऊपर कहेगए प्रांत (टंकणपुर) में द्रुमती क्षेत्र के अन्तर्गत दीर्घादित्य (पाठान्तर तीर्थादित्य), बुद्धाचल, यिदादित्य और गुणादित्य द्वारा भोगीजातीहुई पल्लिका (छोटा गांव), उसी द्रुमति में पंगरखेत का पन्द्रह भाग, योशिगांव में ओगलावृत्ति (ओगल उत्पन्न करनेवाला ?), साथ की अन्य भूमि तथा इसी योशिगांव में गंगाजी के पश्चिमी तट पर खणोदुपरिउलिका खेत, उसी द्रुमति के काकस्थली गांव में पारेवतवृक्ष के नीचे की ओर की भूमि में से देशाचार मान से दो द्रोण बीजवाली भूमि खरीदकर भगवान् बदरिकाश्रम को अर्पित कीहै।

वृक्ष, वाटिका और जलाशयों सहित मैंने यह सब छोटे-बड़े गांवों की भूमि, तथा संलग्न गोचर भूमि उत्तरायण की संक्रान्ति को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माता, पिता और अपने पुण्ययश की वृद्धि के लिए संसार को . . . अनित्य समझकर . . . भगवान् बदरिकाश्रम में वलि, सत्र, नैवेद्य, प्रदीप, गन्ध, धूप, पुष्प गेय, वाद्य, नृत्य, पूजा चालू रखने के लिए, टूट-फूट की मरोम्मत के लिए अर्पित करदीहै। इस सम्पत्ति पर न प्रजा का अधिकार, न प्रचाट-भट के प्रवेश योग्य, न कुछ भी लेनेयोग्य और न कुछ छीननेयोग्य है। . . .

इसमें कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार विघ्न-वाधा न करे। ऐसा करना महान् द्रोह समझाजाएगा।

प्रवर्द्धमान विजयराज्य संवत्सर--२५, माघ वदि १३।

दूतक — महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीभट्ट धरण।

लेखक--महासंधिविग्रहाक्षपटलाधिकृत श्रीनारायणदत्त।

उत्तीर्णकर्त्ता-श्रीनन्दभद्र।

पांडुकेश्वर, सुभिक्षराज का ताम्रशासन[1]

लिपि--कुटिला, भाषा--संस्कृत, तिथि--दसवीं शताब्दी वि०

'स्वस्ति।

श्रीमत्सुभिक्षुपुरात् समस्तसुरासुर-पति-मुकुट-कोटि-सन्निविष्ट-विकट-माणिक्यकिरण-विच्छुरित चरणनखमयूखोत्खात- तिमिरपटलप्रभावातिशत-शम-शक्ति-महीयसो भगवतश्चन्द्रशेखरस्य चरणकमलरजः पवित्रीकृत-निजतनुर् निजभुजार्जितोर्जितानेकरिपु-चक्रप्रतिष्ठित-प्रताप-भास्कर भासित-भुवनाभोग-पावकशिखावलीन-सकलकलिकलंक-समुद्भूतोदारतपोवदातदेहः शक्तित्रयप्रभाव-संवर्द्धित-हितहेतिदान-दम - सत्य - शौर्य - शौटीर्य-धैर्य्य-क्षमाद्यपरिमित - गुणगणालंकृत-सगर-दिलीप-मान्धातृ - धुन्धुमार -भरत-भगीरथ-दशरथ-प्रभृतिकृतयुग-भूपालचरित-सागरस् त्रैलोक्यानन्द-जननो

---

1. एटकिनसन--उ० राहुल-गढ़वाल, पृ० ८४-८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नन्दादेवी - चरणकमल - लक्ष्मीत: समधिगताभिमतवरप्रसादोद्योतित-निखिलभुवनादित्य: श्रीमलोणादित्य: तस्य पुत्र: तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीसिंहवलीदेवी तस्यामुत्पन्न: परममाहेश्वर: परमब्रह्मण्य: परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीमद् इच्छटदेवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यात: (,) राज्ञी महादेवी श्रीसिन्धुदेवी तस्याम् उत्पन्न: परममाहेश्वर: परमब्रह्मण्यो दीनानाथकृपणातुरशरणागतवत्सल: प्राच्योदीच्यप्रतीच्यदाक्षिणात्य-द्विजवरमुख्यानाम् अनवरत-हेमदानामृता (र्द्रित) कर: समस्ताराति-चक्र-प्रमर्द्दन: कलिकलुष-मातंगसूदन: कृतयुग-धर्मावतार: परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीमद् देशट देवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीपद्मल्लदेवी तस्याम् उत्पन्न: परममाहेश्वर: परमब्रह्मण्य: स्वयमुत्खात-भास्वद्दीप्ति-प्रभा-वितान-सबलीकृत-बाहुबलविवर्जितशेष-दिग्देशागत-प्रणामोपनीत-करि-तुरंग-विभूषणानवरत प्रदान-तिरस्कृताशेष-बलि-वैकर्तन-दधीचि-चन्द्रगुप्त-चरितश् चतुरुदधि-परिखा-पर्यन्तमेखलादाम्न: क्षितेर् भर्ता परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीपद्मटदेवस् तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीमद् दिशालदेवी तस्याम् उत्पन्न: परमवैष्णव: परमब्रह्मण्य: संविदित-शास्त्रप्रतिपालक: दूरापसारित-कलि - तिमिर-निकर-हेला-फलित-सकल-कलापालंकृत-शरीर: भुवन-विख्यात-दुर्मदाराति-सीमन्तिनी-वैधव्यदीक्षा-दानदक्षैकगुरु: प्रतिपक्षलक्ष्मीहठ - हरणागणित-प्रचण्डदोर्दण्ड-दर्पप्रसर: परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्रीमत् सुभिक्षराज (देव:) कुशली ।

टंकणपुर-विषये अन्तरांगविषये च समुपागतान् सर्वानेव नियोगस्थान् राज-राजन्यक-राजपुत्र-राजामात्य-सामन्त-महासामन्त- महाकर्त्ता - कृतिक-महादण्डनायक-महाप्रतिहार-महासामन्ताधिपति-महाराजप्रमातार - शरभंग कुमारामात्य- ोपरिक - दु:साध्यसाधनिक - दोषापराधिक - चौरोद्धरणिक-शौल्किक-गौल्मिक-तदायुक्तक-विनियुक्तक-पट्टकापचारिक-सौधभंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हस्त्यश्वो-ष्ट्रलङ्गापृतक-दूतप्रेषणिक-दाण्डिक - दण्डपाशिक-गमागमिक-खाड्गिका-भित्वरमाणक-राजस्थानीय - विषयपति - भोगपति-काण्डपति-नरपत्यश्वपति-खण्डरक्षास्थानाधिकृत-वर्त्मपाल-कोट्टपाल-घट्टपाल-क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल-ठक्कुर-महामनुष्य - किशोर - बडवा - गो-महिष्याधिकृत-भट्ट-महत्तमा-भीर-वणिक्-श्रेष्ठिपुरोगान् साष्टादशप्रकृत्यधिष्ठानीयान् खस-किरात-द्रविड़-कलिंग-गौड़ हूणोड्र-द्रमिद - न्ध्र-भेदानाचाण्डाल-पर्यन्तान् सर्वसंवसान् समस्तजनपदान् भटचाट-सेवकादीन् अन्यांश्च कीर्तितान-कीर्तितान् अस्मत्पादपद्मोपजीविन: प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समाज्ञापयति ।

अस्तु व: संविदितम् उपरिसंसूचितवैषयिक-नम्बरम[1]-ग्राम-प्रतिवद्ध वच्छुरकसत्कविडिमलाक नामा भू: षण्णां नालिकानां वापा तथा भेटसार्या भूखंडम् अष्टनालिका -वाप: तथा वाडियालिके[2] भूखण्डं चतुर्णां द्रोणानां-वाप: तथा भागरुसत्कवनोलकाभिधाना भूखण्डं त्रयनालिका-वाप: तथा सुभट्टकसत्का शरणंखोन[3] रामद्धितं कण्डियाका-परिच्छिन्नं तथा पस्त-राकभुतिरोड-सत्कशठिकनामा भूमि द्वय-द्रोण-वापं तथा गोवितंगक सत्कयच्छसृद्धाभिधान-भूमि त्रयद्रोण-वाप: तथा वेनवाक-सत्क क्षीरानावा-भिधान भूखंड त्रय-द्रोणवापं तथा शोषिजीवाक-सत्क गगरकनामा भूमि अष्टद्रोणवापा तथा च जीवाकसीमादित्य-इच्छवलान्ता-सत्क पेट्टकनामा भूमि त्रयद्रोणवापा तथा कट नामा भूमि द्वयद्रोणवापा नाम्बरंगीय[4] समस्त-जनपदानां सत्क न्यायपट्टक नामा भूमि दश-द्रोण-वापा तथा पंकरहस्तमेकं तथा इच्छाबल-विहलक-महर्जियाक-प्रथमादित्यानां सत्क बडिबल्लाभिधाना भूमि षड्द्रोणवापा शिलादित्य-सत्क खोरखोट्टक नामा भूमि षण्णां वाप: तथा श्रीहर्षपुर कर्मान्त-प्रतिबद्ध पूर्व पवमाणक-[5] उंगक-परिभुज्यमान पल्लिका ।

१- नवरंग(र.) २- वाडिवालिके(र.) ३- शरन्यंखोतु यक्षद्धया(र.)
४- नायरंगीय(र.) ५- वरभाणक(र.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एतद्भूमय: पल्लिकाश्च श्रीहर्षपुरीय श्रीदुर्गाभट्ट-विषया तथा वरोषिका-ग्राम-संबंधना उष्णोदक-त्रिज्जट-दुज्जणातंग-विषयतङ्गचाचटक-वराह-सिट्टक[1]-सत्का नपाभिधान[2] भूखण्ड नवद्रोणवापं तथा सत्तक-पुत्राणां नपीणां सत्का नय भूखण्ड-चतुष्टयं खारिवापं[3] तथा जातिपाटक-नामा[4] भूइज्जार समन्वितं तथा समिज्जीयं भूखण्डद्वयं नवद्रोण-वापं तथा सत्रकपुत्राणां सत्क पैरी-ग्राम-प्रतिबद्ध गोदोधकाभिधानाभूमिर् विंशद्द्रोणवापा तथा यो (?) षिक ग्रामनिवासिनां सत्क द्यस्मेरुका नाम भूमिद्वयद्रोणवापा तथा सिहारा नाम भूमि द्रोणवापं तथा वलीवर्दशिला नाम भू त्रयद्रोणवापं तथा इहंगनामा भू पंचद्रोणवापं तथा तिरंगानामा[5] भू: त्रयद्रोणवापं तथा कट्टणशिलल नामा भू त्रयद्रोणवापं तथा गान्दो-डारिक नामा भू त्रयद्रोणवापं तथा युग नामा भू: द्रोणवापं ककठयाला नामा भू: त्रयद्रोणवापं तथा पंकरहस्ते द्वय तथा धारणाक-सत्क दालीमूलक नामा भू द्वयद्रोणवापं तथा शिखन-सत्क ग्रासिद्दारके भूखण्ड द्वयद्रोणवापं तथा इच्छुवर्दन शिलादित्ययोस सत्क सूछश्रीमा नाम भू पंचद्रोणवापं तथा विषयिणानां सत्क कर्कण्ठक भू चतुर्णां द्रोणानां वापं तथा कट्टुस्थिकानां सत्क चिधाभारिका नाम भू त्रयद्रोणवापं तथा रडवक ग्रामिणानां सत्क पन्तकोरापिका नामा भू द्वादशद्रोणवापं तथा तुंगादित्य-सत्क लोहरसमेणा भू षण्णालिकानां वापं तथा योषिक-कर्मान्तसम्बद्ध ग्रामपरक नामा भू पंचदशद्रोणवाप: मठिक-समन्विता एतद् भूमयो विष्णुगङ्गा-सम्मेलित-भगवते श्रीनारायण-भट्टारकाय तथा सदायिका-प्रतिबद्ध रच्चपहिलजका भिधानस्य घाटानि लिख्यंते ।

श्रीसंकटसीमायां पश्चिमत: श्रण्डारिनिगनिक पूर्वत: गङ्गायाम् उत्तरत: समेहक ग्राम दक्षिणतस् तथा सेवायिकायां बच्छुक-सत्क ग्रहण-

---

१- सिट्टक (र.) २- नना (र.) ३- २० द्रोण (६४० सेर बोने की भूमि) = एक खारी (१६ एकड़) ४- जतिकटक
५- पात्रकोशविका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कयाकी सान्तनालिकावापा: भगवते ब्रह्मे श्वर-भट्टारकाय एता भूमय पल्लिके द्वे च मया माता-पित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवन-विघट्टिताश्वत्थ-पत्र-चंचल-तरंग-जीवलोकम् अवलोक्य जल-बुद्बुदाकारम् असारं चायुर् दृष्ट्वा गजकलभकर्णाभचपलतां च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोकनि:श्रे यसोर्थं संसारार्णवतारणार्थञ्च पुण्ये हनि भगवद्भ्य: श्रीदुर्गादेवी-श्रीनारायण-भट्टारक-श्रीब्रह्मे श्वर-भट्टारकेभ्य: गन्ध - धूप-पुष्पोपलेपन-संमार्ज्जन-गीत-वाद्य-नृत्य-वलिचरुस् सत्र प्रवर्तनार्थं खण्डस्फुटित-पुन:संस्करणार्थं च प्रति-पादित: प्रकृतिपरिहार - युक्ता - चाट - भट्टप्रवेश्याम् अकिंचित्प्रग्राह्याम् अनाच्छेद्यां आचन्द्रार्कक्षितिस्थिति-समकालिक-विषया उद्धृतपिण्ड-स्वसीमा-गोचर-पर्यन्तं अवृक्षारामोद्भेद-प्रस्रवणोपेतं देवब्राह्मण-भुक्तभुज्यमान-वर्जितं यत: सुखं पारम्पर्येण परिभुज्यमानानां स्वल्पमपि धरण-विधारण-परिपन्थनादिकोपद्रवो न कैश्चित् करणीयो न्यथा व्यतिक्रमे महान् द्रोह: स्याद् ।

इति प्रवर्द्धमान-विजयराज्य-सम्वत्सरे चतुर्थ सम्वत् ४ ज्येष्ठ वदी ५ । दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीकमला . . . . लिखितमिदम् महासन्धिविग्रहाधिकृत श्रीईश्वरीदत्ते न (,) उत्कीर्णमिदञ्च श्रीनन्द भद्रे ण (।)

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभि: सगरादिभि: ।
यस्य यस्य यदा भूमिस् तस्य तस्य तदा फलम् ॥
षष्ठिवर्षसहस्राणि स्वर्गं तिष्ठति भूमिद: ॥
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तानेव नरकं वसेत् ।
अनूदकेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिन: ।
कृष्णसर्पा विजायन्ते ब्रह्मदायं हरन्ति य ।

भो राजान: प्रार्थयत्येष रामो भूयो भूयो:प्रार्थनीया नरेन्द्रा: ।
सामान्यो यं धर्म्मसेतुर् नराणां काले-काले पालनीयो भवद्भि: ।
इति कमल-दलांबु-विन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च ।
सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा नहि पुरुषै: परकीर्त्तयो विलोप्या: ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद-

स्वस्ति । श्रीमत्सुभिक्षपुर से । निखिल भुवनों के लिए आदित्य के समान सलोणादित्य थे । उनके पुत्र महादेवी सिंहवलीदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्रीमान् इच्छटदेव हुए ।

उनके पुत्र महादेवी, सिन्धुदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्रीमत् देशटदेव हुए । इनके पुत्र, रानी महादेवी श्री पद्यलदेवी से उत्पन्न, परममाहेश्वर, परमब्रह्मण्य, परमदीप्तिमान्, अतिवली, निरंतर हस्ती, तुरंग, आभूषणादि प्रदान करने में वलि, वैकर्त्तन, दधीचि, चन्द्रगुप्त आदि सभी को तिरस्कृत करदेनेवाले, चारों समुद्रों की परिखा पर्यन्त मेखलायुक्त धरती के भर्त्ता, परमभट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीपद्मटदेव हुए ।

उनके पुत्र, उनके आज्ञानुवर्ती, रानी महादेवी श्रीमद् विशालदेवी से उत्पन्न, परमवैष्णव, परमब्रह्मण्य, शास्त्रों के प्रतिपादक, कलि-तिमिर को दूर करनेवाले, उद्दंड शत्रुओं की नारियों को वैधव्यदीक्षा देने में दक्ष, शत्रुओं की लक्ष्मी का हरण करने में प्रचड, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सुभिक्षराजदेव कुशल हैं । और वे टंकणपुर जिले और अंतरांगजिलों के अन्तर्गत समस्त राज्याधिकारियों, अपने चरणों के अनुवर्तियों को यथायोग्य मानतेहुए, सम्बोधित करतेहुए आज्ञा देतेहैं ।

आपको विदित होनाचाहिए कि उपरोक्त जिलों में नम्बरगांव में छै नाली बीजवाली वच्छरक के पास नडिमलाक भूमि, भेटसारी में आठ नाली भूमि, वाडियालिक में चार द्रोण की भूमि, भागरु के पास तीन नाली का वनोलका नामक खेत, सुभट्टक के पास दो द्रोणवाला शरणंखोन तथा पस्तराकभृतिरोड के पास शठिक खेत, गोवितंग के पास तीन द्रोण का कवच्छसृद्धा खेत, वेनवाक के पास क्षीरानावा, शोषिजीवाक के पास आठ द्रोण का गंगरक तथा जीवाकसीमादित्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेत, इच्छवला के पास तीन द्रोण का पेट्टक खेत, कट खेत, दो द्रोण का नाम्बरगौध, दस द्रोण न्यायपट्टकभूमि, एक हाथ पंकर (?) इच्छावल, विहलक, महाजियाक, प्रथमादित्य के पास छै द्रोण की वडिवला भूमि, शिलादित्य के पास खोरखोट्टक, हर्षपुर में पवमातक उंगक द्वारा भोगाजाता गंवाड़ा।

उपरोक्त भूमि और गांव श्रीहर्षपुर में श्रीदुर्गाभट्ट के क्षेत्र में तथा बरोसिकगांव में उष्णोदक, विज्जट, दुज्जणातंग, विषयतंग, चाचटक, बराह, सिहक के पास नौ द्रोण का नपा नामक खेत, सत्तकपुत्र नपियों के पास खारि बीज के चार नय (?) खेत, नौ द्रोण के जातिपाटक, भूइज्जार, समिज्जीय खेत, सत्रकपुत्रों के पास पैरीगांव में बीस द्रोण का गोदोधका खेत, योशिगांव-निवासियों के पास दो द्रोण का द्यस्सेरुका खेत, द्रोण बीज का सिहारा, तीन द्रोण का वलीवर्दशिला खेत, पांच द्रोण का इहंग खेत, तीन-तीन द्रोण के तिरंगा, कट्टराशिलल, गान्दोडारिका तथा ककठयाला खेत, द्रोण बीज का युग खेत, पंकरहस्त में दो खेत, धारणाक के पास दो द्रोण का दालीमूलक खेत, शिखन के पास ग्रामदारिका में दो द्रोण भूमि, इच्छवर्द्धन तथा शिलाद्रित्य के पास पांच द्रोण का सूष्टधीमा खेत, विषयियों के पास चार द्रोण का कर्कण्ठक, कटुस्थिकाओं के पास तीन द्रोण का चिधाभारिका खेत, रडवकगांव वालों के पास बारह द्रोण का पंतकोरापिका खेत, तुंगादित्य के पास छः नाली का लोहरसमेण खेत, योषिक से संबंधित, पन्द्रह द्रोण का ग्रामपरक खेत, मठिक सहित यह भूमि सदायिका युक्त रच्चपहिल्लिका सहित विष्णुगंगा के तट पर स्थित श्रीनारायण भगवान् को अर्पित करदीहै।

मैंने माता-पिता तथा अपने पुण्ययश की वृद्धि के लिए जीवलोक को चंचल, आयु को असार, लक्ष्मी को चपल, समझकर परलोक के निश्रेयस के हेतु, संसार समुद्र से पार होने के लिए इस पुण्यदिवस पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीदुर्गादेवी, श्रीनारायणभगवान् तथा श्रीब्रह्मेश्वरभगवान् के गन्ध, धूप, दीप, पुष्पोपलेपन, समार्ज्जन, गीत, वाद्य, नृत्य, वत्ति, चरु, सत्र चालू रखने हेतु, टूट-फूट की मरोम्मत के लिए, दो गांव और संकटसीमा, अंडारिगनिक, गंगा और समेहक गांव से बनी सीमाओं वाली भूमि तथा सेवायिका में बच्छ्क के पास सात नाली बीजवाली ग्रहणकयाकी भूमि दानकरदीहै। इस भूसम्पत्ति पर न प्रजा का अधिकार, न प्रचाट-भट के प्रवेशयोग्य, न कुछ भी लेनेयोग्य, न कुछ भी छीननेयोग्य है। इस भूमि से संलग्न गौचर, वृक्ष, वाटिका, जलाशय, देव-ब्राह्मण भुक्त-भुज्यमान को छोड़कर सबको देवार्पित करदियाहै। इसमें कोई तनिक भी उपद्रव न करे। अन्यथा महान् द्रोह समझाजाएगा।

प्रवर्द्धमान् विजयराज्य सं० ४, ज्येष्ठ वदि ५

'दूतक—महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीकमला...

लेखक—महासन्धिविग्रहाधिकृत श्रीईश्वरीदत्त

उत्कीर्णकर्त्ता—श्रीनन्दभद्र

खजुराहो, यशोवर्मन चन्देल का शिलालेख[1]

लिपि--कुटिला, भाषा-संस्कृत, तिथि--१०११ वि०

१३- गौडक्रीडालतासिस्तुलितखसत्र (ब) ल कौशलः कोशलानां
नश्यत्कस्मी (श्मी) रवीरः शिथिलितमिथिलः कालवन्मालवानां।
सीद (त्सा) वद्यचेदिः कुरुतरुषु मरुत्संज्वरो गूर्जराणां
तत्मात्तस्यां स जज्ञे नृपकुल-
तिलकः श्रीयशोवर्मराजः॥

१४-

१७- गङ्गानिर्झरघर्घरध्वनिभयभ्राम्यत्तुरङ्गव्रजाः
सद्यः सुप्तविवु (बु) द्धकेस-

१- केलहौर्न--उ० रा० व० पांडे--पृ० १६२-१६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८- रि-रवात्त्रस्यत्करीन्द्राकुला:
यत्सैन्यै: प्रतिकल्पपादपसुमालूनोप्रसूनोच्चया:
प्रालेयाचल मेखला: कथमपि (क्रा) न्ता: श (नैर्दिग्जये) ।
२४- दैत्यारातेस्तुषारक्षितिधरशिखरस्पर्द्धि वर्द्धिष्णुरागा
दृष्टे यात्रासु यत्र तृ (त्रि) दिववसतयो विस्मयन्ते समेता:
कैलाशा (सा) दभोटनाथ: सुहृदिति च तत: कीरराज: प्रपेदे
साहिस्तस्मादवापद्धिषतुरगव (ब) लेनानु हेरम्ब (म्ब) पाल:

भावानुवाद-

चन्देलनरेश हर्ष (६५७-६८२ वि०) ने गौड़नरेश की बढतीहुई शक्ति का हनन किया । (उत्तराखण्ड के) खसनरेश के वल को दबाया कौशलनरेश की कुशलता और काश्मीर का वीरत्व नष्ट करदिया, तथा मिथिलाधिप को शिथिल बनादियाथा ।

वह मालवनरेश के लिए काल के समान, चेदिनरेश को कम्पित करनेवाला, गुर्ज्जरनरेश के लिए तीव्रज्वर बनकर संताप देनेवाला और कुरुवंश रूपी तरुओं को प्रभंजन-वेग से उखाड़नेवालाथा । उस हर्ष से तथा चाहमान राजकुमारी कंचुका से नृपतियों में श्रेष्ठ यशोवर्म्मन् उत्पन्न हुआथा ।

उस नरेश यशोवर्म्मन् (राज्य प्राप्ति ६८७ वि०) की सेना ने हिमालय के उन दुर्गम भागों पर विजय प्राप्त की थी जिनमें सैनिकों के प्रयाण के कोलाहल से जागेहुए सिंहों की गर्जन से व्याकुल होकर हस्ती तथा गंगाजी के झरनों की घोर ध्वनि से भयभीत होकर अश्व भागपड़तेथे । तथा जहां स्वर्ग के वृक्षों से उमा ने पुष्पराशि एकत्रित कररखीथी ।

यशोवर्म्मन् ने दैत्यों के अरि विष्णु के लिए खजुराहो में एक मनोरम मन्दिर बनवाया जिसकी ऊंचाई हिमालय के शिखर से भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक थी । और उसमें वैकुंठ (के स्वामी) की मूर्ति स्थापित कीथी ।

यह मूर्ति प्रथमत: कैलास के भोटनाथ (तिब्बतनरेश) के पास थी । उससे मित्र के रूप में कीर (कांगड़ा) के राजाशाही को प्राप्त हुई । शाही से हेरम्बपाल ने अपने हाथी और अश्वों के बल से उसे प्राप्त कियाथा ।

२५- 'तत्सूनोर्देवपालात्तमय हयप (ते): प्राप्य निन्ये प्रतिष्ठां
वैकुण्ठं कुण्ठितारिः क्षिति (धरति) लकः श्रीयशोवर्मराजः'[1]

भावानुवाद-

उस बैकुण्ठ (नाथ) की मूर्ति को हेरम्बपाल के पुत्र हयपति विरुद वाले देवपाल से शत्रुओं की शक्ति को कुण्ठित करनेवाले, नरेशों में श्रेष्ठ श्रीयशोवर्म्मन् ने प्राप्त कियाथा ।

भागलपुर, नारायणपाल का ताम्रशासन[2]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि- सम्बत् ९६५ वि० के लगभग

३६- ' .....ग्रामपतितरिकगौडमालवखशहूणकुलिककर्णाटला (ट)चाट-
भटसेवकादीन् अन्यांश्चाकीर्तितान् .....'

भावानुवाद

ग्रामपति, तरिक, गौड़, मालव, खश, (गढ़वाल-कुमाऊं) हूण, कुलिक, कर्णाट, लाट के नरेशों तथा छोटे-बड़े कर्मचारियों और दूसरे सेवकों को, जिनका नाम नहीं लियागयाहै... ।

१- कृपया उपरोक्त अभिलेख के साथ पढ़िए ।
२- अ० मैत्रेय--गौड़-लेख-माला, स्त० १, पृ० ६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोहड़वा (इलाहाबाद), कर्णदेव का ताम्रशासन[1]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--१०४७ वि०

७- 'बंगालभंगनिपुणः परि

८- भूतपा (ण्ड्य) ोलाटेशलुंठनपटुर्ज्जित गुर्ज्जरेन्द्रः

काश्मीरवीरमुकुटार्च्चितपादपीठस्तेषु क्रमा(मा)दजनि लक्ष्मण—

राजदेवः ॥'

भावानुवाद

लक्ष्मणराज ने बंगाल, पांड्य, लाट, गुर्ज्जर के नरेशों को पराजित कियाथा। कश्मीरनरेश उसके सिंहासन के सन्मुख शिर झुकाताथा।

बाणगढ़ (दिनाजपुर), महिपाल प्रथम का ताम्रशासन[2]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--सं० १०५७ वि०

४०- 'अभित्वरमाणविषयपतिग्रामपति (तरि) कगौडमालवखसहूणकुलिक-

कर्णाटला (ट्) चाटभटसेवकादीन्...'

द्रष्टव्य—

नारायणपाल के शासन के समान इस शासन में भी खस (गढ़वाल-कुमाऊं) का उल्लेख।

मनहलि (दिनाजपुर), मदनपाल का ताम्रशासन[3]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--ग्यारहवीं शताब्दी वि०

३६- 'वि

३७- षयपतिग्रामपतितुरिक शौल्किकगौल्मिक गौडमालव

चोडखशहूणकुलिककर्णाटलाटचाटभटसेवकादीन्...'

१- हुल्श--उ० रा० व० पांडे, पृ० २११

२- अ० मैत्रेय--गौड़-लेख माला, स्त० १, पृ० ९६

१- अ० मैत्रेय--गौड़-लेख-माला, स्त० १, पृ० १५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्रष्टव्य--

खस (गढ़वाल-कुमाऊं) का उल्लेख

चांदपुरगढ़ी, कनकपाल का शिलालेख[1]

लिपि--अज्ञात, भाषा--संस्कृत, तिथि--अनिश्चित[2]

'शायकाब्धि-नव-सम्मितवर्षे विक्रमस्य विधुवंशज-पूज्यः ।

श्रीनृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोयम् ।।'

भावानुवाद

विक्रम के ९४५ वें वर्ष में चन्द्रवंशियों के पूज्य, शौनकऋषि के कुल में उत्पन्न राजा कनकपाल प्रमर यहां आए ।

उदयपुर, मालवानरेशों की प्रशस्ति[3]

लिपि--नागरी, भाषा-संस्कृत, तिथि--१२६२ वि०

१८- 'आ कैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयदा-

भुक्त्वा पृथ्वी पृथु

१९- नरपतेतुल्यरूपेण येन ।

२१- केदाररामेश्वरसोमनाथ (सु) डीरकालानलरुद्र-

२२- सत्कैः

सुराश्र (यै) र्व्याप्य च यः समन्ताद्यथार्थसञ्ज्ञां जगतीं चकार ।।'

भावानुवाद

भोजराज (सं० १०७६-१०९८ वि०) ने उत्तर में कैलास से लेकर दक्षिण में मलयगिरि तक तथा पश्चिम में अस्तगिरि से लेकर, पूर्व में उदयगिरि तक पृथुनरेश क समान पृथ्वी का भोग कियाथा ।

१- रतूड़ी--गढ़वाल का इतिहास, पृ० ३५४

२- राहुल ने इस लेख को जाली मानाहै । --गढ़वाल, पृ० १२४

३- भूलर--उ० रा० व० पांडे, पृ० २२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने अपने राज्य के अनेक स्थानों में, केदारनाथ, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर (कुंडीर, कपटेश्वरकुंड, कश्मीर[1]), महाकाल तथा ज्वालामुखी में भगवान् शंकर के लिए मन्दिर बनाकर धरती को यथार्थ में देवताओं से घिरी बनाडालाथा।

बाराहाट, नागराज की मूर्ति का अभिलेख[2]

लिपि--तिब्बती, भाषा तिब्बती, तिथि--ग्यारहवीं शती वि०

'ल्ह-ब्चन्-नगरजइ थुब् पा'

भावानुवाद—

देवभट्टारक नागराज[3] के मुनि

इन्द्रप्रस्थ, विग्रहराज का स्तंभलेख[4]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--१२२० वि०

'आविंध्यादाहिमाद्रे र्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगा-
दुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनिमत्कन्धरेषु प्रसन्नः।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभि-
र्देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः।
वू (ब्रू)ते संप्रति चाहमानतिलकः शाकम्भरीभूपतिः
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी संतानजानात्मनः
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः
शेषस्वीकरणाय मास्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः ॥'

१- डबराल -उ० यात्रा-दर्शन पृ० ४८६   २- राहुल--गढ़वाल, पृ० ३४९

३- तिब्बत में थोलिङ् गोम्बा के बनानेवाले येशे-ऽोद् (ज्ञानप्रभ) के पुत्र देवभट्टारक नागराज।

४- इं० ऐंटि०--जि० १९, पृ० २१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद—

शाकम्भरीनरेश जिस सम्राट बीसलदेव ने विजयरूपी तीर्थयात्रा के प्रसंग में हिमालय और विन्ध्यांचल की मध्यवर्ती भूमि से म्लेच्छों का विच्छेदन करके उसे फिर से यथार्थ रूप में आर्यावर्त बनादियाथा, उसकी विजय हो।

शाकम्भरीनरेश, चाहमानवंश के तिलक, विजयी श्रीमत् विग्रहराज अपने वंशजों को आदेश देतेहैं कि हमने म्लेच्छों को हटाकर हिमालय और विन्ध्यांचल की मध्यवर्ती भूमि पर अपना आधिपत्य स्थापित करदियाहै, भारत में जो भूमि म्लेच्छों के अधिकार में रहगईहै, उस पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए आप कटिबद्ध रहें।

गोपेश्वर, अशोकचल्ल का त्रिशूल-लेख[1]

लिपि--कुटिला, भाषा--संस्कृत, तिथि--सं० १२४८ वि०

भावानुवाद—

'ओं स्वस्ति। जिसकी प्रतापाग्नि ने उसके शत्रुओं की तलवारों को भस्म करदिया, जिस (के पदों) की नखमणि शत्रु राजाओं की बधुओं के ललाटसिंदूर से रंजित हैं, जो अपनी कीर्ति के गांभीर्य और विस्तार में सागर-सा है. जिसके पादुकापीठ के रत्नों की प्रभा शत्रु मित्र-राजगण की भास्वर शिरोमणियों के किरणजाल से चारों ओर उद्भासित है, जो नृपगजों का सिंह, वेताल के (राजा) विक्रमादित्य की भांति दानवभूतल का राजा है, जो नारायण की भांति सर्पराज-गरुड़-वाहन तथा शवनि-सम्पन्न है, उसी गौडवंशोद्भूत, वैराथ-कुल-तिलक, अभिनव-बोधिसत्वावतार, अवनिपतितिलक परमभट्टारक महा-राजाधिराज श्रीमान् अशोकचल्ल ने अपनी सर्वगामिनी वाहिनी से केदारभूमि को जीता। जीते भूभाग को अपना प्रदेश बना, युद्ध से निवृत्त

१- ए०रि०--जि० ११, उ० राहूल-गढ़वाल, पृ० ११-१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो उस पृथ्वीपति ने यहां पद्मपाद-राजायतन बना स्वभोग्य सर्व वस्तु से अलंकृत कर दान और भोज दिए। शकसंबत् गताब्द १११३ (११९१ई.) सौर-मानतः ० ० ० गत दिनांक गणपति १२, शुक्रवासर नवमी चन्द्र ० ० ० लिखितं मल्लश्रीराजमल्ल, श्रीईश्वरीदेव, पंडित श्री रंजनदेव, और श्रीचन्द्रोदय सेनापति-सेनानायक के साथ।'

अशोकचल्ल का गोपेश्वर के विशाल लोहत्रिशूल पर द्वाराहाटवाले छन्दों में निम्न लेख भी है—[1]

'यशस्वी महाराजा अनेकमल्ल ने अपने दिग्विजय का विस्तार कर महादेव के इस पुण्यस्थान पर स्तम्भ-लांछन के नीचे स्वविक्रमजित जगत् के प्रभुओं का सम्मेलन किया......और इस प्रकार विजयस्तम्भ को पुनः स्थापित कर कीर्ति प्राप्त की। परास्त हुए योग्य शत्रु को ऊपर उठाना पुण्यकर्म है।'

वालेश्वर, क्राचल्लदेव का ताम्रशासन[2]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--१२८० वि०

भावानुवाद—

'सिद्धि हो। भरोतराज्य की समृद्धि।

'युद्ध में बलाद् आकृष्ट उसके भटों के भालों द्वारा निहत-निपातित शत्रु गजों के कपाल से बिखरे अनर्घ मोतियों द्वारा प्रभासित, नाकपति द्वारा ही जेय, विजयशील स्वस्वामि के द्वारा सदा दृढ़ीकृत, गोब्राह्मण-हित-रक्षा-प्रवणा श्रीमती शिरा स्वर्ग का शासन कररहीहै। उसका पुत्र महावीर राजा क्राचल्ल हुआ, जो सभी शस्त्रधारियों और शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ, प्रमुख तथा शील-दानपरायण था। पृथिवीपति क्राचल्लदेव भाला, खड्ग और पाश द्वारा नवोद्गतदंत-दंती से युद्ध करने में

१-एटकिनसन--जि० २, पृ० ५१५ (डा० मिल के अंग्रेजी-अनुवाद से)
२. एटकिनसन--उ० राहुल-गढ़वाल, पृ० ८४-८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पांडवों की भांति अद्भुत था। वह परम-सौगत[1] जिनि-कुल-कमल का प्रभास्वर दिवाकर, आयुधशक्ति में और पराक्रम में भयंकर था।

'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् क्राचल्लदेव नरपति ने अपने १६ वें विजयराज्य (संवत्सर) में अधिकृत क्षेत्र में हथियारों से अपने सारे शत्रुचक्र को परास्त किया और विध्वस्त कीर्तिपुर (कार्तिकेयपुर) के राजाओं को नष्टकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। फिर उसने पुराने राजाओं द्वारा प्रदत्त भूमि का निरीक्षण किया, और उन सभी को उनके धनागम के साथ अब परमवंदनीय एक-रुद्र श्रीवालेश्वर ००० (के पूजाधिकारी) वंगज ब्राह्मण भट्ट नारायण को ००० योगक्षेमार्थ दान किया।

यहां राजा की भगिनी का यह श्लोक है—

'मेघ भूरिश: वर्षाजल को पर्वतों और नदियों पर फैलातेहैं,
किन्तु जगदाह्लादक यह कीर्ति त्रिभुवन में फैलतीहै।'

फिर महारानी का यह श्लोक है—

'दानादि गुण श्रेष्ठ हैं, किन्तु वह (नारी) और भी (श्रेष्ठ) है, जो स्वधर्म-परायण सदा स्वपतिभक्ता है, क्योंकि काल-मुख (सबका) भक्षक है।'

श्री याहडदेव मांडलिक	श्री विद्याचन्द्र मांडलिक
श्री चन्द्रदेव ,,	श्री जयसिंह ,,
श्री हरिराज राउत्तराज	श्री जीहलदेव ,,
श्री अनिलादित्य ,,	श्री वल्लालदेव ,,
श्री विनयचन्द्र मांडलिक	श्री मूसदेव ,,

इन अपने पारिषदों तथा मित्रामात्यों से मंत्रणा कर और अपने कर्तव्य-कर्म पर विचारकर (क्राचल्लदेव ने) उपरोक्त दान नैयायिक, तांत्रिक, पारिषद सत्पुरुष, क्षांत, विवेकी, कलियुग में गद्य पद्य-काव्य-

---

१- परमबौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रचना में प्रख्यात कवि, कृत्यानुष्ठान-परायण, जातकफलगणनादिचतुर, शकुनशास्त्रपटु, लोक-प्रसिद्ध नन्दपुत्र (भट्टनारायण) को प्रदान किया।

'उक्त दान भूमि का सामान्त निम्न प्रकार है--पूर्व में स्वहारगाड़ी, दक्षिण में कहुड़कोट-पर्यन्त, पश्चिम में तलकोटा तक और उत्तर में लघौल तक। इस प्रकार चतुः सीमावद्ध कोनदेव में अवस्थित आकर-नदीतट-जंगल, तथा उनकी उपज को इस दानपत्र द्वारा (हमने) यावत्-चन्द्र-दिवाकर सदा प्रवर्तित रहने के लिए देदिया।

सभी शक्तिशाली (राजा) जो समय-समय पर मेरे वंश में पैदा होंगे, तथा दूसरे भूपति इस (दान की) सदा रक्षा करें।

श्रीक्राचल्लदेवस्य यावद् अम्भोजिनीपति।
विहरतु भुवि तावत् कीर्तिरस्य नृपकुमुदाकरस्य॥

जबतक कमलिनी-पति (सूर्य) हैं, तबतक इस नृपकमलाकर श्री क्राचल्लदेव की कीर्ति पृथिवी पर विहरे।

सौंदर्य में चन्द्र और रतिपति के समान, दरिद्रों के लिए कल्पतरु, वीरता-गुण में रघुमणि-सा, सभा में भवानीपति-सा सर्वगुणोंवाला, धनुर्धरत्व में स्वयं भीष्म-राम-सा, न्याय में धर्म-सुत (युधिष्ठिर)-सा क्राचल्ल कलियुग में शत्रुगजनिषूदन था।

हमारे मित्र मित्रता में दृढ़ रह पावें समृद्धि,
सदा वर्ष भर भूपाल न्याय-शासन करे भूपर।
रहे सदा चतुर्विध राजनीति नववधू-सी तुम्हारे साथ।
चापार्धमणिशेखर देव देवें सौभाग्य मानवों को।

(इति) शक संवत् ११४५ (१२२३ ई०), पौष कृष्ण द्वितीया, सोमवासर, कर्क में चन्द्र, धनु में सूर्य, शनि उसी का अनुगामी, कन्या में मंगल, वृश्चिक में वृहस्पति और शुक्र, कुम्भ में बुध, मेष में ascending node और दक्षिणपूर्व में discending node।

दूलू-समीपस्थ श्रीसम्पन्न नगर में लिखित। सर्व जगत् का मंगल हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोधगया, अशोकचल्लकालीन शिलालेख[1]

लिपि--मागध नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--५१ लक्ष्मण-सं०

१- 'ओं नमो वु(बु)द्धाय ॥ ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् (।) तेषां च यो नि—

२- निरोध एवं वादी महाश्रव (म) ण: ॥ देय धर्म्मोयं प्रवर महाजान-जायिप: (महायानयायिन:) पर—

३- मो पाशकनमस्नत्यप्रक्रयो (मोपासकसमस्यसत्यप्रक्रियो) पेत महाराजश्रीमदशोकचल्लदेवस्य (।) यदत्र

४- पुन्यं (ण्यं) तद्भवतु (।) मातापितृपूर्वंगमं कृत्या (त्वा) श (म) कल सत्व (त्त्व) राशेरनुत्तरज्ञान—

५- फल (1) वाप्तय इति ॥ कास्मीरपण्डितभदन्तगुचपथी (।) राज (अभयश्रीराज) गर (गुरु) पण्डितमूशल ।

६- पात्र सं (शं) करदेव पात्र त्रैलोक्य व्रह्माकादिभि: श्रीमद्राजानं वो (बो)ध—

७- यित्वा। भट्टदामोदरं (र)। भट्टपदुम। शिष्टराघवमहिपूकाल प्रह्वित्य (प्रभृत्या)

८- वीहारीयं वु (बु) द्धप्रतिमा कारिता। यदपरं। नैवेद्यार्थं (र्थं) तांपै

९- तं पैत्रकत्रयं (तच्चैतच्चैत्यकत्रयं) दीपसहितं आचन्द्राकर्कं ये केचित श्री (च्छ्री) मन्महावो (बो) धौ सिं

१०- घलसंघादयेस्तै: (दयस्तै:) प्रत्यहं देयं। नैवेद्यमिदं सत्यद्वारित्त कल्पि—

११- त कारहरिचंतशुपकारी मामकयोपरिकल्पितमिति ॥

१२- श्रीमल्लखवण (श्रीमल्लक्ष्मण) सेनस्यातीत राज्ये सं ५१

१३- भाद्रदिने २९'

१- एपि० इंडिका, जि० १२, पृ० २७-२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद-

ॐ बुद्ध को नमस्कार। धर्मों के हेतु, प्रभव और निरोध तथागत महाश्रमण बतागएहैं।

देवनिमित्त अर्पित कीगई यह भेंट महायान के अनुयायी, परम उपासक, समस्त प्रजा के स्वामी महाराज श्रीमद् अशोकचल्लदेव की ओर से है। इसके पुण्य से उनके माता, पिता, पूर्वजों तथा सकल सत्वों को अनुत्तरज्ञान की प्राप्ति हो।

कश्मीर के विद्वान् भदन्त अभय, राजगुरु पंडित मूशल, पात्र शंकरदेव, पात्र त्रैलोक्यब्रह्मा आदि द्वारा श्रीमान् राजा की आज्ञा लेकर भट्ट दामोदर, भट्ट पदुम, शिष्ट राघव, महिपूकाल आदि राज्याधिकारियों द्वारा विहार की इस बुद्धप्रतिमा का निर्माण (स्थापन) कियागया।

महाबोधि के सिंहलसंघ द्वारा, श्रीमान् लक्ष्मणसेन के राज्य बीतने के ५१ वें सम्वत् में, भाद्र के २९ वें दिन पर, तीन चैत्यों पर प्रति दिन नैवेद्य चढ़ाने तथा दीप जलातेरहने का प्रबन्ध कियागया। ...

बोधगया, श्रीसहणपालका शिलालेख[1]

लिपि--मागध-नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि -७४ लक्ष्मण सं०[2]

१- 'ओं नमो बुद्धाय ॥ देयधम्मोयं प्रवरमहायानयायिनः
परमोपासकस्य हेवज्रचरणारविन्दमकरन्दमधुकरफलकार
भूपालवे--

१- एपि० इंडिका, जि० १२, पृ० २९-३०

२- श्री विनोदविहारी विद्याविनोद के अनुसार १९ मई ११९४--एपि० इंडिका, जि० १२, पृ० ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२- श्याभुजङ्गपरनृपतिगरुडनारायण रिपुराजमत्तगजसिंह
निखिलमहीपालजनकेत्यादिनिजनिखिलप्रशस्तिसमलङ्कृ०—
३- त सपादलक्षशिखरिखसदेशराजाधिराज श्रीमद्
शोकचल्लदेवकणि (न)ष्ठ भ्रातृश्रीदशरथनामधेयकुमारपा--
४- दपद्मोपजीविभाण्डागारिकसत्यव्रतपरायणादि
निवर्त्तनीय वो (बो) धिसत्वचरितक्षत्रियकुलदीप
श्रीम्सहणपालनामधेयस्य महत्तक श्रीचाटव (ब्र) ह्म
सुतस्य महामहत्तक श्रीमृसिव (ब्र) ह्मपौत्रस्य (।)
यदत्र पुण्यं तद्भवत्वाचार्योपाध्यमातापि--
६- तृ पूर्व्वङ्गमं कृत्वा सकलसत्वराशेरनुत्तरज्ञानफला--
वाप्तय इति ॥ श्रीमल्लक्ष्मणसेनदेवपादानामतीतराज्ये
७- सं ७४ बै (वै) शाख वदि १२ गुरौ (।)'

भावानुवाद—

ॐ बुद्ध को नमस्कार। देवनिमित्त अर्पित कीगई यह भेंट महामहत्तक श्रीमृशिब्रह्म के पौत्र, महत्तक श्रीचाटब्रह्म के पुत्र, सत्यनिष्ठ, बोधिसत्व के अनुयायी, क्षत्रियकुलदीप उस सहणपाल भांडागारिक की ओर से है, जो महायान के कट्टर अनुयायी परम उपासक हेवज्र के चरणकमल के भक्त, शत्रु नरेश-रूपी सर्पों के लिए गरुड़-नारायण, शत्रु मत्तगजों के लिए सिंह, तथा जनकादि समस्त महीपालों के समान अपार प्रशस्ति से अलंकृत, सपादलक्ष (शिवालक) के शिखरों वाले खशदेश के राजाधिराज श्रीमद् अशोकचल्लदेव के कनिष्ठ भ्राता कुमार श्री दशरथ की अधीनता में जीविका-उपार्जन करताथा।

इससे उपलब्ध पुण्य से आचार्य, उपाध्याय, माता, पिता, पूर्वज और समस्त सत्वराशि को अनुत्तरज्ञान की प्राप्ति हो। श्री लक्ष्मणसेनदेव के राज्य बीतजाने पर ७४ वें वर्ष में, वैशाख, वदि १२, गुरुवार।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संजन, अमोघवर्ष प्रथम का ताम्रशासन[1]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि--सम्वत् ८२८ वि०

९- 'ततोभवद्दन्तिघटाभिमर्दनो हिमाचलादास्थितसेतुसीमतः
खलीकृतोद्वृतमहीपमंडलः कुलाग्रणीर्योभुवि दन्तिदुर्गराट् ।
१०- गंगायमुनयोर्म्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यतः ।
लक्ष्मीलीलारविन्दानि श्वेतच्छत्राणि यो हरेत् ।'

भावानुवाद–

जब इन्द्रराज ने चालुक्यनरेश की कन्या का बलपूर्वक हरणकरके राक्षसबिवाह किया तो उसे हिमाचल से लेकर रामेश्वरम् तक सारे भारत के उपस्थित नरेशों के हस्ती आदि सैन्यदल से भिड़नापड़ा । दन्तिदुर्ग के स्वामी उस श्रेष्ठ नरेश ने समस्त महीप-मण्डल को पराजित कर दिया ।

राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय (सं० ८५१-८७१ वि०) ने गंगा-यमुना-द्वाव में गौडनरेश धर्मपाल को पराजित करके उससे लक्ष्मी के क्रीडा-कमलों के समान श्वेत राजच्छत्रों को छीनलिया ।

करहाद, राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का ताम्रशासन[2]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--९९६—१०२४ वि०

'अनमन्ना पूर्वापरजलनिधिहिमशैलसिंहलद्वीपात् ।
यं जनकाज्ञावशमपि मंडलिनश्चंडदंडभयात् ॥'

१- भांडारकर--उ० रा० व० पांडे--पृ० २४६-४७
२- एपि० इंडिका, जि० ४, पृ० २८४-८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावानुवाद–

मान्यखेट (हैदराबाद में मलखेड) के राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय (९९६-१०२४ वि०) ने पूर्वीसमुद्र से लेकर पश्चिमीसमुद्र तक तथा हिमालय से लेकर सिंहलद्वीप तक फैली सारी धरती पर शासन कियाथा।

खजुराहो, धंगदेव का शिलालेख, जयवर्मदेव द्वारा वर्द्धित[1]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि- सं० १०५९ वि०

२८- व (ब्र)ह्मसु व (ब्र) ह्मकल्पेषु येष्वेकत्र निवासिषु।

दक्षिणेन तुषाराद्रि कल्पग्रामोपरोभवत्॥

रक्षितत्वा क्षितिमंबु (बु) रासि (शि)

रस (श) नामेतामनन्यार्यति

जीवित्वा स (श) रदां स (श) तं समधिकं श्रीधंगपृथ्वीपतिः।

भावानुवाद–

पृथ्वीपति धंगदेव चंदेल (१००७ वि०--१०५९ वि०) ने हिमालय पर्वत के दक्षिण से लेकर कल्पग्राम तक, समुद्र की मेखलावाली धरती पर (५२ वर्षों तक) शासन कियाथा। सौ से अधिक शरदों (वर्षों) तक जीवित रहकर (उसने रुद्र का ध्यान करतेहुए जाह्नवी और कालिन्दी के संगम पर कलेवर त्याग कियाथा।)

वाराणसी, कर्णदेव का ताम्रशासन[2]

लिपि--नागरी, भाषा--संस्कृत, तिथि--सं० १०९९ वि०

४- यस्य भ्रूभ्र (भ)ङ्ग भीता ददति नृपतयः क्लि(व्ट)

मावे प्रतिपं

५-

१- केलहौर्न--उ० रा० व० पांडे, पृ० २०२

२- केलहौर्न--उ० रा०व० पांडे--पृ० २०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५- आके (कै) लास (सा) त्सहेलं हरवृषभसमुत्खातसृ (शृ)गाग्रभित्ते:
आ च:•प्राच: समुद्रात्सुरसरिदतुलस्थूल मुक्तावलीका—
दाम्भोधेर्द्दिणाच्च (स्फु)

६- रदतुलमणे: सेतुलोमन्तभाज:' ॥

भावानुवाद-

धरती के भूषण के समान कार्तवीर्य नामक सम्राट की भृकुटि से सारे नरेश भयभीत रहतेथे। क्रीड़ापूर्वक नन्दीगण के सींगों द्वारा उत्पीड़ित कैलास से लेकर दक्षिण में समुद्रतट पर सेतुबंध तक तथा पूर्वसमुद्र से पश्चिमसमुद्र तक विस्तृत जिस विशाल भूखंड पर गंगाजी मुक्तावली के समान बहतीहै, उस पर उसने शासन कियाथा।

कोशल-उत्कल के सोमवंशियों का अभिलेख[1]

लिपि--अज्ञात, भाषा--संस्कृत, तिथि--अनिश्चित

सेतुप्रान्तवनान्तरे हिमवत: पर्यन्तभूसीमनि।
प्रागम्भोधि तटावनिषु कटके पूर्वेतरच्माभृत: ॥

भावानुवाद-

कोशल-उत्कल के सोमवंशी सम्राट ने सेतुबन्ध रामेश्वरम् से लेकर हिमालय पर्यन्त तथा समुद्रतट से समुद्रतट तक फैली धरती का पालन कियाथा।

कालीमठ, रुद्रसूनु का शिलालेख[2]

लिपि--कुटिला, भाषा--संस्कृत, तिथि--१२ वीं० श०वि०

१- 'ॐ ॥ सन्ध्या-समाधि-घटितांजलित: स्वपाणौ
कृष्णौ सके पि सुम S॥S द्विणांस: ।
शर्व्वस्य S स्वकर-संस्थित-तोयराशे:
संधित्र...

१- एपि० इंडिका, जि० ३१, पृ० ४ २- राहुल--गढ़वाल, पृ०४४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२- . . . दयितयेव गृहीतकेशः ॥

दत्तोद्भवांकुमपास्य शिरे प्रस्तुत

शर्व ... ातिमवाप्य ...

४- गिरिपति गृहगोप्ता महारुद्राभिधार

११- ...बाल एवाभवत् स्वामी सर्व्वसंग्रामकृद्यतः

रुद्रसूनु ... कालिकाला शैल...

१४- संग्रामकीर्तिः प्राकृतकवयो ।

१५- ... कर्त्तु: शिला-कुट्ट कैः

१६- कै...'

भावानुवाद-

कालीकाला शैल (कालीमठ) के मन्दिर के निर्माता, गिरिपति मन्दिर के गोप्ता (रक्षक) महारुद्र नामक सामन्त के पुत्र रुद्रसूनु ने वाल्यावस्था में ही अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त कीथी।

नाला, मणादेव का शिलालेख[1]

लिपि--कुटिला, भाषा--संस्कृत, तिथि--११६८ साके

१- 'स्वस्ति । श्रीदेवि . . . नुमः । तत्र . . . भद्रस्य

२- मनसा कर्मणा वाचा अंगुष्ठाण . . धि-यत ।

देवपितृ-प्रसादेन मण देवस्य . . .

३- पुण्यकर्म्मभरादेव करिष्यन्ति सुरालयं ।

भुक्तिमुक्तिफले तस्य . . .

१- राहुल--गढ़वाल, पृ० ४४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४- सरस्वतीप्रसादेन घटिता प्रतिमा सुभा ।
सुक्र धरम । . . . साके . . . ११६८'

भावानुवाद-

स्वस्ति । श्री देवि को नमस्कार । मन, वचन और कर्म से देवसेवा में तत्पर मणादेव ने माता-पिता के प्रसाद से पुण्यार्थ तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति हेतु देवमन्दिर का निर्माण किया और सरस्वती के प्रसाद से उत्तम प्रतिमा की प्रतिष्ठा की । शुक्रवार . . . ११६८ साके ।

शिरीषपद्क (गुजरात), प्रशान्तराग का ताम्रशासन[1]

लिपि- ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि -३८० क० सं०[2]

'यश्चोपमीयते सत्कटकसमुन्नत-विद्याधरावासतया हिमाचले, न खश-परिवारतया'।

भावानुवाद-

गुर्जरनरेश दद्दप्रशान्तराग उपनाम दद्दमहाराजा के पूर्वज सामन्त दद्द...महान् कटक (सेना) और विद्याधरों (विद्वानों) को आश्रय देने के कारण महोच्च कटक (शिखर) तथा विद्याधरों (देवयोनि) के निवास वाले हिमाचल के समान थे, पर हिमाचल में प्राप्त खश-परिवार-जैसी त्रुटि उनमें न थी।

१- प्राचीन लेखमाला, भाग २, पृ० ४१-४४ २- वि० संबत् ६८५

——

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारहुत, नागरक्षिता का शिलालेख[1]

लिपि— ब्राह्मी, भाषा—प्राकृत, तिथि—वि० पू० दूसरी शताब्दी

१- '(धनभू) तिस रञो भारियाया

२- नागराखिताया दानम्' !

भावानुवाद—

राजा (धनभू) ति की भार्या नागरक्षिता का दान ।

भारहुत, नागरक्षित और चक्रमोचिका का लेख[2]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--प्राकृत, तिथि--वि० पू० दूसरी शताब्दी

'(ना) गरखितस चु मातु चकमुचुकये दानम्' ।

भावानुवाद—

(यह स्तम्भ) नागरक्षित और उसकी माता चक्रमोचिका का दान (है) ।

मथुरा–धनभूति का शिलालेख[3]

लिपि-ब्राह्मी, भाषा-प्राकृत, तिथि-वि० पू० दूसरी शताब्दी

१- 'कल ... ... धन

२- भुतिस ... वात्सी

३- पुत्रस (वाधपा) लस

१- बरुआ तथा सिन्हा--भारहुत इन्सक्रिप्सन्स. पृ० ३३

२- एपि० इंडिका, ३३, पृ० ५८

३- इं० एंटिक्वायरी, जि० २१, पृ० २४६ टि० ६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४- धनभूतिस दानं वेदिका
५- तोरणानि च रतनगृह स
६- र व बुधपूजाय सह मातापि
७- ति ही (?) चतु परिषाहि' ।

भावानुवाद—

धनभूति का, वात्सीपुत्र वाधपाल धनभूति का दान । वेदिका, तोरण और रत्नगृह । बुद्ध की पूजा के लिए । माता-पिता और पूर्वजों की सद्गति हेतु ।

भारहुत, नागरक्षिता भिक्षुणी का लेख[1]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--प्राकृत, तिथि--वि० पू० दूसरी शताब्दी

१- 'मोरगिरिम्ह नागिलाया भिखुनिया दानं थभा
२- भगवतो विपसिनो बोधि' ।

भावानुवाद—

मयूरगिरि की भिक्षुणी नागिला (नागरक्षिता) द्वारा अर्पित स्तम्भ, भगवान् विपश्यिन के बोधिवृक्ष के प्रतीक ।

१-२- हुल्श--इंडियन ऐंटिक्वायरी, जि० २१, पृ० २३४

— —

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जागेश्वर, मृत्युञ्जयमन्दिर के शिलालेख[1]

लिपि -ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि--८ वीं-१० वीं शताब्दी

अभिलेख १

१- 'श्री सदार् (एण) व गन्धहस्ति वसन्तली—

२- ल-हर्षवर्द्धन पक्षपात: (त)

३- पूर्व-देशी (य) व (ब) ल वर्म्मण (:)

४- लिखितं तम्ब्र (ताम्र) घटेन ।'

भावानुवाद-

श्री सदार्णव, गन्धहस्तिन्, वसन्तलील और हर्षवर्द्धन के पक्षपात (प्रतिनिधिरूप में तीर्थयात्रा करनेवाले) पूर्वदेश के निवासी बलवर्म्मन् (के आदेशानुसार) ताम्रघट द्वारा लिखित ।

अभिलेख २

१- 'श्री पेट्टाण (न) र्थ लव-ऋच-भण्ड—

२- (वि) द्याधर च (ुर्ग) वज्राह-पक्षपात—

३- व (टे) श्वरस्य पूर्वदेशी (यस्य ।)'

भावानुवाद-

पेट्ट, अनर्थ, लव, ऋच, भण्ड, विद्याधर, चुर्ग और वज्राह के पक्षपात (प्रतिनिधिरूप में तीर्थयात्रा करनेवाले) पूर्वदेश के निवासी वटेश्वर के (हस्ताक्षर या उसके आदेशानुसार लिखित) ।

अभिलेख ३

१- 'श्री प्रकं (क) ट भण्ड अभिमाण (न)

२- चंग खड्गानर्थ अर्ज्ज

३- न ष (प) क्षपात वर्घे कथा—

४- नुराग जेज्जटस्य (।)

१-३- डी०सी० सरकार--एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३४, पृ० क्रमश: २४९, २५०, २५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५- पूर्व्वदेशि प्रभुदत्तस्य लिख—

६- ति (॥)'

भावानुवाद—

प्रकटभंड, अभिमानचंग, खड्ग, अनर्थ और अर्ज्जन (अर्जुन ?) के पक्षपात (प्रतिनिधिरूप में तीर्थयात्रा करनेवाले) बघे (बटे=बटेश्वर ?) द्वारा कथित कथाओं के प्रेमी जेज्जट[१] के (हस्ताक्षर या आदेशानुसार) पूर्वदेश के निवासी प्रभुदत्त द्वारा लिखित ।

अभिलेख ४-२५[२]

4- १. 'श्री विशिष्ट

२. (क)° काल

5- १- श्रीनेत्त्रहरिष । वाच्छराजस्य

6- १- श्रीग्रामहेरि

7- १- श्री समरमहिष

२- माण (न) प्रकास (श) व (ा) (बा)ल

३- कदम्व (म्ब)

8- १- कल् (य्) । णि (णी) य

9- १- श्रीसभार्थ सलोण ।

10- १- श्रीग्रामहेरि

11- १- श्री न् (ो) त्त्र् हरिस (ष)

12- १- श्रीग्रामहेरि

13- १- (श्रीसुजूमसुत श्री) शंकरगणस्य

14- १- श्री रणविग्रह

15- १- (श्री सु) नं (न) न्दचन्द्र (श्रीसुनन्दचन्द्र)

16- १- श्रीविजेन्द्रि (वीर्येन्द्र) महायोगिभट्ट (ा)रक

१-संभवतः यह व्यक्ति बटेश्वर के साथ तीर्थयात्रा को आयाथा --देखिए, डी०सी० सरकार, जि० ३४ उपरोक्त, पृ० २५१

२- डी०सी० सरकार--उपरोक्त, जि० ३४, पृ० २५१-५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

17- १- श्री सुजूमसुत: (सुत) श्री शंकरगणस्य

18- १- श्रीरणविग्रह:

19- १- निव्रृ (त) ह [न्नह (?)] चण (ड) (चण्ड) ।

20- १- श्रोदिषण्ड

21- १- म (०) गलचण्ड

22- १- श्री चा (च) लविग्रह

23- १- श्री ग्रामहेरि

24- १- श्री यश (ो) भ (भा) रडार कात्यायनीदास (ी)
   २- यकस्य

25- १- विची (।) व'

भावार्थ—

तीर्थयात्रियों[1] के नाम — श्रीविशिष्ट, कंकाल, श्रीनेत्रहरिष, वाच्छराज, श्रीग्रामहेरि, श्रीसमरमहिष, मानप्रकाश, वाबाल, कदम्ब, कल्याणीय, श्रीसभार्थमलोण, श्रीग्रामहेरि, श्रीनेत्रहरिष, श्रीग्रामहेरि, श्रीसुजूमसुत श्रीशंकरगण, श्रीरणविग्रह, श्रीसुनंदचंद्र, श्रीवीर्येन्द्र महायोगी भट्टारक, श्रीसुजूमसुत श्रीशंकरगण, श्रीरणविग्रह, निव्रृतहन्नडचण्ड, श्रोदिषण्ड, मंगलचण्ड, श्रीचलविग्रह, श्रीग्रामहेरि, कात्यायनीदासीयक श्रीयशोभंडार, विची...व ?

जागेश्वर, अन्य मन्दिरों के शिलालेख[2]

लिपि--ब्राह्मी, भाषा--संस्कृत, तिथि- ८वीं-१०वीं शताब्दी

अभिलेख-१

१- 'सिद्धम् (।) श्रीनन्दाभगवर्त (ती)-मर-

२- ण[3]-प्रत्याशाघोरशिव—

३- त्रिपनिघ्‌र्घत (निर्घात:)'

१- कुछ यात्रियों के नाम एक से अधिक बार लिखे हैं ।

२- डी०सी० सरकार--उपरोक्त, पृ० २५३

३- अन्य सम्भावित पाठ स्मरण, चरण या शरण-सरकार-उ० पृ० २५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावार्थ–

सिद्धम् । अघोरशिव उपनाम विषनिर्घात (इस मंदिर में दर्शन करके) श्रीनन्दाभगवती (की शिला से) आत्मघात की कामना करताहुआ (नन्दाशिखर की ओर गया)।

अभिलेख २

१- कल्याण सूत्रधारेण कृतं क (र्म्मं) (॥)

भावार्थ–

इस मन्दिर का निर्माण कल्याण नामक सूत्रधार (शिल्पी) ने किया।

अभिलेख ३-१०

3- १- श्री रणस्तम्भ

२- वनकरभ

4- १- श्री रणभद्र वढ

5- १- श्री समर्थकेसरि (री)

6- १- सिद्धम् (।) विपरीतचण्ड

7- १- श्री सजूम-सुत श्रीशंकरगणस्य

8- १- श्री रण (ण) विग्रह

9- १- (म) हायोगि

२- श्री विजेन्द्रभट्टारि (र) क (।)

10- १- क न् (न) र (च)ण्ड

भावार्थ–

तीर्थयात्रियों के नाम –श्रीरणस्तम्भ, वनकरभ, श्रीरणभद्र वढ, श्रीसमर्थकेसरी, विपरीतचण्ड, श्रीसजूमसुत श्रीशंकरगण, श्रीरणविग्रह, महायोगी श्रीवीर्येन्द्रभट्टारक, किन्नरचण्ड'[3]

१- अभिलेखों के साक्ष्य पर आठवीं शताब्दी में--सरकार-उ०, पृ० २५३

२- डी०सी० सरकार--उपरोक्त, पृ० २५४

३- देखिए, 'अल्ल' युक्त नामों का सर्वथा अभाव।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

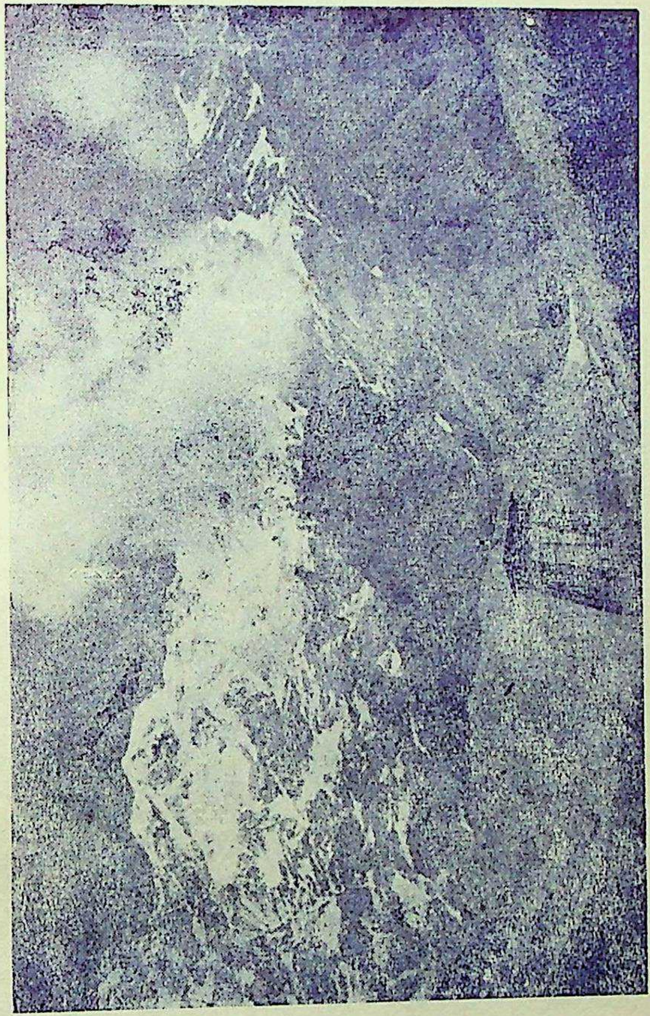

केदारनाथ मन्दिर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

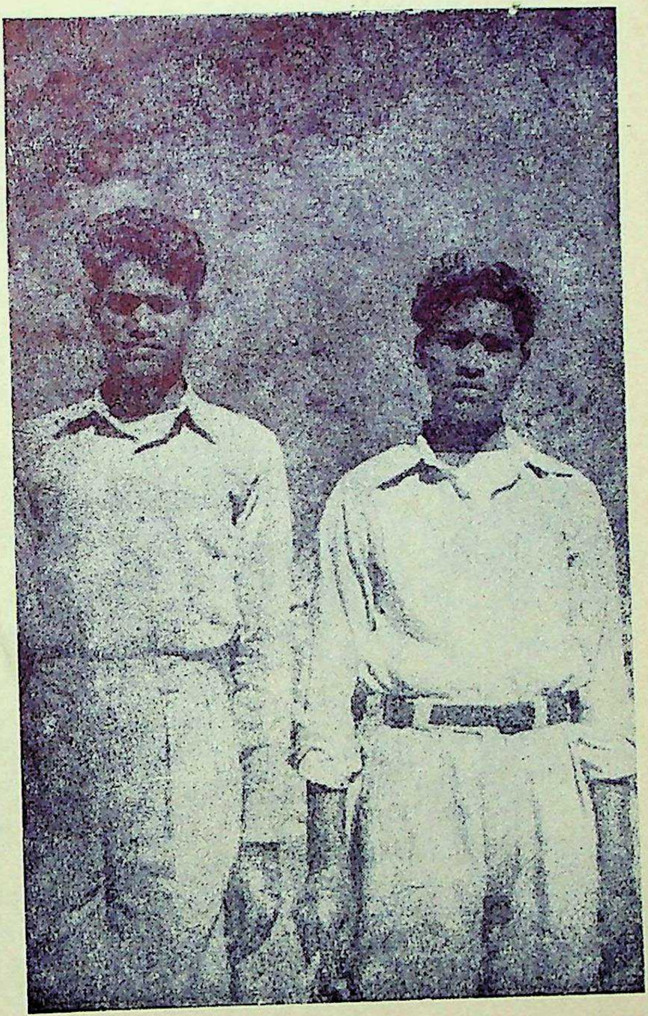

उत्तराखंड के निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड के निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

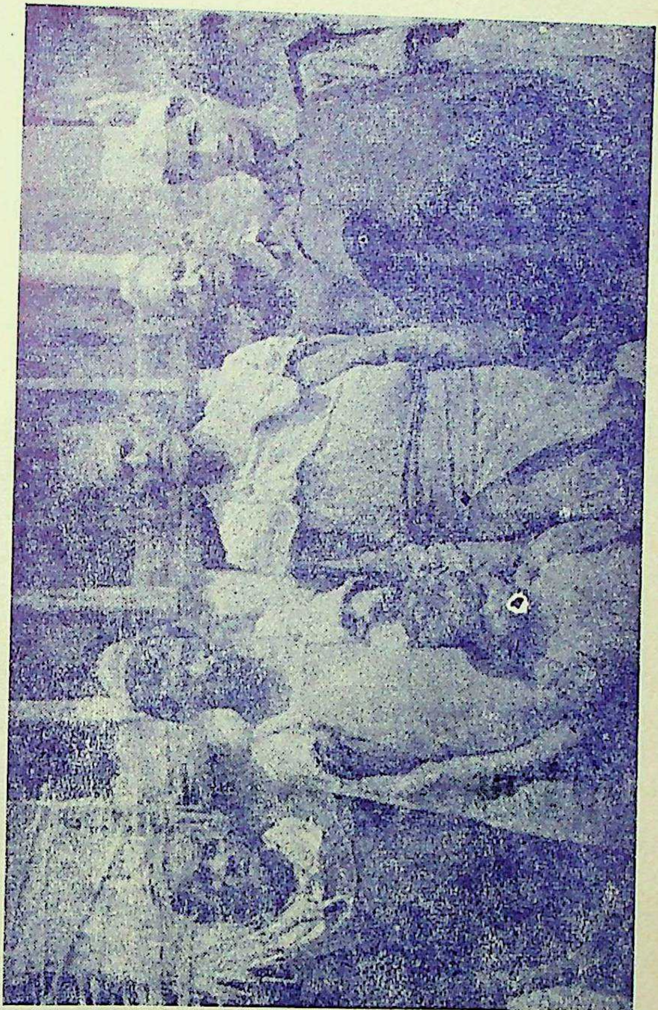

उत्तराखंड के निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

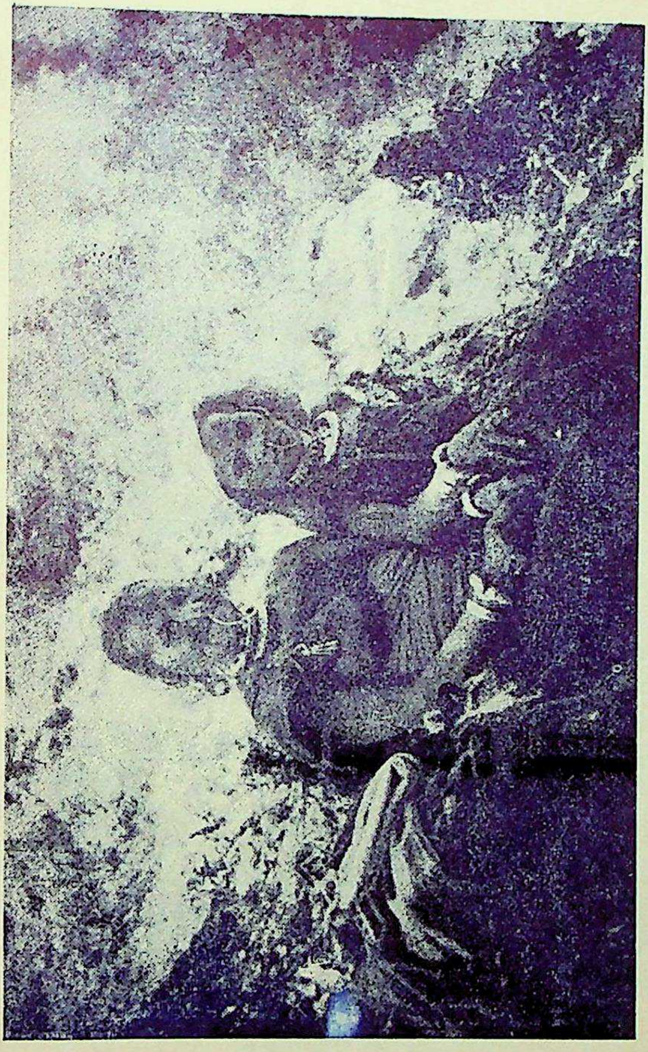

उत्तराखंड के निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

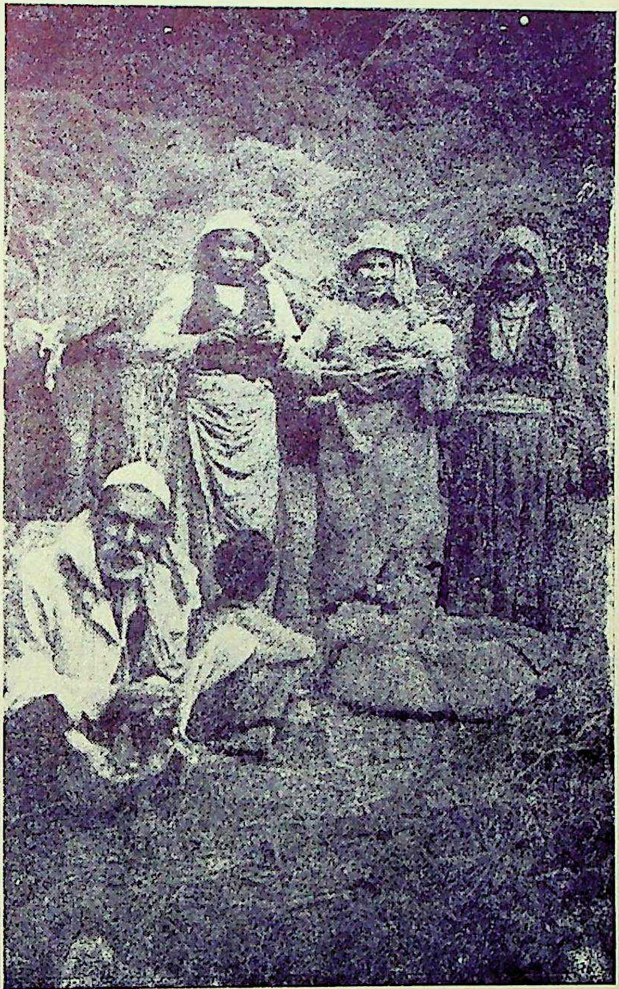

उत्तराखंड के निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड के निवासी

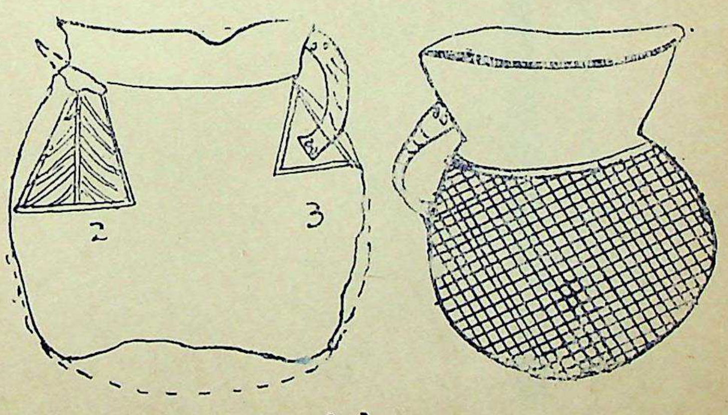

मलारी के पात्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

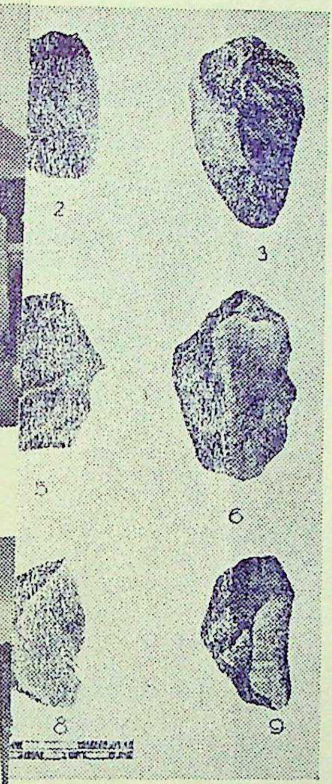

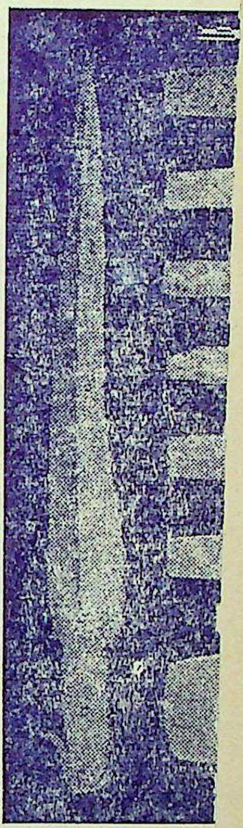

बहादराबाद के पाष
(पुरातत्व

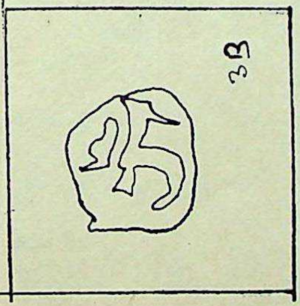

मुद्राएं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

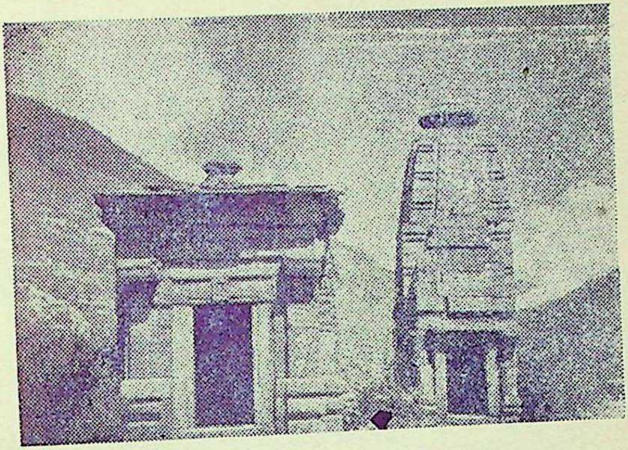

तपोवन के मन्दिर

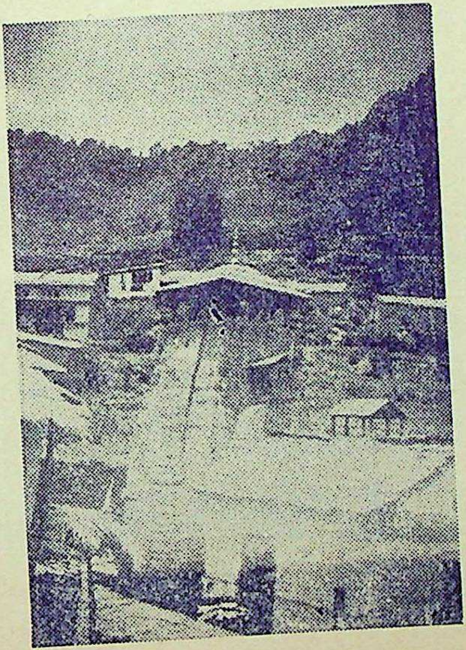

त्रियुगीनारायण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

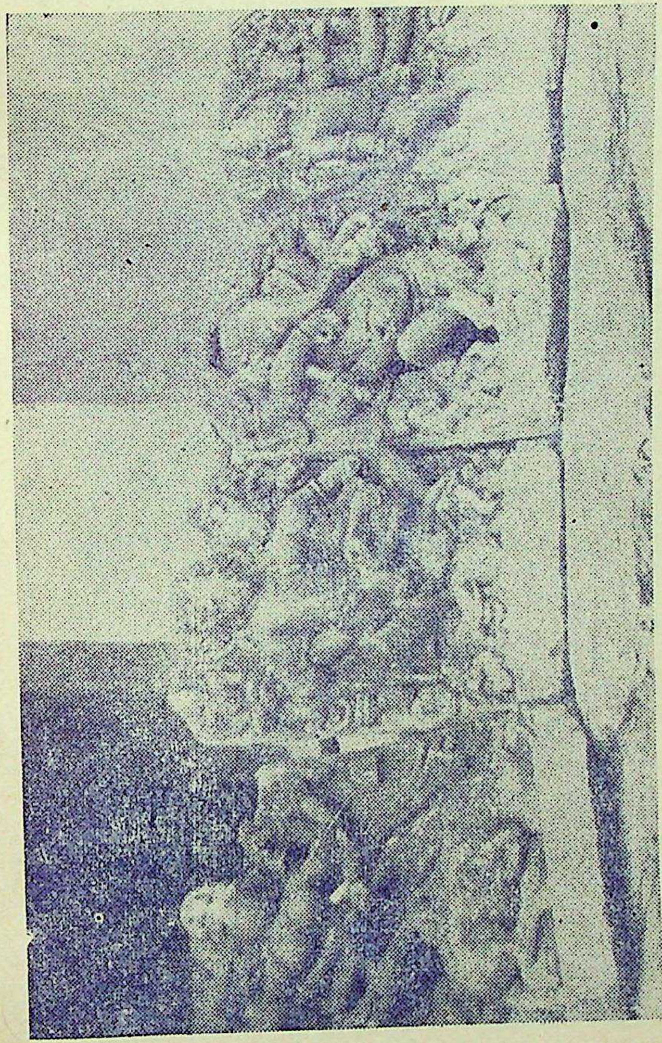

देवमूर्तियां, सिमली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

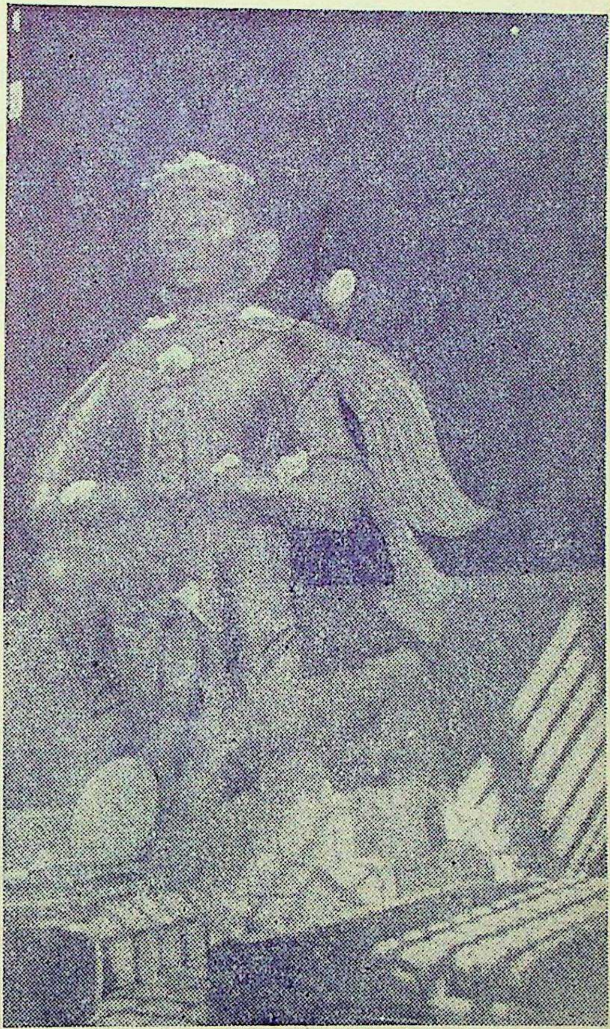

गरुड़मूर्ति, श्रीनगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1A

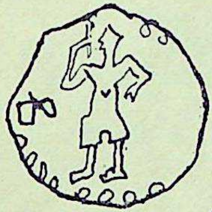
1B

2A

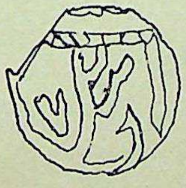
2B

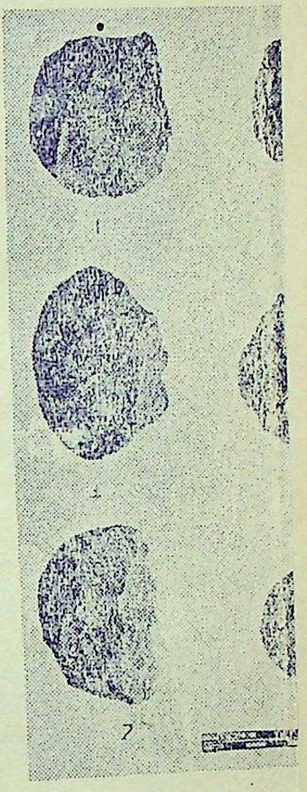

3A

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

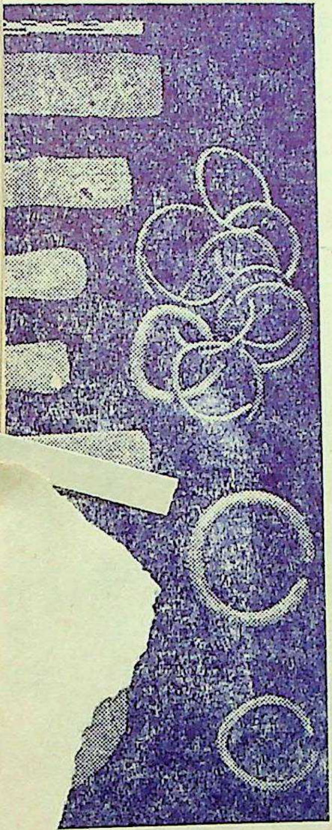

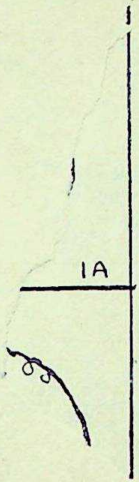

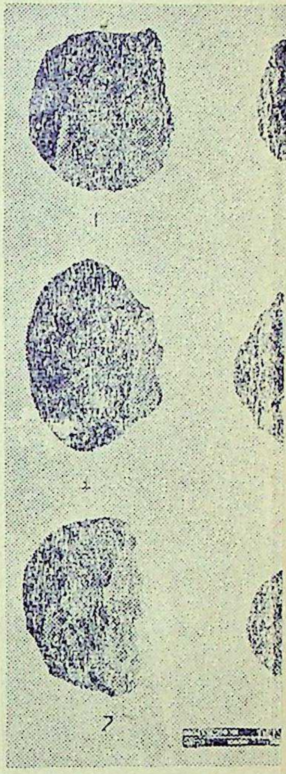

करण तथा ताम्र उपकरण
के सौजन्य से)

प्राचीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

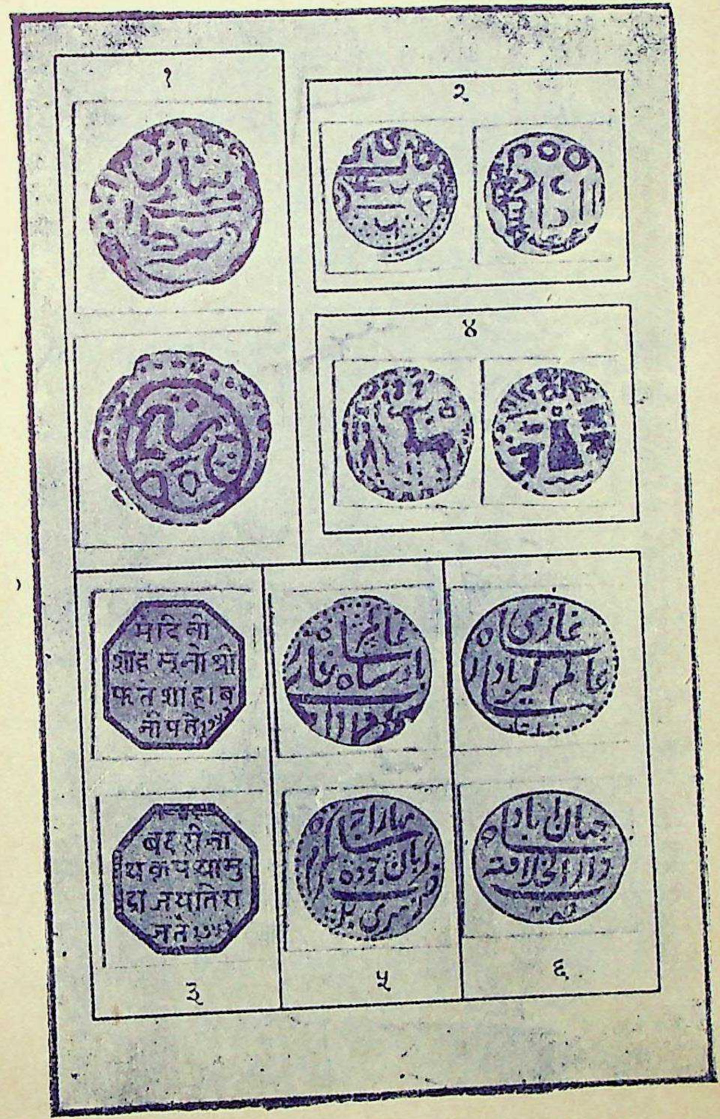

प्राचीन मुद्राएं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक-साहित्य-सूची

Atkinson - Himalayan Districts, 3 Vols.
,, - Economic Mineralogy of Hill Districts.
Asiatic Researches, Vois VI, XI.
Ancient India, Vol IX.
Al-Beruni - India (Tr. Sachau).
Bhattacharya - The Kali-Vrajya.
Bapat - 2500 years of Budhism.
Beckett - Settlement Report, Garhwal.
Caldwell - Comparative Grammar of Dravadian Languages.
Crook - Ethnographical Handbook.
Coon - Races of Europe.
Census of India, 1881, Vols II, III.
,, ,, 1881, N. W. P.
,, ,, 1935, U. P.
,, ,, 1962, Paper No. 2.
Carnac - Ancient Rock Sculpturing in Kumaun.
Cunningham - Ancient Geography.
,, ,, - Coins of Ancient India.
,, ,, - Archaeological Survey Report, Vols X, XIV
Darling - Panjab Peasant in Prosperity and Debt.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Epigraphia Indica, Vols XII, XII', XVIII, XIX, XXXI.
Ford - Habitat, Economy & Society.
Furrer - Monumental Antiquities of N.W.P., Vol II
Grierson - Linguistic Survey of India Vol I, Part I
Voi III, Part I, Vol IX, Part IV.
Ghrishman - Iran.
Gazetteer of - Almora Distt.
,, - Bhajji State.
,, - Bijnore Distt.
,, - Baghal State.
,, - Dhami State.
,, - Dehradun Distt.
,, - Garhwal Distt.
,, - Kangra Distt.
,, - Khaneti State.
,, - Mandi State.
,, - Nainital Distt.
,, - Nalagarh State.
,, - Rawain Garh State.
,, - Suket State.
Harrer - Seven years in Tibet.
Hanna - Culture and Kultur Race Origins.
Hodiwala - Studies in Indo-Muslim History.
Hultzsch - Corp. Inscri. Indicarum, Vol. I.
Habib - Sultan Mahamud of Ghznin.
Indian Antiquary - Vol VII.
Ibbetson - Pargana Sett. Report, Mallasalan.
Illiot & Beams - Supplimentary Glossary.
Illiot & Dowson - The Arab Geographers.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Illiot & Dowson - The Zafar Nama.
" " - The Tujuk-i-Timuri.
Joshi - Khas-Family-Law.
J. R. A. S. of Britain & Ireland, Vol 20.
J. R. A. S. 1908.
Lyall - Kangra Sett. Report.
Majumdar & Pushalkar - The Vedic Age
" " - The Age of Imperial Unity.
" " - The Age of Imperial Kannauj.
Majumdar & Altekar - The Vakatak-Gupta-Age.
Majumdar, D. N. - Races and Cultures of India.
" " - Affairs of a Tribe.
Majumdar, R. C. - Ancient India.
Motichandra - Eco. and Geog. Studies in the Mahabharata.
Mukerji, R. K. - The History of Indian Shipping.
O'maston - Forest Flora for Kumaun.
Oakley - The Holy Himalaya.
Pannalal - Customary Law in Kumaun.
Pergiter - The Purana Text of the Dynasties of Kali Age.
" - Markandeya Purana.
Pande, Rajabali - Historical & Literary Inscriptions.
Pati Ram - Garhwal, Ancient & Modern.
Pyggot - Pre-historic India.
" Ancient Cities of India.
Pauw, A. K. - Settlement Report, Garhwal.
Rajeshwari Prasad - Census Hand Book, Almora.
" " - " " Dehradun.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Rajeshwari Prasad - Census Hand Book, Garhwal.
,, ,, - ,, ,, Nainital.
,, ,, - ,, ,, Tehri.
Risley - The Peoples of India.
Rapson - Cambridge History of India, Vol I.
Rhys Davids - The Budhist India.
Ralf Turner - Ancient Historical Traditions, 2 Vols
Rai-Chaudhary - Political History of Ancient India.
Sherring - Western Tibet and British Borderland.
Sleeman - Rambles & Racollections.
Sarkar - Studies in Ancient & Mediaeval Indian Geography.
Shah, K. T. - Ancient Foundations of Economics in India.
Syke - History of Exploration.
Semple - Influnces of Geographic Environment.
Shipton - Upon that Mountain.
Sven Hedin - Trans-Himalaya, 3 Vols.
Vaidya, C. B. - History of Mediaeval India.
Tripathi - Ayeen-i-Akabari.
Tripathi - History of Kannauj.
Williams - Historical & Statistical Memoir of Dehradun.
Watt - Dictionary of Economic Products of India, 6 Vols.
Webber - Forests of Northern India & their Inhabitants.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अल्तेकर - गुप्तकालीन मुद्राएं

अग्निहोत्री - पतंजलिकालीन भारत

अग्रवाल - पाणिनिकालीन भारतवर्ष

,, - कादम्बरी का सां० अध्ययन

,, - हर्षचरित का सां० अध्ययन

,, - माता भूमि

अत्रिदेव - आयुर्वेद का इतिहास

उपाध्याय - कालिदास का भारत, २ भाग

ओझा - प्राचीन लिपिमाला

,, - राजस्थान का इतिहास, भाग १, खण्ड १

कर्मभूमि - २, १७, २४, जुलाई १९५६

,, - ३१ दिसम्बर ५७, अप्रैल ५८

काला - सिन्धु-सभ्यता

जैन - प्राकृत साहित्य का इतिहास

जायसवाल - अन्धकारयुगीन भारत

,, - हिन्दू राज्यतंत्र, २ भाग

डबराल - उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन

,, - उत्तराखंड के भोटांतिक

,, - उत्तराखंड के पशुचारक

,, - अलकनन्दा-उपत्यका

,, - हुतात्मा-परिचय

दत्त तथा वाजपेयी - उत्तरप्रदेश में बौद्धधर्म का विकास

दोगडा कालेज पत्रिका - १९६४, १९६५

पांडे, बदरीदत्त - कुमाऊं का इतिहास

भ० श० उपाध्याय - गुप्त साम्राज्य का इतिहास, २ भाग

,, ,, - प्राचीन भारत का इतिहास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरतसिंह - बुद्धकालीन भारत
मिश्र - भारतीय संस्कृति में आर्येतरांश
मोतीचन्द्र - सार्थवाह
,, - प्राचीन भारतीय वेशभूषा
मौलाराम - गढ़राजवंश का इतिहास (पांडुलिपि)
,, - गुटका (१) (पांडुलिपि)
,, - गुटका (२) ,,
राय - प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन
राहुल सांकृत्यायन - गढ़वाल
,, - कुमाऊं
,, - अतीत से वर्तमान
,, - किन्नरदेश में
,, - मेरी जीवनयात्रा, २ भाग
,, - बुद्धचर्या
,, - एशिया के दुर्गम भूखंडों में
,, - ऋग्वेदिक आर्य
,, - पुरातत्व-निबंधावली
रतूड़ी, हरिकृष्ण - गढ़वाल का इतिहास
बलदेव उपाध्याय - शंकराचार्य
बन्द्योपाध्याय - प्राचीन मुद्रा
सत्यपथ - जु० ५८, २ अगस्त ६५
हेमचन्द्र जोशी - प्राकृत भाषाओं का व्याकरण

—

अमरसिंह - अमरकोष, क्षीरस्वामी की टीका
आदिपुराण - २ भाग (जैन ग्रन्थ)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगम - कुब्जिकातंत्र, प्राणतोषिणी, महानीलतंत्र, शक्तिसंगमतंत्र
कल्हणमिश्र - राजतरंगिणी
कथा सरित्सागर - (पटना)
कालिदास - अभिज्ञान शाकुन्तलम्
,, - कुमारसंभव
,, - मेघदूत
,, - रघुवंश
केदारखंड - (बम्बई, मूल)
कौटिल्य - अर्थशास्त्र, (वाराणसी)
गौड़-लेखमाला - स्तवक १ (बंगाक्षर)
जातक - सुधाभोजन, महावेस्सन्तर, भल्लाटिय, तक्कारिय,
- चन्दकिरन, महाकपि, छद्दन्त
जैमिनीयाश्वमेधपर्व - (गीता प्रेस)
धर्मशास्त्र - बौधायन, व्याससमृति, शंखस्मृति
प्राचीन लेखमाला - भाग २
निगम - ऋक्संहिता, शतरुद्रियसूक्त, तैत्तिरीय-आरण्यक, जैमिनीयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण
पुराण - अग्नि, कूर्म, देवीभागवत, वामन, भागवत, मारकंडेय, मत्स्य, पद्म, ब्रह्म, नारदीय, विष्णु, लिंग, शिव, स्कन्द, वराह, वायु, हरिवंश
बाणभट्ट - कादम्बरी
,, - हर्षचरित
महाभारत - (गीता प्रेस)
मनुस्मृति - (वाराणसी)
मानसखंड - डा० बदरीदत्त पांडे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैठाणी - भारत-गोत्र-प्रवर दीपिका
रामायण - (बंगाक्षर)
राजशेखर - काव्यमीमांसा
वीरमित्र - वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश
विनय पिटक - चुल्लवग्ग
वैद्य - मध्यकालीन भारत का इतिहास
शर्मा तथा झा - शब्दार्थ-कौस्तुभ
संक्षिप्त विष्णुपुराण - (गीता प्रेस)
संक्षिप्त स्कन्दपुराण - (गीता प्रेस)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

(१)

अकबर - १२७, २५२
अगस्त्य - २१५
अग्रवाल - २०३, ७१
अग्निमित्र - २३७
अचलवर्मन् - ३४६, ५०
अजपथ - १४३
अट्ठकथा - १४०
अढ़िष्ठाण - ३४७
अन्तिकिन - ३४३
अन्तिगोनस - २००
अधिधज - ३७८, ७६
अनन्त नाग - २८२, से ८४
अनिलादित्य - ३६६
अनिरुद्ध - १२२, ४४ से ४६
अमरसिंह - २१६
अम्बरीश - २०२
अमोघभूति - ३१, ३१७, १८
अयुमित्र - २३७
अरुन्धुति - १५०
अघाम - ६६
अग्निपुराण - १६६
अग्रराज - २०५, १२, ३४५
अग्निवर्मन् - २२५, ३११, ५४, ५८, ६०
अजयपाल - २६७, ८३, ३१२, २२ से २४
अन्तियोक - ३२६, ४३
अन्ति-ओकस तालेमी - २००
अथर्ववेद - १५६, ६६
अनन्त - ३५७, ६०, ६२
अनेकमल्ल - २७१, ७४, ३६८
अन्तुबनिनी - ७२
अबुलफजल - २१६
अम्बष्ट - १८०
अम्बिका - १४७
अमोघवर्ष - ४०४
अर्थशास्त्र - ११, १६३, ६६, २४६
अर्जुन - २८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्जुन (पांडव)- १०१, १४६, ५६, ६२, ६६
अलाउद्दीन - २४७
अशोक - ३१, १०२, ८६, ६० से ६३, २००, ३७, ५३, ६३, ३२५, ६७, ६८, ४०१, ३
अष्टाध्यायी - ११६, ३१२
आदित्य - ३४७
आर्जुनायन - २०३, ७, ३१५
आर्यभाषा - ८८, ११२
आर्यवर्मन् - ३४६, ५०
आर्यदेव - २२०
आर्यटपट्ट - ३७३, ७६
आलमशाह - ३२३
आर्ष्टिषेण - १७५
आस्त्रोलोइदजाति - ६, ६६, ८२, ८३, १३२
इज्जुउद्दीन दरमशी - २६४
इन्द्रमित्र - २३७
इन्द्रायुध - २१०
इष्टगणदेव - ३७३, ७४, ७६
ईश्वरदास - ३४१
ईश्वरवर्मन् - ३४६, ५०
ईश्वरीदत्त - ३८८, ६१
उइगरतुर्क - २५४
उत्तराखंड के पशुचारक - १७
उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन - १६
अलकनन्दा-उपत्यका १७
अलेकजेंडर - २००, ३४७
अलबरूनी २००, ४१
अशोकचल्ल - ३२, २६६
अश्वस्थामा - १७६
अश्विनीकुमार - १६६, ६८
असुरअवनिपाल - २५३
आन्ध्र - ३७२, ७५, ८६
आर्यजाति - २५, ५६, ६२, ८४, ६ , ६८, ६६, १०२, ४, ५, ७, ११, १३, २८, ३१, ३२, ३४, ३६, ३७
आर्यावर्त - ११६
आलमगीर - ३२३
आस्त्रिक बोलियां - ८३
इच्छटदेव - ३८०, ८३, ८५, ८६
इन्द्रराज - ४०४
इन्द्रसेन - १६७, १७५
ईश्वरनाग - ३५०, ५१
ईश्वरा - २०८ से १०, ३४७, ५०, ५१
उंगक - ३८६
उत्तराखंड के भोटांतिक - १७
उत्तरपथ (उत्तरापथ) - ३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदुम्बर - ३१७

उड़िया - ८८

उलूक - १७६

ऊषा - २७, १२२, ४४ से ४६

ऋग्वेद - २१३

ऋषिक - २३९

ऋष्यश्रृंग - १५१

एनशिएंट इंडिया - २०

ऐरावत - २१४

ओझा - २३८

अंगिरा - १६८

कन्दर्प - १५३

कनकपाल - २८२, ३९४

कनिंघम - २०, ७०, ११६, ३३, २०१, २, ३, ७, २०, से २३, ३०, ३४ से ३७, ४५

कर्णदेव - ३९४, ४०५

कपिलवर्द्धन - ३४९, ५०

कल्किपुराण - २३९

कश्तवारी - ११२

कश्यपसंहिता - ९६

कंचुका - ३९२

काली - २७, १४५, १४७

कालिदास - २७, १०२, ३, २१, २१९, ४०, ७४

काशू - ११२, १४

उद्योगपर्व - १११

उमा - २७, ११९, ४५, ३९२

उलूपी - २१५

ऋतुपर्ण - १५२

ऋषिभुवनकोष - २४१

एटकिनसन - १४, १६, २०, ३२, ७८, ९०, १११, १३, २२७, ७८, ७९, ८१, ३७७

औसनेटर - ७०, ७४

अंतियोक - ३२६

कनक - १८३

कनिष्क - १८३, ३१४

कण्व - २७, १६०

कर्ण - १४९

कपित्थ - १४६

कथासरित्सागर - १९६

कमला (दत्त) - ३८८, ९१

कश्कर - ११२, १४

कश्मीरप्रस्ताव - १४८

कल्हण - १२, १०४

कार्तिकेय - २७, १४४, ४६, ५२

कारनाक - ९६

काम - १४४, ९६

काल्डवेल - ११२, ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कादम्बरी - २३६, ४६
कालयवन - १४६
कीर्तिचन्द - २८३
कुरु - १५०
कुमाऊं (ग्रन्थ) - १६
कुमार-कुमारी-गृह - ८६
कुरान - २३१
कुंती - २१५
कूर्म - १५२
कृपाचार्य - १७६, ७७
केदारखंडग्रन्थ - ८७, १४७ से ५० २१५, १७, ४०, ७८
कौरव - १६, १२६, ७६, ७७
क्राचल्लदेव - २७१, ७८, ३०६, २२, ६६, ४००
कार्तवीर्य - १४६, ४५
काशिका - १६२
कीरराज शाही - ३६२, ६३
कुमाऊं का इतिहास - १५
कुमारगुप्त - ३२, १६६, ३१६, २०
कुमार दे० कार्तिकेय
कुंभज - १४६
कुबेर - १४६, ६५, ७५, २६०
कृतवर्मा - १७६
कृष्णराष्ट्रकूट - ४०४, ५
केदारप्रस्ताव - १४८
कोलासुर - ८७, ८६, १५०, २६७
क्राथ - १७६, ७८
क्रौंच हंस - २६०

खशकुरा - ११२
खशाधिपति - २७२ से ७४, ३२०, ३६२
खशप्रजा - ११२
खर्परदेव - ३७८

गढ़वाल (ग्रन्थ) - १६
गढ़वाल एनशिएंट ऐंड मौडर्न-१६
गणेश - २७, १४४, ४६
गरुड़ - ३०
गणपाठ - २१३
गंगाद्वार संस्कृति - २४, ५३ से ५८
गार्डनर - ६१
गढ़वाल का इतिहास - १५
गढ़राजवंश का इतिहास - १२, १६
गजेटियर आव हि०डिस्ट्रि० - १४, १५
गरुड़पुराण - १८१
गणेश्वर - २७७ से ७६, ३२२, ६३
गंगाजी - ६, २७, २६४, ६६
गंगभद्र - ३७३, ७६, ७७
गांधारी - २१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीर्वाणजुद्ध विक्रम - ३२३
गुह - २७७ से ७६, ३८१, २२,
गुहवर्मा - ३४६
गुहेश्वरदत्त - ३४७
गुग्गुल - ३७३
गोरखा - १ , १६८, २८२
गोविन्द - ४०४
गौतम - १४४
ग्रियर्सन २०, १३४
गुप्ते - २२६
गुहा (डा०) - २४
गुहवर्म आदित्यवर्म - ३४७
गुहेश्वरदत्त - ३४७
गेलणक - ३६२
गोरक्ष - १४६
गौरी - १४६, ४६, ३६८
गौड़ - ३७५, ८१, ८६, ६१ से ६४

घंटाकर्ण - १४८, २६०
घाई (डा.) - २१
चंचु - १४६
चंडेश्वर-संस्कृति - ६४, १२६
चन्दा - २४
चन्द्रगुप्त - ३५०, ५१
चन्द्रगुप्त मौर्य - १८२
चन्द्रापीड - १६७
चरक - २५३
चांडाल - ३७२, ७५, ८१, ८६
चीन - १३५
चौहान - २०७
छत्रेश्वर - ३१८
छाबड़ा (डा०) - २१
जटायु - १४६
जमदग्नि - १४६
जयगुप्त - २२०
घटोत्कच - १११
घृताची - २१३
चंड - १४७
चन्द्रवंश - १३, १४, १७, १२७, ३२३
चन्द्रदेव - ३६६
चन्द्रगुप्त (गुप्त) - २०६, १०, ७३, ३१६ से २१, ८६
चतुर्व्यूह - ३४७
चाट ब्रह्मा - ४०३
चित्रायुध - २१०, ३६६, ६७
चुल्लुवग्ग - १४२
छान्दोग्य - २१४
जनमेजय - १५०
जय-विजय - २०८
जयद्रथ - २१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जयमित्र - २३७
जरासंध - ५६०
जलवर्मन् - ३४८, ४९
जयसिंह - ३६९
जयावली - ३४९, ५१

जातियाँ

अरब - २४५,
असीरियन - १०६
आर्मेनोइद - १०७
आर्य - २५, ५९, ६२, ८४, ९१, ९८, ९९, १०२, ४, ५, ७, ११, १३, २८, ३१, ३२, ३४, ३६, ३७
ओरांव - ८६
करदा - १०८
कशदा - १०८
कटोर - ११४
काफिर - ११४
किरांती ८६
किन्नर - ९५
कीर - ९५
कुक्कुर - ११४
कुलिन्द, कुलिन्द्रीन-दे० कुणिन्द
कुर्द - १०८
कोल (मुंड)- ८१ से ९८, ११२
कोलटा - ८१, ८६, १०३
खत्ती - १०९
खशिया - ११५
अलपाइन - १०७
अनातोलियन - १०७
आयतकपाल - १०७
उइगरतुर्क - २५४
ऋषिक - २३९
ओड - ८१
ओड्र - ३७२, ७५
कनेत (कुनेत) ८१, ११४, २६
कलदा - १०८
कश, कुश, कस्सी, कस्साइत-दे० खश
कस्तूरी - ११४
किरात - ९, ७८, ८२ से ८६, ९३, से १०४, १७, २०, ३५, ४३, ६७, २५३, ६६, ८०, ३७०, ७२, ७५, ८१, ८६
कुणिन्द - ११५, २६, ६२, ६३, ६७ २०३, ४, २१, २४, ४१, ६२, से ७२, ३१२ से १६
कोली - ८१
कोटा - ९०
खश - १४, ७७ से ९२, ९८ से १२८, ३५, ५६, ५७, ६२, ६३,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेना - १०६
खोजा, खोशा - दे० खश
खोकर - ११४
खोहकर - ११४
गद्दा - २५५
गुरङ् - १००, १४
गोंड - ६०,६१
चलदिया - १०८
चांडाल - ३७२, ७५, ८१, ८६
चिलासी - ११४
जरमन - ११३
जोहारी - १००
डोगरा - ११४
डोम - ८१, ८६, ६
तमिल - ६०
तमङ् - १००
तातार - ७०
तुगलक - १६८
तुर्क - २४५
तोख - १०६
तोलछा - १००
दरद - ११०, १२, ३५, ७१, ७६, ८१, २६६
दर्दर - १०४
द्रविड़ - ८३, ६३, ११३, २८, २६, ३५, ३७२, ७५, ८१, ८६
७६, ८१, ६२, २४०, ४१, ३७० से ७५, ८१, ८६, ६३, ६४, ४०८
खोह - ११४
गालचा - ११४
गूजर - १३३, ३४, ६८, २८८
घिरत - १००
चाङ् - १००
चित्राली - ११४
छेतरी - ११५
जाड - ६६
टंकण - दे० तंगण
डोटियाल - ११४
तंगण-२६, ११०, २६, ४३, ५६, ६२ से ६७, ७६ से ८१, ६०, २३६, ६६
तिब्बती - ७७, ८१, ६८, १०१, ३, २७६, ८०, ३११,
तुषार - ११०, ७५, ७६, २६६, ३६२
तोखारा - १०६
तोमर - २०७
दस्यु - १०६
दह्यु - १०६
दार्घवेणु - १६२, ६३
द्रमिड़, ३७५, ८६
नागमुंड - ६३, ६४
नागा - १००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नायक - ११६
नीहार - १९०
नेग्रितो - ८२, ८३
पह्लव - १३५, २३६
पवीला - ११५
पशुप - १६२
पारद - १३५, ६३, ६६
पौंड्रक - १३५
प्रदर - १६३
बाती - १००
भांतू - १६८
भुट्ट - १०३, ४
भूत - १०४
भोगता - १००
भोटांतिक - ६८, १०३, ४, ६०, २४२, ४५, ५२, ५६, ५७, ६१, ६५
महर - १००
मुंड - दे० कोल (मुंड)
मौन - ७०, १०२, ३
मौन-ख्मेर - ८३ ६७, १००, २
यक्ष - १०४,
याखा - १००
राई - १००
राव - ११५
रुहेला-१६८, २०८, ५२, ८८, ३११
निषाद - ११३
नेवार - १०३, १०
पक्वण - २३६
पर्वताश्रयी - २४१
पणि - १३५
परतंगण - १६२, ६३, २४१
पैशाच - १८०
प्रघस - १३२
बाजगिर - ८१
बोकसा - १००
भिल्ल - ६५, १००
भूटवारी दस्यु - १०४
भैंड़ा, भेल्डा - १०१
भोटा - ६६, १०३
मग - ३४३
मगर - १००
मंगोल - १७, ८१, ८३, १०२, ११४
मारछा - १००
मेलानकोई - १०७
मोनपा - १०० से ३
यवन - ११६, ३५, ३६, ७६ २०, ३६, ७६, ३४३
यूनानी - २४५
राजकिरात - ६६, १००
राठी - ११५
रोमक - २३६, ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लम्पाक - १८५

लिम्बू - १००

शक - ९६, १०४, १५ से १७, २०, ३३ से ३६, २९७, ९८, ३०१, ८, १३

सरमाशिएन - ११५

सिथियन - ११५, ३१, ३३

सिख - १९८

हिन्दु - ९१, १३१, ३२

हुंजा - ११४

हो - ८६

लाहुली - ९९

लेप-चा - १००

शिनाकी - ११४

शिल्पकार - ८१, ९१ से ९४

समुद्री किरात - १०२

साइथ - दे० शथियन

सिपत्याल - ९९

हिन्दचीनी - १०२

हूण - १०२, २३९, ३७५, ८१, ८६, ९३, ९४

—

जातक - १३९, ४०

जिमादेवी - ११९

जेनोन - २५१

जैमिनीय ब्राह्मण - १३८

झोटो - ३६५

तक्षशिला - १९

ताम्र-उपकरण - २०, २३, ५४, ५९, ६२

तैमूर - १८७, ९८, २१९

तैत्तिरीय ब्रा० - १३८

त्रात - ३५३, ५५

त्रिभुवनराज - ३७८

त्रैलोक्यब्रह्म - ४०२

जायसवाल - ३१८, १९

जीहलदेव - ३९९

जैनसाहित्य - १४३

ज्योतिराय भरत - १२

ट्रेल - ७०, ९१, २७८, ३०८

ताउरो - २५१

ताम्रढेर-संस्कृति - ५६ से ६३

तालमी - १०२, २६, २४२

तुरंमय - ३४३

तैलंग - १५०

त्रिगर्त - १७९

त्रिमलचन्द - ३०२

दत्तात्रेय - १५२, २८१

दद्दमहाराज - ४०८

दधीचि - ३९८

दयाराम साहनी - २०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशरथ - ३८४, ४०३
दत्त - २७, १४५, ४६, २१६
दिमित्र - ३१३
दिव्यावदान - २०४
दीर्घादित्य - ३८१, ८३
दुर्योधन - ११०, २६, ५६, ७६, ७८, ९१
दुष्यन्त - १५७, ६०
देवीमाहात्म्य - १४४
देवीपुराण - १४८
देवभुमि - १८२
देववर्मन् - ३४९, ५०
देवमित्र - २३७
द्रविड़भाषा - २५, ८२, ११२, ३०, ३१
द्रुमपुत्र - १६२
द्रोणपर्व - ११०
द्वापर - १५२
दलाईलामा - २५६
दारा - १२६, २४४
दिलीप - १४६, ३८०, ८२, ८४
दिवाकरवर्मन् - ३५०, ५१
दीपचन्द - ३०२
दुर्गादेवी - ३८८
दुर्गाभट्ट - ३८७, ९०
दुःशासन - १५२
देवीभागवत - १४७
देवावृध - १७६
देवपाल - ३३, १९७, ३२२, ६६, ६७, ९३
देशट - २२७, ३०६, ८०, ८३, ८५, ८९
द्रुपद - १७५
द्रोपदी - १२२, ६६, ६८, ७०, ७१, ७४, ७५, २३६
द्विजवर्मन् - २२५, ३५१ से ५५, ५८, ६०
धनदत्त - ३६०, ६२
धनंजय - १६३
धर्मशास्त्र - १५२
धंगदेव - ४०५
धुंधुमार - ३८०, ८२, ८४
ध्रुव - १४५, ४६
ध्रुवस्वामिनी - २७२, ७३,
धनभुति - २०५, १२, ३४४, ४५
धन्वंतरि - १५२
धर्मपाल - ३२, २१०, ३६५ से ६७, ४०४
धार्तराष्ट्र हंस - २६०
धृतराष्ट्र - २१५
ध्रुवमित्र - २३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३१९, २०
नकुल - १६६, ६७, ७१
नद्योत - १६२
नन्दवंश - ३१३
नन्दाभगवती - ३६८, ७२
नहुष - १४९
नागराज - २८१, ३९६
नादिरशाह - २४७
नारदीयपुराण - १४६, ४८
नारायणपाल - ३९३
नासिरुद्दीन महमूद - २६४
निनीदेवी - ७३
निम्बर - ३६८ ७२ से ७४, ७९
निशुम्भ - १४७
नैनसिंह - २४५
पतंजलि - २७, १३५, ३६, ९५, २०५, १३, १४
पद्मादत्त सुन्दरियाल - २०
परजिटर - २१३
पद्मट - २२७, ७१, ३८०, ८३, ८५, ८९
धौम्य - १६८, ६९, ७१
नर-नारायण-२७, १५९, ७२ से ७५
नजीबुद्दौला - २३१
नन्दभद्र - ३८२, ८४, ८८, ९१
नन्दीगण - ४०६
नागदत्त - ३५०, ५१
नागपुरसिंह - १५६
नारद - १४९
नारायणदत्त - ३८२, ८४
नाशुदेवी - ३३८, ७२, ७४, ७९
निचत्तु - १८१
निमिनरेश - १४३
निम्बकाचार्य - २०९
नेबुचेदनजर - २५५
परशुराम - २७, ११०, ४९, २०८, ७६
पद्मपुराण - १४५
पराजित - १८५
पद्मलदेवी - ३८१, ८३, ८५, ८९

पात्र

कुषाण कालीन - ७८, ७९
Black & Red Ware-६८, ७९
Northen Black Polished Ware - ६१, ६३
मलारी के - ७१ से ७८
Glazed - ६२
Painted Gray Ware - ६०, ६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Pale-Ochre Washed- ५५
--

पातीराम - १६, २०, २८१
पांडव - ६२, ११२, २२, ४५, ५६, ६३, ६८, ७०, ७२ ७४, से ७७, ९०, २०८, ३४, ६५, ६६, ३९९
पालि साहित्य - १३९, ९५
पाहड़देव - ३९९
पीजक - ३७३
पीतध्वज - २३२
पुराण - २६, १४४, ९५, २१३, ३९, ४१
पुलह - १५२, ६८
पृथिवीमित्र - २३७, ३८, ३१९, ४५
पेरिप्लस - 2४४, ४७
प्रदीप्तिवर्मन् - ३४९, ५०
प्रियदर्शी - ३2५ से ३४०
प्रह्लाद - १४७, ४९
प्लिनी - 2४५
फतेहशाह - ३2३
फूरर - 2०, 2३३, 2४
बदरीदत्त पांडे-१५, १६, 2०, 22७
बंगला - ८८
बराहदत्त - ३६०, ६2
बल्लालदेव - ३९९

Pale-Red Ochre-Washed- ६०
पाषाण उपकरण २०, २३, ५०, ५३
सोहन - ४४, ५५, ५८, ६३
पांडु - १२२, ४६, ५६, ९०
पाणिनी - २७, ४, ११६ २६, २८, ८६, ९९, २१३, ५८, ९१, ३१३
पार्वती १४४ से ४८, ५३
पितृकुंडी - ६७
पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल - २०
पुजुरशिशुनाक - १०६
पुरुगुप्त - २७५, ३२१
पुरुरवा - १४७, ३५२
पुष्यमित्र - १८१, २०५, ७
पुलस्त्य - १५2
पृथिवीराज - 2६३
प्रशांतराग ४०८
प्रस्तरयुग - ९, १७, 2४, ५०, ५३ १०७
प्रातिविन्ध्य - १६१
फ्रायसंह्वील - ६५
बन्धुवर्मन् - ३४७
बराहमिहिर - ३०५
बराहपुराण - १४६
बलबन - ६2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलि - ३८६
बसुदेवहिंदी - २६
बहस्पतिमित्र - २३६
बामनपुराण - १४७
बाणभट्ट - २७, १०२, ६७, २४५
बासुदेवभट्ट - ३५०, ५१
बिन्दुसार - १८२
बीरणेश्वर-२२८, ८२, ४४, ३५१, ५२
बुद्ध - ५७, १४०, ६१, २०४, ३०, ३०५, ४०१ से ३
बृहदर्थ - १८२
बृहत्कथा - १६६, २३६
बृक - १७६
बेस्सन्तर - १६५
बोधिसत्व - १३६
ब्रह्मेश्वर - ३८८
ब्रह्मपुराण - १४४
ब्रह्मवैवर्तपुराण - १४६
भगीरथ - २७, १४४, ४५, ४६, ३८०, ८३, ८४
भट्ट दामोदर - ४०१
भट्ट पद्म - ४०१
भद्रघोष - २३७
भद्रविष्णु - ३५२, ५५
भरत - २५१
भरत चक्रवर्ती - ६६, १४३, ४४
बल्लभाचार्य - ३०६
बंशपथ - १४३
बाउक - ३६५
बालखिल्य - १५७, ६७
बाणासुर - १४२, २६७
बासुदेव - १८२, ३६४, १५
बिशालदेवी - ३८६
बीजक - ३७६
बीसलदेव - ३६६, ६७
बुद्धघोष - १४०
बुरियस - ११७
बृहत्संहिता - २३६, ७२, ८८
बृहदारण्यक - २१४
बेन राजा - २२०
बैकर्त्तन - ३८६
बौधायन - १५२, २४०
ब्रह्मदत्त - २१४
ब्रह्मांडपुराण - १८१, २१३
ब्राह्मी - ३१
भट्ट घण - ३८२, ८४
भट्ट नारायण - ३६६, ४००
भट्ट श्रीपुरुष - ३७५
भद्रबल - ३४७
भदन्त अभय - ४०१, २
भरत दौष्यन्ति - २७, १२१, ३८, ५६, २०१, २, ६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरद्वाज - १४६, २१३
भागवतपुराण - ११०, ४५, ८१
भांडारकर - २७४
भिल्लादित्य - ३६५
भीष्मपर्व - ११०
भीष्म - २१५
भूदेव - ३०५, ७७, ७६
भूलर - २०६
मगस - २००, ३०८
मणादेव - ४०८
मदनपाल - ३६४
मध्वाचार्य - ३०६
महानाम शाक्य - ६३
मणिभद्र - २६०
मलिन्द - ३१३
महानन्दिन - १८२
महाभाष्य - १६२, २१३
महामयूरी - २३१
महारुद्र - ४०७
महिपाल - ३६४
महिपूकाल - ४०१
मसंतन (बसंतन) - ३७८
महेन्द्र - ३६६, ६७
महेश्वर - ११८, १६
महमूद गजनी - १६८, २४७, ६३, ३०६
भविष्यपुराण - १८१
भानुमित्र - २३७
भास्करवर्मन् - ३४५, ५०
भीमसेन - १५२, ६६, ६७, ७, ७१, ७६
भूटेसर - १०४
भूमिमित्र - २३७
भृगु - १६८
मजूमदार - २४, ८१, १२८
मणिमेकलइ - ६८
मदन - दे० काम
मनवर तुंबर - २२६
मणिमहेश - ११८
मलारी की समाधियां - २४, ६६, ७०
महानन्द - १८२
महापद्म - १८२
महाभारत- २४, ११, १८, २६, २७, १०२, १० से १२, २१, २६, ३६, ४२, ५०, ५३ से ५६, ६१, ६५, ६६, ६६, २०२ से ४, १०, १३, १४, १६, २१, २७, ३४, ३८ से ४०, ४२ से ४६, ५०, ६०, ६५, ६७, ६६, ७०, ७२, ३१२
मरखाम - ३३०
महासू - ११८, १६
महावंश - १४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महावेस्सन्तरजातक - १४०
मत्स्यपुराण - १४७, ८१
मरीचि - १६८
मरुद्गण - १६६, ६८
महेशचन्द्र डबराल - २१
माणिवर यक्ष - १६५
मातृचेट - ३४६
मातृदत्त - ३४६
मातृमित्र - २३७, ३८, ३१९, ४५
मानपर्वत - ३४६
मारकंडेयपुराण - ११, ११०, ११, ४६, ५२, ८६, २३९
मारिपतिशर्मन् - ३६०, ६१
मानधातृ - २०२, ३८०, ८५, ८४
मानसखंड - १४८, ५१, २२७
माधवसेन - ३०२
मालिनी - ३९४, ९५
मिल (डा०) - २७८
मिदादित्य (गुणादित्य)-३८१, ८३

मुद्रा

आहत - ३०, ६१, १८६, २०७, ३१२
आर्जुनायन - ३१५
उदुम्बर - ३१७
कुणिन्द - ३०, ३१, १८६, २०३ १५, १७ से १९
कार्षापण - ३१२
गुप्त - ३०, ३१९ से २१
पंवार - ३०, ३२३
पुराण - ३१२
यौधेय - ३०, ३१, २०३, ३१५, १७ —
मुहम्मद बिन कासिम - २४४
मुकुन्दीलाल - १६
मुहम्मद गोरी - १८
मूमदेव - ३९९
मूसलपंडित - ४०२
मृषिब्रह्मा - ४०३
मेगालिथ - २४, ८२
मेगालिथ बिल्डर्स - ६८, ६९
मेदिनीशाह - ३२३
मैनाक - १४५
मोग्गलिपुत्त तिस्स - १४२, ६१
मोहनजोदड़ो - २६
मोरध्वज - २२९, ३१
यमराज - १६६
यमुना - २९४, ९६
यवक्रीत - १६४
यशोधर्मदेव - ३२, १९६, ३६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञ - ३४६
यज्ञवर्मन् - ३४९, ५०
युवानचाङ् - २८, २९, २०१, ५, ७, ९, १९ से २३, ३४, ६९
रघुवंश - ११
राउत्तराज - ३९९
राजतरंगिणी १२, ११०
राजवली पांडे - २०
रावण - १४९
रामानुज - ३०९
रामचन्द्र - २१५, १६
रामदत्त - १५
रिजले - २४
रिसालू - १३३, २०१
रुद्रदत्त - १५
रुद्रवर्मन् - ३४७
रुद्रगुप्त - २३७
रैभ्य - १६४
यज्ञदत्तशर्मा - ५४, ५५, ५८
युधिष्ठिर - १२६, ५६, ६१ से ६३, ६८ से ७४, २४३
रमवङ् - ८६
रावत्र - ४०१
राजपाल - ११६
राजशेखर - २७
राम - १५२, ३६६, ६७, ८५
रामगुप्त - १९५, २७३
रामचन्द्रन - २०३, १२
राहुल सांकृत्यायन - १६, ३२, ७१, ७५, ७६, २७८ से ८१
रुद्र - १०१, २९९
रुद्रसूनु - २९८, ९९, ४०६, ७
रुद्रवृद्धि - ३४७
रेज डेविड्स - १९८
रोहिताश्व - १४९

राजवंश

कत्यूरी - १७, २३, ३१, २४१, ४२, ६२, ६५, ७३ से ७५, ३०५ से ७, ११, १३, १४
कुरु - २३३
पंवार - १३ से १७, १२७, ३२३
पौरव - १८१, ८2, 22५ से २८
मौर्य - १७, ११६, १८2, ९३,
कुषाण - २४, ३०९, १३, १५, १९
कुणिन्द - ११५, २, ६, ६२ से ६७, २०३, ४, २१, ४०, ४१ ६२ से ७२, ३१२ से १९
गुप्त - ३०, १८३, ९५, २७2, ७५
मित्र - ३१
यादव - 2०३, ९ से १२, ३४९, ५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०४, ३६, ३१२, १३

बौद्ध (स्रुघ्न के) - ३१

शुंग - ६२ २३७, ३१३

लखनपालदेव - २२७, ७१, ८३, ८५

ललितविस्तर - ११०

लयदेवी - ३७६

लक्ष्मण - १४६, ५२, २१७, ८४, ३०४

लक्ष्मीविलास डबराल - २०

लिंगपुराण - १४८

वशिष्ठ - ११०, ४६, ५०

बभ्रु - १७६

वामन - २७

वार्षगण्य - ३२, २०३

वाह्लीक - १७६

विग्रहराज - ३२, १६७, ३२२

विजयपाल - ३२२

विमलचन्द - ३६६

विष्णु - १५२

विष्णुमाया - १४६

विष्णुमित्र - २३७

विश्वंभरदत्त चन्दोला - २०

विश्वमित्र - १४६, ५१

विडूडभ - ६३

विद्याचन्द्र - ३६६

यौधेय - २०३, ७०, ३१५, १७

शैव (बाराहाट के)-३१, २७६ से ७८

—

लद्धादेवी - ३७८

ललितशूर - २२७, ७१, ३६८, ६६, ७२ से ७६

लंहडी ११२

लक्ष्मणराज - ३६४

लक्ष्मणसेन - ४०१, २

लक्ष्मीचन्द - ३०२, ५

वन्द्योपाध्याय - ३१८

वरुण - १६६

वायुपुराण - ११, ११०, ४५, ८१,

वासव खत्तिया - ६३

विक्रमादित्य - ३६१

विजयमित्र - २३७

विदुर - १२२

विशोक - १७५

विष्णुदास - ३५७

विष्णुपुराण - ११०, ४५

विष्णुवर्मन् - २५५, ३५१, ५४, ५७, ६१

विश्वकर्मा - १६३

विद्याधर - १०३, १५३

वनयपिटक - १४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशालयत्त - २६०
विलफोर्ड - ११३
वीरभद्र - १४६, २१५
वृषवर्मन् - २२५, ३५१, ५४, ५८
वेगदेवी - ३६६, ७२ ७४, ७६
वेदिकसाहित्य - १३८
शंकराचार्य - १८, ३०६
शंकुपथ - १४३
शकादित्य - ११७
शम्बूक - २१५
शर्मगुप्त - २७२, ७३
शल्लक - १५०
शकुनि - १७६
शान्तनु - २०२
शिव - २७, १०१, ४५, २१६
शिवभवानी - २०२
शिवपालित - ३१, ३१८, १६
शीलवर्मन् - २०, ३१, ३२, २०२, ३, १२, २७०, ३१६, ४५, ४६
शौनक - ३६५
श्रीकृष्ण - १२२, ४८, ६३, ६०
श्रीकुमारसेन - २५०
सगर - ११०, ४०, ४६, ३८०, ८२, ८४
सत्यसंघ - १५०
सय्यद सालारमसूद - २६४
विश्वदेव - २०५, १२, ३४४, ४५
वीरविक्रमदेव - ३२३
वृद्धिवर्मन् - ३४६, ५०
वृषपर्वा - १७५
वेद - १०२,
वेदव्यास - १५०, ५४
शंकरदेव - ४०१, २
शकुन्तला - २७, १२१, ४५
शक्तिसंगम तंत्र - ८६, १५१, २१३
शरीफुद्दीन - २१६
शतपथ - २६, १३८
शंखस्मृति - १५३
शान्ता - १५१
शिमा, शिमालिय - ११६
शिवपुराण - १४५
शिवदत्त - ३१, ३१८, १६
शिरा - ३६८
शू, सू - ११८
शेषनाग - २८२
श्रवणनाथ - २२०
श्रीकृष्णस्वामी ५४
श्रीलुक - ३६५
सती - २७, १४४, ४६, ४८, २१६
संकालिया - ५६
सज्यनरादेवी - ३७८
सरकार, डी०सी० - २२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलोणादित्य ३८०, ८२, ८५, ८६
सहदेव-१६६, ६७, ७१, ७६, २०२
संघमित्र - २३७
सात्यकि - १६३, ७६, ८१
सामवेद - १५६
सामदेवी - ३७३
सिंहवर्मन् - २११, ३४६, ५०
सिंधुदेवी - ३८०, ८३, ८५, ८६
सुभद्रा - १४३
सुमुख - दे० सुबाहु
सुभिक्षराज - ३८५, ८६
सूर्यदत्त - ३५७
सूर्यमित्र - २३७
सोमक - २०२
सोमवंशी - ४०६
स्कन्दगुप्त - २७६, ३२१
स्कन्दभट्ट - ३५०, ५१
स्त्राबो - १०६, २४५
हम्बाघर - ८६
हरिदत्त - ३१
हरिवंश - ११०, ४८
हर्ष चन्देल - ३६२
हर्षचरित - २३६
हाना - ११३
हिमादेवी - ११६
हिरोदात - १०६, २४५, ५१
सहणपाल - ४०२, ३
संभूत शाणवासी - १४३, ६१
समुद्रगुप्त - ३२, २२१, २२, ७०, ७३, ३१७, १६
सांख्यायन - २१३
सिकन्दर - १२८, २५१
सिंधवलीदेवी - ३८०, ८२, ८५, ८६
सीता - १५२, ३०४
सुद्युम्न - १४६
सुरेन्द्रविक्रमशाह - ३२३
सुबाहु - २७, ११०, ५६, ६२, ६३, ६७, ७५, ७७, २४१, ६५, ६६
सेनवर्मन् - २१२, ७०, ३१६, ४८, ४६
सौभूति - २५१
स्कन्ददत्त - ३४७
स्कन्दपुराण - १४६, ४८
स्रोङ्-चन-साम्-पो - २७६, ८०
हम्मूरवि - १०८
हरिकृष्ण रतूड़ी - १५, १६, २०, ३१२
हरिराज - ३६६
हर्ष (सम्राट) - १९५, ९७, २०५, ७, १२, २८, ४५, ५१, ८०, ३२२
हिडिम्बा - १७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिरण्य - ३८६
हुविष्क - ३०८
हेमचन्द्र बड़थ्वाल - २०
क्षीरस्वामी - १०४
क्षेमशिव - ३५०, ५१
हिन्दुस्तानी पत्रिका - १६
हुसैनखां टुकड़िया - २८८
हेरम्बपाल - ३९२, ९३
क्षेमक - १८१
ज्ञानगुप्त - १११

(२)

अक्केसिया - १०६
अंतराग - २४२, ७१, ३८५, ८९
अंधमहासागर - १०५
अफगानिस्तान - ७६, ९०, ९८, ९९, २४९
अभिसार - २२१
अम्बरी - १०२
अयोध्या - १८२, २६१, ४६, ५१
अलमोड़ा - ३६, ३८, ४2, ४६, ४७, ६४, 22१, २५, २८, ७१, ९६, ९७, ३१७ से 2०
असम - ५६, ५७, ९६, १००, 2, 222, ८०
अहिच्छत्रा - १८८, ८६, 2१४, ३५, ३८, ६१
आन्ध्र - ३४३
आनर्त - १६१
अजपथ - २३८
अंताखी - २३६
अनातोलिया - ६६, १०६, २३ से २५
अफरीका - ५३
अबेबुरी - ६५
अमरनाथ ११६
अम्बाला - 2०६, ११, ३22
अरब - 2५४
अलकनन्दा - ४१, १६७, 222, ४2, ६०, ३०३
अलकापुरी - १४७
अवन्ति - १५१, 2११
असकोट - १००
असीरिया - १०६, 2४७, ५३
आगरा - 2५५
आदिबदरी - २८, ३०, 2६३, ८२, ८३, ८७, ९३, ९६, ३१९
आबूहमीद - १७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्यावर्त - १०५, ३३, ३६६
इंगलैंड - ६७
ईरान - ६६, ७३, ७६, ६६, १०५
८, १०, १५, २४, ३३, २४८,
३१४
उज्जैन - २८, ३१, १८५, २३८,
३१४, १६, ४५
उत्तरकुरु - १६३, २४३
उत्तरपथ - १८६, २३८, २६३
उत्तरप्रदेश - १४, २३, ३३, ३५,
४८, ५७, ५६, २४८, ३१६
ऊखीमठ - २६७
एकचक्रा - १५६
एलाम - १०८, १०
एशियामाइनर - ६६, १०७
औदुम्बर - २८४
कटारमल - २६७, ३०८
कटेहर - २६४
कनखल - ३३, ४५, ४६, ५४,
५८, १६४, ८५, ६१, २१६,
१६, २१, ४१, ६५ से ६८
कर्णप्रयाग - २६३, ३०६
कप्पोडोशिया - १०४
कपिशा - १८७, २६३
कपिलतीर्थ - २१६
कम्बोज - ३४३
आशादेवी - १६६
इन्द्रप्रस्थ - १८७ से ६१, २१३, ३३
६१, ३६६
ईराक - १०८
ईष्टरटापू - ८३
उज्जयिनी - ११६, ५२, २४५, ६?
उत्तरकाशी - ३३ से ३६, ४७, ५१,
१२०, २०६, ७, २२, ४७,
६३, ७६ से ८१
उदयपुर - २६५, ३६५
उदुम्बर - २६१
ऋषिकेश - ११, ४४, ५४, १८५,
२६७, ६८, ७६, ७७
एशिया - ६, १७, १०२, ५, ७, १६
२४२
ऐणीक - २१३
कटाह - २३६
कजबिन - १०६
कन्नौज - ४१
कनौर ७०, ७६, ७७, ८५, ६६ से
६६, १०६, १७
कण्वाश्रम - २७, १३८, ४५, ५६, ५७
८५, ६६, ६६, २२६
कपिलवस्तु - १८५
कम्बोदिया - ६७
करकस्सी - १०६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करनाटक - १२६

करगिल - ५४

कलपग्राम - ४०५

कलिंग - १५०, ३४० से ४५

कशपियन - १०५, ६

कश्मीर - १५, ७७, ६८, ६६, १०५, १०, १२, १४, १७ से २०, ६८, २०६, २१, ६०, ३०८

कांगड़ी - २२५

कार्तिकेयपुर - १८, २१, ५१, २२७, २८, ३८, ७० से ७४, ८४, ३१६, २१, ५४, ५७, ६८, ७२ से ७६, ८०, ८२

काबुल - ११४, ६२

कामरूप - १००, २२२, ४८, ७०

कालसी - २८, १६१, ८२, ८५, ८८ से ६३, ६८ से २०३, ६, ११, ३१३, २५

कालीगंगा - २३, ३३, ४१, ५१, ६४, २७५

किम्पुरुषरेश - १६२

कीर्तिपुर - २७१, ७२

कीरग्राम - ६६

कुमाऊं - १३ से २०, ३६, ७०,

कराची - ६७

करदाह - ४०४

कलालघाटी - २६४

कलूर - ५६

कशगर - १०५, ६, ११

कश्तवार - १०५, १०

कश्कर - ११४

कर्त्तृपुर - २२२, ६५, ७० से ७३

काकशश - १०५

कांगड़ा - ६५, ६६, ६६, १००, ६, १४, १५, १८, ३१६

कान्यकुब्ज - १८६, ६८, २१०, ६१, ३६६

काफिरस्तान - ११४

कावेरीपट्टन - २३६, ४०, ५६

कालासागर - ११५

कालशैल, कालकूट - दे० कालसी

कालाम - १८८

कालीमठ - २१, १२०, ४७, २६३, ६३, ४०६

काशी - ११२, १३, ५२, २६१

काशीपुर - ३१, ४४, १८५, ६६, २३५, ४५

कीर - २१६

कुश्राकाचोर - २२३

कुरु - २११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६१, ६५ से ६६, १०६, १०, १६, २७, २६, ५१, ५२, २२१ से २३, २८, ४८, ५८, ६६, ७०, ७३, ८३, ३०६, ८, २३

कुलिन्ददेश - १६१, ७६, २०३, ४, २४, ३१६

कुशीनगर - ११३

कूर्माचल - दे० कुमाऊं

केदारभूमि - २६७

केतुमालवर्ष - १६२

केडा - २३६

केरल - ३२६

कैलास - ११, ६३, ६६, १४३ से ४७, ५२, ६५, ७२, ६७, २४३, ४८, ५३, ३४७, ६५, ४०६

कोलटी - ८७

कोशल-उत्कल - ४०६

कौशाम्बी - ६२, १८१, ८५, ८७

खजुराहो - ३६१, ६२, ४०५

खशिर - ११०

खालिमपुर - ३६५

खैबर - १६२

गढ़तांग - ३२४

गणाई - २३३, ९३

कुरुजांगल - १६१

कुरुक्षेत्र - १६१

कुल्ली - ८६

कुल्लू - ६६, ११५, ६२

कुलूत - २२१

कुलिन्दनगर - २८, २६५, ६६

कुशस्थली - ११२

कूचा - १०६, १०, २४७, ५३, ५४

कृकर्ण - २१३

केदारनाथ - ११, २१, २८, ५२, १२०, ४७, ५२, ६७, २६१, ६३, ८७, ६०, ६१, ३००, १, ६६, ६७

कोटद्वार - २८, ४४, १८५, ६२, २२३, २६ से ३२, ३००

कोल्हान् - ८७

कोल्हापुर - ८७

कोलिय - १८८

कोहिस्तान - ११४

खशदेश - ११०, २१, २७, ५०, २४१, ५८, ७३, ३६१ से ६५, ४०३, ८

खोचरनाथ - १२०

गढ़वाल - १२ से २०, ३६, ४६, ८१, ६६, ६६, ११०, २१, २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से २९, ४७ ५६, ८५, ५०६, ७, १३, २१, २३, 2८, ४०, ४१, ४८, ५८, ६८, ७०, ७३, ८३, ३०६, १७, 2० से 2४

गढ्रेरन - ११६
गरुड़ - २८३
गरुड़ाश्रम - २७१
गव्यर्ङि - ४१
गिर्य्यावली - 2८८
गुजरात - ५६, १22
गुलमुहम्मद - ७2
गोकर्ण - ३६६, ६७
गोमुख - 2४८
गोविषाण - 2८, १८५ से ८९, ९2, ९९, 22३, ३, ३५, ३६, ३९
गंगाद्वार - 2४, ५३ से ६०, ७९, 1४६, 21३ से 1५, 1९ से 21, ६८, ८३, ८७, ३12, ६५
गंगोत्तरी - ५2, ९६, 12०, 2७६, ९1
गंधमादन - ८९, 1९७, 2५३, ५५, ६६
चकरौता - ३८, ४६, 1५६
चरणपादुका - 2७४
चम्पावत - १2७, 2९५, ३०६
चंडेश्वर - ६५, ६६, ६९, ७९
चांदपुर गढ़ी - 2८, ५1, 2९५, ८2, ९०, ९३, ३९५
चीन - 1८७, 2५2, ७९

गिलगित - 2७९
गुनान - 2०७
गोकंठ - 2०७
गोपेश्वर - 2९३, ७७, ९९, ३०१, ८, 22, ९७
गंगाजी - ९, १०, ११, ३५, ४१, ५2 से ९३, 1३८ से ४७, ५३, ५६, ६४, ६९, ८1, ८४, ८५, ८८, ९1, ९७, 2०1, 11 से 21, ४1, ६1, ६४ से ६९, ७६, ३६४ ६६, ९1, ९2, ४०४
गंगोलीहाट - 2९५
गंगासागर - 1५2, ३६६, ६७
गंधार - 211
चमोली ३३ से ३६, ४७, 221
चम्बा - ९८, 11५ से 1८, 21०, ५५
चंडीघाट - 21६
चालदिया - 1०८
चिंतपुरनी - 1९६
चोल - ३2६, ४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौकीघाट - २२८
चौदांस - ८६
जगतराम - २८, १८५, २०२, १२, ३४५
जसपुर - ६३
जादुङ् - २००
जालन्धर - १८२, ९४, २०५, ९, १०
जोधपुर - ३६५
जौनपुर - ११०, १५, २२, २००
ज्वालापुर - २२१
ज्वालामुखी - ११९, २००
टंकरणपुर - २६०, ७१, ३८१ ८३, ८५, ८९
टंकणौर - ९६, २४२, ४८
टौंस-३३, ३४, ९४, १४८, २०१
डीडीहाट - २६५

तड़ासर - ३०२,
तपोवन - ३०, २६३, ७१, ७५, ९१, ३०२, ३, ५
तक्षशिला - १९, ७८, ११६, ८७, ९६, २०९
तामाजुड़ी - ५९
तिगवां - २९१
तिरहुत - १००, २८०
चौखटिया - २३३, ६३.
छोटा नागपुर - ६२, ८६
जन्मकर - १०३
जम्मू - ९०, १००, ९४
जागीश्वर - १५२, ३०१
जावा - २३९
जूनागढ़ - ३२१
जोशीमठ - २८, ५१, १९५, २२७, ४१, ६०, ७१, ७४, ७५, ८५, ८७ से ९०, ९९, ३०२ से ५, ८, १९
जौनसार-११०, १५, १८ २२, २०८
टंकणप्रदेश - २५७, ५८
टंकणी - २४२
टिहरी - ३५, ३६, ४६, ५१, २०६, ७, २२
ढिकुली - २८, १९९, २२२, २६, ३३, ३८
तकंत्रावाली - २६४
तरिम-उपत्यका - १८७
तंगण - २२१, ४१
ताम्रपर्णी - ३२६, ४३
ताम्रलिप्ति - ३४, १८६ २३९
तालेश्वर - ३५१, ५७
तिब्बत - १३, ३२, ३६, ४०, ४५, ४९, ६८, ७०, ७४ से ७७, ९०,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुंगनाथ - २६३
तुर्की - १०८
तुर्किस्तान - ११५, ३१४
तूरान - ११०
तेपेहिसार - ७९
थानेश्वर - २०७
दयालगढ़ - २०६
दरवाज - ११६
दरमा - ८६
दसपला - ६३
दिल्ली - १८७, ६८, २५५, ६४, ३१५
दूनागिरी - ६४, ६५
दूधातोली - ३०८
देवलगढ़ - २६५, ८३, ९१
देवीधुरा - ६८, ६९
देहरादून - ३६, ४५, ४६, १६१, ८५, २०२, ११, ३१५
धनपुर - २२३
धराली - २९१
नमक की पहाड़ी - २०९, १०
नर-नारायण-श्राश्रम- दे०बदरिकाश्रम
नमग्या - ७०, ११७
नागपुर - ६७, १५६
नाला ४०७
नागसिद्ध - २०१
१०३, ४, ११, १७, ९०, २४२ से ४९, ५२, ५३, ५६ से ६३, ७८ से ८१, ३१४, २४
तेहरान - १०६
थाई - ९७
थारपरकर - १११
दरद - २२१
दरभंगा - १००
दर्दिस्तान - ९८, १११
दार्जिलिंग - ८५
दीर - ११४
दुनरिया - ६३
दूलू - ४००
देवल - ३०३
देवप्रयाग - १५०, २६९, ९१, ३०३ १९, ४६
द्रोणागिरि - १२०
द्वाराहाट - १५, ७०, १२०, २६५, ३०७
नजीबाबाद - १८५, २२९, ३०
नगीना - १८५
नवदाटोली - ११२
नरेन्द्रनगर - ३८, ४६
नारायणकोटि २६३, ६८
नालंदा - १९, १९६
निम्बसारी - २७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीती - ९९
नेपाल - ४२, ८६, ९०, ९५, ९९, १००, ३, ६, ९, १०, १२, १४, १७, २४८, ७०, ८०, ९०, ३१७, २३
पठानकोट - २६१
परसू - ९९
पर्णी - २१३
पंजाब - ५३, ५६, १००, १३, २९, ३२, ८७, ८८, ९६, ९८, २७०, ३१३, १६
पां (पं) चाल - २१३, १४, ३२, ३७, ३८
पांडुवाला - २८, १९०, २२५, से २६, ३२
पांड्य - ३२६, ४३
पिंडोखेप - ५३
पुन्यगिरि - १२०
पैनखंडा - २४१
पौड़ी - ३८, ४६, ३०३
प्रशांतमहासागर - १०५
फारिस - २४८, ५१, २६३
बगरीहाट - २६५
बदरिकाश्रम - दे० बदरीनाथ
बज्रेश्वरी - १९६
बर्मा - ९३, ९७
नीलगिरि - ६७
नेलङ् - २८०
नैनीताल - ३५, ३६, ४६, ४७, १००, २२१
पद्मसर - १९१
परिश्रार - ५९
पर्वताकर - २२५, ३५३, ५८, ६१
पशुपतिनाथ - १२०
पलेठा - ३१
पातालभुवनेश्वर - १५२
पाटलिपुत्र - ३४, १८२, ८५, ९२, ९४, २०५, ३१४
पोखरी - २२३
पांडुकेश्वर - २६१, ३६८, ७४, ८०, ८४
पिथौरागढ़ - ३३ से ३६, ४२, ४७, १०० २२१, ६५, ३०१
पौलीनेसिया - ८३
प्रयाग - १८३, २६१, ३४६
फतेहगढ़ - ५९
बक्सर - १११
बढापुर - १८५, २२३, २६
बदरीनाथ - ११, १२, २८, ४५, ५० से ५४, ६५, ६७, ७१, ७४, ७५, १२८, ४४, ९७, २०२, ४, ८,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहादराबाद : 2० से 2४, ५४, ५७ से ५६
बागुरी - 2८०, ८३
बाणगढ़ - ३६४
बाह्लीक - ३४
बालावली - ६०
बादीहलपेह - १०2
बारहस्यूं - ११८
बारण - १६८
बाराणसी - 2७६, ३2४, ४०५
बिहार - ५७, ५६, १००
बिसौली - ५६
बिलोचिस्थान - ६७, १११
बीरणेश्वर - 22७, 2८, ८३, ८४
बुलन्दशहर - १६८
बूढ़ाकेदार - १2०
बेबीलोन - ६६, १०८, 2४६ से ५१, ५४
बैक्ट्रिया - १३३
बैजनाथ - 2८, ३०, ५१, ११६, 2० ५2, 22७, ६५, ७५, से ७६, ८१, ८2, ८७, ३22, ६३, ६६
ब्रह्मपुर - 2८, 2६, १८2 से ८६, ६2, ६६, 22१ से 2८, ३५, ३८, ६१, ६६ से ७2, ७६,
६१ से ६५, ७१, ७४, ३०४, ५, १६, 23, ७६, ७७
बागेश्वर - 2८७ से ६१, ३०५, ७७
बालेश्वर - ३०५, ६, ६४
बाड़ाहाट - 2८, ३१, ५१, 22६, ६३, ६५, ७५ से ७६, ८१, ८2, ८७, ३22, ६३, ६६
बारणावत - १५६
बारबरिकोन - 2४४
बिजनौर - ३५, ३६, १८५, 222,
बिन्ध्यप्रदेश - ५६
बिनसर - १2०, 2६०, ३०६
बिभांडेश्वर - १५2
बीकानेर - १११
बुशहर - १३, ४५, 2८०
बूलिय - १८८
बेरीनाग - 22८
बैद्यपुर - ७७
बैशाली - १४2
बोधगया - ३2, ४०१, 2
बंगलौर - ६७
बंदरभेल - १६५
ब्यांस - ८६
भग्ग - १८८
भरद्वाज - १६६, 2१३, १५, 2५१
भरसार - ३2०, 2४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८० से ८३, ३२१, ५१, ५४
५७, ६०
भागीरथी - ४१, ५१, ६५, ६६,
१७४, २४८, ३०३
भारहुत - २०४, ५, १२, ३४४
भूमरा - २६७
भूटान - १०४
भृगुतुंग - १५०
भोज - २११
भंगरापीर - ६३
मनसूरी - ३८, ४६
मयूरभंज - ५८
मलाया - ६७
मलारी - २४, ७०, ७३, ७८,
७९, ९८
मथुरा - ११६, ८७ से ९४, ९८
महापंथ - १४४
मल्ल - १८८
मत्स्य - २११
मणिकोट - २६५
मानसरोबर - ३३, १०२, ३, ५२
मायापुर - २८, २९, ८९, १८५,
से ९२, ९९, २१९, २०, २५,
६१, ३१४
मांडलपुर - २०६, ३१२
मालव - २८३
भरोत - ३९८
भागलपुर - ३९३
भारत - ९, १८, १९, २५ से २८,
३६, ४०, ५३, ५७, ६७, ६८,
७०, ८३, १०७, ९, १३, १७, २१
२६, ३२, ३३, ८७, २९८, ४३,
से ५७, ६०, ६३, ८३, ३१४
भृगुकच्छ - २६१
भोजक - १८३
मगध - ११९, ८३, ३१३
मध्यभारत - ५६, ५९, ६७, ६८, ८३
मदरास - ५८
मध्यएशिया - ६९, ७९, ११०, २४,
९०, २४२, ५४ से ६१
मलाणी - ९९
महाराष्ट्र - १३७, ५०
महाकाल - १५२
मध्यमिका - १९४
मद्र - २११
मयूर - २२०
मार्दीपुर - दे० मंडावर
माणा - ९९
मडांवर - २१९ से २६, ८२
मांडल - २२४, २६
मान्यखेट - ४०५
मिश्र - ६१, २४२, ४७, ५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिर्जापुर - ५३, ५८
मिलम - २४५
मुंगेर - ३६६
मुलतान - २४४
मेरठ - १८७, ६४
मेनानेसिया - ८३
मोरध्वज - २८, १८५, ८६, ६२, ६६, २३१, ३८, ३१२, १४
मंगलवारि ३६७
यदु - २११
यवन - २११
यमुनोत्तरी - ५२, ११६, १७६, २०३
यामुन - १६६, २००, ३, १२, १३, १५, ७०
युगशैल - २०३
यूरोप - ४६, ५३, ५८, ६४, ६७, १०७, २४३
राजगृह - १८५ से ८८, ६१
रामनगर - ४४, १६६, २३३
रामपुर - ४५, २३५
रामेश्वर- १२६, ५२, २३६, ४०४
राजस्थान - ३०६, १५
रुहेलखंड - २७०, ७५, ३२२
रुपशु - १०३
रोपड़ - ७८
मिथिला - ६६, १८८, ६१
मिठावाली - २६४
मुरादाबाद - ३३३
मूसक - १८३
मेसेडोनिया - १२८
मैसूर - ५६, ६६
मंगोलिया - २४१, ५३, ५६
मंदसौर - ३१६, ४७, ६४
मंडी ११५
यमन - २४७
यमुना २३, ३३, ३४, ५१, ५२, १३८, ४५ ८८, ८६, ६७, २०१, ६, ८, ११, १३, ४०४
यारकंद - ७८
युगन्धर - २०३
यूनान - २४८, ५३, ६३
योशिका २७६
रवांई - ८१
राजापुर - ५६
रानीखेत - ३८, ४७, ६५, २३३
रामगंगा - ४१
राणीहाट - २६७ से ७०, ७७, ८७, ६१, ३१३
रुद्रप्रयाग - ३३
रूस - ६६, ७८
रोहतक - १६१, ३१५, ४६, ५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम - २४७, ४८, ५०, ५१ ५३
लखनपुरकोट - २६५
लछमनझूला - ५४, ५८, १८५, २१४, १५
लाहुल - ७०, ७८, ६५ से ६६, ११७
लालढांग - २२३
ल्हा-सा - ७४
लिप्पा - ७०, ७५, ११७
लुधियाना - ३१५
लैंसडौन - ३८, ४६, ३०२
वनराष्ट्र - २२१
विदिशा - १८२, २११
विन्दुसर - ११, १६७
वैशाली - १८८
शकस्थान - ११६
शतद्रु - २१०
शाक्य - १८८
शिमला - २८३
शियालक - ७६
शिवालिक - ६, ३६, ३७, ५७
श्रीनगर (कश्मीर) - १८८
शैलोदा - १६३, २५६
श्रावस्ती १८५, १८८
शोणितपुर - १४५
सतोपंथ - २४८
लकसर - ३५
लखनपुर वैराटपट्टन - २८, ५१, २२२ से २४, २६, २७, ३३, ६५, २८३
लद्दाख - ७०, ७७, ७८, ८५, ६६, ६८, ६६, १०३, ४, १७, २८१
लाहौर - २५५
लाखामंडल - २८, १८५, २०८, ६, १२, ८७, ६१, ३४७
लिच्छिवी - १८८
लेह - ६८
वनअसुरिया - ६३
वाराणसी - १८७
विष्णुप्रयाग - २७५
वीरभद्र - २८, १८५, ८६, ८६, ६२, ६६, २१७ से १६, २५, ३२, ३८, ६८, ३१४
शाकल - दे० स्यालकोट
शारदा - ३३, ३४, ४२, ८४
शिकारपुर - १११
शिवराजपुर - ५६
शिरीषपद्रक - ४०८
श्रीनगर - २८, ३३, ५१, ८७, ८६, १२६, २६७ से ६६, ७४, ७५, ८७, ३०८, २३
संजन - ४०४
सप्तश्रृंग - ८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सपादलक्ष - ४०३
सलेम - ६७
सरहिन्द - २१०
साइबेरिया - २३९
सांची - २९१
सारनाथ - २९३
सिक्किम - १००, २८१
सिन्धुघाटी - ८३, १३३
सिमली - ३०, २९३, २८, ३०६
सिरमौर - २०६, ७
सिंहपुर - १८५, ८९. ९९, २०३, ७ से १२, ७७
सीरिया - २३८
सुवर्णगोत्र - २९९, २८२
सुमंडल - १६१ ९१
सुमेर - १०८
सुमाड़ी - २९७
सैरिन्ध्र - २२१
सोमेश्वर - ६५
सोहनघाटी - ५६, ५८
स्टोनहेंज - ६५
स्थलपथ - १८६
स्पिति - ९५, ९९
स्यालदेपोखर - ३०७
स्यालकोट - १६१, ८2, ८७ से ९४, 2०2, ६१
सरथोली - ५९
सल्डमहादेव - २०, ३१, ३०६, २
सहारनपुर - ३५, १०६, ११, ३१५
साकेत - १८३, ८९, ९४
सातियपुत्र - ३५६
सार-इ-पुल - ७३
सिंगरोली - ५८
सिन्ध - ५६, १००, ११, २९, ३
सिंहल - ४८५
सीममुखीम - २४८, ८२
सीराकोट - २६५
सुघ - २०६, ७
सुकेत - ११५, २१०
सुभिक्षपुर - ३८४, ८९
सुराज - ११५
सुमेरु - ३४७
सुमेरिया - २४७
सैंहपुर - 2८, ३१, 2०८ से १२, 2७०, ३2१, ४८, ४९
स्काउटलैंड - ६७
स्त्रीराष्ट्र - १८३, 2९९
स्थाण्वीश्वर - १८९, 2३१
स्रुघ्न-2८ से ३१ १८2. ८५ से ८९, ९2 से 2१४, १७, १९, 2०, 2५, ७०, ७९, ८०, ३१2, १३, 22
स्यूं - ७०, ११७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

.रिपुर-२८, १३३, ८५, ६६, २०१
हमदान - १०६
ह्‌प्पा - ५६
हस्तिनापुर - ६० से ६३, ६८, १८१
,८६, ६६, २१६, ६१
न्दचीन - ६३, ६७
न्दु (देश) - १३३
मदान - १५०
सार - १६१
नवर्ष - २४५
शि..ारपुर - १००
हरिद्वार - २३, ३२ से ३५, ४४, ५४, ८६, १००, ४२, ४५, ४६, ८२, ६१, ६८, २१७, २४, ६४ ७४, ३१२
हामी बरगुदा - ६३
हिमाचलप्रदेश - ८१, ६०, ६६, १०६, १५, २२, २८, ३१७
हिमालय - ११, ३३, ३६, ३८, से ४०, ४२, ४५, ४७
हैदराबाद - ५६

(३)

त्तराखण्ड

विस्तार, क्षेत्रफल, जनसंख्या - ३६, पर्वतश्रेणियां -३७, हिमानियां-४१, गिरिद्वार-४०, नदियां-३६, सरोवर ४२, जलवायु, वनस्पति-३८, कृषि और पशुचारण - ४८, आजीविका की ढूंढ़ में प्रवास - ४६

भारतीय संस्कृति पर उ० का प्रभाव, गंगाजी की पावनता - ६ उ० की तीर्थयात्रा की प्राचीनता - १०, भारतीय राजनीति पर उ० का प्रभाव-११, दिग्विजय-क्षेत्र-११, अभिलेखों में उ०-विजय की घोषणा १२

उ० के इतिहास लेखक - १२, सतर्कता आवश्यक - १८, कत्यूरीयुग तक के इतिहास का महत्त्व - १८, ऐतिहासिक साक्ष्यों का सामान्य परिचय - २३

उ० में प्रस्तरकालीन संस्कृति २२, ५३, ताम्रकालीन संस्कृति - ५८, मेगालिथ-निर्माता - ६४, मलारी-संस्कृति - ६६, जातियों का प्रसार ८१, कोल (मुंड) - ८२, किरात - ६५, खश - १०४, द्रविड़ - १२८, आर्य आदि - १३२, रक्तमिश्रण - १३५

उ० के प्रति पुनीत भावना - १३८, गंगावतरण - १४४, उ० में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थों की कल्पना - ११६, उ० में उमा-परिवार के निवास की कल्पना -
११६, १४४, नर-नारायण-आश्रम की कल्पना - १७२

भरतवंश - १३८, भरत दौष्यन्ति-१३८, यामुन १६६. भारद्वाज
२१३, पंचाल-२१४, पांडु-१५६, द्रोणाचार्य-२१५, युधिष्ठिर-१६
२१३. पंचाल-२१४, पांडु-१५६, द्रोणाचार्य-२१५, युधिष्ठिर-१६१
कुलिन्दनरेश सुबाहु-१६७, राज्यविस्तार-२६४, उ० के निवासी-२६
समृद्धि-१७२, कण्वाश्रम-१५७, बदरिकाश्रम-१७२, राजसूय में उपा
१६२, महायुद्ध में पांडवों की सहायता-१७६

जातककालीन उ०-१३६, बुद्ध का गंगाद्वार में आगमन-१६१, भ
में बौद्धमत-१६१, २२६, भरतचक्रवर्ती द्वारा उ०-विजय-१४३

नन्दवंश-३१३, मौर्यवंश, अशोक-३१३, मार्गों की सुरक्षा-१
व्यापार को प्रोत्साहन-२६२, स्रुघ्न का बौद्ध राजवंश-२०५, पंचाल
'मित्र' नरेश-२३७, शुंग-आधिपत्य-२०५, उ० की समृद्धि-२०४

कुलिन्दराज अमोघभूति-३१७, कनिष्क-कुशाण-३१३, उ०
समृद्धि-२६३, भाबर के प्राचीन नगर-२१७, २२६, तंगणों का व्यापार
२३८, कुशाण-उत्पाटन के लिए यौधेय, आर्जुनायन और कुणिन्दगण
का संघर्ष-३१५, छत्रेश्वर, शिवदत्त, शिवपालित, हरिदत्त-३१६

कर्त्रिपुर की स्थापना-२७०, शीलवर्म्मन् का अश्वमेध-२०१,
कर्त्रिपुर का समुद्रगुप्त को करदान ३४६, ध्रुवस्वामिनी-हेतु खशाधिपति
का विनाश-२७३, उत्तराखंड पर गुप्त-आधिपत्य-३१६, देवप्रयाग के ले
३४६. चन्द्रगुप्त द्वितीय-३२०, कुमारगुप्त-३४७, स्कन्दगुप्त-२
पुरुगुप्त-२२१, ब्रह्मपुर के पौरवनरेश-३५१, बाड़ाहाट के शैवनरेश-३
सैंहपुर के यादवनरेश-३४७, यशोधर्म्मदेव-३६४, हर्ष का उ०
अधिकार-२०५, युवान्-चाङ्-२०५, २०६, शिलालेखों के कत्यूरी
३०८, धर्मपाल-३६५, देवपाल-३६६, यशोवर्म्मन् चन्देल-३६१, नारा
पाल-३६३, कर्णदेव-३६४, महिपाल-३६४, मदनपाल- ३६४, प
कत्यूरी-३६६, गढ़पति-४०६, क्राचल्लदेव-३६८, अशोकचल्ल-
सहणपाल-४०२, भोजपरमार-३६५, विग्रहराज-३६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीर-गाथा-प्रकाशन
दोगड्डा, गढ़वाल

शिवप्रसाद डबराल एम. ए., पी-एच. डी.
का उपलब्ध साहित्य

गढ़वाल, कुमाँऊ, उत्तराखंड-संबंधी—

उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन—उत्तराखंड के तीर्थों, यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ, रूपकुण्ड, महापंथ, सीम-मुखीम तथा कैलास-मानसरोवर की तीर्थयात्रा का तथा मन्दिरों, मूर्तियों, पण्डों और रावलों का इतिहास, एवं मन्दिरों में इतिहास और पुरातत्व की सामग्री का प्रामाणिक खोजपूर्ण वर्णन। १०)

उत्तराखंड के भोटांतिक—उत्तरकाशी, चमोली तथा पिथौरागढ़ के जाड, मारछा, तोलछा, जोहारी, ब्यांसी, चौदांसी आदि भोटांतिकों के, एवं उनके हुणिया (डोक्-पा) मित्रों के इतिहास, जीवन और समस्याओं का खोजपूर्ण, प्रामाणिक वर्णन। ५)

उत्तराखंड के पशुचारक—उत्तराखण्ड के पठारों पर नाम-मात्र की कृषि तथा पशुचारण से निर्वाह करनेवाले खड्वाल, गद्दी, खश और कुमाउनी पशुचारकों के इतिहास, जीवन और समस्याओं का विस्तृत अध्ययन। २)

अलकनन्दा-उपत्यका—अलकनन्दा की पनढ़ाल में स्थित उत्तरकाशी, टिहरी, चमोली तथा पौड़ी-गढ़वाल, इन चारों जिलों के भूगोल, इतिहास निवासियों के जीवन, आजीविका के साधन और समस्याओं का पहला विस्तृत, प्रामाणिक एवं खोजपूर्ण अध्ययन। ४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड का इतिहास--भाग १, प्रस्तरयुग से कत्यूरीयुग तक। समस्त उपलब्ध शिलालेखों, मुद्राओं, स्थापत्य के अवशेषों, साहित्यक प्रमाणों और भाषाविज्ञान एवं नृवंशविज्ञान के निष्कर्षों के गम्भीर अध्ययन के आधार पर लिखागया उत्तराखंड (देहरादून, गढ़वाल, कुमाऊं) का पहला विस्तृत खोजपूर्ण इतिहास। पृष्ठ संख्या ६०० से अधिक, अनेक चित्र। १०)

नाटक—

गुहादित्य—यवनों के आक्रमण से बल्लभीराष्ट्र का विध्वंस, मंत्री का देशद्रोह, सम्राट शिलादित्य का वीरत्वपूर्ण अवसान, राजकुमार गुहादित्य द्वारा ईडर के वनप्रान्तों में भटकतेहुए साम्राज्य की स्थापना ।।)

गोरा-बादल—अलाउद्दीन के आक्रमण से बलिदान होजानेवाले वीर गोरा, बादल, क्रांतिचन्द और ज्वालादेवी की असीम वीरता, पद्मिनी का बारह सहस्र नारियों के साथ जौहर, चित्तौड़ का प्रथम विध्वंस। ।।।)

महाराणा संग्रामसिंह—हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए आजीवन रणप्रांगण में प्रस्तुत रहनेवाले पुण्यश्लोक महाराणा संग्रामसिंह की रोमांचकारी गाथा, हिन्दुधर्म और इस्लाम की समानता घोषित करनेवाले महात्मा बुद्धिनाथ का बलिदान १)

पन्ना धाय—सुलतानबहादुर के आक्रमण से चित्तौड़ का द्वितीय विध्वंस, बाघारावल का महान् त्याग, महाराणा संग्रामसिंह के अबोध पुत्र की रक्षा के लिए पन्नाधाय का अपने पुत्र की हत्या करवाना। १)

हिरोल (महाराणा अमरसिंह)—चन्दावतों और शक्तावतों के उद्योग द्वारा अमरसिंह का मुगलों से चित्तौड़दुर्ग छीनना, सागरसिंह का देशद्रोह और दुखान्त, चन्दावतों और शक्तावतों में हिरोल के लिए भीषण कलह, बांदाठाकुर और दल्ल का अमानुषिक वीरत्वप्रदर्शन ।।)

वीर हम्मीर—रणथंभोर के अंतिम चौहान सम्राट वीर हम्मीर की गौरव-गाथा, अलाउद्दीन खिलजी का रणथंभोर पर आक्रमण, हम्मीर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्राताओं, सेनापति और भांडारी का देशद्रोह, रणथंभोर का पतन आदि हृदय दहलानेवाली घटनाओं का ओजस्वी वर्णन । ॥।)

जुझारसिंह बुन्देला-फिरोजजंग द्वारा शैलबाला के पति की हत्या करके उसके अपहरण का प्रयत्न, जुझारसिंह द्वारा शैलबाला का उद्धार, और स्वतन्त्र बुन्देलेराज्य की स्थापना, मुगलों का बुन्देलखंड पर आक्रमण, जुझारसिंह की पराजय और दुर्दशा की करुण कहानी । ॥।)

कविता—

संघर्ष-संगीत—समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, मौखरि नरवर्मा, अर्जुन हाड़ा आदि वीर पुरुषों के सम्बन्ध में ओजस्वी गीत । ।≈)

अतीत-स्मृति—हिमालय, सिन्धु और सारनाथ को सम्बोधित करके लिखीहुई देशभक्तिपूर्ण कविताएं । मुखपृष्ट पर रण के लिए प्रस्तुत सैनिक का भावपूर्ण चित्र । ।≈)

जन्माष्टमी—कारागार में कृष्ण-जन्म, वसुदेव द्वारा उन्हें नन्द-गृह में पहुंचाना तथा कंस द्वारा नन्द-सुता की हत्या का वर्णन । ।)

सती-दाह—दक्ष प्रजापति द्वारा अपमानित होकर सती के शरीर त्याग की पौराणिक गाथा के आधार पर लिखागया महाकाव्य ।

बुद्‌बुद्—लगभग एक सौ दार्शनिक रूबाइयां । ।)

महाश्वेता-पुण्डरीक—श्रीमती कामिनी राय की 'महाश्वेता' और 'पुंडरीक' नामक दो बंगला कविताओं का हिन्दी पद्यानुवाद । ॥)

वीर-अन्त्याक्षरी—वर्तमान युद्ध के सम्बन्ध में लिखीगई ओजस्वी कविताएं, वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर पर पांच छन्द । ४० पैसे

बालोपयोगी—

बाल नाटक-माला (भाग १)—उपदेशपूर्ण छोटे-छोटे एकांकी नाटक, बाल-श्रेणियों के छात्रों द्वारा अभिनय के उपयुक्त । ॥)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड का इतिहास--भाग १, प्रस्तरयुग से कत्यूरीयुग तक। समस्त उपलब्ध शिलालेखों, मुद्राओं, स्थापत्य के अवशेषों, साहित्यिक प्रमाणों और भाषाविज्ञान एवं नृवंशविज्ञान के निष्कर्षों के गम्भीर अध्ययन के आधार पर लिखागया उत्तराखंड (देहरादून, गढ़वाल, कुमाऊं) का पहला विस्तृत खोजपूर्ण इतिहास। पृष्ठ संख्या ६०० से अधिक, अनेक चित्र। १०)

नाटक—

गुहादित्य—यवनों के आक्रमण से बल्लभीराष्ट्र का विध्वंस, मंत्री का देशद्रोह, सम्राट शिलादित्य का वीरत्वपूर्ण अवसान, राजकुमार गुहादित्य द्वारा ईडर के वनप्रान्तों में भटकतेहुए साम्राज्य की स्थापना ॥)

गोरा-बादल—अलाउद्दीन के आक्रमण से बलिदान होजानेवाले वीर गोरा, बादल, क्रांतिचन्द और ज्वालादेवी की असीम वीरता, पद्मिनी का बारह सहस्र नारियों के साथ जौहर, चित्तौड़ का प्रथम विध्वंस। ॥।)

महाराणा संग्रामसिंह—हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए आजीवन रणप्रांगण में प्रस्तुत रहनेवाले पुण्यश्लोक महाराणा संग्रामसिंह की रोमांचकारी गाथा, हिन्दुधर्म और इस्लाम की समानता घोषित करनेवाले महात्मा बुद्धिनाथ का बलिदान १)

पन्ना धाय—सुलतानबहादुर के आक्रमण से चित्तौड़ का द्वितीय विध्वंस, बाघारावल का महान् त्याग, महाराणा संग्रामसिंह के अबोध पुत्र की रक्षा के लिए पन्नाधाय का अपने पुत्र की हत्या करवाना। १)

हिरोल (महाराणा अमरसिंह)—चन्दावतों और शक्तावतों के उद्योग द्वारा अमरसिंह का मुगलों से चित्तौड़दुर्ग छीनना, सागरसिंह का देशद्रोह और दुखान्त, चन्दावतों और शक्तावतों में हिरोल के लिए भीषण कलह, बांदाठाकुर और दल्ले का आमानुषिक वीरत्वप्रदर्शन ॥।)

वीर हम्मीर—रणथंभोर के अंतिम चौहान सम्राट वीर हम्मीर की गौरव-गाथा, अलाउद्दीन खिलजी का रणथंभोर पर आक्रमण, हम्मीर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्राताओं, सेनापति और भांडारी का देशद्रोह, रणथंभोर का पतन आदि हृदय दहलानेवाली घटनाओं का ओजस्वी वर्णन। ।॥)

जुझारसिंह बुन्देला-फिरोजजंग द्वारा शैलबाला के पति की हत्या करके उसके अपहरण का प्रयत्न, जुझारसिंह द्वारा शैलबाला का उद्धार, और स्वतन्त्र बुन्देलेराज्य की स्थापना, मुगलों का बुन्देलखंड पर आक्रमण, जुझारसिंह की पराजय और दुर्दशा की करुण कहानी। ।॥)

कविता—

संघर्ष-संगीत—समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, मौखरि नरवर्मा, अर्जुन हाड़ा आदि वीर पुरुषों के सम्बन्ध में ओजस्वी गीत। ।=)

अतीत-स्मृति—हिमालय, सिन्धु और सारनाथ को सम्बोधित करके लिखीहुई देशभक्तिपूर्ण कविताएं। मुखपृष्ट पर रण के लिए प्रस्तुत सैनिक का भावपूर्ण चित्र। ।=)

जन्माष्टमी—कारागार में कृष्ण-जन्म, वसुदेव द्वारा उन्हें नन्द-गृह में पहुंचाना तथा कंस द्वारा नन्द-सुता की हत्या का वर्णन। ।)

सती-दाह—दक्ष प्रजापति द्वारा अपमानित होकर सती के शरीर त्याग की पौराणिक गाथा के आधार पर लिखागया महाकाव्य।

बुद्बुद्—लगभग एक सौ दार्शनिक रूबाइयां। ।)

महाश्वेता-पुण्डरीक—श्रीमती कामिनी राय की 'महाश्वेता' और 'पुंडरीक' नामक दो बंगला कविताओं का हिन्दी पद्यानुवाद। ॥)

वीर-अन्त्याक्षरी--वर्तमान युद्ध के सम्बन्ध में लिखीगई ओजस्वी कविताएं, वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर पर पांच छन्द। ४० पैसे

बालोपयोगी—

बाल नाटक-माला (भाग १)—उपदेशपूर्ण छोटे-छोटे एकांकी नाटक, बाल-श्रेणियों के छात्रों द्वारा अभिनय के उपयुक्त। ॥)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपाख्यान-माला—हितोपदेश की शैली पर उपदेशप्रद ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं का संकलन। बाल-कक्षाओं के उपयुक्त। ।=)

हुतात्मा-परिचय—अरबों के आक्रमण द्वारा दाहर के पतन से लेकर महात्मागांधी के बलिदान तक विदेशी आक्रमणकारियों ने और इस देश में उत्पन्न होकर भी इसे शत्रु-भूमि समझनेवाले शासकों ने कितना धन लूटा, कितने लक्ष लालों का रुधिर बहाया, कितने लक्ष युवक-युवतियों को बर्बरों के पास एक-एक, दो-दो रुपए में बेचा, मातृभूमि को यवनों और गोरों के दासत्व से मुक्त करने के लिए किन-किन वीर-वीरांगनाओं ने क्या-क्या बलिदान किए आदि का सप्रमाण वर्णन। ॥)

धर्म-शिक्षा की पुस्तकें—

धर्म-शिक्षा, भाग १	॥)
धर्म-शिक्षा, भाग २	॥)
धर्म-शिक्षा, भाग ३	॥।)
धर्म-शिक्षा, भाग ४	॥।)
गृहस्थी का धर्म	॥)
धर्म-प्रवेशिका	।=)
नरेन्द्र-हिन्दी-रीडर	।)

—※—

वीर-गाथा-प्रकाशन, दोगड़ा, गढ़वाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिवप्रसाद डबराल 'चारण' एम० ए०, डी० लिट्०

का

उपलब्ध साहित्य

गढ़वाल-कुमाऊं-उत्तराखंड संबंधी

उत्तराखंड का इतिहास कत्यूरी-युग तक	
भाग १ साक्ष्य-संकलन (Sources)	१०)
भाग २	१०)
उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन	१०)
उत्तराखंड के भोटांतिक	५)
उत्तराखंड के धर्मप्रचारक	५)
अलकनन्दा-उपत्यका	४)

कविता

संघर्ष-संगीत	।=)
अतीत-स्मृति	।=)
जन्माष्टमी	।)
बुद्बुद्	।)
महाश्वेता-पुंडरीक	॥)
वीर-अन्त्याक्षरी	॥)
सती-दाह	

ओजस्वी नाटक

गुहादित्य	॥)
गोरा-बादल	॥।)
महाराणा संग्रामसिंह	१)
पन्ना धाय	१।)
हिरोल (म० अमरसिंह)	॥)
वीर हम्मीर	॥।)
जुझारसिंह बुन्देला	॥।)

बालोपयोगी

बाल नाटक-माला	॥)
आख्यान-माला	।=)
हुतात्मा-परिचय	॥)
नरेन्द्र-हिन्दी-रीडर	॥)
गृहस्थी का धर्म	॥)
धर्म-प्रवेशिका	।=)
धर्म-शिक्षा, ४ भाग	२॥)

वीर-गाथा-प्रकाशन
दोगडा, गढ़वाल